प्रथम खण्ड

पहला परिच्छेद

जहाँ कमला की कृपा होती है, वहाँ बहुधा देखा गया है कि सन्तानका अभाव होता है। दे दे बङ्गाल, बिहार और उड़ीसाके नवाब बड़े घर अलीवर्दीके ऐश्वर्यकी सीमा नहीं थी। किन्तु रहेंगे पीछे उनके विपुल ऐश्वर्यका भोग कौन करेगा? कौन मुर्शिदाबादकी गद्दीपर बैठकर राज्यशासन और प्रजापालन की, रेगा।

तो क्या नवाब अलीवर्दी नि सन्तान थे? नि सन्तान नहीं, किन्तु ऐश्वर्यके साथ पुत्रलाभका सुख सौभाग्य उनके ललाटमें नहीं था। उनकी सन्तानमें तीन कन्यायें थीं। उनके नाम—आयमना बेगम अमीना बेगम और घसीटी बेगम थे।

नवाबने इन तीनों कन्याओंको अपने भाई हाजी अहमदके तीनों पुत्रोंसे परिणय सूत्रमें आबद्ध कर दिया था। जैनुद्दीन के साथ अमीना बेगमका, नवाजिश मुहम्मदके साथ घसीटी बेगमका और सय्यद अहमदके साथ आयमना बेगमका विवाह हुआ।

अलीवर्दीने भतीजोंको केवल कन्यादान ही नहीं दिया, वरन् सिंहासन पानेपर उन्होंने जैनुद्दीनको पटनेका, नवाजिश को ढाकेका, और सय्यद अहमदको पुर्नियाका शासन भार अर्पण कर दिया।

पुत्र न होनेसे जिस तरह लोग संसारसे उदास हो जाते हैं, नवाब अलीवर्दीने उस तरहका कोई भाव प्रकाश नहीं किया। वह अपने दौहित्र, अमीना बेगमके पहले पुत्र का अपने पुत्रकी तरह लालन पालन करते थे और उसी को उन्होंने अपना उत्तराधिकारी भी स्थिर किया था। इस बालक का नाम मिर्जामुहम्मद था। यही मिर्जामुहम्मद इतिहासमें जनसाधारणके निकट सिराजुद्दौलाके नामसे प्रसिद्ध हुआ।

सिराजुद्दौला बचपन ही से नाना और नानीके स्नेहके कारण बड़े आदरसे प्रतिपालित हुआ। बङ्गाल बिहार उड़ीसा

नवाब अलीवर्दीको एक तो बूढी अवस्था, तिस पर कोई पुत्र नहीं, इस कारण बालक सिराज उनका एकमात्र आदरणीय धन था। जिसके घरमें धन-रत्न की सीमा नहीं—वसन-भूषणका कुछ ठिकाना नहीं—दासदासियोंका अभाव नहीं—उसके उत्तराधिकारी को भला किस समय किस वस्तु की त्रुटि हो सकती थी? इसी कारण बालक सिराजके हठ की सीमा न रही। जिस समय जो मनमें आता, नवाब और नवाब-पत्नी उसी समय उसी इच्छाके पूर्ण करनेमें तत्पर हो जाते। उसकी इच्छाकी पूर्त्ति करनेमें अर्थव्ययसे कभी न हिचकते, यहाँ तक कि बहुधा बहुत से अनुचित कार्य भी कर बैठते। ऐसा हठ कि जिससे मन्त्री, उमराव, आत्मीय स्वजन, दासदासी सभी विरक्त होते, किन्तु नवाब अथवा नवाब पत्नी को कुछ भी बुरा न मालूम होता था। निवारण करने अथवा समझाने की भी चेष्टा नहीं करते थे। कोई उमराव, राजा अथवा महाराजा सिराजुद्दौलाको इन सब असंगत इच्छाओंका प्रतिवाद करके 'बालक को भविष्यत्‌में अनिष्ट की सम्भावना है' इत्यादि बातें नवाबके कर्णगोचर करते,तो नवाब हँसकर उत्तर दे देते कि "सिराज इस समय बालक है, इस कारण ऐसे चञ्चल है, स्याने होने पर यह सब बातें जाती रहेंगी।"

इस तरह की बात केवल नवाबके ही मुखसे निकलती थी, ऐसा नहीं था, नवाब पत्नी भी बीच बीचमें गर्व करके

दूसरा परिच्छेद।

समय के परिवर्त्तनसे शिशु बालक, बालक युवा, युवा प्रौढ़ और प्रौढ़ वृद्ध होता है। शिरीष अब बालक नहीं है, इस समय जो कुछ वह करता है, वह सब गणनीय है। इस समय कोई मनुष्य बालकालकी तरह उसका उपहास करके और 'बालक' कहकर बात को उड़ा नहीं सकता है। इस समय उसके कार्यकलाप, बातचीत, और चालचलन को देखकर सभी भीत और चिन्तान्वित हैं।

शिरीषहोमाने इस समय यौवन-भूमिमें पदार्पण किया है, यौवन की पहली तरङ्ग में पैर डाला है; चित्त, सौदामिनी की गतिकी तरह चञ्चल है। यौवनकी दारुण मादकतासे वह इस समय मत्तमातङ्ग की तरह मतवाला हो रहा है। मधुलोलुप भौंरे की तरह अपने आपको भूला हुआ है।

यौवन बड़ा भयङ्कर समय है। यह समय मनुष्य को हिताहित ज्ञानमें शून्य कर देता है—सुगम पथ कांटे का भी दुर्गमपथ बनता देता है और हीनियों को भी अन्धा बना देता है। इस कालमें मनका वेग अति तीव्र होता है, सारी वृत्तियाँ

थोड़े से ही में उत्तेजित होजाती है। थोड़ी सी असावधानीसे मनुष्य, मनुष्यके आकारमें पशु हो जाता है।

एक तो सिराजुद्दौला यौवन-सीमा पर पहुँच चुका, तिसपर बंगाल, बिहार और उड़ीसा का भावी नवाब! जहाँ पर महेन्द्र योग हो, वहाँ पर यौवन-सुलभ संगी मिलनेमें क्या देर लगती है? समय-सेवी पाप-सहचर एक एक करके आने लगे। खुशामदियोंने आकर खुशामद फैलाई, सभोंने मिलकर सिराज को नित्य नाना प्रकारसे उत्साहित करना आरम्भ किया। आमोद प्रमोद, भोजन-पान और नृत्य-गान दिनरात कहाँ और किस प्रकार होते हैं, यह उनको कुछ भी मालूम न था।

सिराज जिस समय आमोद-प्रमोदमें और सुरापानमें सुख-भोग कर रहा था, हठात् उसके ध्यानमें आया कि इस प्रकार राजप्रासादमें आमोद-प्रमोद सुविधाजनक नहीं है। यदि नानाको मालूम होजाय तो वह सुखमें बाधा डालेंगे—प्रति-वादी होंगे। अतएव राजभवन को छोड़कर और एक स्वतन्त्र भवन आमोद-प्रमोद के लिये बनवा लिया जाय, जिसमें विघ्न-बाधा का कुछ खटका न रहे।

अब सिराजुद्दौला एक स्वतन्त्र प्रासादके लिये चिन्ता करने लगा। किन्तु आज यह वृथा चिन्ता क्यों? उसने जब जो इच्छायें की हैं उनमेंसे कब किसको नवाबने पूर्ण नहीं कि- है? तो फिर इस सामान्य बातके लिये क्या सोच

अभी तक सैकड़ों अनुचित और अमंगल इच्छायें प्रतिपालित हुई हैं, तो फिर यह सामान्य काम क्यों नहीं पूर्ण होगा? हमको विश्वास है, सिराजुद्दौला एक बार कह भरदे, अलीवर्दी अवश्य दौहित्र की यह अभिलाषा पूर्ण करेंगे।

सिराज बालक था, किन्तु वृद्ध नानाकी तबियतका विशेष रूपसे अनुशीलन कर चुका था। परन्तु सुचतुर तीक्ष्णबुद्धि वृद्ध नवाब दौहित्रके स्वभाव, चरित्र और कार्यकलाप को कुछ भी नहीं जानते थे। वह सूक्ष्मदर्शी होने पर भी, स्नेहके कारण प्राय: अन्धे थे। इसी कारण सिराजके सब कामों पर बालक समझ कर कुछ ध्यान न देते थे।

दिनपर दिन कटने लगे, किन्तु सिराजके हाथ ऐसा कोई सुयोग नहीं आया जो नाना से अपने हृदयका हाल कहता।

उद्यम करनेपर अलभ्य क्या है? देखते देखते सिराज को एक उत्कृष्ट अवसर प्राप्त हुआ। एक दिन नवाब और उनकी बेगम अन्त:पुरके शयनगृहमें पलंगपर बैठे हुए राज्यकी अवस्था पर आलोचना कर रहे थे, ऐसे समयमें सिराज उस स्थान पर पहुंचा। उसको देखकर अलीवर्दी ने कहा—'आओ! आओ!—बंगाल, बिहार और उड़ीसाके भावी नवाब आओ!'

यदि कोई और दिन होता और ऐसे आदरसे सम्भाषण होता, तो सिराज को अपार आनन्द होता; किन्तु आज उसके हृदयमें एक नई वासना जाग्रत हो रही है—उसके लिये वह

चिन्ताकुल है, इसी कारण वृद्ध नवाबका स्नेह सम्भाषण उस को अच्छा नहीं लगा। वह नितान्त खिन्न होकर बोला, "नानाजी! आप अपने मुँहसे, केवल बङ्गाल-बिहार-उड़ीसा ही क्यों, दिल्ली का सिंहासन पर्य्यन्त दान कर सकते हैं; परन्तु आपके कामोंसे तो मैं इस तरह की कोई बात नहीं पाता हूँ।"

यह बात सुनकर नवाबको कुछ व्यथा हुई। बोले,—"क्यों सिराज! क्यों! आज तुम यह बात क्यों कहते हो? क्या तुम समझते हो कि हमारा यह सिंहासन—हमारा यह राज्य, तुम्हारे सिवाय किसी और को दिया जायगा?"

सिराज—जिस समय मैं बालक था, कुछ नहीं समझता था, उस समय सोचता था कि मैं ही बङ्गाल, बिहार और उड़ीसा की मसनद पर बैठूँगा, किन्तु अब मैं समझा, कि वह केवल आशाकी छलनामात्र थी।

अली—सिराज! यह क्या! तुम आज ऐसी बातें क्यों कर रहे हो! मैं निष्कपट रूपसे कहता हूँ कि मेरे पीछे मुर्शिदाबादकी मसनद तुम्हारी ही है—तुम्हारे सिवाय और किसी की नहीं है। तुम ही हमारे एक मात्र उत्तराधिकारी हो। तुमको जबसे पाया है, तबसे पुत्रका अभाव बिल्कुल ही भूल गये हैं। तुम ही वंशधर हो।

सिराज—नानाजी! मैं जानता हूँ कि मैं आपके स्नेह ही से पला हूँ, किन्तु अब आप इस बात पर एक बार भी ध्यान

नहीं करते कि मैं किस तरह सुखी होऊं और किस तरह मेरे चित्तको स्फूर्ति होवे।

अली—सो क्या सिराज! हमने तो सदैव ही तुमको सुखी करनेकी चेष्टा की है।

बेगम—सिराज अब भी बालक ही है। अभी तक उसमें ज्ञान वृद्धि नहीं आई है। क्या कहना है—क्या करना है—यह कुछ भी उसको मालूम नहीं है।

सिराज—आज या क्या है आपके सामने तो मैं सदैव ही बालक रहूँगा। पिता माताके स्नेहकी आँखें पुत्रकी वयोवृद्धि में सदैव ही अन्धी रहती हैं, किन्तु मेरी सब ही बातोंको आप बालक कहकर टाल देते हैं, यही मुझको दुःख है।

यह सुनकर नवाब अली हँसते हुए सुखसे आदर सिराज की ठोडी पकड़ कर बोली—"सिराज! तुम हमारे सामने सदैव ही बालक रहोगे, यह मिथ्या नहीं है और तुम हमारे उत्तराधिकारी हो, यह भी निश्चय है, तो फिर तुम्हारे अविश्वास का कारण क्या है?

सिराज—अविश्वास का कारण कुछ नहीं है। किन्तु मैं सोचता हूं कि,यदि मैं ही आपके इस अतुल ऐश्वर्यका उत्तराधिकारी हूं तो आज एक सामान्य कामना पूर्ण क्यों नहीं होती?

बेगम—सिराज! क्या तुम्हारी कोई कामना कभी पूर्ण नहीं हुई है? तुमने जब जो बात कही है तभी पूरी की गई है। तो फिर आज यह नई बात क्यों?

सिराज—बाल्यकालकी वासना—बाल्यकालके अभाव पूर्ण किये थे, किन्तु समयोचित अभावका पूर्ण करना क्या पिता-माता का कर्त्तव्य नहीं है ?

यह बात सुनकर नवाब और बेगम हँसकर बोले—"सिराज ! यदि तुम्हारी बाल्यकाल की वासनायें पूर्ण की हैं, तो इस समय की वासना भी क्यों नहीं पूर्ण करेंगे ? बोलो, तुम्हारी क्या अभिलाषा है ?"

सिराज—हमारे लिये एक स्वतन्त्र प्रासाद निर्माण करा दीजिये। नवाब कुछ विस्मित होकर बोले,—"सिराज ! स्वतन्त्र प्रासादका क्या प्रयोजन है ? इस विपुल राजप्रासाद में तो स्थानका अभाव नहीं है।

सिराज—यह तो मैं जानता हूँ कि प्रासादमें स्थानका अभाव नहीं है, किन्तु नानाजी ! सोचो तो, कि एक तलवार एक ही समयमें दो वीरोंके व्यवहारमें कभी आ सकती है ?

बुद्धिमान् नवाब अलोवर्दी, दौहित्रके मतलबको समझ कर, हँसने लगे और कहा, "सिराज ! यदि तुम्हारी अलग ही प्रासाद बनवानेकी इच्छा हो तो उसके लिये क्या चिन्ता है ? तुम जैसा चाहो वैसा महल बनवालो। उसमें जो कुछ खर्च होगा वह सब मैं दूँगा।"

नवाबने प्रासादके बनवानेका हुक्म तो दे दिया, पर वास्तव में इसमें उसका क्या मतलब है, इस बात पर उन्होंने एक बार भी विचार नहीं किया। वह सरलहृदय थे, इसीसे कोई

विचार उनके हृदयमें नहीं आया। उन्होंने अपनी समझके अनुसार यह समझ लिया कि नई आंखोंमें पुरानी वस्तु भली नहीं लगती है, इसी कारण सिराजने नये प्रासादके लिये प्रार्थना की है। किन्तु सिराजके हृदयमें क्या क्या विचार भरे हुए हैं, इसको वह कुछ न समझ सके और सरल हृदयसे महल बननेका हुक्म दे दिया।

सिराजने इस प्रकार कौशलसे नवाब अलीवर्दी से अपना काम निकाल लिया और बड़े उत्साहसे यह शुभ समाचार अपने साथियोंको सुनाने चला। पापकी धारा अभी तक धीरे धीरे बह रही थी। अब तीव्र गतिसे बहने लगी। और बादमें जो तरङ्गे उसमें उठीं, वह और भी भयानक थीं।

तीसरा परिच्छेद।

अलीवर्दीकी अनुमतिसे सिराजने भागीरथीके पश्चिमी किनारे पर शीघ्र ही एक सुरम्य प्रासाद तय्यार करा लिया। यह महल ऐसी कारीगरीसे और ऐसा सुन्दर बनाया गया था कि एक बार देखनेसे तृप्ति नहीं होती थी और बारम्बार देखनेकी इच्छा होती थी। जिसने इस महलको देखा, उसीने सिराजकी सौन्दर्य-प्रियताकी प्रशंसा की।

यद्यपि यह महल ईंटोंका बना हुआ था, किन्तु सिराजके बड़े यत्नसे गौड़ देशके मँगाये हुए तरह तरहके पत्थरोंसे, तरह तरहकी कारीगरी करवानेसे उसकी शोभा ऐसी बढ़ गई थी, कि वह महल वङ्गभूमिकी स्पर्धाकी सामग्री हो गया था।

इस महलकी लम्बाई-चौड़ाई प्राय: १२५ हाथ की थी। इसमें रङ्गमहल, विलास-महल, बेगम-महल—इत्यादि बहुत से महल थे; और एक एक महल एक बड़े प्रासादकी बराबर था। प्रासादके नीचे एक झील थी, झीलकी दोनों पारें ईंटोंकी बनी हुई थीं। भागीरथीसे वह मिला दी गई थी, जिससे ज्वारके समय झील पानीसे परिपूर्ण हो जाती

थी और भाटेके समय कम हो जाती थी। नाना भाँति की मछलियाँ उसमें क्रीड़ा करती थीं। मछलियों की नाकोंमें नथ—और परोंमें छोटी छोटी घण्टियां बँधवाई गई थीं। प्रासादके चारों ओर उद्यान था, जिसमें नाना प्रकारकी लताएँ और पुष्पवृक्ष सुशोभित थे। वृक्ष इस प्रकारसे लगाये और सजाये गये थे कि उनमें कहीं पर मछलीकी शकल, कहीं सर्पाकृति, कहीं हंसाकृति, कहीं सिंहाकृति,—इसी भाँति नाना जन्तुओंकी सूरतें मालूम होती थीं। कहीं पर घना जङ्गल और कहीं पर सुन्दर उपवन! कहीं पर श्यामलता की, कहीं पर राधालता की और कहीं पर माधवीलता की कुञ्जें थीं। प्रत्येक कुञ्जके बीचमें संगमरमरके मञ्च अथवा बैठने के स्थान बने हुए थे। सबोंके बीचमें एक श्वेत पत्थरकी पुतली थी—जिसको देखनेसे सजीव आदमीका भ्रम होता था। कहीं पर स्फटिकका बना हुआ कृत्रिम सरोवर था और कहीं पर नकली पर्वत बना रक्खा था। आने जानेके लिये सैकड़ों रास्ते थे, जिनमेंसे कोई साँप की शकलके, कोई चक्रकी शकलके थे। और एक एक रास्तेमें दो दो, तीन तीन, और चार चार पगडण्डियां निकाल दी गई थीं। कोई पगडण्डी झीलको गई है, तो कोई नकली वनमें जाकर शेष हो गई है। कोई नकली पर्वतके ऊपर निकल गई है। कोई थोड़ी दूर चल कर दूसरीमें मिल गई है। रास्तोंके किनारे किनारे गुलाबके पेड़ लगाये गये थे और ऐसे घने लगाये गये थे कि आदमी

मोती झील।

हीरा झील।

S NG PRESS CALCUTTA
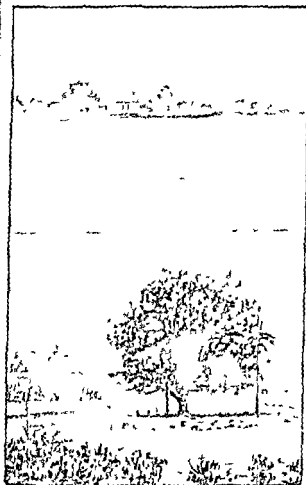
इस पारसे उस पार निकल नहीं सकता था। जहाँ दो रास्ते मिलते थे, वहाँ तोरणद्वार बनाये गये थे। प्रत्येक तोरणद्वार पर दो सन्त्री खड़े कर दिये गये थे, मानों वह बड़े यत्नसे द्वारकी रक्षा कर रहे हैं। उद्यानके चारों ओर चहार-दीवारी बनी हुई थी। भीतर जानेके लिये दो बड़े बड़े तोरणद्वार बने थे। ये द्वार सदैव हथियारबन्द सिपाहियोंसे रक्षित किये जाते थे।

उद्यान और प्रासादकी इस रमणीक शोभाको देखकर, सभी लोग मुक्तकण्ठसे सिराजकी रुचिकी प्रशंसा करते थे। उसने इस प्रासादका नाम हीरा झील रक्खा था; किन्तु इसकी अतुलनीय शोभा पर मुग्ध होकर लोग इसको 'लाल कोठी' कहते थे।

चौथा परिच्छेद ।

प्राट तो बन गया, किन्तु नवाब जो मासिक वेतन देते थे उससे तो खर्च चल नहीं सकता था। अब क्या उपाय किया जाय? इच्छाएं सभी पूरी करनी होंगी। भोग विलासकी सभी कामनाएं पूरी करनी होंगी—नवाबके दिये हुए मासिक वेतनका दूना न हो जाय तब तक कुछ काम नहीं चलेगा। किन्तु वह वेतन किस प्रकार बढ़ाया जाय, सिराजको इस समय यही चिन्ता प्रबल हुई।

दूसरेके सिर पर जो आमोद प्रमोद करता है, जिसका उद्देश्य सिर्फ खाना पीना ही है वह आश्रयदाताके भले-बुरे समय असमयको नहीं देखता है। चाहे जिस तरह हो वह तो अपने स्वार्थ साधनेकी ही फिक्र रखता है। जब तक मधु है तब तक भ्रमर है जब मधु नहीं रहेगा तब भ्रमर भी उड़-जायगा।

नवाबके दिये हुए मासिक वेतनसे आमोद प्रमोदका खर्च चलता न देखकर साथी भोग विलासियोंने तरह तरह के कुपरामर्श देने लगे। किसी ने कहा – "आपको रुपयोंकी क्या

चिन्ता है? अब कि आप बङ्गाल, विहार और उड़ीसाके भावी नवाब हैं तो फिर अपने आधीन राजा, महाराजा और जमींदारोंसे ऋण क्यों नहीं ले लेते?"

यह सलाह सिराजुद्दौलाको पसन्द नहीं आई। उसने कहा,—"यद्यपि बङ्गालका मैं भावी नवाब हूँ, तथापि जो मेरे आधीन है उनसे ऋण लेना उचित नहीं है। अपने आधीन मनुष्यसे ऋण लेनेसे मान-भङ्ग होता है। मैं उसको नहीं सह सकूँगा!"

यह सुनकर दूसरेने कहा,—"अच्छा, तो एक और उत्तम उपाय मैं बताता हूँ। धनकुबेर फ़तहचन्द जगत्सेठ आप का अनुगत और आधीन है। भय दिखाकर उससे खिराज वसूल कोजिये। वह आपसे बहुत डरता है।"

सिंह होकर स्यारका काम करने पर भी सिराज राज़ी न हुआ और बोला, "मुझको रुपयेकी कमी होनेके कारण, मैं यह नहीं चाहता हूँ कि अकारण किसीके ऊपर भार रक्खूँ। यद्यपि फ़तहचन्द जगत्सेठ मेरे राज़ी करनेको अथवा मेरे भय से रुपयेको सहायता देना स्वीकार कर ले, तथापि मैं यह नहीं कर सकूँगा कि अपने अनुगतको दुःख पहुँचाऊँ।"

रुपये जमा करनेके लिये कुसङ्गी लोग तरह तरहकी बुरी सलाहें देने लगे, किन्तु सिराजुद्दौलाने कोई भी स्वीकार नहीं की। यद्यपि वह रुपयेका बड़ा भूखा था, तथापि छोटे का संहार करके तलवारकी प्यास बुझाना उसके स्वभावमें नहीं

था। उसने अपनी तीव्र बुद्धिके वेगसे, रुपया लेनेका एक सुन्दर उपाय उत्पन्न करके, उसके साधनके लिये, अपने नाना को हीरा झील देखनेके लिये न्योता भेज दिया।

नवाब अलीवर्दी ने दौहित्रके न्योतेको सादर और बड़े आनन्दसे ग्रहण कर लिया। यथा-समय राजा, महाराजा, ज़मींदार, उमराव, मित्र और मन्त्रियोंके साथ नवाब हीरा झील देखनेको आये।

सिराज यह सुनकर कि नाना आ रहे हैं, उनकी यथा रीति अभ्यर्थना करनेके लिये अग्रसर हुआ। भागीरथीके बीचमें दोनोंकी नावें मिलीं। सिराज अपनी नाव छोड़कर नानाकी नावमें आ गया। उसकी ऐसी भक्ति देख कर अलीवर्दी के आह्लादकी सीमा न रही। इधर गङ्गामें प्रासादका सौन्दर्य नयनगोचर हुआ। देखते ही मुग्ध होकर नवाब दौहित्रसे प्रासादकी सब बातें बार बार पूछने लगे।

स्नेहमय नाना और दौहित्रकी बातें होते होते नौका उस पार लग गई। भागीरथीके पूर्वीय तोरणद्वारसे सिराज, नानाको और उनके पार्श्वचर राजा, महाराजा इत्यादिको उद्यान में ले गया। नवाबने ज्योंही उद्यानमें प्रवेश किया, त्योंही कुञ्ज कुञ्जमें छिप छिप कर, कोयलोंने मधुर स्वरसे कूकना आरम्भ किया। मानों तब सब बङ्गाल, बिहार और उड़ीसाके नवाब के अभिनन्दन करनेकी राह देख रही थीं। नवाबने यह

समझकर कि सिराजकी बुद्धि कौशल द्वारा कोयलोंने यह शिचा लाभ की है वह बड़े परितुष्ट हुए।

सिराजने नाना और उनके साथियोंको लेकर पहले उद्यान दिखलाया। उद्यान देखनेसे अलीवर्दीको अभूतपूर्व आनन्द हुआ और वह सिराजकी सौन्दर्यप्रियताकी बार बार प्रशंसा करने लगे। सिराज भी थोड़ा बहुत शिष्टाचार दिखा कर कहने लगा, "नानाजी! यह सब आप ही का अनुग्रह है और आप ही के रुपयेसे है!"

सिराजके शिष्टाचार और सौजन्यसे स्नेहान्ध वृद्ध नाना आनन्दके मारे अधीर हो उठे। सिराज भी अच्छा अवसर समझ कर उन्हें प्रासाद दिखलानेको ले चला। साथमें और कोई नहीं रहा। साथके राजा, महाराजा इत्यादि उद्यानमें रह गये।

सिराजने प्रासादमें प्रवेश करके नानाको रङ्गमहल, निवास-महल, बेगम-महल—इत्यादि एक एक करके सभी दिखलाये। हरेक महलके एक एक कमरे में नाना-वर्णके पत्थरोंके ऊपर कारीगरीका काम और महामूल्य असबाबके सजानेकी रीति देखते देखते नवाब विस्मयसे मुग्ध हो गये।

अन्तमें सिराज अपने नानाको एक बड़े भारी कमरेमें ले गया। किन्तु ज्योंही नवाबने उसके भीतर पैर रक्खा, त्योंही पीछेका द्वार बन्द हो गया।

यद्यपि उसके कई एक द्वार थे, परन्तु नवाब जिस एक के पास जाते वही बन्द हो जाता। इसी प्रकार वह सब द्वारों पर गये, किन्तु किसीसे भी बाहर न जा सके। अन्तमें जब सब दरवाज़े बन्द देखे तो कहा, "सिराज! तुम्हारी अभिलाषा तो पूरी हुई, अब दरवाजा खोलदो।"

सिराजने जो काम किया था उसमें विचलित न होकर, वह यह बात सुनकर हँसने लगा।

नवाबने समझा कि सिराज केवल कौतुक कर रहा है। यह समझ कर फिर बोले,—"सिराज! तुम्हारी ही जय हुई। आज तुम्हारे कौशलसे मैंने अपनी हार स्वीकार की।"

परन्तु सिराजको नानाके साथ कौतुक थोड़े ही करना था। उसका मतलब तो कुछ और ही था। वह बोला, "नानाजी! जिस लिये मैंने आपको बन्दी किया है वह काम पूरा करो, नहीं तो मैं आपको नहीं छोड़ूँगा।"

नवाब अब भी यही समझ रहे थे कि दौहित्र उनके साथ हँसी कर रहा है। यह समझ कर वह हँस कर बोले, "सिराज! अब मैं तुम्हारे सामने अपनी पराजय स्वीकार कर चुका, फिर तुमको और क्या चाहिये?"

सिराज—केवल पराजय स्वीकार करने ही से मैं आपको नहीं छोड़ सकता।

अलीवर्दी—तुम क्या चाहते हो?

सिराज—यह कि आप कौशल मयासमें बन्दी हुए हैं,

तब छूटनेके लिये उचित अर्थ-दण्ड न देने तक आपको मुक्ति नहीं हो सकती।

नवाब अलीवर्दी सिराजुद्दौलाका मतलब समझ कर हँसने लगे और बोले "सिराज! तुमने एक तुच्छ वस्तु रुपयेके लिये मुझको क़ैद किया है। अच्छा, मुझको तौलनेमें जितना रुपया लगेगा, उतना रुपया मैं तुमको दूँगा। अब मुझको छोड़ दो!"

सिराज—नानाजी! मैंने इतने थोड़े रुपयेके लिये आपको क़ैद नहीं किया है। और केवल बातोंके भरोसे आपको छोडूँगा भी नहीं। यदि आप नक़द दस लाख रुपये दे सकें, तब ही मैं आपको छोड़ सकता हूँ, अन्यथा नहीं।

अलीवर्दी—सिराज! मैं रुपये साथ लेकर तो आया नहीं हूँ कि इसी समय तुमको दे दूँ। तुम मुझको छोड़ दो, मैं शपथ खाकर कहता हूँ कि जो मैंने वादा किया है सो रुपया राजमहलमें पहुँचते ही तुम्हारे पास भेज दूँगा।

सिराज इस बात पर राजी नहीं हुआ और कहा,—"मैंने जैसे आपको कौशल करके बन्दी किया है, आप भी उसी तरह कौशल करके मुक्तिका रास्ता ढूँढ़ रहे हैं।"

अलीवर्दी—सिराज! तुम आज मेरी बातका विश्वास क्यों नहीं करते हो? मैंने देना कह कर, तुमको कब कब नहीं दिया है?

सिराज—आपने जब कुछ दिया है तब अपनी ही इच्छासे

दिया है, पोहित होने पर नहीं दिया। आज जब कि मैंने रुपये के लिये आपके साथ कौशल किया है, तो क्या छूटने पर भी वही रुपया मुझको दोगे? विशेषकर, युद्ध व्यापारमें नकद रुपया ही एक मात्र मुक्ति पथ होता है। राजा महाराजा और नवाब बादशाहोंके मुखकी बातका विश्वास ही क्या?

यह सुनकर नवाब अलीवर्दी कुछ विशेष व्यग्र होकर बोले, 'सिराज' और किसी की बातका विश्वास नहीं कर सकते हो,परन्तु मैं तो और कोई नहीं हूँ। तुम और किसीके साथ मेरी तुलना मत करो। मैं अपने इष्ट देवताकी शपथ खाकर कहता हूँ, कि महलमें पहुँचते ही तुम्हारा चाहा हुआ तुम्हारे पास भिजवा दूँगा। अब मुझको छोड़ दो। इस बातके खुलने पर सब लोग मेरी हँसी करेंगे। सिराज! लोक हँसाई मत करो और मुझको छोड़ दो।

सिराजने आज सुयोग पाया है—ऐसा अच्छा अवसर क्या वह सहजमें छोड़ सकता है? सिराज बोला, "नानाजी! आपके आधीन राजा, महाराजा, जमींदार और उमराव लोग यदि आपमें मुहब्बत करते हैं, तो फिर वे ही क्यों न मेरे चाहे हुए रुपये देकर आपको छुड़ावें? और ख़ास करके, इस अवसर पर आपको यह भी मालूम हो जायगा कि कौन कौन आपका और आपके राज्यका शुभचिन्तक है।

मनुष्य चाहे जैसा धीर वीरा अथवा तेजस्वी हो स्नेह,और प्रेमके कारण शीघ्र ही पराजित हो सकता है।

नवाबने जब देखा कि सिराज रुपये लेनेके अतिरिक्त और किसी प्रकार छोड़ने पर राज़ी नहीं है,तो निरुपाय होकर बोले,—"सिराज! तुमने मेरे मानकी रक्षा नहीं की, न तुम मेरे गौरवको समझ सके! देखो जो मेरे आधीन है, आज उन्हींसे अपने छुड़ानेके लिये सहायता मांगनी होगी! यह मेरे लिये बड़ी लज्जाकी बात होगी। सिराज! यह तुम्हारी बालकपनकी चपलता न जाने कब जायगी? और न मालूम तुम अपना गौरव कब समझोगे? ख़ैर जो कुछ हो, इस समय एक काम करो कि यदि बिना रुपया लिये किसी प्रकार न छोड़ना चाहो तो जो लोग हमारे साथ आये है उनको ख़बर भेज दो कि वह अर्थ देकर मुझको छुड़ा ले जावें।

स्नेहमें भी क्या मोहिनी शक्ति है! जिस अलीवर्दीके दुर्दण्ड प्रतापसे कुल बङ्गाल बिहार और उड़ीसा कांपता था, वह भी आज वात्सल्य के जादूसे अपने प्रबल प्रतापको भूल गया। सिराजुद्दौलाने शीघ्र ही उन राजाओंसे जो उद्यानमें बैठे थे दूत द्वारा नवाबका अभिप्राय कहला भेजा।

पाँचवाँ परिच्छेद।

ओ लोग उद्यानमें थे वह सब नवाबके लौटनेमें देर देख कर उत्सुक हो रहे थे। इसी समय एक दूतने आकर समाचार दिया कि, "कुमार सिराजुद्दौलाके कौशलसे नवाब बन्दी हुए हैं। आप लोग जाकर उनकी मुक्तिका उपाय करें, यह परामर्श कहा है।"

इस समाचारको सुन कर, कि जिसकी सम्भावना भी नहीं थी सब लोग डर गये और सिराजुद्दौलाकी कूटबुद्धिका ध्यान करके भीत और विचलित हो गये। आपसमें परामर्श करने लगे कि "सिराजुद्दौलाका क्या उद्देश्य है? नवाबको किस कारणसे उसने बन्दी किया है? हमलोग किस प्रकारसे उनका उद्धार कर सकते हैं? कहीं हम लोगोंको भी वही सहजमें कौशल करके बन्दी न करले।"

इन बातोंको सुनकर राजा रामरायने कहा—"इसकी मीमांसा करना बड़ा कठिन है। सिराजुद्दौलाका उद्देश्य क्या है, यह कुछ भी समझमें नहीं आता। उसने यथा सत्य ही नवाबको बन्दी किया है? यदि बन्दी किया है, तो किस लिये।"

राजवल्लभ—सिंहासनके लिये!

रामराय—क्यों? सिंहासनका उत्तराधिकारी तो वही है और नवाब अलीवर्दी भी तो वृद्ध हो गये हैं। क्या दो दिनका विलम्ब वह नहीं सह सका? नहीं नहीं, सिंहासनके लोभसे दौहित्र नानाके साथ ऐसा कपट व्यवहार नहीं कर सकता, यह बात विश्वास करने योग्य नहीं है।

राजवल्लभ—सिराज जैसा उद्धत और हिताहितके ज्ञानसे शून्य है, मुसल्मान होकर भी शराब पीता है, ऐसी अवस्थामें वह क्या नहीं कर सकता है?

रामराय—तो क्या आपका मतलब है कि सिराजुद्दौलाने सिंहासनके लोभसे ही नवाबको बन्दी किया है?

राजवल्लभ—निश्चय रूपमें यह कैसे कहा जा सकता है? केवल अनुमानसे ऐसा मालूम होता है।

रामराय—यदि सिराजको सिंहासन ही लेना अभीष्ट है, तो नवाबको छुड़ानेके लिये हम लोगोंके बुलाने का क्या कारण है?

राजवल्लभ—हम लोगोंको भी इसी प्रकार कौशलसे बन्दी करेगा।

रामराय—आप चाहे जो ख्याल करें और जो चाहे करें, परन्तु मेरा तो यह अनुमान है कि सिंहासनके लोभसे नवाब को बन्दी करना सिराजका उद्देश्य नहीं है, इसका कुछ और ही मतलब है।

राजवल्लभ—हम लोग जब तक पूरा पूरा विवरण न जान पावें, तब तक किस तरह कह सकते हैं कि सिराजका कुछ और अभिप्राय है? मुझको यही मालूम होता है, कि जो जो प्रधान लोग हैं उनको वह इसी प्रकार कौशलसे बिना रक्तपात किये और बिना युद्धके बन्दी करना चाहता है।

रामराय—यदि यही बात है तो क्या आप लोग नवाबके छुड़ानेके लिये अग्रसर न होंगे?

यह सुनकर सब एक साथ बोल उठे,—"हम लोग अपने प्राण तक देकर नवाब अलीवर्दीका उद्धार करेंगे, किन्तु जब तक असली बात नहीं मालूम होती, तब तक एक कदम भी आगे बढ़नेका साहस नहीं होता है। क्या जानें हम सबको भी अन्तमें उनका बन्दी होना पड़े।

इसी प्रकार तरह तरहके तर्क वितर्क और सलाहें हो रही थीं कि वही दूत फिर आकर बोला,"महामान्य महोदय गण! नवाब बहादुर आप लोगोंके विलम्ब करनेसे अतिशय व्याकुल हो रहे हैं। आप लोग शीघ्र जाकर उनको छुड़ावें। मालूम होता है कि नवाबके बन्दी होनेके समाचारको सुन कर आप नितान्त भयभीत हो गये हैं, किन्तु कुमार सिराजुद्दौलाने सिंहासनके लोभसे उनको बन्दी नहीं किया है, केवल रुपयेके वास्ते रोक रखा है और जब तक कि बाहरा हुआ रुपया न मिल जाय, तब तक उनको छोड़नेमें असमर्थ हैं। आप लोग वही रुपया देकर नवाबका उद्धार करें।"

यह सुनते ही सब लोगोंकी चिन्ता जाती रही और निर्भय होकर नवाबके पास चल पड़े।

जिस मकानमें अलीवर्दी बन्द थे, वहीं सब लोग पहुँच गये।

नवाबने सब लोगोंको आया हुआ देखकर कहा,—"राजगण! सिराजकी बाल्यावस्थाकी चपलता अभी तक नहीं गई है, वह मुझसे दस लाख रुपये चाहता है, इसीलिये मुझे अवरुद्ध किया है और इतना रुपया न पानेसे किसी प्रकार मुझको छोड़नेमें राज़ी नहीं है। इस समय आप लोग मुझको मुक्त करें।"

सिरा—नानाजी! केवल दस लाख रुपया देने ही से काम नहीं चलेगा! मेरे इस प्रासादकी रक्षाके लिये एक नया कर स्थापन कर दीजिये। आपके आधीन राजा, महाराजा, ज़मींदार और उमराव लोग सभी प्रधान इस समय उपस्थित हैं।

नवाब हँस कर कहने लगे,—"सिराज! तुम्हारे इस सुरम्य प्रासादकी रक्षाके लिये मैं 'बाजजमा' नामका एक कर स्थापन करनेका हुक्म देता हूँ।

सिराज—नानाजी! जो लोग कर देंगे, वह सब यहाँ मौजूद हैं। यह लोग जब तक अपनी सम्मति प्रकाश न करें, तब तक मुझे किसी तरह विश्वास न होगा।

नये कर स्थापनकी बात सुनकर राजा लोगोंके चित्तमें

"फ़ैज़ी! तुम्हारे चेहरे पर मैं आज एक अलौकिक सौन्दर्य्य देखता हूँ। जबसे तुम हीरा झीलमें आई हो, एक दिन भी मैंने तुम्हारा ऐसा रूप नहीं देखा। आज तुमको देखनेसे यही मालूम होता है कि स्वर्गसे परी उतर आई है।"

रूपकी प्रशंसा सुनकर फ़ैज़ी मन ही मन हँसने लगी। समझ गई कि सिराजने उसके प्रणयपात्र सय्यद मुहम्मद को देख नहीं पाया। हँसते हँसते बोली,—"प्राणेश्वर! आप प्रेम की आँखसे देख रहे हैं, इसी कारण दासी ऐसी रूपवती ज्ञात होती है।"

सिराज—नहीं फ़ैज़ी! आज मैं तुम्हारी सब बातोंमें नवीनता देखता हूँ। आज तुम्हारी वेश विन्यास की परिपाटी ऐसी है मानों रूपकी छटा बाहर फूटकर निकली पड़ती है। तुम्हारा इतना रूप तो मैंने कभी देखा ही नहीं था। घरके भीतर घुसते समय मुझे तुम्हारे परी होनेका भ्रम हुआ था। परन्तु तुमने जब ये बातें कहीं, तब मेरा वह भ्रम जाता रहा। तुम्हारे इस वेश-विन्यास को देखकर चित्तमें ऐसा होता है, न जाने आज तुम किस भाग्यवान को सुखी करोगी?

यह सुनकर फ़ैज़ीका हृदय काँप उठा, मुख म्लान होगया, किन्तु यह सोचकर कि कहीं उसका यह भाव सिराजुद्दौला समझ न लेवे, इस भयसे कौशल करके "देखूँ मैं कैसी मालूम होती हूँ" यह कहकर, सिराजके सामनेसे उठकर दर्पणके पास चली गई।

परन्तु सिराजके सामने क्या उसकी चालाकी चल सकती थी ? वह भी उसके साथ ही साथ दर्पणके पास पहुँच गया और कहा "फैजी ! क्या देखा ! क्या अपने रूप पर तुम आप ही मोहित नहीं होगई ?"

फ़ैजी मृदु मन्द हँसी हँसकर बोली—"अपनी ही आंखोंसे अपना सौन्दर्य कैसे मालूम पड़े ? यदि यह बादशाह की आंखोंमें अच्छा लगे, तो उसका कारण यही प्रतीत होता है कि प्रणयी की आंखोंमें प्रणयिनी सदैव ही आलोक सुन्दरी प्रात होती है ।"

बातों ही बातोंमें कहीं चित्तका भाव न खुलजावे, यह सोचकर सिराजने कहा कि "यही ठीक है। चलो, अब सोवें, रात बहुत आचुकी है।"

अब फ़ैजी उठी। और कोई बात न कहकर धीरे धीरे आकर सो रही।

नवाँ परिच्छेद।

जो सन्देह-मेघ सिराजुद्दौला के हृदयमें उठा था, वह दिन-दिन तिल-तिल करके उसके हृदय-आकाश में फैल गया। फ़ैज़ी दूसरेके प्रेममें फँसी है कि नहीं, इसके अनुसन्धानमें उसकी सतर्क दृष्टि सदैव ही रहने लगी।

एक दिन रात प्रायः शेष होनेको थी। सिराज के सब साथी मदिरा पिये हुए बेहोश पड़े थे। दास दासी भी सो रहे थे। केवल महलके द्वारपर सन्तरी जाग रहे थे। इस समयमें सिराजुद्दौला धीरे धीरे प्रमोदगृह त्याग कर फ़ैज़ीके घर की ओर जाने लगा। पैरमें जूता नहीं है, साथमें कोई रोशनी-वाला भी नहीं है, क्योंकि चोरको सदैव ही डर होता है कि कहीं कोई देख न लेवे।

इस प्रकार वह फ़ैज़ी के घरमें जा पहुँचा। वहाँ पहुँचकर जो कुछ उसने देखा उससे उसकी आँखें जलने लगीं, सब शरीरसे बिजली सी छूटने लगी और आँखोंसे आग की चिन-गारियां छूटने लगीं। इतने दिनोंसे जिसकी टोहमें था, वह आज मिलगया। उसने देखा कि उसकी प्राणेश्वरी फ़ैज़ी अन्य किसी

पुरुष के साथ प्रेमालिङ्गन किये हुए सुखसे सो रही है। वह और कोई नहीं था, वह उसका सौभा मय्यद अहमद था।

सिराज क्रोधसे अधीर हो उठा। प्रतिहिंसा की ज्वाला भभक कर उन दोनोंको वध करनेको उद्यत होगई। तलवार उसने म्यानसे निकाल ली। दीपकके उजेलेमें तलवार बिजली की तरह चमकी। परन्तु कुछ समझकर वह ठहर गया और तलवार को म्यान में कर लिया। चारपाई के पास खड़ा होकर सोचने लगा, "ओह! नारी-जाति कैसी अविश्वासिनी होती है! जिसको प्राणोंसे भी अधिक समझकर मन और प्राण सभी अर्पण कर चुका था, जिसको एक पलके लिये अलग करनेसे संसार शून्य मालूम होने लगता था, जिसके प्रत्येक अङ्गमें अनुराग प्रकट होता था, उसका यह काम, यह आचरण! ओह! कैसी विश्वासघातकता है। नारीजाति का हृदय कैसा शठतापूर्ण है।"

राजकुमार! असती फैज़ीको अविश्वासिनी देखकर, सर्व स्त्री जाति पर अकारण दोषारोपण मत करना! क्या आप समझते थे कि संसार की सब ही नारियां फैज़ीकी तरह अवि श्वासिनी हैं? आपने रमणीके हृदय की परीक्षा करना अच्छी तरह नहीं सीखा है। सती असती का भेद आप नहीं जानते हैं। आप असतीके प्रेममें रहे हो, इसी कारण आपके हृदयमें आज यह नैराश्य उत्पन्न हुआ है। इसी कारण आप को यह मर्मभेदी यातना मिली है।

सिराजुद्दौला फ़ैज़ी की विश्वासघातकता की जितनी आलोचना करने लगा, उतना ही उसको दुःख क्षोभ क्रोध और अभिमान व्याकुल करने लगा। वह और स्थिर न रह सका और कहा, "फ़ैज़ी! फ़ैज़ी!"

प्रेम-सुखमें सोये हुए नायक नायिका की सुख-निद्रा भंग होगई। उन्होंने आँखें खोलकर देखा कि चारपाई के पास सिराजुद्दौला खड़ा है, मानो साक्षात् यम खड़ा है। दोनोंके प्राण उड़ गये।

सय्यद अहमद और विलम्ब न करके शीघ्रतासे भाग गया। उसको भागते हुए देखकर सिराजुद्दौलाने हँसी करके कहा, "मौसा जी! कहाँ जाते हो? थोड़ी देर ठहरकर अपनी प्रणयिनी का परिणाम अपनी आँखोंसे देखते जाओ।"

परन्तु सय्यद अहमद इस बातको न सुनकर भाग गया। तब सिराजने फ़ैज़ीको अपने पास बुलाकर कहा,—"फ़ैज़ी! जिस बातकी खोजमें मैं बहुत दिनोंसे था, उसको आज प्रत्यक्ष देख लिया। बोल, आज क्या बात बनाकर मुझको धोखा देगी? उस दिन मैंने सय्यद अहमदको स्पष्टरूपसे नहीं देख पाया था, इसीसे तुझसे कुछ नहीं कहा था। मैंने समझा था कि शायद मुझको भ्रम होगया हो। किसी विषयका प्रत्यक्ष प्रमाण न पाकर, एक आदमीका सर्वनाश करदेना उचित नहीं था। मुझे ऐसा विश्वास था, कि लोग जो कुछ मुँहसे कहते हैं और कामसे जो कुछ दिखाते हैं, उनके हृदयमें भी वही

ह्लाता है। इसी सरल बातके कारण, इतने दिनों तक मैं तुझ पर अविश्वास न कर सका। किन्तु आज जो कुछ मैंने देखा है, उससे आज मुझको दिव्य ज्ञान प्राप्त हुआ है। मैंने इतने दिनों तक अमृतके धोखे हलाहल विष पिया है फैजी। मैंने एक दिन भी कभी यह नहीं सोचा था कि तुम ऐसी अविश्वासिनी हो सकती हो। आज तुम्हारा काम देख कर मुझको पूरी पूरी शिक्षा मिल गई है। मैंने समझ लिया है, कि जो कोई वेश्याके प्रेममें फँसकर उसको अपना प्राण और मन अर्पण कर उससे अधिक मूर्ख और कोई नहीं है। फैजी! धिक्कार है तुझ को और तेरे जन्म को! क्या वेश्या जाति में हो किसी बातमें भी सत्य का लेशमात्र नहीं रहता है?"

यह भर्त्सना वाक्य फैजी अधिक देर तक न सह सकी। उसने कहा नवाब! तुम जो कुछ कहते हो सब सत्य है। कुलटा होनेपर किसी मनका विश्वास नहीं होता है। किन्तु नवाब! इस तरहके वाक्य मुझसे न कहकर यदि तुम अपनी मातासे कहते तो अधिक शोभा पाते।"

यह बात फैजीने जीवनसे निराश होकर कही। यह सुनकर सिराजुद्दौला की मूर्त्तिने उत्कट भाव धारण कर लिया। मुखमण्डल प्रात:कालके सूर्यकी तरह रक्तवर्ण होगया। आँखें खुल गई और कुम्हारके चक्र की तरह चारों ओर घूमने लगीं। दाँतोंको किटकिटा कर बोला "पापिनी! तेरा ऐसा मुंह

है जो तू ऐसी बातें करती है। तू जानती है कि तेरा मरना जीना किसकी इच्छाके आधीन है? तेरी ऐसी हिम्मत कि मेरी माताके चरित्र पर कटाच करती है। क्या तुझे जीवन की आशा कुछ भी नही है? आज तेरी बुद्धि क्यों पलट गई है? तू क्या जानती नहीं है कि मैं कौन हूँ? आज मैं तुझ को उचित शिचा देता हूँ। तेरी मौत पास है। तू कौनसे साहस से श्यारिनी होकर सिंहिनी को हँसी करती है।"

फ़ैजीने आज जो कर्म्म किया है उससे उसकी मौत निश्चय है, फिर उसको सिराजुद्दौलाका भय क्यों होने लगा? जीवन की आशासे निराश होकर उसने धीरे धीरे कहा,—"बादशाह! मैं जानती हूँ कि तुम बँगाल बिहार उड़ीसाके भावी नवाब हो। राजकुमार! यद्यपि मैं वेश्या हूँ, यद्यपि मेरा बडा नीच पेशा है, तथापि मैं किसी से अनुचित बात नहीं कह सकती हूँ। आप अपनी इच्छानुसार मेरा वध कर सकते हैं अथवा उचित दण्ड दे सकते हैं। परन्तु जो राजा है उसको विचार करके ही दण्ड देना उचित है। जो कुलकलङ्किनी है, वह क्या कभी एक मनुष्यके प्रेममें बँधी रह सकती है। उसको तो नित्य परपुरुष के सहवास की ही शिचा दी जाती है? यदि यही हो सके, तो वह नारि योंके अमूल्य रत्न सतीत्वको जलाञ्जलि देकर 'सती' नामक बदले दूषित नाम 'वाराङ्गना' क्यों रक्खे? और भी एक बात

है कि मैंने जो कुछ तुमसे कहा है सत्य ही कहा है,झूठ नहीं कहा है।"

सिराज और न सह सका। क्रोधसे उसका अङ्ग-अङ्ग कांपने लगा, सब शरीरसे मानो अग्नि निकलने लगी। दोनों नेत्र जलने लगे। उसने दांतोंको किटकिटाकर कहा, "यदि पहलेसे मुझको यह मालूम होता कि सर्प अपना स्वभाव न छोड़ेगा, तो कुलटाके प्रेममें फँसकर, शेषमें यह दुःसह दुःख कभी न भोगना पड़ता ! फैजी ! तेरे व्यवहारसे और तेरे कामोंसे मुझको यथेष्ट शिक्षा मिली है ! अब तू अपने विश्वास-घातका उचित दण्ड ले। और तूने जैसे मेरी इच्छाओं पर पानी फेरा है, वैसे ही मैं भी तुझको इस जगत्‌के सब सुखोंसे वञ्चित करूँगा। तू जानती है कि तेरे इस कामका परिणाम क्या होगा?

यह कह कर सिराज सिंहकी तरह गरजने लगा और "है र !" शीघ्र ही कई एक नौकर सोते से उठकर दौड़ आये और सिराजको सलाम करके हाथ जोड़ कर बोले, "हुजूर ! हम लोगोंको क्या आज्ञा है?"

सिराज शीघ्र ही इस दुश्चरित्राको एकान्तमें लेजाकर बन्द करा और ईंटोंसे सब द्वारोंको बन्द करदो, जिससे भीतर हवा न जा सके। विश्वासघातिनी जान ले और देख ले कि सिराजुद्दौलाको धोखा देनेसे और दूसरेके प्रेममें फँसनेसे कितना दुःख है।

यह कठोर हुक्म सुनकर सब कांप गये और जैसेके तैसे ही खड़े रह गये। मनमें सोचने लगे कि, "हाय! फ़ैज़ीके भाग्यमें क्या यही बदा था!"

नौकरोंको चुपचाप खड़े हुए देखकर सिराजुद्दौलाने कहा, "यदि फ़ैज़ीकी तरह तुम लोगोंके भाग्यमें भी यही लिखा हुआ न हो तो मेरे आदेशको शीघ्र ही पालन करो।"

यह सुनकर नौकर चौंक पड़े और प्राणोंके भयसे फ़ैज़ीको जाकर पकड़ा।

फ़ैज़ी यद्यपि बहुत देरसे अपने जीवनके लिये निराश हो चुकी थी, किन्तु बन्द घरके भीतर क़ैद होकर भूखे प्यासे मरना होगा यह सोचकर कुछ विचलित हुई। हाथ जोड़ कर विनय की,—"बादशाह! यदि मैंने अनुचित काम किया है तो मेरे प्राण लीजिये,इसके लिये मैं कुछ नहीं कहती हूँ। परन्तु शहज़ादे! दासीकी यही प्रार्थना है कि घरमें बन्द करके अशेष यातना मत दीजिये, और चाहे जिस प्रकार मार डालिये।"

फ़ैज़ीकी कोई बात सिराजुद्दौलाने नहीं मानी वरन् उसकी विनय पर और भी क्रुद्ध होकर गरज कर कहा,—"तूने जैसा अविश्वासका काम किया है, उसके लिये यह दण्ड भी काफ़ी नहीं है। यदि इसके सिवाय और भी कोई दण्ड कठिन होता, तो उसीको देकर मैं अपने चित्तको शान्त करता। मैं तेरी कोई बात सुनना नहीं चाहता हूँ। जब तक मैं अपनी

आंखोंसे तेरी दुर्दशा न देख लूँगा, तब तक मैं किसी तरह स्थिर न हो सकूँगा।

इस समय जो मैं तेरा पापी मुख देख रहा हूँ, उसके लिये भी मैं समझ रहा हूँ कि मैं बड़ा नालायक़ हूँ।"

फैजी मरनेके लिये तय्यार थी, किन्तु यातनामें जब कुछ कमी न हुई तब सिराजुद्दौलाका डर किस बातका रहा? यह बड़े गर्वसे बोली, "सिराज! तुम अबलाको पाकर, बिना दोष ही, अनुचित दण्ड देकर मेरे प्राण लेते हो; किन्तु वास्तवमें मैं इसके लिये अपराधिनी नहीं हूँ। वेश्याओंका स्वभाव और धर्म यही है, परन्तु तुम यह मत ख्याल करना कि, तुम को इस अनुचित काम करनेका फल नहीं भोगना पड़ेगा। यदि परमेश्वर है, तो जिस तरह तुम मुझको अकारण कालके गालमें भेज रहे हो; तुम भी उसी तरह अकाल मृत्युको प्राप्त होगे। तब तुमको मालूम होगा कि मानव जीवनका मूल्य क्या है।"

यह सुनकर सिराज चौंक पड़ा। किन्तु क्रोध और प्रतिहिंसाके कारण उसका हृदय ऐसा कठोर हो गया था, कि फैजीके यह कर्कश वाक्य बहुत देर तक उसके हृदयमें न ठहरे; वरन् जलती हुई आग पर घी पड़ गया। उसने और देर न करके नौकरोंसे कहा कि "मैं इसकी और कोई बात सुनना नहीं चाहता। शीघ्र इसको ले जाओ।"

तुरन्त ही हुक्म की तामील हुई। फैजीने भी और कोई

बात न कही। वह एक छोटेसे घरमें बन्द की गई, और सब द्वार ईंटोंसे बन्द कर दिये गये। फ़ैज़ी सांस घुटने और भूख-प्याससे व्याकुल होकर, उस घरमें कितनी आशाओंको लिये हुए अकाल ही में मर गई।

दसवाँ परिच्छेद।

मङ्गलमय भगवान् जो कुछ करता है, भलेके लिये ही करता है। हम लोग अज्ञान हैं, स्वार्थपर हैं, इसलिये बिना समझे और बिना विवेचना किये हुए उसके मङ्गलमय नामको कलङ्क लगाते हैं—उसको निठुर बतलाते हैं। परन्तु उसके सब काम मङ्गलमय हैं; क्योंकि वह तो आप ही मङ्गलमय है।

सिराजुद्दौला बड़ा इन्द्रियपरायण था। सतीके सतीत्व नाश करनेमें उसको कुछ भी सङ्कोच नहीं होता था। इसी कारण उस करुणामय परमेश्वरने यह घटना उपस्थित की। इससे सिराजुद्दौलाकी मतिमें कुछ परिवर्त्तन हुआ। इस घटनासे उसके हृदयमें ऐसी चोट लगी कि स्त्री-जातिसे उसे कुछ कुछ घृणा उत्पन्न हो गई और सती स्त्रियोंके सतीत्वकी रक्षा होने लगी।

यद्यपि सिराजुद्दौलाको स्त्री-जातिसे घृणा होगई थी, किन्तु इस जीवनमें नारी-जातिसे वह बिल्कुल अलग न हो सका। वह लुत्फुन्निसा नामक एक रमणीके सौन्दर्य पर मुग्ध होकर,

उसका अनुरक्त हो गया और उसको अपनी पत्नी बनाया। इसके सिवाय और किसी के प्रेममें वह आबद्ध नहीं हुआ।

लुत्फुन्निसा जैसी ही रूपमें अद्वितीय थी, वैसे ही अनुपम गुण भी उसमें थे। वह रूप और गुणमें नारी-कुलकी शिरोमणि थी। क्या पाठकगण उसका हाल जानना चाहते हैं ?

शायद आपने मोहनलालका नाम सुना होगा। जिस मोहनलालका नाम इतिहासमें स्वर्णाक्षरोंमें लिखा हुआ है, जिसके अद्भुत वीरत्वकी ख्याति जगत्-भरमें प्रसिद्ध है, लुत्फुन्निसा उसी वीर-केशरी मोहनलालकी बहन थी।

मोहनलाल जातिके कायस्थ थे। दरिद्रताके वश दोनों ही भाई बहन नवाब अलीवर्दीके घरमें पले थे। लुत्फुन्निसा साधारण परिचारिकाका काम करती थी और मोहनलाल नवाबकी सेनामें नौकर थे। किन्तु किसीका भाग्य सदैव ही एकसा नहीं रहता। भाग्य चक्र नियत समय पर चक्कर खाता है। इसी भाग्यचक्रके घूमनेसे, ऐश्वर्यशाली पथका भिखारी हो जाता है, और भिखारी राजा। मोहनलाल और लुत्फुन्निसाका भाग्य फिरा। दोनों ही उन्नतिके शिखर पर पहुँच गये।

लुत्फुन्निसा पहले ही सुन्दरी थी, तिस पर नव-यौवनका आगमन,—रूप मानों फूट निकला।

लुत्फुन्निसाका यह अलौकिक रूप देखकर सिराजुद्दौला मुग्ध हो गया और धीरे धीरे उसका प्रेम उसकी ओर बढ़ता

गया। स्त्री-जातिके ऊपर जो घृणा उसको हो गई थी, वह जाडेके आनेसे वर्षाकालके पानीके बादलोंकी तरह, धीरे धीरे आकाशरूपी हृदयसे हटने लगी।

सिराजुद्दौला लुत्फुन्निसाकी तरह तरहसे परीक्षा करने लगा। एक दिन उसने लुत्फुन्निसासे कहला भेजा,—"आज तुमको हमारे साथियोंके साथ आमोद प्रमोद करना होगा।" उसने कहला भेजा,—"जो नारी पतिके सिवाय और किसी से आमोद-प्रमोद कर सकती है, वह वेश्या है। मैं वेश्या नहीं हूँ। मैं युवराजके भय और आश्रयको पत्नी हुई हूँ, किन्तु इस उपकारसे मैं उनके आनन्दके लिये अपना धर्म नहीं बिगाड़ूँगी।"

इस उत्तर पर सिराजुद्दौला क्रुद्ध नहीं हुआ। वरन् मन ही मन उस पर सन्तुष्ट हुआ।

फिर एक दिन लुत्फुन्निसाकी परीक्षाके लिये, सिराजुद्दौला बहुतसे रुपये और महामूल्य आभूषण इत्यादि लेकर अँधेरी रातमें उसके घरमें घुसा। लुत्फुन्निसा उसको देखकर लज्जा और भयसे घरमें एक ओर खड़ी होकर काँपते हुए गलेसे बोली, "जहाँपनाह! इस अँधेरी रातमें आप किस अभिप्रायसे इस अनाथिनीके घरमें आये हैं? इस समय यदि आपको कोई देखले तो मेरे नाममें कलङ्क लगेगा, इसलिये आप शीघ्र ही इस दुखिनीके घरसे चले जावें।"

सिराजुद्दौलाने हँसकर कहा, 'सुन्दरी! मैं तुम्हारे रूप और नवयौवन पर मुग्ध होकर तुम्हारा प्रेमपात्र बनने की

आया हूँ। तुम्हारे प्रेमके बदलेमें, मैं तुमको यह महामूल्य गहने और रुपये देता हूँ—तुम इनको लेकर मुझको चरितार्थ करो। मुझको तुमसे बड़ा प्रेम होगया है और अब तुम मुझको निराश मत करो।"

यह सुनकर लुत्फुन्निसा कांप गई। उसके सब शरीर से पसीना टपकने लगा। कुछ देर चुपचाप खड़ी रहकर, उसने कहा,—"बादशाह! चमा करो। आपके रुपयेके लोभसे, मैं अपना सतीत्व नष्ट नहीं करूँगी। जो स्त्री रुपयेके लोभसे अपना पवित्र सतीत्व रत्न बिगाड़ती है, उसको मैं घृणाकी दृष्टिसे देखती हूँ। जहांपनाह! आप मेरी आशा छोड़ दें। यह अभागिनी आपकी आश्रिता और पाली हुई है। आश्रिताके साथ असद् व्यवहार आपको शोभा नहीं देता है। यदि आप ही रक्षक होकर भक्षक बनेंगे, तो रक्षा के लिये किस के पास जाऊँगी? राजा असहाय का सहाय होता है। वही राजा होकर, आप ऐसा अविचारका काम क्यों करते हैं? इस दुःखिनी को सदैवके लिये कलङ्क सागरमें क्यों डालते हैं? मैं अनूढा हूँ, अनूढाके ऊपर अत्याचार आपको शोभा नहीं देता है। आप मेरी आशा छोड़ दें, मेरी रक्षा करें और दुःखिनीके सिर कलङ्कका टीका न लगावें—अनाथिनी को चिर दुःख सागरमें न डालें।"

सिराज—सुन्दरी! तुम क्यों वृथा आशङ्का करती हो? तुम इन आभूषणों और रुपयों को क्यों नहीं लेती हो?

मुझको अपवादसे बचावें, परमेश्वर आपका मङ्गल
गा।"

परीक्षामें लुत्फुन्निसाकी जय हुई। सिराजुद्दौला लुत्फु-
साके पवित्र हृदय और दृढ़ सङ्कल्पको देखकर बहुत सुखी
र आनन्दित हुआ। मन ही मन उसकी बड़ी प्रशंसा की।
फुन्निसाका हृदय और मन अचल और अटल देखकर,
ाल ही उसने अपने मन और प्राण उसको समर्पण कर
ये।

और कहा,—"लुत्फुन्निसा! मैं सत्य कहता हूँ कि इस समय
तुम्हारी प्रेमाकाङ्क्षाके लिये नहीं आया था, वरन् तुम्हारी
ीक्षा करनेको आया था। अब मेरी समझमें आया है, कि
र क्या चीज़ हो। मैं फ़िङ्गोके व्यवहारसे स्त्री-जातिसे जितनी
घृणा करता था, तुमने आज अपने उच्च हृदयका परिचय
कर उतना ही मुझको सुखी किया है। मैं यही परीक्षा
ले आया था, कि देखूँ रुपयों और आभूषणोंकी अपेक्षा
म अपने सतीत्वके गौरव और आदरको अधिक समझती हो
ा नहीं। तुम उस परीक्षामें पास हो गई। लुत्फुन्निसा!
राजुद्दौलाकी बेगम बनने योग्य तुम्हीं अकेली हो। आज
ने तुमको पत्नी-रूपमें ग्रहण किया।

लुत्फुन्निसा अपने इतने बड़े सुख और सौभाग्य पर सहसा
श्वास न कर सकी। कहा,—"बादशाह! मैं आपकी दासी
। दासीका उपहास करना प्रभुको उचित नहीं है।' यह

कहते कहते वह रो उठी और आँखोंका जल कपोलों पर गिरने लगा।

सिराज—लुत्फुन्निसा! मैं तुमसे ऐसा नहीं करता हूँ। मैं सत्य कहता हूँ, कि आजसे तुम मेरी प्रधान बेगम हुईं। मैंने तुम्हारे रूप और गुण पर मुग्ध होकर तुमको पत्नी स्वरूप ग्रहण किया। यदि मेरी बात पर तुमको विश्वास न हो, तो मैं परमेश्वरको साक्षी करके कहता हूँ कि तुम मेरी धर्म-पत्नी हुईं।

लुत्फुन्निसा और कुछ न कह सकी। मनही मन सोचने लगी,—"क्या सच ही मेरा ऐसा बड़ा भाग्य है कि मैं बङ्गाल, बिहार और उड़ीसाके नवाबकी बेगम होऊँगी?"

सिराजुद्दौलाने उसे चुपचाप खड़ा देखकर कहा, "लुत्फुन्निसा! क्या सोच रही हो? क्या सिराजके हाथमें आत्म-समर्पण करना नहीं चाहती?"

अब लुत्फुन्निसाको बात करनेकी शक्ति आ गई। हँसकर बोली, "आप यदि इसी प्रकार सदा मुझको देखें, तो क्या दासी कभी असम्मत हो सकती है?" यह कहकर सिराजुद्दौलाके हाथमें उसने अपना आत्मसमर्पण कर दिया।

यद्यपि लुत्फुन्निसा आज मुसलमान है, परन्तु मुसलमानके यहाँ तो वह उत्पन्न नहीं हुई थी। वह परम पवित्र हिन्दू-कुलमें जन्मी थी, हिन्दूके रक्तसे उसका शरीर बना था। वह दरिद्र-ताके वश मुसलमानके घरमें पली थी। मुसलमानी नाम भी

रक्खा गया था, किन्तु इस इतनेमें कुलका और रत्नाका गुण क्या लोप हो सकता है?

लज्जा, दया, भक्ति, श्रद्धा, निष्ठा, भय और पवित्रता इत्यादि गुण,—जिनके लिये हिन्दूनारी संसारमें आदर्श और पूज्य है,— वे गुण लुत्फुन्निसामें क्यों न होने चाहिएं?

ये गुण होनेसे ही लुत्फुन्निसा आज सिराजुद्दौलाकी धर्मपत्नी बनती है।
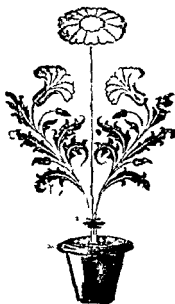
ग्यारहवाँ परिच्छेद।

इधर बर्गी लोगोंने गड़बड़ आरम्भ करदी। लोग तरह तरहके दुःखोंमें पड़ गये, प्रायः सभी अपनी अपनी पूँजी खो बैठे। देश भरमें हाहाकार मच गया। दुःख और शोकसे लोग व्याकुल हो उठे। किसीके पास खानेको भी न रहा। महाराष्ट्र लोगोंके दलके दल आते और नगरों और गांवोंमें प्रवेश करके जो कुछ पाते लूट ले जाते। जो अतुल ऐश्वर्य-शाली थे, वह भी पथके भिखारी हो गये। किसीके पास कुछ भी न रहा। इतने पर भी, जिनकी जन्मभूमिकी माया ममता न छोड़ सकी, वे ही लोग अपना सब हरण करा कर भी जन्मभूमिमें ही बसे रहे, नहीं तो गांव गांवमें, नगर-नगरमें यही दिखाई देता था कि बहुतोंने जन्मभूमिकी ममता छोड़ दी और देशान्तरको भाग गये। सब देश, नगर और गांव खाली हो गये। महाराष्ट्रोंके अत्याचारकी सीमा नहीं थी। कृषकोंके ऊपर जुल्म किये, खेतोंमें अनाज नहीं होता।

यह सम्वाद नवाब अलीवर्दीके पास पहुँचा। इतने बड़े

अदबसे आकर सलाम किया और हाथ जोड़कर बोला,—"देश, नगर और गांव सब ही मनुष्योंसे रहित हो गये हैं, और श्मशानसे ज्ञात होते हैं।"

नवाब अलीवर्दीने पूछा, "किस कारण देशकी यह हालत हुई है?"

दूतने हाथ जोड़कर कहा,—"बादशाह! बरार प्रदेशसे राघोजी भोंसलाके सेनानायक भास्कर पण्डित और पूनासे बाला जीने आकर नगरोंका यह सत्यानाश कर दिया है। गांववालों के पास जो कुछ था, सब ही छीन लिया है। सब लोग बड़ा क्लेश भोग रहे हैं। बहुतसे लोग, कुछ भी न रहनेके कारण, देशान्तरको भाग गये हैं।"

यह सुनकर कुछ देर अलीवर्दी चुपचाप रहे, फिर पूछने लगे, "ये लोग कष्ट पहुँचा कर लोगोंका माल ही लेते हैं या लड़ाई भी लड़ते हैं?"

दूत—ज्ञात होता है कि देश, नगर और गांवों पर अधिकार करनेकी इनकी इच्छा नहीं है। यदि इनका यही उद्देश्य होता तो चोरोंकी तरह भय दिखाकर और अत्याचार करके उनका यथासर्वस्व क्यों लूटते और दरिद्रोंके मुखका ग्रास क्यों छीनते?

अलीवर्दी—तो इनका उद्देश्य क्या है?

यह मैं नहीं जानता कि ये युद्ध अथवा राज्यको चाहते हैं या नहीं; परन्तु यह मैं जानता हूँ कि केवल रुपया चाहते हैं।

यह सुनकर सभामें सब लोगोंने हँसी करके कहा,—"तो ज्ञात होता है कि ये लोग चोर हैं।"

दूत—यदि चोर ही हैं, तो साथमें सेनाका क्या काम है?

अलीवर्दी—उनके साथ कितनी सेना है?

दूत—अनुमानसे दस हजार होगी।

अलीवर्दी—दोनों दल क्या आपसमें मिल गये हैं?

दूत—नहीं, दोनों ही अलग अलग गांव लूटते हैं।

अलीवर्दी दोनों दलोंके सेनानायक कौन कौन हैं?

दूत—मैं पहिले कह चुका हूँ, राघोजी की ओरसे भास्कर पण्डित सेनापति होकर आये हैं। और बालाजी की ओरसे स्वय वही हैं।

अलीवर्दीने कुछ देर सोचकर सेनाको युद्ध-यात्राके लिये तय्यार होनेका हुक्म दिया, और उसी दिन सेना सहित कटवार की ओर चल दिये। नवाब अलीवर्दी ने सोचा कि यदि मैं सेना लेकर महाराष्ट्र दल पर चढ़ाई करूँगा, तो वह शायद डरकर भाग जायें, किन्तु यह उनका भ्रम था, और शीघ्र ही वह भ्रम जाता भी रहा। उन्होंने वहां पहुँच कर देखा, कि उन लोगोंने कटवारका किला अपने हाथमें कर लिया है। यह देखकर नवाबने सोचा कि केवल भय दिखानेसे यह लोग किला नहीं छोड़ेंगे, युद्ध करना होगा। यह दृढ़ करके, नवाबने अपने शिविर वहां लगवा दिये और महाराष्ट्र लोगोंको लड़ाई की खबर भेज दी. किन्तु वह लोग तय्यार नहीं हुए। ऐसा

ज्ञात हुआ कि लड़ना उनको अभीष्ट नहीं था, इसके लिये उन्होंने एक कौशल रचा। अर्थात् कुछ सेना तो उन्होंने अलीवर्दी से लड़नेको भेजी और कुछके कई हिस्से करके नगर लूटनेको भेज दी। और यहाँ तक नौबत आ गई, कि रातको नवाबके शिविर तकमें से सेनाके कपड़े, हथियार और खाने पीनेकी चीज़ें तक चुरा चुरा कर वे ले जाने लगे।

अलीवर्दी यह देखकर बड़े व्यग्र हुए और एक प्रकारसे मरहट्टोंके सामने हार खा गये। अन्तको नवाबने दिन रात लड़ाईको ठानी। मरहट्टोंका उद्देश्य तो लड़ना था ही नहीं ; उनको तो केवल रुपयेकी इच्छा थी। परन्तु तो भी जो कुछ थोड़ा बहुत नवाबसे लड़ते थे, उससे उनका यही आशय था कि नवाब दुचित्ते बने रहें और उनके लूटनेमें कोई विघ्न न डालने पावें।

लूटनेवालोंने सुयोग पाकर और मौक़ा समझ कर मुर्शिदाबाद जा घेरा और अतुल ऐश्वर्य्यके अधीश्वर, कुवेरके प्रिय पुत्र, फ़तहचन्द जगत्‌सेठका खज़ाना लूट लिया। वनियोंके घर, दरिद्रयोंके घर, जो सामने आये सभी लूट लिये। यदि नहीं लूटा तो केवल राजप्रासाद।

अलीवर्दी को और लड़ाई नहीं लड़नी पड़ी। यह सम्वाद पाकर कि मरहट्टा लोग मुर्शिदाबाद लूट रहे हैं, नवाब बड़े चिन्तित हुए और लड़ाई छोड़कर राज्यप्रासाद और परिवार की रक्षाके लिये मुर्शिदाबादको चल दिये।

अलोवर्दी मुर्शिदाबाद आ गये और महाराष्ट्र लोग भी मुर्शिदाबाद छोड़कर चल दिये। नवाबने राजधानीमें आकर देखा, कि बर्गियोंके कारण मुर्शिदाबाद बिल्कुल ही श्रीभ्रष्ट हो गया है। मानवशून्य है। मनुष्य अपने घरबार खोकर पथके भिखारी हो गये हैं। हाहाकार और रोना चिल्लाना मचा हुआ है। जगत्सेठके खजानेसे प्रायः एक करोड़ रुपया चला गया है।

अलीवर्दी यह देखकर और सुनकर बड़े उद्विग्न हुए। यद्यपि लोगोंको समझा बुझा कर उन्होंने स्थिर किया, किन्तु मन ही मन नवाब बड़े चिन्ताकुल हुए। क्योंकि अब उन्होंने जगत्सेठ का खजाना ही लूट लिया है, तो राजप्रासादके लूटनेमें क्या देर लगती है? और जब तक बर्गियोंको परास्त करके भगा न सकूं तब तक राज्य और प्रजाका मङ्गल नहीं है। अधिकतर तो यही सम्भावना है, कि राज्यपरिवार पर भी वे अत्याचार न करने लगें।

इस प्रकार बहुत कुछ सोच विचार कर नवाबने स्थिर किया, कि जब तक इन लुटेरोंको यहां से निकाल न सकूं तब तक राज्यपरिवार की रक्षाका भार किसी उपयुक्त आदमीको सौंप दूं। क्योंकि यदि परिवारको रक्षित स्थान पर न रक्खेंगा तो निश्चय ही बर्गियोंके हाथमें अपमानित होना पड़ेगा और आप भी वहां उनको दमन न कर सकेंगे।

विचक्षण अलीवर्दीने मन ही मन यह स्थिर करके, पद्मा और महानन्दा नदियोंके सङ्गम पर गोदागाड़ी नामक स्थानमें,

वास-भवन निर्दिष्ट करके, वहाँ सब परिवारको भेज दिया और अपने दामाद नवाज़िश मुहम्मदको उनके रक्षणका भार सौंप दिया।

इस प्रकारसे परिवारको रक्षित रखनेसे नवाबका एक और भी प्रधान उद्देश्य था, कि यह दोनों नदियां बड़ी वेगवान् है, इनको पार करके मरहट्टा लोग गोदागाड़ी गाँवमें सहज ही घुसकर अत्याचार नहीं कर सकते थे। यही सोच कर, नवाब ने यह स्थिर जगह रहनेके लिये बनाई थी।

केवल परिवार ही को रखकर, नवाब निश्चिन्त नहीं हो गये। वर्गियोंकी गड़बड़ और राज्यमें अशान्ति फैली हुई थी और अराजकता हो रही थी। उस सबको निवारण करके, शान्तिकी प्रतिष्ठा और अपनी राजशक्तिकी जयघोषणाके लिये भी उन्होंने पूरा पूरा बन्दोबस्त किया। उन्होंने सिराजुद्दौलाको मुर्शिदाबादकी रक्षाका भार दिया। दीवान राजबल्लभको ढाके का, ज़ैनुद्दीनको पटने का, और सय्यद अहमदको पुर्नियाका भार सौंपा।

किन्तु ऐसे अच्छे बन्दोबस्त होने पर भी वर्गियोंको निवारण न कर सके। मरहट्टा लोग मुसल्मानोंकी आँखोंमें धूल डालकर लूटमार करने लगे। लोग व्याकुल हो उठे और बारम्बार नवाबके पास जा जाकर अपने दुःख-दुर्गतिकी कथा सुनाने लगे। बहुतोंने अपने अपने वास-स्थान छोड़ दिये और जङ्गलमें जाकर आश्रय लिया।

नवाबने देखा कि मरहट्टोंको दमन करना अथवा निकाल देना सहज नहीं है। यह चोर डाकुओंसे भी अधिक भयानक हैं। डाकू लोग राजदण्डसे डरते हैं, चोर लोगोंका धनरत्न चोरीसे लेते हैं, किन्तु वर्गी तो राजदण्डसे भी नहीं डरते हैं और लोगोंका धन प्रकाशमें छीन लेते हैं और युद्ध मांगने पर युद्ध भी करते हैं। ऐसे अत्याचारियोंको छलबल और कौशलसे जिस प्रकार हो सके वशीभूत करके अथवा समूल नष्ट करके ही निस्तार पा सकते हैं अन्यथा नहीं।

नवाब अलीवर्दी व्याकुल हो गये। दिन-रात पगड़ी उतारने और तलवार छोड़कर विश्राम करने तक का अवसर नहीं था, केवल सेना लिये वह मरहट्टोंको दमन करनेके लिये उनके पीछे पीछे घूमने फिरने लगे।

मरहट्टोंको युद्धमें परास्त करना कठिन समझ कर, अलीवर्दी ने एक अपूर्व जाल रचा। अर्थात् बालाजीके पास सन्धि प्रार्थनाके लिये दूत भेजा।

यथासमय दूत बालाजीके शिविर द्वार पर पहुँचा। दूत का सम्वाद बालाजीके पास पहुँचा। बालाजीने उसको भीतर आनेको कहा।, दूतने बालाजीके पास पहुँच कर बड़े अदबसे सलाम किया। बालाजीने उसको बैठनेकी आज्ञा दी। दूत बैठ गया। बालाजी पूछने लगे, "दूत! तुम कहांसे आ रहे हो?"

दूतने धीरे धीरे कहा, "मैं नवाब अलीवर्दी के शिविरसे आ रहा हूँ।"

यह सुनकर बालाजीके विस्मयकी सीमा न रही। नवाब उनके प्रबल शत्रु थे, नवाबने दूत भेजा है इसका क्या कारण है? बहुत ही कौतूहलवश होकर बालाजी पूछने लगे, "दूत! नवाबने तुमको मेरे पास किस मतलबसे भेजा है?"

दूत—आपके साथ सन्धि करनेको।

बालाजी बडे गर्वसे बोले, "तो क्या नवाबको अब हमारे बलका हाल मालूम हुआ? और क्या युद्धमें हमसे पार न पाकर उसने सन्धिका प्रस्ताव किया है? अच्छा अच्छा, मैं उसकी इस सुमति पर खुश हो गया हूँ। मरहट्टोंके साथ युद्ध करना अथवा उनके दमन करनेकी चेष्टा करना, बुड्ढे नवाबका काम नहीं है। यदि नवाब हमारे साथ सन्धिका प्रस्ताव न करता, तो अन्तमें उसको मुर्शिदाबादकी मसनद तक निश्चय ही छोड देनी पडती। किन्तु अब मैं समझ गया हूँ कि नवाब बडा बुद्धिमान और चतुर है। इसीसे उसने मरहट्टोंसे युद्धमें हारकर, अपनेको हास्यास्पद बनानेसे पहिले ही, सन्धिका प्रस्ताव करके, अपने प्रतापको अछूता बनाये रखनेकी अभिलाषा की है। अच्छा, मैं उसके प्रस्तावसे सम्मत हो गया।

बालाजीके यह गर्वके वाक्य दूत सह न सका। उसने हाथ जोडकर नम्र वचनोंमें धीरे धीरे कहा, "वीरवर! यदि बातचीत

से इस दासके मुखसे कोई अनुचित बात निकल जाय तो क्षमा कीजियेगा। किन्तु आपने जो कुछ अनुमान किया है, वह आपका भ्रममात्र है। नवाब अलीवर्दी यद्यपि वृद्ध हो गये हैं, तब भी इस समय उनमें इतना बल है कि आप भय मात्र भी उनके सामने तलवार लेकर युद्धमें ठहर नहीं सकते। यह मरहट्टोंकी सेना क्या है! नवाब आपकी सेना देखकर विचलित नहीं हुए हैं। विशेषकर दिल्लीश्वर मुहम्मद शाहके रहते भी जो स्वाधीन भावसे बङ्गाल, विहार और उड़ीसाका शासन कर रहा है, वह इन मुट्ठी भर मरहट्टोंको देखकर विचलित होगा। ऐसा आप न समझना और सामने सामनेके युद्धमें भी वह हटनेवाले नहीं हैं।

बालाजी—अच्छा, जो कुछ तुम कहते हो उसका मैं विश्वास करता हूं। किन्तु उनकी फौज कितनी है?

दूत—क्षमा कीजिये, इस प्रश्नका उत्तर मैं नहीं दे सकता हूं। किन्तु यह आपकी भूल है। युद्धमें फौजकी संख्या से क्या हो सकता है? लड़ाईमें तो युद्ध कौशल ही मुख्य है। जो इस कौशल को नहीं जानता, वह असंख्य सेना और बढ़िया बढ़िया हथियारोंके होने पर भी पराजित हो जाता है।

दूतकी इस युक्तिपूर्ण बातको सुनकर बालाजी मन ही मन सन्तुष्ट हुआ और बोला,' परन्तु मैं एक बात पूछता हूं कि यदि नवाब अलीवर्दी मरहट्टोंकी सेना और बालाजी के पराक्रमसे भयभीत नहीं हुए हैं, तो सन्धिका प्रस्ताव क्यों किया है?"

दूतने यह सुनकर, कुछ मुस्कराकर उत्तर दिया, "इसका और मतलब है।"

बालाजी—वह क्या बात है, तुम जानते हो ?

दूत—हाँ, मैं जानता हूँ।

बालाजी—तुम दूत होकर नवाबका अभिप्राय किस प्रकार जानते हो ? उन्होंने क्या अपने मनका हाल तुमसे कहा है ?

दूत—नहीं, मुझसे कहा नहीं है।

बालाजी—तो तुमने किस तरह जाना ?

दूतने हँसकर कहा—"जो दूतका काम करता है, वह अपने मालिककी अवस्थाको देखकर उसके चित्तका भाव जान लेता है। यदि इस तरह जान न ले, तो दूतका काम किस भाँति करे ?"

बालाजी—तो तुम बतला सकते हो कि नवाबने किस अभिप्रायसे मरहट्टोंके साथ सन्धिका प्रस्ताव किया है ?

दूत—हाँ, बतला सकता हूँ, किन्तु नवाब बहादुरने सब मरहट्टोंके साथ सन्धिका प्रस्ताव नहीं किया है, केवल आप ही के साथ ऐसा करनेकी इच्छा है।

बालाजी विस्मयके साथ पूछने लगे, "सब मरहट्टोंके साथ सन्धिका प्रस्ताव न करके, केवल मेरे ही साथ ऐसा करनेसे उनका क्या प्रयोजन है ?"

दूत—नवाब बहादुर डाकुओंकी प्रकृतिवाले भास्कर

पण्डित से भीतर भीतर घृणा करते हैं। जो आदमी युद्ध न करके डाकुओंकी तरह ही लोगोंका यथासर्वस्व लूट लेता है, उसके साथ क्या बङ्गाल बिहार उड़ीसाके नवाब कभी मित्रता कर सकते हैं? मरहट्टा होने पर भी भास्कर पण्डित डाकू है। वीर-हृदय अलीवर्दी डाकूके साथ मित्रता नहीं कर सकते हैं। आप योद्धा और तेजस्वी पुरुष हैं, इसी कारण नवाब बहादुर केवल आप ही के साथ सन्धि सूत्रमें आवद्ध होनेकी अभिलाषा कर रहे हैं। उनका गूढ़ अभिप्राय यह है, कि आप सरीखे योग्य योद्धाकी सहायतासे दिल्लीका सिंहासन अधिकारमें लावें।

दूतकी चातुरीके आगे बालाजी और कुछ न कह सके। बोले, "सन्धिकी शर्तें कैसी हैं?"

दूत—यदि आप नवाबकी सहायता करेंगे और उस सहायतासे नवाब बहादुर मुहम्मद शाहको परास्त करके दिल्लीका सिंहासन प्राप्त कर लेंगे, तो आपको यही मुर्शिदाबादकी मसनद मिलेगी और आप नवाब होंगे।

बालाजी—मैं इस प्रस्तावसे सम्मत नहीं हूं। मुसलमान दिल्लीके सिंहासन पर बैठे और मैं मरहट्टा मुसलमानके आधीन होकर रहूंगा, यह कभी नहीं हो सकता।

दूत—तो आप किस तरह पर सन्धि करनेको उद्यत होंगे?

बालाजी—मैं रुपया चाहता हूं। यदि अलीवर्दी मेरे

साथ सन्धि करनेको प्रार्थी हुआ है, तो मैं रुपयेके सिवाय और किसी बात पर सम्मत नहीं हूँ।

दूत मनही मन हँसा और बोला, "आप कितना रुपया चाहते हैं?"

बालाजी—एक करोड़ रुपया।

दूत—इतना मिलने पर आप इस देशसे चले जावेंगे?

बालाजी—हां, और क्या।

दूत—फिर कभी तो इधर आनेकी इच्छा न होगी?

बालाजी—यदि नवाबको फिर कभी सहायताकी आवश्यकता हो तो आ सकता हूँ; नहीं तो नहीं।

दूत—तो फिर सन्धि होना स्थिर हो गया। आप अपना इच्छित रुपया लेकर सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर कर देंगे। अब मैं विदा होता हूँ। यह कहकर दूत चला गया।

बारहवाँ परिच्छेद ।

बालाजी के साथ सन्धिका प्रस्ताव तो एक तरह पर ठीक हो ही गया, परन्तु रुपया कहाँ है, जो दिया जावे? अलीवर्दी ने देखा कि खजानेमें एक करोड़ रुपया नहीं है, यह देखकर वह अपार चिन्तासागरमें डूब गये। यदि बालाजी का चाहा हुआ रुपया नहीं देंगे, तो मरहट्टोंके अत्याचारसे राज्यकी दुर्गति होगी, लोग भूखों मरेंगे और देश छोड़कर भाग जावेंगे। प्रजासे ही राजाका राज्य है, प्रजाके सुखमें राजाका सुख है, प्रजाका धन है सो राजाका धन है, प्रजाकी शान्ति राजाकी शान्ति है, और प्रजा ही के मङ्गलमें राजाका मङ्गल है। जब राजा और प्रजामें ऐसा घनिष्ट सम्बन्ध है, तब यदि प्रजा अत्याचारसे देश छोड़े अनाहारसे भूखों मरे, तो राजाके राज्य का क्या होगा और वह राजा किसको लेकर राज्य करेगा?

नवाब अलीवर्दी मन ही मन इसी तरहकी आलोचना करते करते बड़े व्याकुल हो गये। वह दिन रात अस्थिर चित्तसे रुपयेकी चिन्तामें रहने लगे। रुपयेके अतिरिक्त बालाजी और किसी बातसे सन्धि करने पर सम्मत नहीं होगा, और जब तक बालाजी सम्मत न होगा तब तक बर्गियोंका उपद्रव बन्द न होगा,

प्रजा भी रक्षा न पावेगी, राज्य भी न रहेगा, यह सब बातें नवाबने अच्छी तरह समझ ली थीं। इसलिये वह रुपयेके लिये बहुत व्याकुल हुए। जैसे राजा हरिश्चन्द्रको विश्वामित्रका ऋण चुकानेके लिये सब संसार अन्धकारमय दिखलाई देता था, उसी तरह आज अलीवर्दीको भी ज्ञात हुआ।

जब नवाबके बहुत सोचने विचारने पर भी रुपया जमा करनेकी कोई तरकीब समझमें न आई, तो सिराजुद्दौला को बुला भेजा।

नाना के बुलाने पर सिराजुद्दौला शीघ्र ही हीरा झीलसे राजभवनमें आ पहुँचा। नवाब उसके आनेकी राह देख ही रहे थे। दौहित्र को बड़े आदरसे लिया और मन्त्रणागृहमें ले जाकर अपने पास बैठाया। कुशल पूछनेके बाद कहा, "सिराज! बर्गियोंके मारे तो राज्य उथल-पुथल हुआ जाता है। प्रजा बड़े कष्टमें है। कोई तो देश छोड़कर देशान्तर को चले गये हैं, कोई जङ्गलमें आश्रय लिये हुए हैं। प्रजासे ही राजाका राज्य है। राजा यदि प्रजाके धन-प्राण और कुल-मानकी रक्षा न करे और प्रजाके दुःखसे दुःखी न हो, उसके दुःखमोचनका यत्न न करे, तो उस राजाका राज्य नहीं रह सकता। इस बर्गियोंके उद्रासको यदि निवारण न कर सकें, तो शीघ्र ही यह राज श्मशान हो जावेगा। सिराज! इस समय क्या उपाय है? किस भांति राज्यकी रक्षा करनी चाहिये?"

सिराज—नानाजी मरहट्टोंके दमन करनेके लिये किस बातकी चिन्ता है ? युद्ध करनेमें वे पराजित हो जावेंगे। आपकी तलवारके आगे मरहट्टों की क्या ताकत है कि युद्ध कर सकें।

यह सुनकर नवाब कुछ कुछ विषादकी हँसी हँसकर बोले सिराज ! तलवार की सहायतासे यदि मैं मरहट्टोंको दमन कर सकता अथवा राज्यसे निकाल सकता, तो फिर सोच किस बातका था ? यदि ऐसा होता, तो वह लोग कभीके इस देश को छोड़कर भाग गये होते, किन्तु सिराज ! युद्ध करके उनको हराना अथवा निकाल देना सहज नहीं है।"

सिराज—तो क्या मरहट्टे ऐसे योद्धा हैं, कि उनका पराजय करना आपके लिये असम्भव है ?

नवाब—हां सिराज ! एक प्रकारसे मैं उनके सामने परास्त हो हो चुका हूं। यदि वह सामने सामने युद्ध करते तो कोई चिन्ता नहीं थी परन्तु उनका अभिप्राय तो देशको लूटना है। ये जो कुछ लड़ते हैं, सो लूटनेके सुभीतेके लिये। वास्तवमें वह युद्ध करना नहीं चाहते हैं।

सिराज—क्या आपने कटवेके पास उनसे युद्ध किया था ?

अलीवर्दी—मैंने उन पर आक्रमण किया था, किन्तु उन्होंने कुछ थोड़ी सी सेना मेरे साथ लड़नेको छोड़कर सबको लूटमार के लिये रहने दिया। वे बड़े चालाक हैं। यदि उनको वश में [illegible] सका तो राज्यकी आशा दुराशामात्र है

विशेषकर बालाजी बड़ा चतुर है। उसके पास सेना भी अधिक है। पहले वह वशमें हो जावे, फिर भास्कर पण्डित को तो सहज ही में हरा दूँगा।

सिराज—जब बालाजी ऐसा दुर्दमनीय है, तो आप उसको किस प्रकार वशमें करेंगे?

अलीवर्दी ने हँसकर कहा, "वत्स! वह उपाय मैंने सोच लिया है। बालाजी मेरे साथ सन्धि करनेको राज़ी है।"

सिराज—यदि बालाजी सन्धि करना चाहता है, तो फिर आप देर क्यों कर रहे हैं? शत्रु जितनी शीघ्रतासे सन्धि सूत्र में बांधा जा सके, उतना ही अच्छा है।

अलीवर्दी—यह मैं खूब समझता हूँ, किन्तु एक विशेष अभावके कारण सन्धि अभी तक नहीं हो सकी है।

सिराजुद्दौला ने बड़े विस्मयसे पूछा, "नानाजी! किस बात का अभाव है?"

अलीवर्दी—रुपयेके सिवाय और किसी बात पर बालाजी राज़ी नहीं होता है।

सिराजुद्दौला ने हँसकर कहा, "यदि शत्रु राज्य न लेकर केवल रुपया ही लेकर सन्धि करने पर राज़ी है, तो मेरी समझ में यह बहुत ही अच्छी बात है।"

अलीवर्दी कुछ अप्रसन्नतासे बोले, "बात तो ठीक है सिराज! किन्तु इतना रुपया कहाँ है?"

सिराज—क्या खजानेमें इतना रुपया नहीं है, कि जिसको देकर बालाजी के साथ सन्धि हो जावे?

अलीवर्दी—जितना है उतनेसे काम नहीं बन सकता।

सिराज—बालाजी को कितना देना होगा?

अलीवर्दी—एक करोड़ रुपया। इतने रुपयेके न होनेसे बालाजी के साथ सन्धिका प्रस्ताव हो जाने पर भी, सन्धि नहीं कर सकता हूँ। परन्तु उसके साथ सन्धि न करनेसे राज्यकी रक्षा करना बड़ा कठिन है। सिराज! तुमको एक काम करना होगा।

सिराज—कौन काम? आज्ञा कीजिये।

अलीवर्दी बड़े कातर भावसे बोले "सिराज! तुमसे मैं और कुछ नहीं कहता हूँ यदि तुम किसी उपायसे मुझको २० लाख रुपया एकट्ठा करके दे सको तो मैं बालाजी के साथ सन्धि करके राज्यकी रक्षा करूँ नहीं तो बर्गियोंके कारण राज्यका सत्यानाश हो जावेगा।

सिराजुद्दौलाने हँसकर कहा "नानाजी! आप इसके लिये इतनी चिन्ता क्यों करते हैं? आप अपने आधीन राजा, महाराजा और जमींदार लोगोंसे इतना रुपया बड़ी आसानीसे ले सकते हैं।"

अलीवर्दी—वह लोग देनेको राजी क्यों होंगे? और विशेष करके यदि इस समय उनको रुपयेके लिये तङ्ग किया जावे, तो वह मरहट्टोंके साथ मिल भी सकते हैं। सिराज! राज्य करना

बड़ा कठिन है। बात बातमें इसके शत्रु हैं ; पद पद पर विपद है ; और सदा सर्वदा ही इसमें आशङ्का है। बहुत सोच समझ कर काम करनेसे, तीव्र दृष्टि रखनेसे और लोगोंके हृदयका हाल समझ कर काम करनेसे राजाका राज्य रक्षा पाता है। सिराज! इस समय मैं राजा महाराजाओंसे रुपया लेना नहीं चाहता हूँ। क्या मालूम कि वह दुःखी होकर मरहट्टोंके पक्षमें हो जावें।

सिराज—नानाजी! आप उन लोगोंसे रुपया सदैवके लिये तो लेते ही नहीं है, आप तो ऋण लेते हैं। इसके लिये वह क्यों असन्तुष्ट होंगे? आप उनको ऋण लेनेके लिये पत्र लिखिये, वह आपको निश्चय ही मिल जावेगा।

यह सलाह अलीवर्दी को पसन्द आई। उन्होंने मानों मँझधारमें किनारा पाया। बड़े आनन्दसे सिराजकी ठोड़ी पकड़ कर कहा, "सिराज! आज तुम्हारे बुद्धिबल से मैं ऐसे दुष्कर कार्य्यमें सफल होता हुआ जान पड़ता हूँ। तुम्हारी बुद्धि और सलाहको धन्य है। अब मैंने समझ लिया कि बर्गियोंके हङ्गामेसे राज्य रक्षा पा जावेगा।

सिराज—नानाजी! आपने रुपये देकर अकेले बालाजी के साथ सन्धि करनेको कहा है, परन्तु भास्कर पण्डितके विषयमें क्या स्थिर किया है?

अलीवर्दी—बालाजी के साथ सन्धि हो जावे, फिर मैं भास्कर पण्डितसे नहीं डरता हूँ। सिराज! तुम निश्चय

जानना कि जिस दिन बालाजी बङ्गालसे अपने देशको जावेगा, उसके दूसरे ही दिन बर्गियोंका झङ्गामा शेष हो जावेगा।

सिराज—भास्कर पण्डित और बालाजी दोनों ही मित्र देशोंके हैं, फिर बालाजी के साथ सन्धि करने पर, भास्कर पण्डित उसमें किस प्रकार बाधक होगा? बालाजी तो सन्धि होने पर स्वदेशको चला जावेगा, किन्तु भास्कर पण्डितके साथ तो कोई बात नहीं हुई है वह अत्याचार उपद्रव करनेमें क्यों रुकेगा?

अलीवर्दीने कुछ हंसकर कहा, "सिराज! राजा महाराजा, बादशाह और सम्राट सब ही के लिये एक कौशल ही सबसे अधिक बल है। असंख्य सेना होने पर भी जो जय नहीं पाता, जिसके पास यथोचित रुपया नहीं है, वह कौशल ही से जय लाभ करता है। वत्स सिराज! इस समय मैं वह कौशल प्रकाश करना नहीं चाहता, क्या मालूम कि पथमें वह खुल जाय। कामनमें अब कोई काम करना हो, तो उसके होनेसे पहले उस कौशलको कहना न चाहिये। जिस उपायसे मैं बर्गियोंके झङ्गामेका दमन करके राज्य रक्षा करूंगा, वह शीघ्र ही तुमको मालूम हो जावेगा।"

सिराजने फिर और कोई बात नहीं पूछी और अपने नाना से बिदा होकर हीरा झीलको चला गया। अलीवर्दीने भी इश्तहार लिखकर राजा, महाराज और जमींदारोंके पास भिजवा दिये।

तेरहवाँ परिच्छेद।

सन्धि हो गई। बालाजी ने अलीवर्दी के राज्य में और किसी प्रकारका अत्याचार-उपद्रव अथवा युद्ध-विग्रह इत्यादि नहीं किया और बङ्गालसे सेना लेकर पूना जा पहुँचा।

एक करोड़ रुपया बालाजी ने लिया और सन्धि कर ली, यह बात नवाबने चारों ओर प्रकाशित कर दी। और यह भी घोषणा करदी, कि यदि भास्कर पण्डित भी इसी तरह रुपया लेकर सन्धि करने को सम्मत हो, तो उसके साथ भी सन्धि करने को नवाब प्रस्तुत हैं।

यह बात चारों ओर फैलगई। भास्कर पण्डित ने सुना कि नवाब अलीवर्दी रुपया देकर सन्धि करने को तय्यार है, तो वह सोचने लगा कि,—"इस समय क्या करना चाहिये? इसी तरह देशको लूटना चाहिये या रुपया लेकर अलीवर्दी से सन्धि कर लेनी चाहिये?"

भास्कर पण्डित बड़ा चिन्ताकुल हुआ। कौन सा पथ अवलम्बन करना अच्छा है, यह बहुत सोचने पर भी तय न कर सका। अन्तमें, उसने अपने विश्वासी प्रभुभक्त सहकारी

देववर को बुलाकर सम्राट् को ओर कहा, "देववर! अलीवर्दी ने जो घोषणा की है वह तो तुमको मालूम ही होगी?"

देव—हां, प्रभो! मालूम है।

भास्कर—देववर! हमको अब क्या करना उचित है? इसी तरह देशको लूटना अच्छा है, या रुपया लेकर बालाजी की तरह नवाब से सन्धि करना ठीक है? मैंने बहुत सोचनेपर भी कोई बात स्थिर नहीं कर पाई है, तुम इन दोनों में से कौनसी युक्ति पसन्द करते हो?

देववर ने हाथ जोड़कर कहा, "प्रभो! इस सम्बन्धमें जो आप मुझसे परामर्श लेते हैं, इसके लिये मैं अपने को सौभाग्यशाली समझता हूं, किन्तु मैं तो आपका एक लघु सेवक हूं, मैं आपको क्या राय दे सकता हूं? और विशेष करके सन्धिके प्रस्तावमें,—इस काममें मङ्गल है कि अमङ्गल है, लाभ है कि हानि है, इन बातोंको बारीक निगाह से देखकर स्थिर करना, मेरे से साधारण सिपाही के लिये बड़ा ही कठिन है। प्रभो! मैं सत्य कहता हूं, कि इस सम्बन्ध में अपना मत प्रदान करनेमें मुझको बहुत डर मालूम होता है।"

भास्कर—तुम्हारा इस प्रकार डरनेका क्या कारण है?

देव—क्या मालूम कि परिणाम में कोई खराबी हो जावे।

भास्कर पण्डित कुछ हंसकर बोला, 'देववर! इसके लिये तुम कुछ मत डरो। तुम साधारण सैनिक हो, पर तुम्हारी

बुद्धि, कौशल और युक्ति, असाधारण और बड़े कामकी होती है। तुम्हारी सलाह और विवेचना को अच्छी समझ कर ही, आज मैं तुमसे परामर्श लेता हूँ। तुम निर्भय होकर कहो कि इस समय हमको क्या करना चाहिये?"

देव—प्रभो! जब कि आप बारम्बार मुझसे पूछ रहे हैं, तब मेरी समझमें नवाब अलीवर्दी से सन्धि करने ही में मङ्गल है।

भास्कर—नवाब से सन्धि करने ही में हमारा मङ्गल है, यह तुमने क्या समझ कर कहा?

यह सुनते ही देववर डरगया और सूखे हुए मुँह से हाथ जोड़कर कहा, "प्रभो! यदि यह बात मैंने ठीक नहीं कही है, तो क्षमा कीजिये। मैं तो पहले ही विनय कर चुका हूँ, कि मैं आपका सामान्य दास हूँ। मेरी विवेचना और युक्ति कभी आपको पसन्द न आवेगी। केवल आपके हुक्म से अपनी क्षुद्र बुद्धि और विवेचना से जो कुछ मङ्गल-जनक ज्ञात हुआ वही कहा है। प्रभो! इसमें यदि अपराध हुआ हो, तो क्षमा कीजिये।" यह कह कर देववर भास्कर पण्डितके चरणों में गिरने को उद्यत होगया।

भास्कर पण्डित ने उसको रोककर हँसते हुए कहा, "देववर! क्या करते हो? शान्त होओ। तुम क्यों वृथा शङ्का करते हो? मैं तुम पर अप्रसन्न नहीं हुआ हूँ, वरन् मैं इतना सन्तुष्ट हुआ हूं जिसका पार नहीं है। तुम्हारी

सम्राट् को मैंने बड़े आदरसे ग्रहण किया है और अलीवर्दी के साथ सन्धि करने में ही हमारा मङ्गल है और सुभीता है, इसको मैंने बहुत अच्छी तरह समझ लिया है। परन्तु तुम से पूछने का कारण यही है, कि जिस बात को मैं किसी प्रकार स्थिर न कर सका, उसको तुमने एक क्षणमें किस प्रकार और किस तर्क बलसे स्थिर कर लिया। इसीके जानने को मैं इच्छा करता हूं।"

यह सुनकर देववर का भय कुछ दूर हुआ। घुटनों के बल बैठ कर और हाथ जोड़ कर बोला, "प्रभो! मैंने यह सोचा, कि बालाजी की सेना की संख्या हमारीसे अधिक होने पर भी, जब वह एक करोड़ रुपया लेकर स्वदेश को लौट गया, तो हमको अपनी छोटीसी सेना से नवाब से युद्ध करनेमें सुभीता नहीं। विशेषकर, उस समय हमलोगों के दो दल थे। एक दूसरे से सहायता पाता था। नवाब एक दलको दमन करने जाता, उसी समय दूसरा दल देश लूटने में लगजाता। किन्तु हमारा अब एक ही दल रहगया है, हमारे उद्देश्य-साधन में नवाब बाधा देकर युद्ध करेगा। उस समय हमारे स्वार्थ-साधन में कठिनता पड़ेगी। नवाब के साथ युद्ध, विवाद, सैन्य-संहार और रक्तपात न करके जिना प्रयास ही हमारा मतलब सिद्ध होता है, तो उसके साथ वृथा लड़ाई झगड़ा करना क्या आवश्यक है?

भास्कर पण्डित यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ। बड़े

आदर से देववरका हाथ पकड़कर अपने पास बैठा लिया और कहा, "देववर! तुम्हारी विलक्षण विचार-शक्ति के कारण मुझको तुमसे बड़ी प्रीति होगई है। तुमने जिस कारण से नवाब के साथ सन्धि करनेमें मेरी भलाई बतलाई है वह बहुत ही अच्छी बात है। अब मैं दुष्कर कार्य्य पड़ने पर तुमसे ही राय लिया करूँगा।"

देव—दासके प्रति आपका यथेष्ट स्नेह और अनुग्रह है, तभी दया करके आप ऐसी बात कहते हैं।

भास्कर—नहीं देववर! तुम यथार्थ मन्त्री हो! मैं अब की बार स्वदेश जाकर, राघोजी से तुम्हारी पदोन्नति की बाबत कहूँगा।

देव—यह आपकी कृपा है।

कुछ देर दोनों चुप चाप रहे। अन्तमें भास्कर पण्डित ने कहा, 'देखो देववर! जब कि अलीवर्दी के साथ सन्धि करना ही निश्चय हुआ है, तो कुछ अधिक रुपये की बाबत क्यों न कहें?"

देव—हाँ, मालूम होता है कि नवाब इस पर भी सम्मत होजावेगा, क्योंकि बङ्गाल की भूमि से सुवर्ण उत्पन्न होता है।

भास्कर—तुम सच कहते हो। इसी कारण, इसके ऊपर सब ही लोगों की चाह भरी निगाह रहा करती है। इसको तो कामधेनु की तरह दुहना ही चाहिये। देववर!

तुम यह घोषणा करदो कि यदि नवाब हमको डेढ़ करोड़ रुपया देवे, तो हम उसके साथ सन्धि करने पर राज़ी हैं।

"जो आज्ञा" कहकर देववर चल दिया और भास्कर पण्डित के आदेशके अनुसार चारों ओर घोषणा करदी कि, "यदि नवाब डेढ़ करोड़ रुपया देवे, तो हम उसके साथ सन्धि करने पर राजी हैं और हम रुपये पाते ही बङ्गाल छोड़कर बरार चले जावेंगे।"

नवाब अलीवर्दी खाँ।

NARSINGH PRESS CALCUTTA

चौदहवाँ परिच्छेद।

यह सम्वाद पाकर अलीवर्दी मन ही मन हँसे। वह भी डेढ़ करोड़ रुपये देकर भास्कर पण्डितसे सन्धि करनेपर राज़ी होगये। सन्धि का दिन भी स्थिर हो गया। किन्तु नवावने यह बात प्रकाशित करदी कि वह बीमार है और मरहटा-सेनापति भास्कर पण्डित सन्धिके दिन अधिक सेना न लावें। हकीमोंने उनको चुपचाप रहनेको कहा है। अधिक गड़बड़ होने से बीमारी बढ़जाने का डर है। और जिस तरह की बीमारी उनको है, ऐसी बीमारी की हालतमें विदेशमें रहना उनके लिये कभी अच्छा नहीं है। इसी कारण सन्धि करनें के लिये वह और भी व्यग्र हो रहे हैं। सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर होते ही, वह मुर्शिदाबाद को चले जावेंगे। जब तक सन्धि नहीं होती है और जब तक मरहट्टा-सेनापति भास्कर पण्डित उनके शिविरमें नहीं आता है तब तक तो विवश होकर उनको इसी हालतमें रहना होगा। एक तो वह बीमारी के कारण क्लेशमें हैं और तिसपर युद्ध-विग्रह की गड़बड़ के मारे एक दम अवसन्न हो गये हैं। सन्धि होते ही

सह राजधानी को चले जाना चाहते हैं। यदि मरहट्टा वीर दिविधा न करके केवल अपने शरीर-रक्षकों को साथ लेकर उनके शिविरमें आवें, तो उसके सौजन्य पर नवाब चिरवाधित होंगे।

इस बातपर मरहट्टा वीर भास्करने कोई आनाकानी नहीं की। सरल विश्वास पर निर्भर होकर, निर्दिष्ट दिन वह अलीवर्दी के शिविरमें आगया। साथमें थोड़ेसे शरीर-रक्षक सिपाही थे।

मानकरा के बड़े मैदान में नवाब अलीवर्दीका शिविर था। नवाबके शिविरके चारों ओर बड़े बड़े प्रधान मन्त्रियों और सेनापतियों के शिविर थे, उनके बाद नौकरों और सिपाहियों इत्यादि के थे। इन सब शिविरोंने नवाब के शिविरको इतना घेर रक्खा था, कि शत्रुपक्ष सहसा उनके ऊपर किसी तरह आक्रमण न कर सकता था।

भास्कर पण्डितने नवाब के शिविरके सामने पहुंचकर देखा, कि मुसल्मान सेना रणसाज से सज्जित है। नङ्गी तलवारें हाथोंमें लिये हुए सैनिक दलके दल खड़े हैं। किसी के मुखसे एक अक्षर तक नहीं निकलता है, सब चुपचाप मानों काठ पुतले से खड़े हैं।

भास्कर पण्डितको आता देखकर, नवाब की सेनाने बड़े अदब से तलवार झुकाकर सलाम किया। सेनापति नवाबकी सेनाको अभिवादन करतेको देखकर मन ही मन बड़ा सन्तुष्ट हुआ।

इसी समय नवाब के मन्त्री राजा जानकीराम ने आकर भास्कर पण्डित की अभ्यर्थना की और बड़े आदर से उसको नवाब-शिविर के भीतर ले गये।

भास्कर पण्डितने शिविरके भीतर जाकर जो कुछ देखा उससे उसके विस्मय की सीमा न रही। उसने देखा कि बड़े भारी पटमण्डप की दीवारों पर नाना प्रकार की कारीगरी की हुई है। पटमण्डपमें बहुत से कमरे हैं और सभी में साज-सज्जा की तुलना नहीं है। सोने चाँदी और रत्नमणियों के सामान चारों ओर चकाचौंध कर रहे हैं। तिसके ऊपर मखमल कमखाब इत्यादि उत्तम उत्तम महामूल्य कपड़ोंके बिछौने इत्र गुलाबसे महक रहे हैं। भास्कर पण्डित यह देखते देखते मुग्ध हो गया।

राजा जानकीराम जिस कक्षमें उसको लेगये, वह सभागृह था। और दिनों की अपेक्षा, आज सभागृह की बनावट कुछ अधिक थी। इस कारण मरहट्टा-सेनापति जिस ओर निगाह उठाता उसी ओर देखता रहजाता।

राजा जानकीरामने यथोचित आदरके साथ भास्कर पण्डित को एक चाँदीके सिंहासन पर बैठाया। तब भास्कर पण्डित बोला, "आज वही सन्धिका दिन है। आपकी घोषणाके अनुसार मैं उसी सन्धि-सूत्रमें आबद्ध होने के लिये आया हूँ।"

राजा जानकीरामने शिष्टाचार दिखलाकर बड़ी मीठी बोलीमें कहा, "आपके कहने के अनुसार हमलोग भी तय्यार

है। सन्धिके लिये जो रुपया देने की बात थी, वह यह देखिये, सब रक्खा हुआ है।"

भास्कर पण्डितने देखा, कि सचमुच ही उसके पास कई एक तश्तरियोंमें ढेर के ढेर रुपये रक्खे हुए हैं। यह देखकर उसके मनमें जो थोड़ा बहुत सन्देह था वह भी जाता रहा। उसने पुलकित होकर कहा, "आपके यहां सन्धि की तो मैं सब तय्यारी देखता हूं, किन्तु नवाब बहादुर क्यों नहीं आये हैं?"

जानकी—मैं तो पहले ही निवेदन कर चुका हूं कि नवाब बहादुर बीमार हैं।

भास्कर—क्या सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर करने के समय भी वह नहीं आवेंगे?

जानकी—उनके उपस्थित होने की आवश्यकता ही क्या है? हस्ताक्षर तो आप ही करेंगे।

भास्कर—हस्ताक्षर तो मैं ही करूंगा, यह ठीक है, परन्तु वह भी यदि इस समय होते तो काम बड़ी अच्छी तरह होता।

जानकी—मैंने यह बात नवाब बहादुरसे कही थी, किन्तु उन्होंने कहा, "मैं बीमार हूं और मैं वहां रहकर क्या करूंगा? बालाजीके साथ जिस नियम से सन्धि हुई है, उसी नियम से आपके साथ भी हो जावेगी।"

भास्कर—खैर, जो कुछ हो, किन्तु जब कि सदैव की

अवस्था छूटती है और जब कि मैं उनके शिविर में आया हूँ, तो क्या उनके साथ एक बार साक्षात् भी न होगा?

यह सुनकर राजा जानकीराम हँस कर बोले, "इसका उत्तर मैं नहीं दे सकता; परन्तु मैं एक बार फिर जाकर आपका अभिप्राय नवाब बहादुर से निवेदन करता हूं। देखूँ, वह क्या कहते हैं।"

भास्कर—मेरा नाम लेकर आप कहियेगा कि भास्कर पण्डितको एक बार आपसे मिलने की बड़ी अभिलाषा है।

जानकी—न मिलने का और कोई विशेष कारण नहीं है, केवल इसी बात का भय है कि बातचीत करने से बीमारी कुछ बढ़ न जावे।

भास्कर—नवाब बहादुर की शासन व्यवस्था बड़ी ही सुन्दर है। आपके पास इतने आदमी और इतनी सेना है, तो भी यह मालूम होता है कि यह स्थान मानों जनशून्य है।

जानकी—सब ही राजशक्ति के वशीभूत हैं।

भास्कर—मैं इस राजशक्ति ही की तो प्रशंसा करता हूँ। आप एक बार नवाब बहादुर से मेरे साथ मिलने की बात कहिये, मैं उनसे मिलकर और भी सुखी हूँगा।

राजा जानकीराम यह सुनकर चल दिये और कुछ देर बाद लौट कर कहा, "यद्यपि नवाब बहादुर आपसे मिलने को तय्यार है, किन्तु वह कोई बातचीत न कर सकेंगे, जो कुछ कहेंगे इशारे में ही कहेंगे।

इसी समय कई एक नौकर एक पलँग चांदीका उठा लाये जिसके ऊपर कमख़ाबके बिछौने पर नवाब लेटे हुए थे। नवाबने बड़े कष्ट से हाथ बढ़ाकर भास्कर पण्डित की अभ्यर्थना की।

भास्कर पण्डित नवाब की अभ्यर्थना और शिष्टाचार से बहुत सन्तुष्ट होकर बोला, "मैं आपसे मिलकर बड़ा प्रसन्न हुआ हूँ। परन्तु आप बीमार हैं, इसलिये कोई बातचीत नहीं हो सकती। न मालूम फिर कब आपसे मुलाकात होगी।"

इसके उत्तरमें नवाबने हाथ के इशारे से अपना ललाट दिखलाया। इसके बाद जानकीरामको इशारा किया, वह इशारा सिवाय उनके और कोई न समझा।

भास्कर—नवाब क्या कहते हैं?

जानकी—नवाब पूछते हैं कि सन्धिका क्या हुआ? वास्तव में उस इशारे का मतलब भास्कर पण्डित कुछ न समझा और जानकीराम की बात पर सरल विश्वास करके कहा, "नवाब बहादुर! जब कि आपके साथ में सन्धि करने पर राज़ी हूँ, और आपके शिविरमें आया हुआ हूँ तब और कुछ नहीं हो सकता है। केवल एक बार आपसे मिलने की इच्छा थी।"

नवाबने फिर जानकीराम की ओर इशारा किया। उसका मतलब जानकीराम समझ गये और कहा, "नवाब बहादुर सन्धिके लिये बड़े ही व्यग्र हो गये हैं और कहते हैं कि अब

किस बात की देर है? शुभ कार्य जितना ही शीघ्र हो उतना ही अच्छा है।"

भास्कर—यदि नवाब बहादुर सन्धिके लिये इतने व्यग्र हैं, तो सन्धि-पत्र लिखना चाहिये।

जानकी—पहले अपने कहे हुए रुपये ले लीजिये; क्योंकि अर्थ ही अनर्थ की जड़ है।

भास्कर पण्डितने हँसकर कहा, "आप जो कुछ कहते हैं, सो सब सत्य है। जहां अर्थ है वहीं अनर्थ भी है, परन्तु ऐसा नहीं मालुम होता कि अर्थके लिये नवाब बहादुरके साथ कोई अनर्थ होवे। क्योंकि आप लोगों की भद्रता और सौजन्यतासे मुझे आप लोगों से बड़ी प्रीति हो गई है।" यह कह कर ज्योंहीं वह रुपया लेने को झुका, त्योंहीं नवाबके इशारे से पास बैठे हुए मुस्तफाखां ने एक छलांग मारकर भास्कर पण्डितको पकड़ लिया। इस आकस्मिक घटनासे भास्कर पण्डितने इतना भी अवकाश न पाया कि कमरसे बँधी हुई तलवार भी खींच सके, केवल इतना कहा, "नवाब! क्या यही तुमारा धर्म है? क्या सरल विश्वासका यही परिणाम है?" परन्तु इतनी बात कहते कहते ऊपर से तलवारके आघातसे उसका शरीर दो खण्ड होगया, लोहूका सोता बहने लगा और वह अमूल्य सिंहासन रक्तांक्षित हो गया।

काम सिद्ध हो गया। नवाब की बीमारी भी जाती रही। वह शय्या पर से कूदकर उठ बैठे और सिंहकी तरह

गरज कर बोले, "शीघ्र मरहट्टा फौजको पकड़लो, कि जिससे एक भी मनुष्य भागने न पावे" यह कह कर, वह स्वयं मरहटों की सेनाके सामने दौड़े।

अभ्यर्थनाके बहाने अलवर्दीने पहले ही से अपनी सेना युद्धके लिये तैयार कर रक्खी थी। अलीवर्दी को झपटते देखकर उनकी सेना भी दौड़ पड़ी और सिपाहियों को चारों ओरसे घेर लिया।

मरहट्टा सेनाको कभी स्वप्नमें भी यह ध्यान नहीं था, कि मुसलमान ऐसे विश्वासघातक होते हैं—वे कोई भी बात अब नहीं कहते, तो फिर उनको अलीवर्दीका विश्वासघात करके भास्कर पण्डितके प्राण हरण का और पीछे आक्रमण करने का ख्याल कैसे आता; इसीलिये वह लोग निःशङ्क चित्तसे आमोद प्रमोद कर रहे थे। सहसा उनका आक्रमण देखकर और सेनापति भास्करकी नृशंस हत्या सुनकर सबका उत्साह जाता रहा। किसीने भी युद्ध न किया, क्योंकि उसके लिये वे तैयार ही न थे और न अवसर ही मिला। कुछ तो अपने प्राण लेकर भाग गये और कुछने लड़कर जान दी। नवाब की जय हुई। नवाबपक्षकी सेना की प्रसन्नता की सीमा न रही। अलीवर्दीने पाँच लाख रुपये अपने हाथ से अपनी सेना को और पाँच लाख रुपये भास्कर पण्डितके हत्याकारी मुस्तफा खाँ को पुरस्कारमें दिये।

अलीवर्दीने कौशल से, विश्वासघात से, भास्करकी हत्या

करके शत्रुको निर्मूल सा कर दिया, किन्तु वह सदैव के लिये कलङ्कित हो गया। आज भी मानकरा की भूमि अलीवर्दी के कलङ्क स्तम्भको अपने वक्षस्थल पर धारण करके 'अलीवर्दी विश्वासघातक है,'—यह बात स्वदेशी क्या विदेशी सब ही से कहती है।
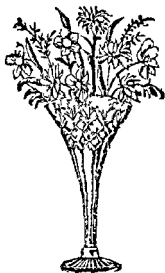
पन्द्रहवाँ परिच्छेद।

भास्कर पण्डित की हत्या की बात बहुत दिनों तक छिपी न रह सकी। ज्योंहीं यह हत्या-कहानी राघोजी के कानों में पड़ी, त्योंहीं विश्वासघातक मुसल्मानोंके ऊपर विजातीय घृणा और क्रोध उसको उत्पन्न हुआ और बदला लेने की उत्कट आशाके वशवर्त्ती होकर, मुसल्मानी राज्यका उखाड़ फेंकने की इच्छा करके बड़ी भारी सेना लेकर स्वयं बङ्गालको चल पड़ा।

राहमें राजाओंका और भी बहुतसे सर्दार मिल गये। मुस्तफ़ा खाँ भी उससे मिल गया। यद्यपि मुस्तफ़ा खाँने भास्कर पण्डित को मारा था किन्तु राघोजीने अपने मतलबके सिद्ध करनेके लिये इस बात की कोई चर्चा भी नहीं की और न उसका कोई प्रतिशोध ही लिया। मुस्तफ़ा खाँको प्रधान सहायक समझ कर अपना मित्र बना लिया और बड़े वेग से बङ्गाल की ओर बढ़ने लगा।

बड़ी भारी सेना लेकर राघोजी बङ्गाल में आ रहा है, यह समाचार पाकर नवाब बड़े भयभीत और चिन्तायुक्त हुए।

मुस्तफ़ा खाँ राघोजी से मिल गया है, यही अलीवर्दीके डरका प्रधान कारण हुआ। इस समय वह सोचने लगे कि राज-द्रोहके अपराधमें मुस्तफ़ा खाँ का निर्वासित कर देना ठीक न हुआ, यदि उसको मैं निकाल न देता तो आज वह राघोजी से न मिल जाता। राघोजी एक प्रबल शत्रु है, तिस पर घर का भेदी मुस्तफ़ा खाँ मिल गया, अब राज्यके सब गुप्त भेद वह जान सकता है। मुस्तफ़ा खाँ जिस कामके करने को उद्यत हुआ था, ऐसे विश्वासघातक को तो प्राणदण्ड देना अथवा क़ैद करना ही अच्छा होता, फिर राघोजी से भी इतना भयभीत और चिन्तायुक्त न होना पड़ता।"

राघोजी को आता सुनकर नवाब अलीवर्दी भी निश्चिन्त न रहे। उन्होंने अपने राज्यमें यह घोषणा कर दी कि, "राघोजी इस बार बड़ी भारी सेना लेकर बङ्गालको आरहा है। विश्वास-घातक, राजद्रोही मुस्तफ़ा खाँ भी उसके साथ है, उसका मन्त्रणादाता और पथ-प्रदर्शक बना है। यदि इस डाकू के हाथसे अपना मान, जाति-धर्म और धन-रत्नकी रक्षा करना चाहो तो सब लोग सावधान हो जाओ, किसी निरापद स्थानको चले जाओ, अथवा अपना अपना बल विक्रम प्रकाश करके डाकुओं को उचित दण्ड देनेके लिये तलवार हाथमें लेओ। जो अपने धन और प्राणों की रक्षा न कर सकता हो, उसी का मरहटा लोग सर्वनाश करेंगे। हमको राज्य-रक्षाके लिये राघोजी से सदैव ही लड़ाई करनी होगी। ऐसी अवस्था में न मालूम वह

लोग किसका सर्वनाश करें, यह भी नहीं जान सकते। अतएव सब लोग पहले ही से सावधान होजाओ, अपने अपने धन और प्राणों की रक्षाके लिये बलवृद्धि करो।"

नवाब की घोषणा बहुतों को शापरूपमें वर होगई। राजा महाराजा सुभीता पाकर सैन्यबल बढ़ाने लगे। चतुर अंगरेज लोगों को भी जिस बात को बहुत दिनों से आवश्य कता थी, उसको उन्होंने भी सुयोग पाकर पूरा कर लिया। क़ासिमबाज़ार में एक छोटा सा किला बनवा लिया और शत्रु के उपद्रवमें कलकत्ते की रक्षा करने के हेतु, उसके पूर्व और उत्तर की ओर, खाई खुदवाली और धीरे धीरे अपना सैन्यबल बढ़ाने लगे। (यही खाई अब मरहटा खाईके नाम से मशहूर है)।

परन्तु यह सब काम सिराजको कब अच्छे लगते, वह तो सदैव से अंगरेज़ों का शत्रु था। उसने अपने नानासे कहा, "नानाजी! आप यह सब क्या कर रहे हैं?"

सिराजुद्दौला नवाबके स्नेहकी पुतली और आदरका धन था। इसी स्नेहके कारण वह उसको बालक समझते थे। सुतरां, उसकी अधिकांश बातों पर ध्यान नहीं देते थे और हँसी करके उड़ा देते थे।

इस समय सिराजुद्दौला की बात सुनकर नवाबने सोचा, "बालक सिराज देखें अब की बार क्या नया झगड़ा लाया है।" प्रकाश में हँसकर कहा, "सिराज! तुम्हारे बाहर और हठकी

बातें सुनते सुनते मेरे कान भन्नाने लगे हैं। अब मैं तुम्हारी बात और नहीं सुनना चाहता, न मालूम तुम्हारी यह बालकों की सी बातें कब जावेंगी कि जिससे बात-बात में हमको फ़रियाद न सुननी पड़ें।"

"नानाजी! आपके सामने तो मैं आज भी बालक ही हूँ और सदैव ही रहूँगा। आप मुझको स्नेह की दृष्टिसे देखते हैं और प्राणोंसे भी अधिक चाहते हैं, इसी कारण मेरी हर एक बातको शिशुता कह कर टाल देते हैं। परन्तु नहीं मालूम, आप कब तक मुझे इसी भावसे देखेंगे और मेरी बातों की उपेक्षा न करके उनके ऊपर ध्यान देंगे। ध्यान देने पर आपको मालूम होगा कि मैं क्या कहता था।" यह बातें सिराज ने बड़े दुःखके साथ कहीं।

अलीवर्दीने बड़े आदर से सिराजके कपोलों को चूमकर कहा, "क्यों भाई! क्या मैं तुम्हारी सब ही बातों की उपेक्षा करता हूँ? यदि मैं तुम्हारी बातों को नहीं मानता हूँ, तो बीच बीच में परामर्श क्यों करता हूँ? सिराज! मैं तुमको अपने सामने बालक समझता हूँ। भाई सिराज! स्नेह के कारण ही मुझको ऐसा दिखलाई देता है।"

सिराज—नानाजी! आप मुझसे सलाह अवश्य लेते हैं; किन्तु वह सब अपने प्रयोजन पड़ने पर। मैं जिस समय जो कुछ कहता हूँ, क्या सब ही आप मान लेते हैं, वरन् बालक कह कर हँसीमें उड़ा देते हैं। एक बार भी ध्यान

देखकर आप नहीं देखते कि मैं क्या कर रहा हूँ। यदि मेरी सब बातों को ध्यान से सुनकर, समझ कर, आप यह कह दें कि यह बात तुम ठीक नहीं कहते हो और तब आप उसको न मानें तो मुझको कुछ भी दुख न हो। यही चित्तमें आता है कि कोई बात आपसे न कहूँ। परन्तु किसी काममें खराबी होती देख कर और भविष्यत् में उससे कुछ अनिष्ट होने के डरसे, बिना कहे भी नहीं रहा जाता। अब उपस्थित में, यही जो काम आपने किया है, यह क्या आप जैसे प्रवीण नवाबको करना उचित था? मालूम नहीं, क्या समझ कर आपने इस नीति मार्गके विरुद्ध काम की अनुमति देदी है।"

अलीवर्दी—सिराज! तुम क्या कहते हो? मैंने ऐसा कौन सा काम नीति विरुद्ध किया है?

सिराज—राजा, महाराजा और अँगरेज़ सौदागरों इत्यादि को अपना अपना बल बढ़ानेको क्षमता क्यों दी है?

अलीवर्दी—इसमें नीति विरुद्ध क्या काम हुआ है?

सिराज—मेरी जहां तक समझ पहुँचती है वहां तक मेरा ऐसा ख्याल है, कि इस क्षमताका देना बिल्कुल ही अनुचित हुआ है। राजा अपनी प्रजाको कभी भी ऐसा बल प्रदान नहीं करता है।

अलीवर्दी—क्यों सिराज! इसमें क्या दोष है?

सिराज—नानाजी! आप थोड़ा ध्यान देकर सोचें कि ऐसी अनुमति देनेसे अन्तमें कैसे अनिष्टको सम्भावना है।

अलीवर्दी—सिराज ! मेरी समझमें तो मैं इसमें कुछ भी दोष नहीं पाता हूँ; वरन् आधीन लोगोंको बल-वृद्धिकी क्षमता देनेसे, वर्गियोंके हङ्गामेसे उनके धन-प्राण, कुल-मानकी रक्षाका उपाय हो जायगा। इतनी क्षमता न देनेसे वह लोग डाकू मरहट्टोंके हाथोंसे किस तरह रक्षा पावेंगे ? विशेष करके, इस बार राघोजी जिस रूपसे विपुल सेना लेकर आ रहा है, ऐसी दशामें प्रजावर्ग को वलवृद्धि की क्षमता न देनेसे, राघोजी से रक्षा पाना बडा कठिन है। सिराज ! मैंने यही समझ कर राजाओं और प्रजाको बल बढ़ानेकी क्षमता दी है। इससे मङ्गलके सिवाय अमङ्गलकी तो मैं कोई बात नहीं देखता हूँ।

सिराज—नानाजी ! आप राजाओं और प्रजा-मण्डलीको बलवृद्धिकी क्षमता देकर मरहट्टोंके हाथसे रक्षा पानेकी इच्छा रखते हैं, किन्तु इस विष-वृक्षको रोपण करनेसे भविष्यत्‌में उससे कैसा भयङ्कर फल उत्पन्न होगा, इसको क्या आपने एक बार भी सोचा है ?

अलीवर्दी—सिराज ! मैंने खूब समझ कर प्रजावर्गको यह क्षमता दी है, परन्तु मेरी समझमें नहीं आता कि तुम क्यों इसको दोषपूर्ण समझते हो, और परिणाममें किस अनिष्टकी सम्भावना है ?

सिराज—नानाजी ! आप सरल दृष्टिसे देखते हैं, इससे आप अनुमान नहीं कर सकते कि इसका कैसा भीषण परिणाम हो सकता है। किन्तु यदि आप सूक्ष्म दृष्टिसे देखें, तो

आपकी समझमें आ जायगा कि राजा लोगों और प्रजाकी बल बुद्धिकी क्षमता देनेसे आपने कितना अन्याय किया है। ऐसे तीक्ष्णदर्शी होने पर भी, क्या आपकी समझमें यह बात नहीं आती है, कि यदि कोई लता जो वृक्ष पर चढ़ी हुई है उस वृक्षको चारों ओरसे ढक ले, तो अवसर पाने पर वही लता वृक्षके नाशका कारण होजाती है ?

अलीवर्दी—हां वत्स ! यह बात ठीक है, किन्तु मेरे आधीन राजा लोगों और प्रजामें इस बातको कुछ भी आशङ्का नहीं है।

यह बात सुनकर सिराजुद्दौला ने कुछ हंसकर कहा, "नानाजी ! आप ऐसा भरोसा न करें। आपका ऐसा सरल विश्वास ठीक नहीं है। क्या आपको मालूम नहीं है कि असावधानतासे अपने ही दांत अपनी जिह्वाको काट देते हैं ! आपके आधीन राजा लोग, क्षमताहीन और उपाय विहीन रहनेसे ही, आपको श्रद्धाभक्ति दिखला सकते हैं किन्तु क्षमता पाने पर यह भक्ति श्रद्धा उस भावको कदापि नहीं रह सकती है, यह आपको दृढ़ निश्चय कर लेना चाहिये।

अलीवर्दी—वत्स! जिन राजा महाराजा और जमीन्दारों की सहायतासे मैं बङ्गाल, बिहार और उड़ीसाके सिंहासन पर बैठा हूँ, उन्हीं के द्वारा मेरा अनिष्ट होगा यह सम्भव नहीं है।

सिराज—नानाजी ! आज न होवे, आपके रहते न होवे, किन्तु भविष्यत्‌में मुसल्मान शक्ति पददलित अवश्य होगी,

मुसल्मान-राज्य लोप हो जावेगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

सिराजकी इन बातोंको नवाब उपेक्षा अथवा अवहेलना न कर सके। वह समझ गये कि सिराज जो कुछ कह रहा है, वह सब सत्य है। अधीन लोगोंको बलवृद्धिकी क्षमता देनेसे वे लोग कभी न कभी उसको अवश्य प्रकाश करनेकी चेष्टा करेंगे।

यद्यपि नवाब ये सब बातें समझ गये थे, परन्तु इस समय प्रजाको यह क्षमता न देनेसे रावोजी के हाथसे राज्यकी किस तरह रक्षा होगी, यह सोचकर उन्होंने कहा, "सिराज! यदि बलवृद्धिकी क्षमता राजाओं और प्रजाको न दूँ, तो बर्गियों से राज्यकी रक्षा किस प्रकार होगी?"

सिराज—यह बलवृद्धिकी क्षमता उन लोगोंको न देकर आप स्वयं ही कर सकते हैं।

अलीवर्दी बड़े दुःखित स्वरसे बोले, "सिराज! तुम जानते हो कि कोषमें रुपया नहीं है। ऐसी अवस्थामें, मैं किस प्रकार बलवृद्धि कर सकता हूँ?"

सिराज—राज्यकी रक्षा रावोजी से करनेके लिये आपको प्रजाके ऊपर कर स्थापन करना चाहिये था। उनको बलवृद्धि की क्षमता न देनी चाहिये थी, विशेषतः अँगरेज़ लोगोंको तो कदापि यह शक्ति न देनी चाहिये। क्योंकि एक तो वह लोग बिना कर दिये ही व्यापार कर रहे हैं; उस पर तुर्रा यह कि

दिल्लीश्वरके अनुमति पत्रकी दुहाई देकर और लोगोंसे महसूल वसूल करते हैं। इन लोगोंसे मुझको बड़ी ही घृणा है ।

अलीवर्दी—सिराज! तुम्हारे कहनेसे पहले ही मेरे मनमें यह बात उत्पन्न हो चुकी है, किन्तु इसका उपाय ही क्या है ?

सिराज—ऐसी चेष्टा करनी चाहिये कि यह लोग कर देने लग जावें ।

अलीवर्दी—सिराज! ईस्ट इण्डियन कम्पनी तो कर न देगी। उसने दिल्लीश्वर शाहजहां से, बिना कर दिये व्यापार करनेकी, अनुमति ले ली है। हमको भी उसी पर चलना चाहिये ।

सिराज—तो क्या अंगरेज़ व्यापारी सदैव ही बिना कर दिये बङ्गाल देशमें वाणिज्य करेंगे—खुद भी न देंगे और अपने जातिवालोंसे भी आप ही ले लेंगे ? यह बातें देख सुन कर भी यदि इनका कोई बन्दोबस्त न होगा, तो हम लोगोंके राज्य करनेका प्रयोजन ही क्या है ? और इस तरह ढीले रहने से हमको राजा समझकर हमसे कोई डरेगा भी नहीं ।

अलीवर्दी—सिराज! इस समय अंगरेज़ व्यापारियोंसे लड़ने झगड़नेका समय नहीं है। सबसे पहले राघोजी को परास्त करना आवश्यक है। यह न करके, यदि अंगरेज़ोंसे कलह की जावेगी तो यह लोग अवश्य ही राघोजी का साथ देंगे। इस अवस्थामें, कठिनाई और भी बढ़ जावेगी। वत्स! मेरी बात सुनो और अब शान्त हो जाओ। पहले राघोजी को

परास्त करो, फिर अँगरेज़ोंके साथ झगड़ा किया जायगा। अग्निके एक ही समयमें चारों ओर फैल जानेसे उसका बुझाना बड़ा कठिन होता है।

नानाकी ये बातें सुनकर, सिराज कुछ खिन्न हो गया और उसने कुछ न कहा।
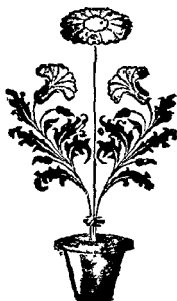
सोलहवाँ परिच्छेद।

अदृष्ट फिर गया। भाग्यदेवी ने मीरजाफ़र पर अपनी कृपा दृष्टि की। मीरजाफ़र ने सामान्य पदवीसे बड़ा सम्मान और गौरवका पद पाया। उसको 'सिपहसालार आज़म' अर्थात् प्रधान सेनापतिको पदवी मिली। नवाब अलीवर्दीकी कुल सेना उसके अधिकारमें हो गई। समय फिर गया। देखते मान हो गया। राजा, महाराजा, ज़मीन्दार और उमराव इत्यादि सभी लोग उसको 'सेनापति' कहकर पुकारने लगे।

किस कारणसे और किस घटनासे किसकी उन्नति अथवा अवनति होती है यह कौन कह सकता है? मरहट्टोंका आक्रमण ही मीरजाफ़र की उन्नतिका मूल हुआ। नवाब अलीवर्दी शरीरके असमर्थ होनेके कारण मरहट्टोंको दमन करनेके लिये न जा सके। अपने विश्वासी, नितान्त अनुगत और विशेष कर [illegible], मीरजाफ़र को सेनापति करके बर्गियोंके उत्पातोंको दमन करनेके लिये भेज दिया।

मीरजाफ़र सेनापति होकर, दस हज़ार सेना साथ लेकर,

बड़े समारोहसे मरहट्ठोंके दमन करनेके लिये चल दिया। अलीवर्दी को विश्वास था कि मीरजाफ़र मरहट्ठोंको दमन कर लेगा; किन्तु उनकी सब आशा, उनका सब भरोसा व्यर्थ हुआ। मीरजाफ़रमें ऊपरी ठाटबाट बहुत थे। मरहट्ठोंका सामना करना तो दूर रहा, वह मेदिनीपुर पहुँचते ही विलास-तरङ्गमें डूब गया, वार-वनिताओंको लेकर रसरङ्गमें मस्त हो गया। दिन-रात नाचगाने और आमोद-प्रमोदमें कटने लगे। मरहट्ठों का दमन तो दूर रहा, आमोद-प्रमोद ने उसका स्थान ग्रहण कर लिया।

यह बात अलीवर्दी से भी छिपी न रही। नहनोईकी इस कार्रवाईसे वह बहुत अप्रसन्न हुए। उन्होंने आशा की थी, कि मीरजाफ़र इस नये उच्च पदको पाकर अपना बाहुबल दिखलावेगा, मरहट्ठोंके वीर रावोजी को मार भगावेगा और वीरों की नामवरी लूटेगा; किन्तु उनकी यह सब आशा दुराशामें बदल गई, वह बड़ी विपत्तिमें पड़ गये और सोचने लगे कि अब किसको सेनापतिके पद पर नियुक्त करके मरहट्ठोंके दमन को भेजें।

किन्तु बहुत देर सोचना न पड़ा, उनको अताउल्लाकी याद आ गई। अताउल्ला रणकुशल, साहसी और योग्य था। वही सेनापतिके पद पर नियुक्त हुआ।

वह बहुत दिनोंसे सुयोग ढूँढ़ रहा था। आज अकस्मात् यह अवसर पाते देखकर बोला, "नवाब बहादुर! जब हुजूर

मेरे ऊपर दमन करनेका भार रख रहे हैं, तो मैं इस कार्य्यको प्राण देकर भी पूरा करनेका प्रयत्न करूँगा।"

अलीवर्दी—तो देर न करके, इसी समय बारह हज़ार सेना के साथ राघोजी से लड़नेको जाओ।

अताउल्ला—'जो आज्ञा' कहकर चल दिया।

एक मसल है,—"जो लङ्काको जावे वही राक्षस होवे।' यही मसल यहाँ भी चरितार्थ हुई।

अताउल्ला बारह हज़ार सेना लेकर मेदिनीपुर पहुंचा। वहाँ अपना शिविर स्थापन करके, वह अपनी दुरभिसन्धिके साधनके उपाय सोचने लगा और मरहट्टोंको दमन करना भूल गया।

धूर्त्त अताउल्लाने मन ही मन स्थिर किया, कि जब तक मीरजाफ़र को अपने वश न करूँगा, तब तक मतलब सिद्ध न होगा, क्योंकि वही प्रधान सेनापति है। सब फ़ौज उसकी आज्ञाके आधीन है। अतएव उद्देश्य साधनके लिये, पहले उसको ही वश करना चाहिये।

धूर्त्तको छल कपट भी बहुतसे याद होते हैं। अताउल्लाने एक कोमल जाल फैलाया। नवाब अलीवर्दी के नामका एक जाली पत्र बनाकर, उस पत्रका लिये हुए मीरजाफ़रके शिविर में पहुंचा और बोला, 'सेनापति! आपको दिखलाई नहीं देता है कि आपका सर्वनाश उपस्थित है?"

मीरजाफ़रने बड़े भयसे पूछा, 'क्यों अताउल्ला! क्या हुआ?'

अताउल्लाने बड़े दुःखित भावसे कहा, "मैं उसकी बाबत क्या कहूँ? नवाब बहादुर आपके सर्व्वनाश करने पर उद्यत हो गये हैं।"

यद्यपि नवाब बहादुरके अनुग्रहसे मीरजाफ़र सेनापति हो गया था, किन्तु सेनापतिके योग्य वीरत्व अथवा रणकुशलता उसमें कुछ भी न थी। वह केवल नवाबका भगिनीपति होने ही से सेनानायक हो गया था।

अताउल्ला की बात सुनकर वह बड़ा भयभीत हो गया और कहा, "क्यों अताउल्ला! नवाब बहादुर क्या मेरे ऊपर अप्रसन्न हैं?"

अता—आप नवाबके किस कामके लिये आये थे, क्या आपको उसकी याद है? आप तो यहाँ आकर आमोद-प्रमोद में लिप्त हो गये हो और नगर बेखटके लुट रहा है। नवाबने क्या आपको इसीलिये भेजा था? राजाज्ञाकी अवहेलना की है, इसलिये नवाब आपको राजदण्डसे दण्डित करनेके लिये उद्यत हुए हैं। आप देखते हैं कि आपका सर्व्वनाश उपस्थित है।

मीरजाफ़रका मुख सूख गया। कण्ठ रुँध गया। वह एकटक अताउल्लाके मुखकी ओर देखने लगा।

अताउल्लाने इस अवसर पर भय दिखाकर अपनी अर्थ-सिद्धिके लिये कहा, "नवाब बहादुर आपके इस कामसे बड़े ही रुष्ट हो गये हैं और आपको क़ैद करनेके लिये मुझे भेजा

है। यह देखो नवाबका क्या आदेशपत्र है," यह कहकर अपने अंगरखेसे एक पत्र निकालकर मीरजाफ़रके हाथमें दे दिया।

पत्र पढ़कर मीरजाफ़रका माथा घूम गया, छाती धड़कने लगी, जिह्वा सूख गई, ओठ पीले पड़ गये और कुछ न बोल सका। चुपचाप एक दृष्टिसे उस पत्रकी ओर देखने लगा।

धूर्त अताउल्लाने कहा, 'सेनापति! नवाबका आदेश-पत्र आपने देख लिया, अब आप क्या करेंगे? सहज ही में बन्दी हो जायेंगे या युद्ध करेंगे?"

मीरजाफ़रने बड़े कष्टसे उत्तर दिया, "अताउल्ला क्या इसका कोई उपाय नहीं है?"

अता—सेनापति! आप किस उपायकी बात कहते हैं?

मीर—जिससे मैं रक्षा पाऊं, बन्दी न होऊं, क्या ऐसा आप कोई उपाय नहीं कर सकते हो?

चतुर अताउल्ला चौंक उठा और बोला, "सेनापति! यह आप क्या कह रहे हैं? नवाबका आदेश उल्लङ्घन करनेसे अन्त में मेरे लिये भी वही दण्ड है।"

डरपोक मीरजाफ़र सत्य असत्यके निर्णय करनेका क्लेश न उठाकर, अताउल्लाका कपट कुछ भी न समझ सका। भयके मारे उसकी ज्ञानबुद्धि लोप हो गई। अताउल्लाकी बातों पर उसने सत्य ही विश्वास कर लिया और छुटकारा पानेकी आशासे अताउल्लाका हाथ पकड़ कर सजल नेत्रोंसे कहने लगा, "अताउल्ला! इस समय मेरी रक्षा करो। इस विपत्तिसे

में छुटकारा पाऊँ, तो सदैव तुम्हारा, ऋणी रहूँगा और तुम्हारा यह उपकार कभी न भूलूँगा। अबकी बार मुझको वहाँ न ले चलो, यह कहकर सेनापति बार बार कातरता दिखलाने लगा। उसके आँसुओंसे अताउल्लाके हाथ भीग गये। वह मीरजाफ़रकी व्याकुलता देखकर मन ही मन हँसने लगा।

धूर्त्त अताउल्लाने देखा कि दवा असर कर गई और भीरू मीरजाफ़र वशमें आ गया है। उसने देखा कि कार्य्य-सिद्धिका उपाय ठीक हो गया है—बोला, "देखो सेनापति! बचानेमें मुझको नवाबके साथ विवाद करना पड़ेगा। आपके लिये नवाबके साथ अनर्थक झगडा करनेसे मेरा क्या लाभ है? किन्तु आपकी कातरता देखकर मैं आपका यह काम करना चाहता हूँ, पर जैसा मैं कहूँ यदि उसी तरह पर आप चलें तो मै,आपकी रक्षा कर सकता हूँ।"

मीर—अताउल्ला, मैं पैग़म्बरकी सौगन्ध खाकर कहता हूँ, कि यदि तुम मुझको इस आफ़तसे बचा दो, तो जो कुछ तुम. कहोगे वही मैं करूँगा।

अता—देखो सेनापति! आपकी रक्षा करनेमें निश्चय ही मुझको नवाबके साथ झगड़ा करना पड़ेगा। परन्तु कुछ भी हो, मै उससे नहीं डरता हूँ। यदि मेरे द्वारा आपकी जान बच जाय, तो मैं उसके करनेको प्रस्तुत हूँ। किन्तु एक बात है, कि मैं मुर्शिदाबादके सिंहासन पर बैठूँगा और आप पटनाके नवाब होंगे। यदि इस प्रस्ताव पर आप सम्मत हो जावें,

तो मैं आपकी रक्षा कर सकता हूँ, नहीं तो आपके वास्ते नवाब के साथ अनर्थक विवाद करनेसे अपनी भविष्यत्‌की उन्नतिकी आशामें बाधा नहीं डालना चाहता हूँ।

मीरजाफर अभी तक अमाउल्ला की दुरभिसन्धिके विषय में कुछ भी न समझ सका। वह घटना को नवाबी पानेके आनन्दसे विह्वल हो गया और कहा "मैं तुम्हारे इस प्रस्तावमें पूर्णरूप से सहमत हूं, किन्तु अलीवर्दीको सिंहासनच्युत किस तरह करोगे?"

अमाउल्लाने हँस कर कहा "हम दोनों की शक्ति मिल जाने पर अलीवर्दीको सिंहासन से उतारने में कितनी देर लगेगी? सेना तो इस समय हम लोगोंके ही आधीन है। हम लोग जो कुछ हुक्म देंगे वही करेगी। ऐसा सुयोग फिर कभी न मिलेगा। हम लोग यदि अस्त्र धारण कर लें, तो निश्चय ही अलीवर्दी पराजित होंगे। नवाब जिस तरह एक सामान्य कारण के लिये आपको कैद करना चाहते हैं, उनको भी उसी तरह सपरिवार बन्दी करेंगे।"

मीरजाफर लालचमें आकर अन्धा हो गया और अलीवर्दीको सिंहासनच्युत करनेके लिये षड़यन्त्र रचने लगा।

सत्रहवाँ परिच्छेद।

अलीवर्दी की विश्राम की आशा दुराशा होगई। शरद ऋतुका निर्मल आकाश प्रलयके बादलों से घिर गया। गुप्तचरने आकर सम्वाद दिया कि, "नवाब बहादुर! सर्वनाश आ उपस्थित हुआ! अताउल्ला मीरजाफ़रको कौशलसे अपने हाथमें करके राजद्रोही हो गया है! राज-सिंहासन लेने के लिये षड़यन्त्र रच रहा है! मरहट्टोंको दमन करने की तो बात गई, पटनाके सिंहासन पर मीरजाफ़र और मुरशिदाबादकी मसनद पर अताउल्ला बैठेगा, यह बात स्थिर हुई है।"

यह सुनकर नवाब काँप उठे। अपने कुटुम्बियोंकी यह विश्वासघातकता सुनकर उनकी सौम्य शान्त मूर्त्ति भयङ्कर हो गई, आँखोंमे मानो आगकी चिनगारियाँ निकलने लगीं, दाँत किटकिटा कर कहने लगे, "क्या अताउल्लाको इतना साहस हो गया कि मेरे ही अन्नसे पलकर मेरे हो सिंहासन की ओर दृष्टि करे? कैसा धर्म्म विरुद्ध कार्य्य है!" और दूतसे कहा, "अच्छा दूत! तुमने किस प्रकार उसकी यह चाल जान पाई?"

दूतने हाथ जोड़कर कहा, "नवाब बहादुर! लोग जो चोरी किया करते हैं, उसीका पता लगाना हम लोगोंका काम है, इसीलिये हमारा नाम गुप्तचर है। किन्तु प्रभो! चताउल्ला तो प्रकाशरूप में ही विद्रोही हुआ है।"

अली०—और मीरजाफ़र ?

दूत—मीरजाफ़र विद्रोही नहीं है, यह मैं नहीं कह सकता हूँ, किन्तु दोनों की आशायें अलग अलग है।

दूतकी बातें सुनकर नवाबको बड़ा आश्चर्य हुआ और पूछा, "किसका क्या उद्देश्य है और किसकी क्या आशा है?"

दूत—अताउल्लाका लक्ष्य यह है कि मुरशिदाबादकी मसनद पर बैठकर स्वाधीन हो जावे और मीरजाफ़रकी अभिलाषा है कि प्राण रक्षा पाकर पटना की नवाबी ले।

यह सुनकर अलीवर्दीका कौतूहल और भी बढ़ा। उन्होंने आग्रह के साथ पूछा, "दूत! मीरजाफ़रको मारनेवाला अब कौन है?"

दूत—आप ही ने तो मीरजाफ़रके प्राण लेनेका आदेश दिया है।

अली०—किस लिये ?

दूत—राजकार्यमें अवहेलना करनेके कारण से।

नवाबने दूतसे फिर कोई प्रश्न नहीं किया। वह अताउल्ला का कौशल और चतुरता सब समझ गये। अताउल्लाकी विश्वासघातकता व राजद्रोहके कारण उसका मस्तक मारो

जलने लगा। उन्होंने तत्क्षण सिराजुद्दौलाको बुला भेजा। उसके आ जाने पर अलीवर्दीने कहा, "सिराज! अताउल्लाके राजद्रोहका हाल तुमने सुना? वह मुरशिदाबादकी मसनद पर बैठना चाहता है और स्वाधीन होना चाहता है।"

सिराज—यदि अताउल्ला राजद्रोही हो गया है, तो अभी तक कैद क्यों नहीं किया गया?

अली०—सिराज! अताउल्लाको इस समय कैद करना सहज नहीं है, मेरी बारह हजार सेना इस समय उसके आधीन है।

सिराजुद्दौलाने बड़े विस्मयसे कहा, "अताउल्लाको इतनी सेना कहाँ मिल गई?"

अलीवर्दी ने विमर्षभावसे कहा, "सिराज! यह सब सेना हमारी ही है, किन्तु घटना चक्रसे वह इस समय अताउल्लाके आधीन है।"

सिराजुद्दौला और अधिक विस्मयसे पूछने लगा, "इतनी सेना उसके हाथमें किस तरह पहुँची?"

अली०—वत्स! मीरजाफ़रको सेनापति करके मैंने मरहट्टोंके दमन करनेको भेजा था, परन्तु वह मेदनीपुर पहुँच कर विलासमें मग्न हो गया। मरहट्टोंका दमन करना तो दूर रहा, वह आमोद प्रमोदमें मत्त हो गया। अन्तमें मैंने कोई और उपाय न पाकर, अताउल्लाको सेनापति करके भेजा। परन्तु यह किसे ज्ञात था, कि यह ऐसा विश्वासघातक है।

वह दुष्ट मेदनापुर पहुँचा और कापुरुष मीरजाफ़रको झूठा भय दिखा कर अपने वश कर लिया। अब यह स्थिर हुआ है, कि मीरजाफ़रको पटनाकी नवाबी देकर, आप मुर्शिदाबादके सिंहासन पर बैठे। इस समय वे दोनों विद्रोही हैं और लड़ाईकी तय्यारी कर रहे हैं।

इतना देर बाद सिराजुद्दौलाकी समझमें सब घटना आ गई।

वह बोला, "नानाजी! इस अवस्थामें और देर करना उचित नहीं है। विद्रोही लोग आगे न बढ़ पावें, इसके पहले ही हमें उनको घेर लेना चाहिये।"

अली—इसी परामर्शके लिये मैंने तुमको बुलाया है। मैं अब मेदिनापुर जाता हूँ, तुम राजधानीमें रहकर राज्यकी रक्षा करो।

सिराज—नहीं नानाजी! मैं आपके साथ चलूँगा। क्या आपकी समझमें, मेरे आपके साथ रहनेसे, आपकी कोई सहायता न होगी?

सिराजुद्दौला का आग्रह देख कर नवाबने और कुछ नहीं कहा। सिराज अपने नानाके साथ हो लिया। उसी दिन बीस हज़ार फ़ौज लेकर दोनों ही मेदिनीपुर की ओर रवाना हुए।

इधर अताउल्ला ने यद्यपि मुर्शिदाबाद के सिंहासनको अपना लक्ष्य बना लिया था, किन्तु अब सुना कि नवाब

अलीवर्दी और सिराजुद्दौला बीस हज़ार फौज लेकर मेदिनी-पुरको आरहे हैं, तो वह और मीरजाफ़र दोनों ही ऐसे भयभीत हुए, कि जिसका पार नहीं। सिंहासनका अधिकार करना तो भूल गये, इसका उपाय ढूँढ़ने लगे कि नवाब के राजदण्डसे और सिराजुद्दौलाके कोपानलसे किस प्रकार रक्षा पावें।

नवाब ने समझा कि अताउल्ला और मीरजाफ़रके दमन करने में न जाने कितना युद्ध करना होगा, कितना रक्त बहाना होगा, कितनी सेना क्षय होगी; किन्तु युद्ध न हुआ, एक बन्दूक भी न चलानी पड़ी, गोला गोली और बारूद कुछ भी नष्ट न हुआ। नवाब के मेदिनीपुर पहुँचते पहुँचते, दोनों सेनापतियों ने आकर आत्मसमर्पण कर दिया और क्षमा-प्रार्थी हुए।

नवाब ने जब देखा कि मीरजाफ़र और अताउल्ला ने बिना युद्ध किये ही आत्मसमर्पण कर दिया है, तो बड़े सन्तुष्ट हुए और दोनों ही को क्षमा कर दिया; किन्तु सिराजुद्दौला इस बातसे बहुत अप्रसन्न हुआ, राजद्रोही विश्वासघातकको क्षमा करना उसको अच्छा नहीं लगा। वह उन दोनों को बन्दी करने के लिये बारम्बार हठ करने लगा। सो भी यहाँ तक, कि नवाब की भर्त्सना तक करने लगा।

सिराजुद्दौला के हठ और भर्त्सनायुक्त वाक्योंसे परिणाम-

दर्गों द्वद्ध नवाब अलीवर्दी के चित्तमें कोई चञ्चलता न हुई, वरन् सिराजुद्दौला को एकान्तमें लेजाकर समझाने लगे कि, "देखो सिराज! केवल क्रोधके वशीभूत होनेसे काम नहीं चलता है। क्षमा भी मनुष्यका प्रधान गुण है। जिसके हृदयमें क्षमा नहीं है, जो दया-माया से शून्य है, उसको मानों पूरा मनुष्यत्व प्राप्त नहीं हुआ है। तुम इस समय यौवनके आवेग से चञ्चल हो रहे हो, इसीसे क्षमाकी महिमा अच्छी तरह नहीं जानते हो। मैं भी एक समय तुम्हारी ही तरह था, किन्तु इस समय मैं अनेक विषयों में तुम्हारी अपेक्षा अधिक समझता हूं। तुम जब मेरी वयस को पहुँचोगे, तो तुमको ज्ञात होगा कि दण्डनीति सब ही समयोंमें अच्छी नहीं होती है। विशेष करके मीरजाफर और अताउल्ला ने विना युद्ध किये हुए, विना रक्त बहाये ही, आत्मसमर्पण किया है। इस अवस्थामें किसी प्रकार का दण्ड देने से, हम लोगों को साधारण लोगोंका विरागभाजन बनना पड़ेगा; और हमारे शत्रु मरहट्टे लोग समझ लेंगे कि मुसल्मानोंमें आपसमें झगड़ा फैल रहा है। इससे उन लोगोंका बल विक्रम और साहस बढ़ जायगा। इसके अतिरिक्त एक और बात है, कि पहिले बाहरके शत्रुको दमन करना चाहिये, तिस पीछे घरके शत्रुको शास्ति देनी चाहिये। इस समय उसी विषय पर अधिक लक्ष्य रखना चाहिये, कि जिससे हमलोग सहसा बलहीन न हो जायें।

इतना सुन चुकनेके पीछे सिराजुद्दौलाने कुछ न कहा। मनकी आग मन में ही रही

दूसरे दिन नवाब अपनी सेना लेकर राघोजी की ओर चले। मरहट्टोंने कभी भी सामने होकर युद्ध नहीं किया था, अब भी नहीं किया। स्वयं अलीवर्दी को ससैन्य आते हुए देखकर; वह लोग भाग गये। युद्धके लिये इतना आयोजन किया गया, परन्तु युद्ध नहीं हुआ।

अठारहवाँ परिच्छेद ।

ऐसा ज्ञात होता है, कि विश्राम और शान्तिसुख राजाके भाग्यमें नहीं होता है। राजा युद्ध, विग्रह, विद्रोह, विप्लव के मारे सदैव ही चिन्तित रहता है। दारुण चिन्ता से दिन-रात चिन्ताकुल रहता है। शयन भोजन किसी समय भी सुव्यवस्थित नहीं होता है। सर्वदा गिद्ध की सी दृष्टि चारों ओर रखनी पड़ती है। कौन कहां षड़यन्त्र रच रहा है; कौन विद्रोही हो रहा है, कौन किस स्थानपर राज्यके अनिष्ट की चेष्टा कर रहा है।

राजा की अपेक्षा प्रजा सुखी है। प्रजा की शत्रु-संख्या कम होती है। राजाके शत्रु स्थान-स्थान पर उपस्थित हैं। प्रजा कर चुका कर निश्चिन्त, चित्तसे अपनी अपनी कुटीमें रहती है, साग भाजी खाकर स्वच्छन्द विश्राम-सुखसे रहती है, तृणशय्या पर सुखसे सोती है। परन्तु जो राजा है उसको यह प्रजाका सुख कभी एक बार मिलता है कि नहीं, इसमें भी सन्देह है; इसीसे राजा की अपेक्षा प्रजा अधिक सुखी है।

कुछ ही दिन कटे होंगे, कि समाचार आया कि अफ़ग़ानोंने

पटना-प्रदेश पर अधिकार कर लिया है। ज़ैनुद्दीन मारा गया है और हाजी अहमद कारागारमें अनाहारके कष्टसे प्राण त्याग रहा है। अमीना बेगम अपने पुत्र और कन्याके साथ अफ़ग़ानों की बन्दी हो रही है।

इस मर्मभेदी सम्बादके प्रथम आघात को नवाब अलीवर्दी सह न सके, वह मूर्च्छित होकर गिरपड़े। चारों ओर हाहाकार मचगया। लोग इधर उधर दौड़-धूप करने लगे। कोई पङ्खा झलने लगा, कोई आँखों और मुख पर जल छिड़कने लगा। हकीम आया, नाड़ी देख कर कहने लगा, "भय नहीं है, तो भी चैतन्यता होने में देर लगेगी।"

हकीमके आश्वासन-वाक्योंसे सबको आशा होगई। भय जाता रहा। किन्तु सबही विपन्न मुखसे और उत्सुक चित्तसे राह देखने लगे, कि देखें कब तक नवाब को चैतन्यता होती है। इस समय राजप्रासाद मानों जनशून्य था, किसीके मुखसे कोई बात नहीं निकलती थी।

बड़ी देर बाद नवाब को चैतन्य लाभ हुआ। चैतन्य होने पर नवाब भाई और जँवाईके शोक से अधीर हो उठे। कन्या और दौहित्र-दौहित्री की दुर्गतिका स्मरण करके, स्त्रियोंकी तरह उच्च स्वर से रो रो कर कहने लगे, "अ भाई! हे वत्स ज़ैनुद्दीन! तुम कहाँ गये! तुमने किस तरह अफ़ग़ानोंके हाथसे जीवन विसर्जन किया! हे वत्स अमीना, तुम्हारे भाग्य में क्या यही बदा था! तुम बङ्गाल, बिहार और उड़ीसाके

नवाब अलीवर्दी की कन्या होने पर भी अफ़ग़ान-शिविरमें बन्दी होकर असेम दुःख भोग रही हो ! धिक्कार है मेरे राजत्व को ! और धिक्कार है मेरे वीरत्वको ! धिक्कार है मेरे बाहुबल को ! धिक्कार है मेरे जीवित रहने को ! मैं बड़ा ही भीरु कापुरुष हूँ, इसी कारण हीनवीर्य्य की तरह चुपचाप बैठा हूँ।" इसी प्रकार नवाब अलीवर्दी शोकरूपी बिच्छूके काटनेसे तड़पने लगे, और सिर पर कराघात करके बारम्बार रोने लगे। उनकी दोनों आँखोंसे अश्रुधारायें बह चलीं।

नवाब को अनेकोंने अनेक प्रकारसे समझाया, परन्तु किसीके समझाने से कुछ लाभ न हुआ। केवल घोर आर्त्तनाद से आकाश गूँजने लगा, राज्यकार्य्य सब बन्द होगया।

बुद्धिमती नवाब पत्नी ने देखा कि उपदेश से अथवा प्रबोध वाक्योंसे नवाबका शोक कम न होगा, वरन् और भी बढ़ेगा,—यह सोच कर उन्होंने एक नई युक्ति नवाबके सान्त्वनाकी निकाली।

एक दिन, सन्ध्याके उपरान्त, नीले आकाशमें पक्षमीका क्षीण चन्द्रमा चमक रहा था। उसकी क्षीण रजत आभायें भूमि पर पड़ रही थीं।

नवाब अलीवर्दी अब दरबारमें नहीं जाते हैं, राज्यका कोई काम नहीं देखते हैं, किसीसे अच्छी तरह बातें भी नहीं करते हैं. केवल अन्तःपुरमें शोकमग्न बैठे रहते हैं।

नवाब शयनगृहमें पलंग पर बैठे हैं, पास ही चिन्ताकुल

चित्त बेगम बैठी हुई हैं, उस घरमें और कोई नहीं है, दोनों चुप-चाप हैं। इसी समय सिराजुद्दौला उस कक्षमें आया। उसको आते देख कर नवाब-पत्नीने उससे बैठने को कहा। सिराजुद्दौलाके बैठ जाने पर बेगमने कहा, "सिराज! आज क्या बात है जो तुम रात्रिके समय अपनी हीरा-झीलको छोड़ कर राजप्रासादमें आये हो?"

सिराज—नानीजी! बहुत कुछ कहना है, इसलिये आया हूँ; किन्तु मैं किससे कहूँ, और उसको सुनने वाला ही कौन है?

बेगम—क्यों सिराज! कोई और सुननेवाला न रहो, हम तो हैं, कहो क्या कहते हो?

सिराजुद्दौला ने आँखोंमें आंसू भर कर कहा, "नानीजी! पिता और पितामहने तो अफ़गानों के हाथोंसे प्राणविसर्जन किये; परन्तु मेरी माता, भाई और बहिन जो जीवित हैं, क्या उनका उद्धार करना आप लोगों को अभीष्ट नहीं है?"

इतने दिनोंसे जो सुयोग बेगम ढूँढ़ रही थीं, वही आज मिलगया। उन्होंने कहा, "सिराज! बोलो क्या करें? जो कन्याका उद्धार करने वाले हैं, वह तो तुम्हारे पिता और पितामहके शोकसे अधीर हो रहे हैं! समझाने से समझते नहीं। यदि कोई बात कही जाय तो वह सुनते नहीं। राज्यके सब काम बन्द हैं। यदि कुछ पूछा जाय

तो उत्तर नहीं देते हैं, नहीं मालूम इस तरह पर कैसे काम चलेगा।"

सिराज—नानीजी! तो क्या नानाजी की अफ़ग़ानोंके हाथ से मेरी माता और भाई बहिनों को छुटाने की इच्छा नहीं है?

बेगम—सिराज! मेरे अनुमानमें तो यही बात है, नहीं तो जँवाई और भाई को जिसने मारा है, उसको उचित दण्ड न देकर, शत्रुके हाथ से कन्याका उद्धार न करके, इस प्रकार मौन और दुःखसे निश्चेष्ट क्यों पड़े हुए हैं? बस सिराज! तुम अब अपने नानाकी राह मत देखो। चलो, अपनी फ़ौज लेकर अफ़ग़ानों पर आक्रमण करो। अपनी जननी और भाई बहिनों को छुड़ानेके लिये दृढ़व्रत हो जाओ। अब इधर इनकी अनुमतिके भरोसे मत रहो।

सिराज—ऐसा होनेसे नानाजीके और मेरे क्या कलह नहीं होगा?

बेगम—वत्स! कलहमें अब शेष ही क्या रहगया है? जो समय बङ्गाल बिहार और उड़ीसाके नवाब हैं, जिनके इशारेसे दिल्लीका सिंहासन पर्यन्त अधिकारमें आसकता है, वह अपने [illegible] और जवाई की हत्याका बदला न लेकर कन्याके उद्धारका कोई उपाय न करके, चुपचाप बैठे हुए हैं, उनमें बोलने का क्या रह गया है? क्या तुम जानते नहीं हो कि अफ़ग़ानोंने रोबमें, आतंका बढ़ाना करके अन्तःपुर में आश्रय लिया है? सिराज! तुम ऐसे मौकेर राम

मत ठहरो, और अनुमति भी मत लो। जाओ, तुम अपनी माता और भाई बहिनका उद्धार करो। पिता और पितामहके घातीको उचित दण्ड दो। वृथा देर करके शत्रुको स्पर्द्धा न बढ़ाओ।

पत्नीके ऐसे तिरस्कारयुक्त वचन सुन कर, नवाब अलीवर्दी का मोह छूट गया। हृदयाकाश से विषाद-मेघ फट गया। हृदयमें शोकतापके बदले अफ़ग़ानोंके प्रति दारुण क्रोधकी आग जल उठी। दामाद और भाईकी हत्याका बदला लेनेकी इच्छासे व्याकुल होगये। धीरे धीरे कहा, "बस करो, तुमको और अधिक कहने की आवश्यकता नहीं। इतने दिनों तक शोकमें डूबे रहकर, और अफ़गानों को दण्ड न देकर मैंने कापुरुषोंका काम किया है। अब मैं अफ़गानों को और अधिक क्षमा न करूँगा। मैं आज प्रतिज्ञा करके कहता हूँ, कि या तो अफ़गानोंको इस नृशंस हत्याका पूरा बदला लूँगा, नहीं तो समर-सागरमें अपना जीवन विसर्जन करके भाई और जामाताके ही पास जाऊँगा।"

नवाबकी मोह-निद्रा खुल गई, वह दृढ़प्रतिज्ञ हुए। नवाब पत्नीने भी समझ लिया कि उनकी ही उत्तेजनासे नवाब अपना शोक और ताप दूर करके प्रकृतिस्थ हुए हैं। यह देख कर बेगमके आनन्दकी सीमा न रही।

उन्नीसवाँ परिच्छेद ।

वारका बहुत बड़ा मैदान है। दोनों पक्षों की सेनाएं शिविर स्थापन करके युद्ध की राह देख रही हैं। यह विस्तीर्ण मैदान सेनाओंसे प्रायः भरा हुआ है।

जानोजीके अधीन मरहठा फौज आकर अफ़ग़ानोंसे मिल गई है। इसके लिये अलीवर्दी तथा देर न करके युद्धके लिये तयार होगये। उन्होंने यह भी सोच लिया कि यदि और देर की जायगी, तो सम्भव है कि अफ़ग़ान लोग और भी संख्या बढ़ालें। राघोजी भी आकर मिल सकता है। अलीवर्दीने युद्ध आरम्भ कर दिया।

दोनों पक्षोंकी फौजें अस्त्र शस्त्रोंसे सुसज्जित होकर मैदानमें आकर खड़ी हो गईं। अलीवर्दीने अपनी सेनाके दो भाग किये। एक भागका सेनापति मीरजाफ़र हुआ; दूसरेका परिचालक हबीबबेग हुआ। अलीवर्दी दोनों दलों के बीचमें रह कर, सेनाको चलाने और शत्रु पर आक्रमण करने लगे। समय समय पर सेनानायकों को युद्ध-कौशल भी बतलाते जाते थे। सिराजुद्दौला नवाबका पृष्ठ रक्षक बना।

नवाबकी सेनाका सञ्चालन देखकर, अफ़ग़ानोंके हृदयमें आतङ्क उत्पन्न होगया, वह लोग बड़े भयभीत हुए। किन्तु इससे क्या अफ़ग़ान लोग नवाबके गलेमें विना युद्धके ही जयमाल पहिना देंगे? नहीं, यह नहीं हो सकता है। क्या अफ़ग़ान वीर नहीं हैं? उनकी देहमें क्या वीर-रक्त नहीं बहता है? उनका अस्त्रधारण करना क्या केवल शरीरको शोभाके लिये ही है? नहीं, कभी नहीं। वह समर-भूमिमें अपना जीवन विसर्जन करनेमें कभी कातर न होंगे। वह ऐसा ही यत्न करेंगे, जिससे इतिहासके पृष्ठों पर उनका नाम गौरव और वीरत्वके साथ सोनेके अक्षरोंमें लिखा जाय। शरीरमें जान रहते, शत्रुकी आधीनता स्वीकार न करेंगे,—यही अफ़ग़ानोंका दृढ़ संकल्प है।

अफ़ग़ानों की भीतरी इच्छा यही है, कि यदि किसी प्रकार जय लाभ करें, तो स्वाधीन हो जावें, और उनमें से ही कोई एक पटनाके सिंहासन पर बैठे, और वह नवाब कहलावे। और यदि जयलक्ष्मी उनकी ओर न फिरना चाहे, यदि उनको स्वाधीनताके प्रयासमें समर-सागरमें प्राण विसर्जन करने पड़ें तो इसमें भी उनको अक्षय कीर्त्ति और गौरव है।

इसी साहस, उत्साह और आशासे हृदय कड़ा करके, नवाबकी असंख्य सेना देख कर भी, अफ़ग़ान लोग संग्रामसे हटे नहीं। भय पाकर भी रणस्थलको छोड़ा नहीं।

किन्तु मरहट्टोंने जो अफ़गानोंसे मिलना विचारा था, सो उनका आशय कुछ और ही था, अर्थात् नवाब सेना और अफ़गान लोग परस्पर युद्धमें लगे रहेंगे, तब हम लोग सुयोग पाकर दोनोंके शिविरों को लूटेंगे, यही उनका उद्देश्य था। मरहट्टा जानोजी बड़ा धूर्त्त था। यह बात उसके चित्तमें कभी न आई थी, कि अपनी हानि करके अफ़गानोंकी सहायता करेगा।

युद्धके लिये दोनों पक्ष तैय्यार हैं। रण-क्षेत्रमें दोनों पक्षों की फ़ौजें एक दूसरे के सामने खड़ी हुई हैं, और युद्धकी राह देख रही हैं। सेनाके आगे तोपें लगी हुई हैं, तोपोंके पीछे पैदल सेना है, जिसके हाथमें सङ्गीन चढ़ी हुई बन्दूकें हैं। पैदलोंके पीछे नङ्गी तलवार हाथमें लिये हुए अश्वारोही सेना है। दोनों पक्षोंकी सेना शत्रु संहारके लिये व्यग्र है। उनकी आंखोंमें बदला लेनेकी अग्नि निकल रही है। उसी अग्निसे ही मानों एक दूसरे को संहार करेंगे।

रण का बाजा बजने लगा। रणके बाजेके भीम गम्भीर नादसे सैनिकोंका हृदय युद्धके लिये और भी उत्साहित हो गया। नवाब की ओरसे एक दमसे बारह तोपें बड़े भीम रव के साथ चारों दिशाओं को कँपाती हुई चलीं।

परन्तु आंधी आनेसे पहिले ही वृक्ष गिर पड़ा, अर्थात् युद्ध आरम्भ होते ही एक गोला आकर सरदार खां के लगा। उस पर्वत भेदी गोलेके आघातसे हतभाग्य सरदार खां के

प्राण जाते रहे। उसीके साथ स्वाधीनता की आशा भी समाप्त हुई।

सरदारखां के मरते ही, उसकी सेना प्राण-भयसे भागने की इच्छा करने लगी। शमशेरखांने सरदारखांको मरा हुआ देख कर, और सेनाको भागनेके लिये उद्यत देख कर, मुस्तफ़ा खांके ऊपर सेनाका भार अर्पित किया और छत्रभङ्ग सेना-दल को इकट्ठा करनेके लिये, इधर उधर दौड़ने लगा। नवाबने अच्छा अवसर समझ कर, भयभीत पलायनोद्यत सेनाको घेर लिया, और पागलकी भांति अफ़ग़ान सेनाकी ओर को चल दिये।

अलीवर्दी की तलवारके आघात से बहुत सी सेना कट कट कर गिरने लगी। किन्तु पृष्ठ-रक्षक सिराजुद्दौलाने देखा कि नवाब अपनी सेनाका व्यूह छोड़ कर बहुत दूर आगये हैं। अफ़ग़ान लोग क्रमशः पीछे हटते हटते नवाबको बहुत दूर लिये जा रहे हैं; और एक ओर से मरहट्टा-दल उनपर आक्रमण करनेके लिये बढ़ रहा है। सिराजुद्दौलाने अपने नानाकी भूल और विपक्षियोंका कौशल देखकर अपने नानासे कहा, किन्तु इस समय नवाब रणरङ्गमें उनमत्त थे, उनको कुछ भी दिखाई न देता था, न किसी बातको सुनते थे, केवल अफ़ग़ान-सेना पर तलवार चला रहे थे।

बालक होने पर भी सिराजुद्दौलाने अफ़ग़ानोंका कौशल और मरहट्टा दल की चतुरता समझ ली। नानाको यह बात

बतलाने पर भी जब कोई उत्तर नहीं मिला, तो वह और विलम्ब न कर सका, और नानाकी अनुमतिकी अपेक्षा न करके, कुछ थोड़ी सी सेना लेकर, स्वयं मरहट्टा दल पर आक्रमण किया। मरहट्टा दल बाधा पाकर और आगे न बढ़ सका, युद्धमें प्रवृत्त होगया। घोरतर युद्ध होने लगा। अस्त्रों की झनझार, तोपों की भयङ्कर गर्जन, वीरोंकी हुङ्कार-ध्वनिसे रणस्थल परिपूर्ण होगया। दोनों पक्षोंमें केवल मार-मार काट-काटका शब्द सुनाई देता था।

रणोन्मत्त सैनिकोंके पैरोंकी धूल और आग्नेय अस्त्रोंके धुएँके कारण आकाश श्यामवर्ण होगया। दिनमें मानों रात होगई। सूर्यदेव एकबारगी ही छिप गये।

देखते देखते दोनों पक्षों की असंख्य सेना गिर कर सदैवके लिये महाशय्या पर सोगई। मरे हुए सैनिकोंसे रणभूमि परिपूर्ण होगई। मनुष्योंके रक्तका सोता बह निकला। रण भूमिमें कीचड़ हो गयी। स्यार और कुत्ते नर-रक्तके पीनेको एवं नर मांसके खाने को चारों ओर रणक्षेत्रमें घूमने लगे। गिद्ध और कव्वे मांसाहारी पक्षी आकाशमें उड़ने लगे। पृथ्वी पर पड़े हुए सैनिक करुण स्वरसे "जल जल" कह कर पुकारने लगे। किन्तु इस समय जल कौन देवे? कौन इस समय स्नेहवश होकर, भाई समझ कर, उनकी रक्षा करे? सब लड़ाईमें उन्मत्त हैं। अपने अपने बल विक्रम और वीरत्वके प्रकाश करनेमें प्रवृत्त हैं। दया करने और आत्मीयबन्धु समझने

का समय नहीं है। इस समय वीरोंके हृदयसे दया,माया, स्नेह, ममता सभी विदा हो गये हैं। हृदय वज्र की अपेक्षा अधिक कठिन हो गये हैं; इसीसे आज मनुष्य; मनुष्य के प्राण संहार करने में कुछ भी संकोच नहीं करता है। मरणोन्मुख सैनिकोंकी करुणा-भरी विलाप-वाणी सुनकर भी हृदय विचलित नहीं होता है। सामने, पीछे, पैरोंके नीचे, चारों ओर मृत्युशय्या पर सोये हुए साथियोंको देखकर भी, मीत अथवा दुःखी नहीं होते हैं। केवल 'मार-मार काट-काट' का शब्द ही सुनाई पड़ता है।

सिराजुद्दौलाका लक्ष्य केवल इसी पर था, कि मरहट्टा एक पग भी आगे न बढ़ सकें।

अविराम युद्ध होने लगा। दोनों पक्षोंमें तुमुल संग्राम होने लगा। तोपोंके मुखसे निकले हुए धुएँके पुञ्जसे अन्धकार हो जानेके कारण शत्रु मित्र सब एक से होगये। नवावकी सुशिक्षित सेनाके आगे अफ़ग़ान-सेना प्रतिक्षण तलवारके आघातसे, बन्दूककी गोलीसे, प्राण छोड़ने लगी।

मरहट्टोंने देखा कि विपक्षियोंका बल अधिक है, तो पीछे हटे और युद्ध एक प्रकारसे बन्द ही कर दिया। शमशेरखाँ अपनी सेनाकी चाल को और अधिक न रोक सका। उसकी सेना नवाबकी सेनाकी तलवार के आघातसे, और बन्दूककी गोलीसे, क्षतविक्षत होकर चारों ओरको भागने लगी। शमशेरखाँ छत्रभङ्ग सेनाको इकट्ठी करनेको गया और शत्रुके बीच

में फँस गया। इसी बीचमें नवाब के सुदक्ष सेनापति इमीर-बेगने सुयोग पाकर अपने घोड़से कूदकर, शत्रुके हाथी पर चढ़कर विद्रोही शमशेरखांका सिर काट लिया। शमशेरखां-का धड़ हाथी पर से पृथ्वी पर गिर पड़ा।

इमीरबेगने बड़े उत्साहसे शमशेरखांका कटा हुआ सिर ले जाकर रणोन्मत्त अलीवर्दीके हाथ में प्रदान किया। नवाब, शमशेरखांका कटा हुआ सिर पाकर आनन्दसे चिल्ला उठे। इतने ही में उनकी सेनाने बड़े ऊँचे स्वरसे गरज कर कहा, "जय! नवाबकी जय!"

घोर युद्ध नहीं हुआ। शमशेरखांको मरा हुआ देखकर अफ़ग़ान लोग रण छोड़कर भाग गये। मरहटे पहिले ही से हट गये थे। नवाबने देखा कि युद्धमें जय हुई। प्रधान शत्रु सरदारखां, शमशेरखां और मुस्तफ़ाखां मारे गये। अफ़-ग़ान सेना प्राणोंके भयसे भाग गई। जानोजीके आधीन मरहटा-सेना रणक्षेत्र छोड़कर चली गई। वारका विस्तीर्ण क्षेत्र शत्रुहीन होगया।

युद्धमें नवाबकी जय हुई। परन्तु सिराजुद्दौलाके बुद्धि-कौशलके बिना यह जय लाभ होता कि नहीं, यह कौन कह सकता है? सिराज यदि नवाबको युद्धस्था करना छोड़ देता, यदि वह मरहटोंके कौशलको न समझता, यदि वह मरहटों पर यथासमय आक्रमण न करता, तो बहुत सम्भव है, कि नवाबको अफ़ग़ानोंसे पराजित होना पड़ता।

बीसवाँ परिच्छेद ।

युद्धमें जय लाभ करके नवाब अलीवर्दी कन्या के उद्धारके लिये व्यग्र हो उठे । वह युद्धक्षेत्र में वृथा अधिक विलम्ब न करके, सेना सहित पटनाको चले गये । वहाँ राजभवनमें प्रवेश करके देखा कि कन्या, दौहित्र, दौहित्री और अन्यान्य रमणी सभी कारागारमें बन्द दीन-हीनकी तरह बड़े कष्टसे बैठी हुई हैं । सभीके हाथ पैर लोहेकी जञ्जीरोंसे बँधे हैं । साधारण कपड़े पहिने हैं । बिना खाये और बिना सोये शरीर जीर्ण-शीर्ण और विवर्ण होरहे हैं । कष्टकी सीमा नहीं, दुर्गतिका पार नहीं । देखते ही अलीवर्दीकी आँखोंसे आँसू निकल पड़े । वह एक वीर पुरुष होनेपर भी स्त्रियोंकी तरह उच्च स्वरसे रोने लगे । नवाब-महिषी भी दुहिताकी दुर्गति देखकर स्थिर न रह सकीं । उन्होंने दौड़कर अमीनाको छातीसे लगा लिया । माँ बेटी दोनों व्याकुल-हृदयसे रोने लगीं । कारागारमें रोने चिल्लानेसे शोर मच गया ।

माता पिता और पुत्र सिराजुद्दौलाको देखकर अमीनाको

पति शोक याद आ गया। वह हृदयविदारक आर्तनाद और विलाप करने लगी, कि जिससे करुणाके मारे पत्थर भी पिघलता था।

जननी, भ्राता, भगिनी और अन्यान्य स्वामियोंकी दुर्गति देखकर इतने दुःखमें भी सिराजुद्दौलाको क्रोध हो आया। वह क्रोधसे उन्मत्त होकर बदला लेनेके लिये उद्यत होगया। उसने कहा, "नानाजी! अफग़ानोंने जिस प्रकार मेरी माता, भगिनी और भ्राताको कारागारमें जञ्जीरोंसे बांधकर अशेष यातना दी है, उसी तरह आज मैं भी उनके परिवारको अशेष यन्त्रणा देकर उनका जीवन-संहार करूँगा। आज वह मेरे हाथसे किसी प्रकार नहीं बच सकते हैं। इसमें आपकी क्या अनुमति है?"

अलीवर्दीके जवाब देनेसे पहिले ही नवाब-महिषीने कहा, "नहीं सिराज! मैं तुम्हारे इस नृशंस प्रस्ताव का अनुमोदन नहीं करूंगी।"

सिराजुद्दौलाने क्रोधकम्पित स्वरसे कहा, "आपलोग इस प्रस्तावसे क्यों असम्मत होते हैं? मेरी माता, भाई और भगिनीको जिन्होंने कारागारमें डालकर अशेष यातना दी है, उनके परिवारको हाथमें पाकर भी क्या बदला न लूँ? क्या आप मुझको नितान्त कापुरुषकी तरह अफग़ानोंके किये हुए अत्याचारको चुपचाप सहनेके लिये कहते हैं? मैं तो कभी इस तरह नहीं कर सकता हूँ।"

बेगम—सिराज! क्या इसीका नाम बदला लेना है? तुम किससे बदला लेनेको उद्यत हो?

सिराज—क्यों, अफ़ग़ानोंके परिवारसे बदला लेना चाहता हूं।

बुद्धिमती नवाब-महिषीने युक्ति दिखलाकर कहा, "सिराज! अकारण क्रोध छोड़ दो। विवेचना करके देखो, इसमें अफ़-ग़ानोंके परिवार का क्या दोष है? तुम एकके अपराधसे दूसरेको दण्ड देनेकी इच्छा करते हो! तुम्हारी यह इच्छा नितान्त ही अनुचित है। ऐसी इच्छाको आश्रय देनेसे तुमको जनसमाजमें निन्दनीय होना पड़ेगा। विशेषकर यदि तुम इस अधर्मके काममें प्रवृत्त होगे, तो तुमको परमेश्वरके सामने भी अपराधी बनना पड़ेगा। और भी देखो, कि जिन्होंने तुम्हारी मा, बहिन और भाईको अकारण कष्ट दिया है, दुःख-सागरमें डाल दिया है, पिता और पिता-महको बिना दोषके संहार किया है, उन्हीं निठुर अफ़ग़ानोंने उसका उचित फल पाया है। फिर क्यों प्रतिहिंसाके वश होकर, उनके अनाथ परिवारके ऊपर अत्याचार करनेको उद्यत होते हो? इसमें तुम्हारा क्या पौरुष है? पौरुष तो रण-क्षेत्रमें दिखला चुके हो, वही वास्तविक पौरुष है। जो अबलाके ऊपर अत्याचार करता है, उसके तुल्य निर्बोध, अधम जगत्‌में और कौन है? सिराज! तुम उच्च वंशमें जन्मे हो, वीरोंकी सी ख्याति पाई है। भविष्यत्‌में जब तुम बङ्गाल

बिहार और उड़ीसाके सिंहासनपर बैठोगे, तब क्या यही अप कीर्त्ति लेकर सिंहासन पर बैठोगे? जो बड़े वंशमें उत्पन्न हुआ है, जो उच्च पदपर बैठेगा, उसीके अनुरूप उच्च हृदयका परिचय दो, जिससे समग्र देश जाने कि सिराजुद्दौला, नवाब अलीवर्दीका उपयुक्त उत्तराधिकारी है।"

इतना सुननेपर सिराजुद्दौलाने फिर कुछ उत्तर नहीं दिया। वह चुपचाप खड़ा खड़ा कुचले हुए सांप की तरह भीतर ही भीतर क्रोधसे जलने लगा।

अलीवर्दी, सिराजुद्दौलाको क्रोधमें भरा हुआ देखकर बोले, "सिराज! तुम क्या हमारे अवाध्य होना चाहते हो? और विशेष करके जिस काममें पौरुष नहीं है, ख्याति नहीं है, उसको करनेसे क्या फल होगा? इन अनाथा, असहाया रमणियोंके ऊपर अथवा अत्याचार करके क्या प्रतिशोधकी प्यास मिटाना चाहते हो? वत्स! यदि हमारी बातोंसे तुम्हारे क्रोधकी शान्ति न हो, तो अपनी मातासे पूछो। तुम्हारी जननी यदि इस कामका अनुमोदन करे, तो हम कुछ न कहेंगे।"

मालूम नहीं, सिराजको माता अमीना बेगमकी क्या इच्छा थी? किन्तु उसने पिता माताको असम्मत देखकर कहा, "वत्स सिराज! क्रोध छोड़ दो। मेरे भाग्यमें जो कुछ लिखा था, वही हुआ है। विधिके लिखेको मेटनेकी क्षमता किसमें है? वत्स! जिन दुराचारियोंने मुझको

पतिधनसे वञ्चित किया है, उनको तो उचित दण्ड मिल ही गया है। मैं जिस तरह पति-शोकसे कातर हूँ, उनका परिवार भी उसी तरह शोक-दुःखमें डूब गया है। वैधव्य-यन्त्रणासे बढ़कर नारीके लिये और कोई भी यन्त्रणा नहीं है। वत्स! मेरे अनुरोधसे तुम शान्त हो जाओ, अनाथा अफ़ग़ान-रमणियोंके ऊपर और अत्याचार करना आवश्यक नहीं है।"

सिराजुद्दौलाने किसी बातका उत्तर नहीं दिया, केवल अपनी कमरसे लटकती हुई तलवारको बारम्बार देखने लगा।

इसी तरहकी बातचीत हो रही थी, कि अफ़ग़ान-रमणी-दलबद्ध होकर रोती रोती वहाँ आकर उपस्थित हुईं। वह सब शोक-दुःखसे अधीर और भयसे काँप रही थीं, और श्रावणके मेघकी तरह अविरल आँसुओंकी धाराएँ कपोलों पर बह रही थीं। उनमेंसे कोई पतिके, कोई पुत्रके, कोई पिताके और कोई भाईके शोकसे उन्मादिनी हो रही थी। वह हाहाकार करती हुई, शिरमें कराघात करते करते, अलीवर्दीके पैरों पर गिरकर करुण स्वरसे कहने लगीं, "नवाब बहादुर! हमलोग आपकी शरण हैं, हमारी रक्षा करो! हम अबला स्त्री-जाति हैं। हमारे पति पुत्रादिकोंने आपके साथ शत्रुता की है, किन्तु इसमें हमारा क्या दोष है? विशेष करके हमलोग आपकी पदाश्रिता हैं। आप हमलोगों पर

बिहार और उड़ीसाके सिंहासनपर बैठोगे, तब क्या यही अप कीर्त्ति लेकर सिंहासन पर बैठोगे? जो बड़े वंशमें उत्पन्न हुआ है, जो उच्च पदपर बैठेगा, उसीके अनुरूप उच्च हृदयका परिचय दो, जिससे समग्र देश जाने कि सिराजुद्दौला, नवाब अलीवर्दीका उपयुक्त उत्तराधिकारी है।'

इतना सुननेपर सिराजुद्दौलाने फिर कुछ उत्तर नहीं दिया। वह चुपचाप खड़ा खड़ा कुचले हुए साँप की तरह भीतर ही भीतर क्रोधसे जलने लगा।

अलीवर्दी, सिराजुद्दौलाको क्रोधमें भरा हुआ देखकर बोले, "सिराज! तुम क्या हमारे अवाध्य होना चाहते हो? और विशेष करके जिस काममें पौरुष नहीं है, ख्याति नहीं है, उसको करनेसे क्या फल होगा? इन अनाथा, असहाया रमणियोंके ऊपर अथवा अत्याचार करके क्या प्रतिशोधकी प्यास मिटाना चाहते हो? बस! यदि हमारी बातोंसे तुम्हारे क्रोधकी शान्ति न हो तो अपनी मातासे पूछो। तुम्हारी जननी यदि इस कामका अनुमोदन करे, तो हम कुछ न कहेंगे।"

मालूम नहीं, सिराजकी माता अमीना बेगमकी क्या इच्छा थी? किन्तु उसने पिता माताको असम्मत देखकर कहा, "बस सिराज! क्रोध छोड़ दो। मेरे भाग्यमें जो कुछ लिखा था, वही हुआ है। विधिके लिखेको मेटनेकी क्षमता किसमें है? बस! जिन दुराचारियोंने मुझको

पतिधनसे वञ्चित किया है, उनको तो उचित दण्ड मिल ही गया है। मैं जिस तरह पति-शोकसे कातर हूँ, उनका परिवार भी उसी तरह शोक-दुःखमें डूब गया है! वैधव्य-यन्त्रणासे बढ़कर नारीके लिये और कोई भी यन्त्रणा नहीं है। वत्स! मेरे अनुरोधसे तुम शान्त हो जाओ, अनाथा अफ़ग़ान-रमणियोंके ऊपर और अत्याचार करना आवश्यक नहीं है।"

सिराजुद्दौलाने किसी बातका उत्तर नहीं दिया, केवल अपनी कमरसे लटकती हुई तलवारको बारम्बार देखने लगा।

इसी तरहकी बातचीत हो रही थी, कि अफ़ग़ान-रमणी दलबद्ध होकर रोती रोती वहां आकर उपस्थित हुईं। वह सब शोक-दुःखसे अधीर और भयसे कांप रही थीं, और श्रावणकी मेघकी तरह अविरल आंसुओंकी धाराएँ कपोलों पर बह रही थीं। उनमेंसे कोई पतिके, कोई पुत्रके, कोई पिताके और कोई भाईके शोकसे उन्मादिनी हो रही थी। वह हाहाकार करती हुई, शिरमें कराघात करते करते, अलीवर्दीके पैरो पर गिरकर करुण स्वरसे कहने लगीं, "नवाब बहादुर! हमलोग आपकी शरण हैं, हमारी रक्षा करो! हम अबला स्त्री-जाति है! हमारे पति पुत्रादिकोंने आपके साथ शत्रुता की है, किन्तु इसमें हमारा क्या दोष है? विशेष करके हमलोग आपकी पदाश्रिता है। आप हमलोगों पर

प्रसन्न होवें।" यह कहकर, सब रमणियाँ उच्च स्वरसे रोदन करके अनुनय विनय करके कातरता दिखलाने लगीं।

नारीका चित्त स्वभावसे ही कोमल है, कठिन होनेपर भी कोमल होता है। नवाब-पत्नी वीराङ्गना थीं, इस वीराङ्गनाके हृदयमें भी वीरोचित कठोरताका अभाव न था, किन्तु वह हृदय दया माया और स्नेह ममताका आकर था। अफ़गान महिलाओंके विलाप और कातरतासे उनका करुण हृदय पिघल गया। शत्रु रमणी होनेपर भी उनकी दुःखसे वेगमकी आँखोंमें जल आगया। बोलीं, "अफ़गान-रमणीगण! रोओ मत, कोई भय नहीं है। यद्यपि तुम्हारे पति, पुत्र, पिता और भ्राता इत्यादिने शत्रुता करके हम लोगोंकी बड़ी क्षति पहुँचाई है, अनेकोंको धन और प्राणसे मारा है, किन्तु उन्होंने अपने किये का उपयुक्त प्रतिफल पा लिया है। उनके अपराधसे हम तुमको किसी प्रकारका कष्ट देना नहीं चाहते हैं। तुम लोग निर्भय होकर जहाँ जाना चाहो चली जाओ।"

अफ़ग़ान महिलाएँ नवाब पत्नीकी इस दयाको देखकर मन ही मन उनकी प्रशंसा करने लगीं। वास्तवमें नवाब पत्नी अफ़ग़ान रमणियोंके लिये ही नहीं, वरं बुद्धि विवेचना और दया मायामें सभीके लिये सुख्यातिकी पात्री थीं।

उनके चले जानेपर नवाब मन्त्रियोंने कहा," सिराज! प्रति हिमायत वश होकर जिनके ऊपर तुम अत्याचार करनेको उद्यत थे वही तुम्हारे भयसे तुम्हारी शरण आई है। इन

अनाथिनी अपाङ्गान-रमणियोंके प्रति शत्रुताका आचरण करनेसे तुम, और लोगोंके सामने निन्दनीय और जगदीश्वरके सामने अपराधी होते ? वत्स! क्षमा करना सीखो। जगत्में क्षमासे बढ़कर मनुष्यके लिये और कोई गुण नहीं है।

अमीना—माँ! हमारा सिराज अभी बालक है! बालकको सरल बुद्धि होती है, अच्छा बुरा कुछ नहीं समझता है।

बेगम—नहीं बेटा! सिराज क्रोधके वशवर्त्ती है, मैं उसको छोटेपनसे देखती हूँ, जिसको पकड़ता है उसको फिर नहीं छोड़ता है। जिसके ऊपर लोगोंका धन, प्राण, कुल मान निर्भर है,वह यदि ऐसा क्रोधके वश हो तो उसका मङ्गल कभी नहीं हो सकता है। यह बात सिराजकी समझमें नहीं आती है, शिक्षा देनेसे भी नहीं सीखता है।

अली—अब यह बातें रहने दो। एक मतलबकी बात तुमसे पूछता हूँ, कि अब पटनाका शासन भार किसको दिया जाय ?

बेगम—जब तक सिराजुद्दौला बङ्गाल,बिहार और उड़ीसा के सिंहासन पर न बैठे, तब तक सिराज ही को यहाँ अपने पिताके सिंहासन पर बैठना चाहिये। विशेष करके पटनाके सिंहासन पर जब उसीका पूर्ण अधिकार है, तो और किसीको न देकर सिराजको ही प्रदान करना चाहिये।

अली—यदि पटनाका सिंहासन सिराजको ही देना

चाहती हो, तो क्या तुम उसको अपने पाससे अलग रख सकोगी?

बेगम—नहीं, नवाब बहादुर! मैं उसको एक पलके लिये भी आँखों की ओट नहीं रख सकती हूँ।

अली—तो फिर वह किस तरह पटनाका शासन करेगा?

सिराज—नानाजी! मैं अपना पैत्रक सिंहासन नहीं छोड़ूँगा, पटनाका शासन भार मुझको ही देना पड़ेगा।

नवाबने हँसकर कहा—"तुम पटनाके सिंहासन पर बैठो, हमको इसमें कोई इनकार नहीं है। परन्तु इसमें एक ही अड़चन है, कि तुमको छोड़कर हम न रह सकेंगे।" (थोड़ी देर सोचकर) "अच्छा उसको तुम अपना ही रक्खो, किन्तु यहां अपना प्रतिनिधि स्वरूप एक आदमी रक्खो, जो राजकार्य करता रहे।"

इसके अनन्तर बड़े समारोहसे सिराज पटनाके सिंहासन पर बैठा। सबने जान लिया कि सिराजुद्दौला पटनाका नवाब हुआ।

सिराजुद्दौला पटनाके सिंहासन पर बैठ तो गया; किन्तु राजा जानकीराम नवाब अलीवर्दीका बड़ा विश्वासी और प्रधान मन्त्री था, इसलिये वही उसका प्रतिनिधि हुआ। पटनाका शासन भार उसको सौंपा गया, सिराजुद्दौला केवल नामका नवाब हुआ।

राजा जानकीरामके ऊपर शासन भार अर्पण करके, नवाब

अपनी सेना और परिवारको लेकर मुर्शिदाबादको चल दिये। सिराजुद्दौलाने समझा कि यह नवाबका पद जो नानाजीने दिया है, सो लड़कोंका सा खेल किया है। उसको यह अच्छा नहीं लगा, और बड़े विषण्ण चित्तसे राजधानीमें आया।

इक्कीसवाँ परिच्छेद।

सिराजुद्दौलाके शीश भौनमें पहुंचने पर लुत्फ़ुन्निसाने हँसकर कहा, "प्रणाम है पटनाके नवाबको।"

सिराजुद्दौलाने उसके गलेमें बाहें डाल कर कहा, "लुत्फ़ुन्निसा! तुमसे यह बात किसने कही?" लुत्फ़ुन्निसाने अति मधुर हँसी हँसकर कहा, "रज़िया बेगमने।"

रज़िया बेगम सिराजुद्दौला की बहिन थी।

कृष्णपक्षके अँधेरे आकाशमें बिजलीकी भाँति लुत्फ़ुन्निसाकी मधुर हँसीने सिराजुद्दौलाके विषादपूर्ण हृदयको आलोकित कर दिया परन्तु वह आलोक क्षणमें ही विलीन हो गया। उसने विषण्णभावसे उत्तर दिया, "प्राणाधिके! तुमने जो कुछ सुना है वह सत्य है, परन्तु अब समझमें आता है कि वास्तवमें नहीं, केवल नाममात्रको हूं।"

लुत्फ़ुन्निसाको यह सुनकर भरोसा नहीं हुआ। वह अपनी स्वाभाविक हँसीसे हँसती हुई बोली, "यदि वास्तवमें

पटनाका राज्य-सिंहासन आपका हुआ है और सब लोग आपको पटनाका नवाब जानते हैं, तो फिर क्या चाहिये?

सिराज—प्रियतमे! ऐसी बहुतसी बातें हैं, यह बात क्या तुमने कभी नहीं सुनी है कि जिसका पेड़ है वह फलभोगी नहीं है? मेरा यह पटनाका सिंहासन-आरोहण और नवाबी पदकी प्राप्ति भी इसी तरहकी है।

यह सुनकर लुत्फुन्निसा कुछ विस्मित होकर बोली, "यह क्या बात है नाथ। सभी तो जानते हैं, कि जिसका वृक्ष होता है वही उसका फल भोग करता है। आज आपसे मैंने यह नई बात सुनी है।"

सिराज—प्राणाधिके! यह एक नई बात है। यदि नई होगी तो मैं कहूँगा ही क्यों? जो सदैवसे चली आती है, यदि वैसी न हो तो लोग उसे नई कहते हैं। मेरी यह सिंहासन-प्राप्ति भी एक नई ही तरहकी है।

लुत्फुन्निसा सिराजुद्दौलाकी यह बात सुनकर और भी विस्मित होकर बोली, "क्यों नाथ! इसमें नूतनता क्या है?"

इस बार सिराजुद्दौलाके विषण्ण मुख पर हँसीके चिन्ह दिखाई दिये। वह ईषत् हास्य करके बोला, "प्रियतमे! इसमें सभी बातें नई हैं। पटनाका नवाब मैं हुआ हूँ, किन्तु राज्य-शासन जानकीराम करेगा। मैं नाम मात्रका नवाब हूँ—नाममात्रका सिंहासनका अधिकारी हूँ।"

अब लुत्फुन्निसाकी समझमें आया। उसने पूछा "यदि

सिंहासन आपका हुआ है, तो शासन भार जानकीरामको क्यों दिया गया? क्या आप इसपर सन्तुष्ट हुए हैं?"

सिराज प्राणाधिके! अपना सुख ऐश्वर्य कौन अपनी इच्छासे दूसरेको देता है? जिसने पटनाका सिंहासन मुझको दिया है, उसीने उसका शासन भार भी जानकीराम को दिया है।

लुत्फुन्निसा—आपने उसमें आपत्ति क्यों नहीं की?

सिराज—लुत्फुन्निसा मैंने बहुत कुछ आपत्ति की, किन्तु नानाजीने मेरी एक बात भी न सुनी।

लुत्फु—न सुननेका क्या कारण है?

सिराज—उन्होंने कहा कि मुझको वह एक पलको भी दूर करना नहीं चाहते हैं।

लुत्फु मालूम होता है कि पटनाका राज्यसिंहासन नवाब बहादुर आपको देना नहीं चाहते, केवल अनुरोधमें पड़कर देना पड़ा है इसीसे नाममात्रको दिया है। यदि वास्तवमें देनेकी इच्छा होती, तो जानकीरामको राज्यभार कभी अर्पण न करते। नवाब बहादुरने आपको प्रेमके भुलावेमें रक्खा है। परन्तु आप उस प्रेमके लोभमें भूलकर शासन भारको छोड़ आये, यह अच्छा नहीं किया।

सिराज—लुत्फुन्निसा! क्या करता, केवल नानाजी और नानीके अनुरोधसे ही पटना छोड़ आया हूं। यद्यपि इस

समय मेरी समझमें आया है, कि नानाजीने मुझे स्नेहके लोभमें भुलावा दिया है; परन्तु मैं किसी तरह भुलावेमें नहीं आऊँगा और उनका कोई भी अनुरोध न सुनूँगा। लुत्फुन्निसा! मैं शपथ खाकर कहता हूँ, कि सुयोग पाते ही पटना पर आक्रमण करके जानकीरामके हाथसे शासन-भार छीन लूँगा। मेरे पैतृक राज्यका शासन जानकीराम करे, शासनका सत्व भी उसीका होवे, और मैं उसके अनुग्रह का पात्र होकर, उसकी दी हुई सामान्य वृत्ति लेकर, सन्तुष्ट हो जाऊँ, यह नहीं होगा।

लुत्फु—तो क्या आप नवाब बहादुरके अवाध्य होना चाहते हैं?

सिराजुद्दौलाने गर्वसे उत्तर दिया, "अवाध्य? स्वार्थरक्षाके लिये यदि अवाध्य होना पड़े तो क्या डर है? परन्तु यह सोचकर, अपना स्वार्थ नष्ट करके बच्चोंकी तरह लोभमें भूला नहीं रहूँगा। मेरे सामनेसे मेरी खाद्यवस्तु दूसरा लेकर सुखसे भोजन करे, और मैं कापुरुषकी तरह चुपचाप बैठा अपनी आँखोंसे देखा करूँ? जिसकी देहमें वीर रक्त है, हृदयमें तेज है, बाँहोंमें बल है, और तेज़ तलवार जिसकी कमरसे बँधी है, वह अपने मुखका ग्रास दूसरेको नहीं दे सकता है। मैं जानकीराम पर आक्रमण करके पटनाकी शासन क्षमता उसके हाथसे छीन लूँगा। इससे यदि नानाजी असन्तुष्ट हों तो होते रहें, मुझे अवाध्य समझें तो समझते

रहे, मैं उनकी प्रीतिके लिये अपना निजका स्वार्थ नहीं छोड़ सकूँगा।"

सिराजुद्दौलाकी इस दृढ़ प्रतिज्ञाको सुनकर लुत्फुन्निसा कुछ भयभीत हुई और स्वामीकी इस बुद्धिको परिवर्त्तन करनेके लिये एक युक्ति दिखाकर कहा, "जब आप ही नवाब बहादुरके न रहने पर उनके एकमात्र उत्तराधिकारी हैं, जब कि बङ्गाल बिहार और उड़ीसाका सिंहासन आप ही का होगा, तो फिर तुच्छ पटनाका सिंहासन लेकर नानाके साथ लड़ाई झगड़ा करना क्या उचित है?"

सिराज—नहीं लुत्फुन्निसा! भविष्यत्‌की मुर्शिदाबादकी मसनदकी आशामें, वर्तमान पैतृक सिंहासनको मैं कभी न छोड़ूँगा। जो भविष्यत् सुखके भरोसे पर उपस्थित सुख छोड़ता है, उसके भाग्यमें सुख भोग है भी कि नहीं, इसमें सन्देह है। भविष्यतकी आशासे मैं पटनाके सिंहासनका अधिकार नहीं छोड़ूँगा। इसके लिये यदि नानाजीका अवाध्य होना पड़े तो होना पड़े, यदि लड़ाई झगड़ा करना पड़ेगा तो करूँगा, परन्तु अपना स्वार्थ नष्ट करके जानबूझकर क्षमा का पात्र बनकर नहीं रहूँगा।

लुत्फुन्निसाने इसके सम्बन्धमें फिर कुछ नहीं कहा। केवल इतना कहा, "आपको विवेचनामें जो अच्छा हो वही करना, अबला रमणी क्षुद्र राजनीतिको क्या समझे, मोभी दासी यह जानती है कि वह आपकी पदाश्रित है।"

इस बार सिराजुद्दौलाका प्रेम उमड़ आया, उसने बड़े प्रेमसे और आदरसे लुत्फुन्निसाके गुलाबी कपोलोंका चुम्बन करके कहा, "प्राणाधिके! तुम्हारा प्रेम इस जीवनमें कभी न भूलूँगा, जब तक जीवित रहूँगा—सुखमें, दुःखमें, सम्पदमें, विपदमें—तुम्हारे सिवाय सिराजके हृदयमें और कोई स्थान न पावेगा। प्राणेश्वरी! सिराजुद्दौला तुम्हारे प्रेमका भिखारी है।"

लुत्फु०—नाथ! यह दासी आप ही की है। आपके सिवाय इस जगत्‌में मेरा और कोई नहीं है। विपदमें सहाय करनेवाला, शोकमें सान्त्वना देनेवाला, विषादमें समवेदना दिखलानेवाला, आपके अतिरिक्त और कौन है? आपके सिवाय दासी और कुछ नहीं जानती है। दासी आपके सुखमें सुखी और दुःखमें दुखी है। आप पर विपद् पड़नेपर दासीपर भी विपद् है, आपको सम्पदमें दासीको भी सम्पद् है। नाथ! इतना देखे रहना कि चरण-सेवासे यह दासी वञ्चित न होजाय और सदैवके लिये संगिनी बनी रहे।

कहते कहते लुत्फुन्निसा अपने पूर्व-जीवन और वर्तमान अवस्थाका स्मरण करके हर्ष और विषादसे रोने लगी। कानों तक विस्तृत नयन-कमलोंसे मोती बहने लगे। यह दृश्य प्रेमिकको आँखोंके लिये कैसा सुन्दर है! सिराज थोड़ी देरके लिये अपने आपको भूल गया, और लुत्फुन्निसाकी आँखोंका जल पोंछ कर सान्त्वनाके वाक्योंमें कहने लगा,

"लुत्फुन्निसा! प्राणाधिके! यह बात क्यों कहती हो? तुम तो सिराजुद्दौलाके जीवनमें मिल गई हो, सो अब सिराजमें शक्ति नहीं है कि तुमको त्याग कर सकें। आहा! मैंने बड़े कष्टसे इस रत्नको पाया है।"

कहते कहते दोनों ही दोनोंके प्रेममें विह्वल होगये। एक दूसरेके गलेमें बाहें डालकर प्रेमकी सुख-माधुरी भोग करने लगे। वह सुख, वह माधुरी, भाषाके द्वारा कही नहीं जा सकती है। वही जान सकता है, जिसने उसको कभी भोगा है।
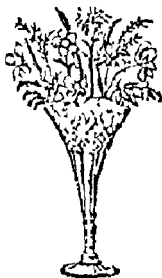
बाईसवाँ परिच्छेद।

सोनेमें सुहागा मिल गया। सिराजुद्दौला इतने दिनोंसे जिस सुयोगको ढूँढ़ रहा था, वह मिल गया। दूतने आकर नवाब अलीवर्दीको सम्वाद दिया, कि मरहटोंने फिर अत्याचार उपद्रव आरम्भ कर दिया है, प्रजावर्गमें हाहाकार मच रहा है। अलीवर्दीने और विलम्ब नहीं किया। अपनी सेना लेकर मेदिनीपुरको चल पड़े। बेगम भी साथ चलीं, किन्तु इस बार दौहित्रको साथ नहीं लिया।

इस बार सिराजने बीमारीका बहाना कर दिया। असल में मन वह कुछ और ही सोच रहा था। उसने पटना का शासन-भार जानकीरामके हाथसे अपने हाथमें लेनेके लिये मेंहदी निसार खाँ से परामर्श किया।

मेंहदी निसार खाँ सिराजके बड़े भरोसेका सेनापति था। सिराजने उससे अपने मनकी बात कह डाली। निसार खाँने भी उसको आशा देकर उत्साहित किया और चुपके चुपके सेना संग्रह करने लगा।

बन्दोबस्त ठीक होगया। सिराजने देश-भ्रमणके मिस

मुर्शिदाबाद छोड़ दिया। शरीर-रक्षक के स्वरूप में निसार-खाँ भी तीन हजार सेना लेकर साथ हुआ। नाना अथवा नानी राजधानी में नहीं हैं, सुतरां देश भ्रमणके लिये इतनी सेना लेजानेमें बाधा डालनेवाला कौन था? जगत्सेठ महताबचन्द इत्यादि जो लोग थे वह सभी उसकी कड़ी प्रकृति को जानते थे। उन लोगोंने एक बात तकके पूछने का साहस नहीं किया। सिराजका हृदय आशा और उत्साह से परिपूर्ण था, वह बड़े उत्साह से पटना की ओर चला। सबने जाना कि वह देश भ्रमण के लिये बाहर निकला है, परन्तु उसके मनकी बात किसी की समझ में न आई।

न समझ सकने का एक और भी कारण था, कि इतनी सेना साथ लेजानेमें मन्त्री अथवा और राजपुरुष कुछ सन्देह करें, इसलिये उसने चतुरता करके बेगम लुत्फ़उन्निसा को भी अपने साथ ले लिया। सिराज अनेक बार नानाके साथ युद्धमें गया था, नवाब महिषी भी प्रति बार नवाबके साथ रहती थीं, किन्तु सिराजुद्दौला कभी भी लुत्फ़उन्निसा को साथ नहीं ले गया था, इस बार लुत्फ़उन्निसा का लेजाते देखकर किसी को भी सन्देह नहीं हुआ।

पटना पहुंचतेही सिराजने अपना छद्मवेश छोड़ दिया, और राजप्रासादके भीतर प्रवेश करनेमें पहले ही, एक पत्र लिखकर जानकीरामके पास दूत भेजा। पत्र नीचे लिखे अनुसार था:—

"जानकीराम!

"पटनाका राज्य और राजसिंहासन मेरा है, मैं ही पटना का नवाब हूँ, तुम मेरे प्रतिनिधिमात्र हो, इतने दिनों तक मैंने अपने राज्यसे कोई सम्बन्ध न रक्खा सही, परन्तु अब मैं अपने स्वार्थको पददलित करनेके लिये प्रस्तुत नहीं हूँ। मैं पटनाका वास्तविक नवाब हूँ। सुतरां, मैं केवल महीनेके महीने वेतन लेकर सदैवके लिये अपना अधिकार तुम्हारे लिये छोड़ दूँ, ऐसी आशा मत करो। अभी तक जो मैंने अपने स्वार्थकी ओर ध्यान नहीं दिया है, सो केवल नानाजीके कारण। परन्तु अब उनके प्रसन्न रखने के लिये मैं अपने सुख-ऐश्वर्य्य और पदप्रतिष्ठा को नष्ट नहीं करूँगा। इस समय तुम मेरा राज्य मुझको दोगे कि नहीं? यदि न दोगे तो मेरा तुम्हारा युद्ध होगा। वीर की महिमा मैं अच्छी तरह जानता हूँ। युद्धमें मैं निरस्त न रहूँगा।

"तुमने इतने दिनों तक जो प्रतिनिधि रूपसे पटनाका शासन करके धनसञ्चय किया है, वह मैं नहीं चाहता हूँ। मेरी इच्छा केवल यही है, कि मैं अपने राज्यका आप ही शासन करूँ। अतएव मेरा पत्र पढ़ते ही पटनाका शासन-भार मेरे हाथमें देकर, अपना धन-रत्न लेकर चले आओ; नहीं तो मेरी सेना युद्धके लिये प्रस्तुत है। तुम्हारा अभिप्राय क्या है, इसीके जानने के लिये मैंने अभी तक राजप्रासाद पर आक्रमण नहीं किया है। अतएव शीघ्र और कुछ न करके, अच्छी तरह सोच

समझ कर, अपना कर्त्तव्य स्थिर करना । समरानल प्रज्वलित होने पर शीघ्र ठण्डा न होगा। उस समय मैं तुमको किसी तरह क्षमा न करूंगा, तुम्हारा सञ्चित धन भी तुमको न लेने दूंगा और तुम्हारी मुक्तिकी आशा भी न रहेगी। इति

नवाब मन्सूरुल मुल्क सिराजुद्दौला शाहकुलीखां
मिरजा मुहम्मद हैबतजङ्ग बहादुर।"

सिराजुद्दौलाका यह पत्र पढ कर, राजा जानकीरामका सिर चकरा गया। उसको इस समय क्या करना चाहिये, कौनसा पथ अवलम्बन करनेसे सब काम ठीक होंगे, इसका कुछ निर्णय वह न कर सका। यदि पटनाका शासन भार सहज ही में सिराजुद्दौलाके हाथमें दे देवे, तो अन्तमें नवाब अली वर्दी उसके ऊपर दोष रख सकते हैं, और यदि सिराजुद्दौला के आदेश की अवहेलना करे तो बहुत सम्भव है कि चञ्चल-मति सिराज युद्ध आरम्भ कर दे, जिससे उसका और राज्य दोनों ही का अनिष्ट सम्भव है। विशेष करके सिराजुद्दौलाका जैसा उद्धत स्वभाव है, उससे विवाद होजाना निश्चय है।

राजा जानकीरामने बहुत कुछ सोचा विचारा, अन्तमें यही उचित मालूम हुआ कि नवाब की अनुमतिके बिना सिराजुद्दौलाके हाथमें पटनाका शासन भार न देना ही युक्ति सङ्गत है। उसने तत्क्षण एक नम्रता सूचक पत्र लिखकर, उसीमें सिराजुद्दौलाका पत्र रख कर, एक दूत नवाबके पास भेज दिया।

राजा जानकीरामके हाथमें पटनाका शासन-भार रहने पर भी, उसकी ऐसी इच्छा न थी कि वह स्वाधीन हो जाय। वह नवाब अलीवर्दी का विश्वस्त मन्त्री और उनका एक विशेष मङ्गलाकाङ्क्षी था। लड़ाई झगड़ा उसके स्वभावमें नहीं था। इसलिये उसने बड़ी खुशामदसे सिराजुद्दौला से कहला भेजा, कि, "मैं आपका प्रतिनिधि अवश्य हूँ और पटनाके सिंहासन पर मेरा कुछ भी अधिकार नहीं है; परन्तु फिर भी नवाब बहादुरने मुझको विश्वासी और अनुगत समझकर मेरे हाथमें पटनाका शासन-भार अर्पण किया है, आपका वेतन मैंने नियत नहीं किया है, जो कुछ नवाब बहादुरने नियत कर दिया है, वही मैं देता चला जाता हूँ। अभी तक उसमें मैंने कोई परिवर्त्तन नहीं किया है। परिवर्त्तन करने को मुझमें क्षमता भी नहीं है, मेरे हाथमें पटनाका शासन-भार होने पर भी मैं नवाब बहादुरका एक भृत्यमात्र हूँ। भृत्य होकर प्रभु की अवहेला नहीं कर सकता हूँ। वास्तवमें आप ही पटनाके नवाब हैं, राज्य और राजसिंहासन आपका पैतृक धन है, और मैं आपका प्रतिनिधि मात्र हूँ, यह सब बातें मैं बहुत अच्छी तरह जानता हूँ; किन्तु जब कि नवाब साहबने मुझको प्रतिनिधि नियुक्त किया है, और शासन भार मेरे हाथमें दिया है, तो ऐसी अवस्थामें नवाब बहादुरकी अनुमतिके बिना वह भार मैं आपके हाथमें किस प्रकार अर्पण कर सकता हूँ? भृत्य होकर प्रभु की अनुमति बिना कोई काम करने की मुझमें क्षमता

नहीं है। आप कृपा करके कुछ दिन ठहर जायें, मैंने नवाब बहादुरका अभिप्राय जानने के लिये दूत भेजा है। उनकी अनुमति पाते ही, उसी क्षण मैं पटनाका शासन भार आपके हाथमें दे दूंगा, किन्तु जब तक दूत न लौटे तब तक आप मुझको क्षमा करें।"

राजा जानकीरामने दूतद्वारा बहुत कुछ अनुनय विनय की बातें सिराजुद्दौलाको कहला भेजीं, और पीछेसे सम्भव है कि सिराजुद्दौला नवाबके उत्तर की प्रतीक्षा न करके राजप्रासाद पर अधिकार करले, इस भयसे उसने दुर्गका द्वार बन्द कर लिया।

सिराजुद्दौलाको विश्वास था कि जानकीराम उसका आगमन सुनकर और पत्र पढ कर, बिना आपत्तिके पटनाका शासन भार छोड देगा। परन्तु जब उसने देखा कि उसका विश्वास भ्रमात्मक था, तो क्रोधके मारे जलने लगा। उसकी उस समय की रौद्रमूर्त्ति देखकर सेनाने समझ लिया कि युद्ध उपस्थित हुआ है। लुतफुन्निसा डर गई। दास दासी सभी भयभीत हो गये।

लुतफुन्निसाने दरिद्रके घरमें जन्म लिया था; परन्तु उसकी बुद्धि, चित्तकी दृढ़ता और हिताहित-ज्ञान असाधारण था। उच्च वंशमें जन्म लेनेसे, उच्च सहवाससे, सर्वदा सदुपदेश और सुशिक्षा पानेसे रुचि की प्रकृति जिस तरह मार्जित और उन्नत हो जाती है, लुतफुन्निसा की भी वैसी ही थी।

अपने हृदयके गुणसे गर्वित, स्पर्द्धी और घोर आत्माभिमानी सिराजके हृदयके ऊपर उसने अधिकार पा लिया था।

सिराजुद्दौलाको क्रोधसे पागल देखकर लुतफुन्निसाने विनय वचनों में कहा, "नाथ! मेरी विनती सुनो, रोष छोड़ दो। इस समय जैसी अवस्था देख रही हूँ, उससे एक प्रकारकी प्रलय हो जायगी। क्रोधके वशीभूत होकर युद्ध करनेसे निरर्थक लोगोंका चय होगा, प्रभुको क्या भृत्यके साथ युद्ध करना शोभा देता है? विशेष करके जब नवाब बहादुर वर्त्तमान हैं, तो उनसे न पूछ कर युद्ध करना उचित नहीं है। शान्त हूजिये, और जब तक नवाब बहादुरका कोई सम्वाद न आजावे तब तक ठहर जाइये।"

इसी तरह पर लुतफुन्निसाने सिराजुद्दौला को बहुत कुछ समझाया बुझाया, पैरों पर गिरकर बहुत कुछ अनुनय विनय की, किन्तु किसीसे कुछ नहीं हुआ। जानकीरामने भृत्य होकर उसकी स्त्रीके सामने उसके आदेश की अवहेलना की है, राजप्रासादमें जाने न देकर दुर्ग द्वार बन्द कर दिया है, इस अपमानके मारे वह जर्ज्जरित होगया, उसके मर्ममें आघात लगा। प्राणाधिका प्रियतमा लुतफुन्निसाका अनुरोध भी कुछ न कर सका। जानकीरामके दुर्व्यवहारका बदला लेनेके लिये उसने दृढ प्रतिज्ञा करली। उसने कहा, "लुतफुन्निसा! तुम इस विषयमें मुझसे कोई अनुरोध मत करो। इस मामले में, मैं तुम्हारे अनुरोधकी रक्षा करने में अक्षम हूँ। देखो,

जानकीराम मेरा ही प्रतिनिधि है, किन्तु नवाब की अनुमतिके बिना पटनाका शासन भार छोड़ने में असम्मत है। अतएव मैं अपना राज्य अपने ही बाहुबलसे अधिकारमें लाऊँगा। नवाबकी अनुमति का रास्ता नहीं देखूँगा। भृत्य होकर जो प्रभुका अपमान करे, आज्ञा न मानकर अपनी स्वाधीनता दिखलाना चाहे, उसको क्षमा न करना चाहिये। जानकीराम कौन है? बिहारका नवाब तो मैं हूँ। मुझको राज्यमें उप स्थित जानकर उसने कौन साहस से दुर्गका द्वार बन्द कर दिया? जुतुफुन्निसा! यदि मैं तुम्हारी बात मानकर तुम्हारे अनुरोधसे जानकीरामको इस धृष्टताको क्षमा करूँ, और अपने बाहुबलसे फिरसे अधिकारमें न लाऊँ, जानकीरामके हाथसे शासन भार न छीन लूँ तो सभी लोग इसी तरहसे आज्ञाकी अवहेलना करेंगे, हीनवीर्य और कापुरुष समझेंगे। जो लोग मेरे नामसे डर जाते हैं, वह बात सदैवके लिये जाती रहेगी। मेरी राज-शक्ति,प्रभुता एकबारगी डूब जायगी। मालूम होता है, कि इसतरह करने से फिर मैं कभी राज्यशासन न कर सकूँगा। नहीं, नहीं, भृत्यकी यह उपेक्षा और अपमान मैं कभी भी न सहूँगा। इस समय अपने बाहुबलसे पटनाका सिंहासन अपने अधिकारमें करूँगा। इससे यदि नवाब असन्तुष्ट होजायँ, तो मेरे पास इसका कुछ उपाय नहीं है।

सिराजुद्दौला किसी तरह माननेवाला नहीं है। आलकी

रामकी बातों की जितनी आलोचना करता था, उतना ही उसका क्रोधानल प्रबल होता जाता था। जब वह अपने हृदयवेग को रोक न सका, तो सेनाको लेकर किलेके तोरणद्वार पर पहुँचा और दुर्ग अधिकार करने को इच्छासे द्वार पर गोला मारनेका आदेश दिया।

सिराज तो युद्धके लिये प्रस्तुत है, परन्तु उसके साथ युद्ध करेगा कौन? राजा जानकीराम को तो लड़ना अभीष्ट ही नहीं है। नवाब अलीवर्दीने उसको विश्वासी समझकर प्रतिनिधि रूपमें शासन भार अर्पण किया है। इसलिये उसको वही काम करने होंगे, जिनसे उसका विश्वास अचल और अटूट बना रहे। नवाबकी आज्ञा बिना अपनी इच्छासे पटना का शासन भार किसीको देदे, यह अधिकार, यह स्वाधीनता उसको नहीं है, यही सब बातें सोच समझ कर वह सिराजुद्दौलाकी इच्छानुसार काम करनेमें अक्षम हुआ, किन्तु इसके लिये वह लड़ेगा क्यों?

जब सिराजुद्दौलासे युद्ध न हुआ, तो उसने दुर्गका द्वार तोड़ने के लिये अजस्र गोला वर्षण करना आरम्भ किया, परन्तु इससे कुछ भी न हुआ, द्वार नहीं टूटा। गोला बारूद जो कुछ साथमें लाया था, सब चुक गया। जिसके उत्साहसे उत्साहित होकर वह पटना आया था, वही प्रधान सेनापति और उत्साहदाता मेंहदी निसार खाँ अपनी ही असावधानतासे अपने ही गोले की चोट से मर गया। सिराजुद्दौलाका आशा

भरोसा सभी जाता रहा। उसने सेनाको दुर्गद्वार अवरोध करनेका आदेश देकर, रोष और क्षोभसे जर्जरित होकर, लुत्फुन्निसाको लेकर एक सामान्य पर्णकुटीमें आश्रय लिया।

तेईसवाँ परिच्छेद।

यथा समय दूत मेदिनीपुर पहुँचा और नवाब अलीवर्दीको जानकीरामका पत्र प्रदान किया। नवाब पत्र पढकर बड़े चिन्ताकुल हुए। यद्यपि सिराजुद्दौलाने जानकीरामको बड़े उद्धतभावमें पत्र लिखा था, किन्तु नवाब पत्र पढ़कर स्नेहकी पुतली सिराजुद्दौला पर कुछ असन्तुष्ट न हुए। अवाध्यताके लिये भी किसी प्रकारका क्रोध उदय नहीं हुआ। वर युद्ध विग्रहमें सिराजका कोई अमङ्गल न हो, इस आशङ्का से वह अस्थिर हो उठे। अब उनको मरहट्टों का दमन अच्छा नहीं लगता था। प्रजाका रोना उनके ऊपर कुछ भी असर न करता था। राज्यकी शान्ति कामनामें मन न लगता था। सब जैसा का तैसा पड़ा रहा। उन्होंने पत्र पढ़ते ही बेगमको साथ लेकर और कुछ शरीर रक्षकों के साथ पटना को यात्रा की।

पटना पहुँचकर हाथी से उतरने के पहिले ही नवाबने सिराजुद्दौला का समाचार पूछा। जब जान लिया कि वह

अच्छी तरह है और अक्षत शरीर से है, और युद्ध भी नहीं हुआ है, तब वह निश्चिन्त हुए और भय दूर हुआ, किन्तु स्नेहाधार दौहित्र को देखने के लिये व्याकुल हो गये और अनुचर द्वारा उसको बुला भेजा।

नानाजी आया हुआ सुनकर सिराज की प्रतिज्ञा न मालूम कहाँ गई। वह अकेला निरस्त्र नवाबके निकट चला गया और पैरोंपर गिरकर पैरोंका चुम्बन किया। अलीवर्दी भी स्नेहकी पुतली सिराजुद्दौला को अक्षत शरीर पाकर आनन्द से अधीर हो गये। बड़े प्रेमसे उसको गोदमें बैठा लिया और स्नेहसे बारम्बार उसका मुख चुम्बन करने लगे। आँखोंसे आनन्दाश्रु निकलने लगे। सिराजुद्दौला भी नाना और नानी को देखकर रोने लगा। आँखोंके जलसे उसका वक्षस्थल भीगने लगा। एक ओर आनन्दाश्रु थे, दूसरा ओर विषादाश्रु थे। दोनों की आँसुओं की धारासे दोनोंका मनोभाव एक हो गया। एक ओर स्नेह और प्रेम, दूसरी ओर श्रद्धा-भक्ति प्रबल हो उठी।

आनन्द के कारण नवाब की वाक्‌शक्ति बन्द होगई और अभिमान से सिराजुद्दौला का कण्ठ रुद्ध होगया। दोनों उस समय चुपचाप थे।

नवाब मन्त्रियों इस निस्तब्धता को भंग करके बोले— "नवाब बहादुर! आप सिराज को पाकर केवल आनन्द उपभोग कर रहे हैं, किन्तु देखते नहीं हैं कि सिराज केवल

अभिमान के अश्रु विसर्जन कर रहा है। पहिले सिराजको सान्त्वना कीजिये, फिर आनन्द कीजियेगा।"

बेगमकी बात सुनकर नवाब की निद्रा भंग हुई, उन्होंने अपने अँगरखे से सिराज के आँसू पोंछकर कहा,—"सिराज! शान्त होओ, रोओ मत। तुम बङ्गाल-बिहार और उड़ीसा के भावी नवाब हो! आँखोंसे जल निकाल कर अमंगल-सूचना मत करो।"

सिराजुद्दौला बड़ा अभिमानी था। सामान्य सान्त्वना से उसको क्या होगा? हृदय के भीतर जो अग्नि है, वह सहज बुझनेवाली नहीं है, इसीसे नवाब की सान्त्वना का कुछ फल नहीं हुआ।

अलीवर्दीने व्यग्र होकर पूछा, "सिराज! रोते क्यों हो भाई? कहो क्या हुआ? मनकी बात न कहनेसे मैं किस प्रकार समझ सकता हूँ?"

बड़े कष्टसे सिराजुद्दौला का कण्ठ खुला। उसने कहा, "होनेमें और शेष ही क्या रह गया है? जिस अपमान की कभी कल्पना भी नहीं की थी, वह अपमान मेरे भाग्यमें आया। जो भृत्य प्रभुका अपमान करे, उससे बढ़कर और क्या अपमान हो सकता है? आप जितना मुझको चाहते हैं, वह मुझे भली प्रकार ज्ञात है। आपको और अधिक स्नेह दिखाने की आवश्यकता नहीं है, अबमें आपके प्रलो-भनमें मुग्ध न होऊँगा। आपकी सब बातें मौखिक ही हैं।"

अलीवर्दी—सिराज! आज तुम यह बातें क्यों कह रहे हो? मैंने तुम्हारे साथ कौनसा मौखिक आचरण किया है?

अभिमानके दारुण विषसे सिराजुद्दौला का सब शरीर जल रहा था, वह उस ज्वालाको सह न सका। आत्म सम्वरणमें असमर्थ होकर बोला, "मेरे लिये आपका जो काम है, वह सब मौखिक है। नहीं तो पटना का सिंहासन मुझको देकर, शासन भार जानकीराम के हाथमें क्यों अर्पण किया? सिंहासन मैंने किस लिये पाया, और शासन कार्य्यसे क्यों वञ्चित रहा? जानकीराम मेरा प्रतिनिधि होनेपर भी, मेरा राज्य, मेरा राजप्रासाद, मेरा राज कोष मुझको प्रदान करनेमें क्यों असम्मत है? और किस कारणसे मुझको दुर्गमें नहीं जाने दिया और द्वार बन्द कर लिया? यदि आप मुझको भीतरसे चाहते, तो पटना के सिंहासन पर मुझे बैठाकर फिर उसे क्यों ले लेते? मुखमें आहार देकर फिर छीन लेना, क्या यही आपका स्नेह है? मैं नितान्त ही अबोध हूं, इसी से इतने दिनों तक आपके स्नेहके धोखेमें भूला रहा। अब मैं आपके कृत्रिम प्रेममें न भूलूंगा, और आपकी कोई बात न सुनूंगा। यदि पटना का शासन भार मुझको दें तो अच्छा है, नहीं तो आज आपके सामने ही मैं अपने प्राण विसर्जन करता हूं।"

अलीवर्दी इस बातको सुनकर कुछ हँसे और बोले "सिराज! तुम यदि राज्यशासनमें समर्थ होओ, तो केवल

पटना ही का राज्य, क्यों, मैं तुमको बंगाल-बिहार और उड़ीसा का शासनभार, प्रदान कर सकता हूँ। भाई सिराज! क्या तुम समझती हो कि राज्य-शासन एक सामान्य काम है? जिसने कभी भी राज्य-शासनका गुरुभार अपने मस्तक पर लिया है, वही जानता है कि इसका गुरुत्व कितना अधिक है, इस काममें शान्ति नहीं है, चिन्ताको विराम नहीं है, उत्कण्ठाकी भी सीमा नहीं है। लोग समझते हैं कि राजा कितना सुखी है। किन्तु सामान्य दरिद्र प्रजा जो सुखभोग करती है, उसके सहस्रांशका सहस्रांश भी ससागरा-धराके अधीश्वरों को नहीं मिलता है। भाई! तुम्हारी इस समय किशोर अवस्था है, आमोद-प्रमोद का समय है। इस नवीन वयसमें तुम्हारे कन्धोंपर राज्यका गुरुभार इसीलिये नहीं रक्खा है, कि पीछे तुम बोझ न उठा सको और विरक्त हो जाओ। किन्तु जब तुम उसको सामान्य समझकर उठानेके अभिलाषी हो, तो राज्य-आकांक्षामें जीवन विसर्जन क्यों करते हो? आज ही मैं तुमको बंगाल बिहार और उड़ीसा का युवराज करता हूँ।"

इधर नवाब का आगमन-सम्वाद सुनकर राजा जानकी-रामने दुर्ग का द्वार खोलने का आदेश दिया और स्वयं नवाब के पास आया।

किलेका द्वार खुला हुआ पाकर सिराजकी सेना महा आनन्द से, बड़ा कोलाहल करती हुई, किलेमें घुसी।

सिराजुद्दौलाने सेनाको किलेमें उपद्रव करने के लिये निषेध कर दिया। किन्तु उसने राजा जानकीराम को ज्योंहीं देखा, त्योंहीं मानों आगमें घीकी तरह क्रोधसे जल उठा और तर्जन गर्जन के साथ कहा,—"रे जम्बुक! आश्रयदाता को देखकर गुफासे बाहर निकला है?"

इस बात पर विरक्त होकर अलीवर्दीने कहा, "छि: छि: सिराज! क्या तुम पागल हो गये हो? किसके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये, किसके साथ कैसी बात करनी चाहिये, क्या तुम यह भी भूल गये हो? बूढ़े राजा जानकीराम पर अकारण क्यों क्रुद्ध होते हो! बतलाओ तो, जानकीराम का क्या अपराध है?"

सिराज—सब अपराध जानकीराम का ही है। मेरा प्रतिनिधि होकर, जब यह मेरे राज्यको मुझको देनेमें सम्मत नहीं हुआ, तो इसका नहीं तो और किसका दोष है? क्या मेरा दोष है? पटना जानकीराम का पैतृक राज्य तो नहीं है?

सिराजुद्दौला को क्रोधमें उन्मत्त देखकर बूढ़े जानकीराम भीतर ही भीतर बड़े भयभीत हुए। उनके मुखसे न बात निकलती थी, न आंखोंके पलक झपकते थे। वह मन ही मन विपद्भञ्जन मधुसूदन को याद करने लगे।

अली—सिराज! तुम जानकीराम को अकारण दोषी क्यों बनाते हो? यद्यपि जानकीराम तुम्हारा प्रतिनिधि है, किन्तु

जब कि मैंने उसके हाथमें पटना का शासन-भार अर्पण किया है, तो मेरी अनुमति बिना वह किस प्रकार उस भार को तुम्हारे हाथमें दे सकता है? ऐसा करनेसे उसको राजाज्ञा उल्लङ्घन करनी पड़ती। उसने ऐसा न करके अपना कर्त्तव्य ही पालन किया है। विशेष करके यह भी दिखलाया है, कि भृत्यको प्रभुकी आज्ञा किस भावसे पालन करनी चाहिये। सिराज! तुम हठको छोड़कर न्याय-चक्षुसे देखो, कि यदि तुम अपने किसी भृत्यको कोई भारी काम सौंपो, और यदि वह तुम्हारे आदेशका उल्लङ्घन करे, तो तुम उससे सन्तुष्ट होते कि असन्तुष्ट होते।

सिराज—इस बातको मैं स्वीकार करता हूँ, कि आपकी अनुमति बिना पटना का शासन-भार वह नहीं दे सकता था, परन्तु उसने मुझको क़िलेके भीतर क्यों नहीं आने दिया? जिसके कारण मुझको एक सामान्य पर्णकुटीमें ठहरना पड़ा। क्या इसमें भी जानकीराम दोषी नहीं है?

अली—हाँ, इसमें जानकीराम का अन्याय अवश्य है। उसको उचित था, कि आगमन का सम्वाद पाते ही तुम्हारी अभ्यर्थना करके आदरके साथ राजप्रासादमें स्थान देता।

राजा जानकीराम भयकम्पित स्वरसे बोले, "नवाब बहादुर! यदि आप सूक्ष्मरूपसे विचार करेंगे, तो मालूम हो जायगा कि इसमें भी मैं सम्पूर्णरूपसे निर्दोष हूँ। राज-

कुमारने जो पत्र मुझको लिखा था, उसको पढ़कर कौनसे साहससे मैं उनको राजप्रासादमें स्थान देता? यदि उस समय मैं राजकुमारको क़िलेके भीतर स्थान देता, तो क्या वह मेरे हाथसे पटना का शासनभार न छीन लेते? और तब क्या मुझसे नवाब बहादुर की आज्ञाके उल्लङ्घन का अपराध न होता? प्रभुके सामने भृत्य पद-पद पर अपराधी है। मैंने राजसम्मानका तनिक भी अपव्यवहार नहीं किया है। यद्यपि भयके कारण राजकुमारको क़िलेके भीतर आने देनेका साहस नहीं हुआ हूं, परन्तु जिससे उनको किसी तरहका कष्ट न होने पावे, यथासाध्य उसी तरह की चेष्टा की गई है। उनका और उनके मेलियों का वासस्थान और खाने पीने का सामान सभी मैंने इकट्ठा करा दिया है। कुमारने उसमें से उपेक्षा करके किसीको भी ग्रहण नहीं किया।"

नवाब—सिराज! जो कुछ होना था हो गया, गये हुए का सोच करना वृथा है। वृद्ध जानकीराम प्रभु परायण है, विश्वासी है और हमारा मङ्गलाकांक्षी है। ऐसे अनुगत पर रुष्ट होना प्रभुको उचित नहीं है। विशेषकर जब मैं तुमको पटना के सिंहासन के बदले बङ्गाल, बिहार और उड़ीसा के युवराज पदपर अभिषिक्त करता हूं, तब वृथा जानकीराम के प्रति कोप क्यों प्रकाश करते हो? चलो, आज सबके सामने तुमको युवराज बनाऊंगा।

नवाब अलीवर्दी ने राजा जानकीराम को पटना के किलेमें दरबारके आयोजन का आदेश दिया और उस प्रदेशके राजा महाराजा और ज़मीन्दार इत्यादि, गण्य-मान्य लोगों को बुलाने को कह दिया। प्रभुपरायण राजा जानकीरामने तत्क्षण यह काम पूरा कर दिया। बड़े समारोहसे दरबार हुआ। राजा, महाराजा, जमीन्दार प्रजावर्ग, और वणिक-गण सभी उस दरबारमें आये। सहस्रों मनुष्यों से दर बार भर गया।

दरबारमें राजासन पहिले ही से प्रस्तुत था। नवाब अलीवर्दी उसी पर बैठे। पास ही दूसरे आसनपर सिराजुद्दौला बैठा।

नवाब अलीवर्दीने धीरे धीरे कहा, "महाराजा, राजा, ज़मीन्दार, प्रजावर्ग और वणिक-मण्डली! आप सब लोग इस दरबार में उपस्थित हैं। मैं अब वृद्ध हुआ हूँ, मेरे जीवनके दिन थोड़े रह गये हैं। मालूम नहीं, इस नश्वर देह को छोड़कर कब चला जाना पड़े। जब कि मृत्युकी कुछ भी स्थिरता नहीं है, तो इस बङ्गाल, बिहार और उड़ीसाके सिंहासन पर कौन बैठेगा, कौन इसका वास्तविक प्रभु होगा, यह बात सबको पहिले ही से जान लेना उचित है। इसकी लिये मैं अपने ही सामने, आप लोगोंके भावी नवाब, सिराजुद्दौला को बङ्गाल, बिहार और उड़ीसा का युवराज बनाता हूँ। आजसे आप सब लोग सिराजुद्दौला को युवराज समझकर,

उसके प्रति युवराज के उपयुक्त सम्मान प्रदर्शन करके उसका आदेश पालन कीजियेगा।" यह कहकर अलीवर्दी ने सिराजुद्दौलाको अपने पास बैठा लिया। सिराजद्दौला बङ्गाल, बिहार और उड़ीसा के युवराज पद पर अभिषिक्त हुआ।

दूसरा खण्ड।

पहला परिच्छेद।

सिराजुद्दौला इस समय बङ्गाल, बिहार और उड़ीसा का युवराज है। अब सभी उसको 'युवराज' कहकर सम्बोधन करते हैं। नवाब अलीवर्दी भी समय समय पर उसके हाथमें राजकार्य्य का भार अर्पण करके राज्यशासन और प्रजापालनके विधि नियम की शिक्षा देने लगे और अपने न रहने पर सिराज इस कामको कितनी अच्छी तरह पर कर सकेगा, इस की भी परीक्षा करने लगे। सिराजुद्दौला इस समय दरबारमें नानाके पास बैठ कर शासन पालन इत्यादि की पद्धति सीखता है।

यौवराज से अभिषिक्त होकर सिराजुद्दौला जब तब अँगरेज़ सौदागरोंके नाना प्रकार के दोष दिखा कर, जिससे ईष्ट इण्डिया कम्पनी राज्यमें बिना कर के दिये वाणिज्य न करने पावे और जिससे कि वह बङ्गालसे निकाल दी जावे,

नवाबको छेड़ने लगा। किन्तु प्रवीण नवाब, तरलबुद्धि सिराजुद्दौलाकी इन बातों पर कान नहीं देते थे।

सिराजुद्दौला किसी तरह अँगरेजोंकी उपेक्षा न कर सकता था। अलीवर्दी इसके लिये सिराजको बहुत कुछ समझाते और निरस्त रहनेका उपदेश देते थे, किन्तु सिराजुद्दौला उनके उस उपदेश पर कुछ भी ध्यान न देता था। उसको ईस्ट इण्डिया कम्पनी से पहिले ही द्वेष थो, तिस पर बिना कर दिये वाणिज्य करती थी, इससे और भी कम्पनीका गर्व हो गया। इसीलिये वह नानाके उपदेश और निषेध करने पर भी अँगरेज सौदागरोंको बङ्गालसे निकाल देनेका सङ्कल्प त्याग न सका। उसने प्रण किया था कि या तो अँगरेज सौदागरोंसे कर वसूल किया जाय, अथवा उनको इस देशसे निकाल दिया जाय। परन्तु सत्यकी सदा जय होती है, यह बात उसको मालूम न थी।

सिराज समझता था कि अँगरेज सौदागरोंके कारण उसके न्यायका पाधात पहुंचता है। इसी कारण वह उनको विद्वेष की आंखसे देखता था और उनको बङ्गाल से निकाल देनेके लिये आप ही आप पेटा उत्पन्न हो जाता था। किन्तु युवराज होने पर भी, वह नवाब के मतके विरुद्ध कोई काम नहीं कर सकता था।

सिराजुद्दौला अँगरेज सौदागरोंके प्रति इस विद्वेषके अनेक कई कारण बतलाता था। जिनमें से प्रधान कारण यही था

कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी विना कर दिये क्यों वाणिज्य करती है। यद्यपि उक्त कम्पनीने दिल्लीश्वर शाहजहाँ से विना कर दिये वाणिज्य करनेका अनुमति पत्र पाया था; परन्तु वह अपने उद्धत स्वभावके आगे दिल्लीश्वर को भी कुछ नहीं समझता था। विशेष करके, सिराजुद्दौलाके नामसे मंसूरगञ्ज नामका एक गञ्ज स्थापित हुआ था और उसकी सारी आय हीरा झीलके प्रासादके बननेके समयसे उसी के हाथ रहती थी। जिसमें उसने मनमाना कर लगा दिया था और प्रजाको लूटता था। उसकी आय भी उक्त कम्पनीके व्यवसायसे कम हुआ करती थी। तो क्या ऐसी अवस्थामें वह चुप रह सकता था? जब उसने देखा कि गञ्जकी आय कम हो गई है, तो अँगरेज़ोंकी ओर से और भी विद्वेष बढ़ गया और यही चेष्टा करने लगा कि किसी प्रकार ईस्ट इण्डिया कम्पनी बङ्गालसे निकाल दी जाय।

विज्ञ बहुदर्शी प्रवीण नवाब दौहित्र को सतर्क करनेके लिये समय समय पर उपदेशके छलसे कहा करते, कि "जो और मनुष्योंके साथ कलह करता है, उसका कभी भला नहीं होता है। सबके साथमें सद्भाव ही रखना उन्नति का मूल है।"

सिराजुद्दौलाकी अपरिणत बुद्धि, विचक्षण नानाके इस गम्भीर उपदेशका अर्थ न समझ सकती थी। उसका विश्वास और धारणा एक तरह की थी और उसके नानाका विश्वास

और आचार अन्य रूपकी थी। वह स्वर्दो और उद्धत था, उसके नाना नितान्त निरीह और विनयी थे। नाना जिस कामको बहुत आगा पीछा देखकर करते थे, सिराज उसीको बिना सोचे समझे एक दम कर डालता था। इस अवस्थामें नाना और दौहित्रके बीचमें राज्यके शासन सम्बन्ध में यदि मत भेद हो तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? सिराज अवसर पाते ही ईष्ट इण्डिया कम्पनीके विरुद्ध तरह तरहके अभियोग उपस्थित करके, उनको बङ्गालसे निकाल देनेका बन्दोबस्त करनेके लिये वृद्ध नवाब को तङ्ग किया करता था, परन्तु वृद्ध नवाबके चित्तमें यह बात न समाती थी। सिराज अँगरेज-सौदागरों को नितान्त ही सामान्य समझता था। यह देखकर नवाब कहते थे,—"यदि तुम ऐसा ही समझते हो, तो तुमको यह भी समझना चाहिये कि एक प्रकाण्ड मनुष्य भी एक क्षुद्र चींटीके काटनेसे विचलित हो सकता है, जबकि वह निरंकुश सताई जावे।'

दूसरा परिच्छेद ।

दर्बारगृह आज लोगोंसे भरा हुआ है । नाना देशके, नाना जातिके वणिक दर्बारमें उपस्थित हैं । सभी हाथ जोड़े खड़े हैं । ईस्ट इण्डिया कम्पनीने उनका सौदागरोंके सामानसे भरा हुआ जहाज़ लूट लिया है । उनके बहुत से रुपयोंका माल ले लिया है । इसीसे सब विचार-प्रार्थी होकर नवाबके दर्बार में आये हैं । ऐसा षड्यन्त्र सिराजने उन सौदागरोंसे कहकर खड़ा किया है । उसका मुख्य उद्देश्य यही था, कि किसी उपायसे नाना को उत्तेजित करके उनके विरुद्ध लड़ाई खड़ी करवाये, यही उसका प्रधान लक्ष्य था । हुगलीके सय्यद, मुग़ल, आरमेनियन इत्यादि वणिकोंने आकर नवाब बहादुरसे कहा, कि ईस्ट इण्डिया कम्पनीने उनके सौदागरोंके सामान के पाँच जहाज़ लूट लिये हैं ।

यह सम्वाद पाते ही सिराजुद्दौला बड़ा प्रसन्न हुआ । उसने मन ही मन सोचा कि इस बार नानाको वणिक कम्पनीके विरुद्ध उत्तेजित करनेका अच्छा अवसर मिल गया है । अली-वर्दी से कहा, "नानाजी ! अँगरेज वणिक-कम्पनीके अत्याचार

की बातें आपने सुन लीं? देशमें राजा है, विचार होता है, शासन दण्ड भी होता है, परन्तु जब इन सब बातोंकी अवहेलना करके वह लोग डाकुओंकी तरह बिना खड़ीयके दूसरोंका द्रव्य लूट सकते हैं, तो इससे मालूम होता है कि वह राजाको ग्राह्य नहीं करते हैं और शासन दण्डका उनको भय नहीं है। उन्होंने निश्चय यही बात सोच ली है, कि देश में न राजा है और न विचार है, नहीं तो उन्होंने कौनसे साहससे दूसरोंके अज्ञात लूट लिये? आप इन लोगोंके शासन विषयमें नितान्त उदासीन हैं; नहीं तो राजाके साथ छल चातुरी करके ये बङ्गालमें वाणिज्य कर सकते हैं? कैसी भयानक पराक्रमता है! यह लोग सामान्य वणिक हैं, किन्तु इनका काम देखकर बोध होता है कि मानों ये भी देशके राजा हैं और इसी बातका क्या ठीक है कि सुयोग पाकर यह लोग राज-सिंहासन नहीं छीन लेंगे, यह क्या इन लोगोंका दुःसाहस नहीं है?

अलीवर्दी—अंगरेज वणिकोंने जो कुछ किया है, यदि वह सब सत्य हो, तो कहना होगा कि वह राजा, विचार और शासनदण्ड किसीको भी नहीं मानते हैं; किन्तु वास्तवमें वह दोषी हैं कि नहीं, वास्तवमें उन्होंने यह काम किया है कि नहीं, इस बातका प्रमाण लेना आवश्यक है। इससे पहिले क्रोध अथवा विद्वेषके वशीभूत होकर सहसा कुछ कर डालना उचित नहीं है।

नवाब अलीवर्दी खाँ का दरबार।
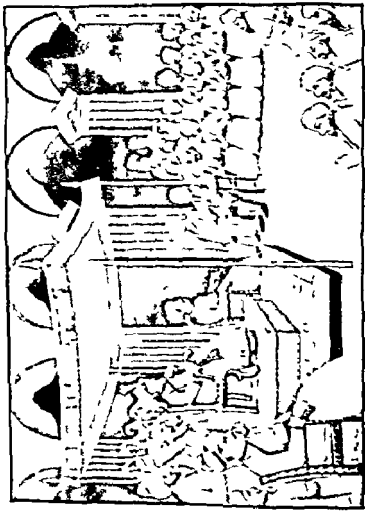
नानाके मुखसे यह बातें सुनकर सिराजुद्दौला बड़ा अप्रसन्न हुआ और कहा, "नानाजी! वणिक कम्पनीने जहाज़ अवश्य लूटे हैं, इस बातको मैं निश्चय रूपसे कह सकता हूँ। मेरी बात सुनिये, आप अब भी इन लोगोंको बङ्गालसे निकाल दिये जानेका हुक्म दे दें, नहीं तो अन्तमें इन लोगोंका शासन करना बड़ा कठिन हो जायगा।"

इसी समय एएटनी नामक एक बणिक बोल उठा, "नवाब बहादुर! अँगरेज़ बणिकोंने मुगल सैयद, आरमीनियन इत्यादि वणिकोंके जहाज़ लूट लिये हैं, मैं इस बातका साची हूँ।"

सिराजुद्दौलाने प्रसन्न होकर कहा, "नानाजी! सुनिये, वणिक श्रेष्ठ एएटनी क्या कहता है।"

अलीवर्दी—एएटनी! क्या तुम सत्य कहते हो कि अँगरेज़ वणिकोंने सैयद, मुगल और आरमीनियन लोगोंके सौदागरीके जहाज़ लूट लिये हैं?

एएटनीने हाथ जोड़कर कहा, "धर्मावतार! आप विचार-पति हैं,दण्डमण्डके कर्त्ता हैं। आपके सामने किसी के ऊपर मिथ्या दोष लगा देना, ऐसा दुःसाहस मैं नहीं कर सकता हूँ। अँगरेज़ वणिक विचार मानते नहीं हैं, शासनका भय करते नहीं हैं। परन्तु क्या इसी तरह हम लोग भी हुजूरके शासन का उल्लङ्घन कर सकते हैं? नवाब बहादुर! अँगरेज़ बणिकों के साहसकी बात, अत्याचारका विषय क्या कहूँ? मैंने एक जहाजमें मेरा कई लाखका सौदागरीका सामान भर रखा था,

जिसमें नवाब बहादुरकी भेटके लिये भी कई एक महामूल्य भेंटकी वस्तुएँ थीं, अँगरेजोंने उस जहाज़ तक को लूट लिया है। मैं भी मय्यद, मुगल और आरमीनियनकी तरफ विचार-प्रार्थी होकर आपके द्वार पर उपस्थित हुआ हूँ। आप देशके राजा हैं, विचारपति हैं, दण्डमुण्डके कर्त्ता और असहायके सहाय हैं। मेरे इस अभियोगका सुविचार करें।"

यह सुनकर सिराजुद्दौला मन ही मन अपनेही पर बड़ा प्रसन्न हुआ, कि जैसा सिखाया था उससे कहीं बढ़कर उसने कर दिखाया। ऊपरसे क्रोधित होकर दांतसे दांत खटकटा कर बोला, "क्या अँगरेज वणिकोंका इतना साहस है कि जो द्रव्य राजाके लिये आ रहा था, वह भी लूट लिया? क्या उनको मालूम नहीं है कि सिराजुद्दौला अभी जीवित है। मैं अभी उनका यथासर्वस्व राज भाण्डारमें लेकर उनको बङ्गाल देशसे, भेड़ बकरीकी तरह, निकाल दूँगा। अँगरेज़ सौदागर निश्चय यही समझ रहे हैं, कि नवाब अलीवर्दी नितान्त ही निस्तेज, भीरु और कापुरुष है, नहीं तो सामान्य वणिक होने पर किस साहससे राजाकी भेंटको लूट ले गये? मैं इसी समय उनको उचित दण्ड दूँगा और किसी प्रकार क्षमा नहीं करूँगा। क्षमा करते रहनेसे ही यह सामान्य वणिक ऐसे साहसी हो गये हैं। मैं इसी समय उनको हथकड़ी बेड़ी डालकर कैद करूँगा और किसी की कोई बात न सुनूँगा।" कहते कहते सिराज गोस्सेमें उठ खड़ा हुआ और सेनापति

यारलतीफ़, मीरमदन, मोहनलाल और मीरजाफ़र इत्यादि को चिल्लाकर बुलाया और कहा, "तुमलोग शीघ्र ही सेना तय्यार करो, आज अँगरेज़ वणिकोंको उचित शिक्षा दूँगा।"

सिराजुद्दौलाको क्रोधसे पागल और रणोद्यत देखकर अलीवर्दी सान्त्वनाजनित वाक्योंमें बोले, "सिराज! क्रोधके वशीभूत होकर सहसा युद्ध अथवा ऐसा ही कोई काम कर बैठना राज्योचित धर्म्म नहीं है। यद्यपि अँगरेज़ सौदागरोंने सैयद, मुगल, आरमीनियन और एण्टनी इत्यादि वणिकोंके सामानसे भरे हुए जहाज़ लूट लिये हैं; किन्तु उन लोगोंसे एक बार पूछ लेना उचित है, कि वह लोग उस सामानको ले गये हैं कि नहीं; और यदि ले जाना ही निश्चय हो, तो वह उस सामानको अथवा उसका उचित मूल्य देनेको सम्मत हैं कि नहीं; यदि असम्मत हों, तो उस समय उनके दमन करनेके लिये जो कर्त्तव्य हो उसको करना। इस समय मेरी बात सुनो, शान्त हो जाओ। जिस काममें कोई जन साधारण दोषारोपण न कर सके, वही करना अनुमोदनीय है।"

सिराजुद्दौला नानाके इस निषेधसे तत्काल अँगरेज़ वणिकों के विरुद्ध युद्धयात्रा करनेसे रुक गया; परन्तु कुचले हुए काल भुजङ्गकी तरह तर्जन-गर्जन करके बोला, "जो राजाके राजदण्ड के प्रति अनायास ही उपेक्षा दिखाता है, उससे कौन सी बात पूछना आवश्यक है? आपकी इस दयालुतासे अँगरेज़-सौदागर-कम्पनी क्रमशः बल पकड़ती जाती है।"

अलीवर्दी—सिराज! तुम सत्य कहते हो; किन्तु मैं विचारपति होकर अविचारका काम नहीं कर सकता हूँ।

अलीवर्दी नितान्त ही निरीह स्वभावके मनुष्य थे, प्रजाके हितैषी और धर्मपरायण नरपति थे। क्या हिन्दू, क्या मुसल्मान, क्या दूसरी जाति, वह सबको ही स्नेहकी आँखसे देखते थे। किसी भी धर्म्म पर उनकी अश्रद्धा नहीं थी और न किसी धर्म से विद्वेष रखते थे। वह सब विषयोंमें सच्चे और प्रधान प्रधान प्रतिष्ठित मनुष्योंसे मन्त्रणा करके काम करते थे। विशेषकर, जगत्सेठ फतहचन्द को वह बहुत मानते थे। किसी कामको फतहचन्दसे परामर्श किये बिना नहीं करते थे। इन्हीं सब कारणोंसे राजा, महाराजा, जमीन्दार, उमराव और सभी इत्यादि गख्यमान्य लोग, सभी नवाब अलीवर्दी के हिताकांक्षी थे और सभी नवाबके सिंहासनको अक्षुन्न रखनेके लिये प्राण-पणसे यत्न करते थे।

सन् १७४४ ईसवीमें फतहचन्दकी मृत्यु हुई। फतहचन्द से बढ़कर नवाबका हितैषी और अनुरक्त कोई और भी था कि नहीं, इसमें सन्देह है। उनकी मृत्युसे नवाब अलीवर्दीको बड़ी व्यथा हुई।

जगत्सेठ फतहचन्दकी मृत्युके पीछे, नवाब अलीवर्दी ने उनके पौत्र जगत्सेठ महताबचन्द को पितामह का पद प्रदान किया, और तभीसे वह फतहचन्दकी तरह अनेक विषयोंमें महताबचन्द से मन्त्रणा परामर्श लिया करते थे।

अलीवर्दीने इन्हीं महताबचन्दसे जिज्ञासा की कि, "सेठजी! इस समय क्या करना चाहिये? ईस्ट इण्डिया कम्पनीको इस सारे द्रव्यकी चतिपूर्ण करनेके लिये लिखा जाय, अथवा उन लोगोंको पकड़ कर ले आनेके लिये सेना भेजी जाय?"

जगत्सेठ महताबचन्दने कुछ देर सोचकर कहा, "पहिले ईस्ट इण्डिया कम्पनीको इस सब रुपयेकी चतिके पूरा करनेके लिये लिखा जाना चाहिये। यदि सहज ही में वह चति पूरी करनेके लिये सम्मत हो जायंगे, तो निरर्थक लड़ाई झगड़ा न करना पड़ेगा। परन्तु जहाँ तक मैंने सुना है, यह बात सर्वथा निर्मूल ही मालूम होती है, जैसी कि एण्टनी प्रभृति सौदागरों ने कही है; क्योंकि ईस्ट इण्डिया कम्पनी ऐसी उद्दण्ड नहीं हो गई है जैसा इन लोगोंका कथन है।"

अलीवर्दी—मेरी भी यही इच्छा है, कि इस बात की जाँच कर लूँ। सहसा विवादमें प्रवृत्त होना किसी प्रकार उचित नहीं है। विवाद करनेमें कुछ देर नहीं लगती है, किन्तु किसी के साथ मित्रता करनेके लिये बहुत समय चाहिये। सिराज बालक है, कुछ जानता नहीं है। युद्ध करनेसे कितना रुपया और कितनी सेनाका चय होता है। जो राजा सर्वदा अकारण ही युद्ध-विग्रहमें लिप्त रहता है, वह कभी भी शान्ति लाभ में समर्थ नहीं होता है।

सिराजुद्दौलाने सोच रक्खा था, कि अब की बार अँगरेज सौदागरोंको सदैवके लिये बङ्गालसे निकाल दूँगा, किन्तु जब

नवाबने उसके मतका किसी तरह अनुमोदन नहीं किया, तो वह निराश और भग्नोत्साह होकर क्रुद्ध होता हुआ शीघ्रतासे दरबारके बाहर चला गया।

अन्तमें यह निश्चय ही स्थिर हुआ। नवाबने अँगरेज़ोंके कलकत्तेके कर्मचारी बारवेल साहबको एक पत्र लिखा। पत्र इस प्रकार था:—

तुमने मुगलोंके सैयद, मुगल, आरमीनियन इत्यादि वणिकों के ऊपर अत्याचार करके उन लोगोंके कई लाख रुपयों के सौदागरीके सामानसे भरे कई जहाज़ लूट लिये हैं, और एफ़नी नामक एक वणिक हमारे वास्ते भेंट देनेको बहुत सा बहुमूल्य सामान ला रहा था, तुम लोगोंने उसका जहाज़ भी लूट लिया है। इन लोगोंने तुम्हारे नाम पर दरबारमें अभियोग उपस्थित किया है। हमारा विश्वास है, कि यह सब जहाज़ तुमने लूट लिये हैं। अतएव पत्रको पढ़ते ही यदि तुम हमारे आदेशसे इस क्षतिको पूरा करके न दोगे, तो शीघ्र ही तुम्हारे ऊपर कठिन दण्ड-आज्ञा प्रचारित की जायगी। इति। नवाब अलीवर्दी खां।

पत्र शीघ्र ही बारवेन साहबके पास भेज दिया गया।

तीसरा परिच्छेद ।

सन् १७४८ ईसवीकी नवीं जनवरीको नवाबका यह आदेश-पत्र कलकत्तेके बारवेल साहबके पास पहुँचा। पत्र-पाठ करते ही उनके मस्तक पर मानों आकाश टूट पड़ा। पत्रका हाल वहाँ जितने अँगरेज़ थे सबको सुनाया गया और उसके सम्बन्ध में क्या करना चाहिये, इसके लिये सभा बैठी। वाट्स, हालवेल, जानवुड, मैनिहाम, स्काट, डाक्टर फोर्थ, गवर्नर ड्रेक इत्यादि अँगरेज़ोंने मिलकर गुप्त मन्त्रणा की। बारवेल साहब प्रथम वक्ता बने। उन्होंने कहा, "नवाबके दरबारसे जो पत्र आया है, उसका विषय तो आप सब लोग सुन ही चुके हैं। अब क्या करना चाहिये? यह झूठा कलङ्क हमारे सिर पर सिराजुद्दौलाने लगाया है। परन्तु अब क्या करना चाहिये, इस विषयमें आप सब लोग विवेचना करके स्थिर कीजिये।"

हालवेल साहब इसके उत्तरमें बोले, "मेरी समझमें द्रव्य अथवा मूल्य कुछ भी न देना चाहिये। जब हमने अपराध ही नहीं किया है, तो दण्ड देना कैसा?"

"विशेष करके हम लोग नवाब अलीवर्दीके अधीन नहीं हैं। यद्यपि बङ्गालमें हम लोग वाणिज्य करते हैं किन्तु दिल्लीके बादशाहके आदेश से ही तो हम लोगोंको वाणिज्यका अधिकार मिला है। नवाब अलीवर्दी को हमलोगोंमें कोई बात कहने अथवा दण्ड देनेको क्षमता नहीं है। दिल्लीके बादशाहके आदेशके सिवाय अलीवर्दी का कोई आदेश हम नहीं सुनना चाहते हैं।"

यह सुन कर और अंगरेज़ लोग बड़े आनन्दित हुए एवं हालवेल साहब जो कुछ कहते थे, उसीको ठीक कहकर एक वाक्यसे सबने अनुमोदन किया।

सभोंने अनुमोदन किया, केवल वारवेल साहब ने अपना मत नहीं दिया। यह प्रस्ताव उनको अच्छा नहीं लगा। उन्होंने प्रतिवाद करके कहा, "मेरी समझमें यह परामर्श युक्तियुक्त है कि नहीं इस बातको आप लोग एक बार फिर सोच देखें। हम लोगोंने दिल्लीश्वर बादशाह शाहजहां से विना कर दिये हुए वाणिज्य करनेका अधिकार पाया है, यह सत्य है; परन्तु हमको यहां के नवाब का भी अबाध्य न होना चाहिये, उससे तो सदैव ही काम पड़ता रहता है। मेरी समझमें नवाब अलीवर्दी की उपेक्षा न करके कोई ऐसा उपाय स्थिर करना चाहिये, कि जिससे मुग़ल, आरमीनियन और मग्यद इत्यादि वणिक लोग विचार-प्रार्थी ही न हो पावें; क्योंकि आप लोग जानते हैं कि उस दर्बारमें हमारी और

को कहने वाला कोई नहीं है। इसमे अच्छा तो यही हो, कि वह सौदागर लोग विचार-प्रार्थी ही न हों।"

ड्रेक—अच्छा आपने क्या सोचा है? आपने किस तरह प्रतीकार करनेकी चेष्टा करना स्थिर किया है?

वारवेल—मेरी समझमें नवाबके सामने साफ़ साफ़ कह देना चाहिये कि हमने यह अपराध नहीं किया है और विचार-प्रार्थी वणिक लोगोंसे भी किसी न किसी तरह पर एक मुक्ति-पत्र लिखा लेना चाहिये। जब हमने उनकी कोई क्षति ही नहीं की है, तो वह झूठा दोषारोपण क्यों करते हैं? उनको किसी प्रकार मिला लेना चाहिये।

वारवेल साहबकी इस मन्त्रणाको सभी ने ठीक कह कर मान लिया और नवाबके पास एक प्रतिवाद-पत्र भेजा गया। नवाबके दरबारमें प्रतिवाद पत्र भेज कर ही ईस्ट इण्डिया कम्पनी चान्त नहीं हो गई, वरं इन लोगोंने सय्यद, मुग़ल, आरमोनियन और एण्टनो प्रभृति वणिकोंसे मुक्ति पत्र लिख देनेके लिये कहा; परन्तु वह तो सिराजके सिखाये हुए थे। वह कब माननेवाले थे?

यथासमय अँगरेज़ सौदागरोंका प्रतिवाद-पत्र नवाब-दरबारमें पहुँचा। उनके उस पत्रको पढ़कर, अग्निमें घृताहुतिके समान अलीवर्दी क्रोधसे जलने लगे और चिल्लाकर बोले, "अँगरेज़ लोग कैसे चतुर हैं! मैं समझता हूँ कि वे सबकी

आंखोंमें धूल डालकर लोगोंका सर्वनाश करेंगे! वे समझते हैं कि वे ही देशके हर्त्ता-कर्त्ता विधाता हैं! वे जो कुछ करेंगे, उसमें किसी को कुछ कहनेका अधिकार नहीं है— वे जो कुछ करेंगे वही माना जायगा। आप ही अपराध करें और उसको दूसरेके ऊपर रखकर आप ही निरपराध बनना चाहते हैं।"

अंगरेज़ विद्वेषी सिराजुद्दौलाने इस प्रतिवाद-पत्रको बात सुनी, कि उन्होंने दोष अस्वीकार किया है; द्रव्य लौटानेमें अथवा मूल्य प्रदान करनेमें वह असम्मत हैं। यह सुनकर उसके आनन्दकी सीमा न रही। उसने समझ लिया कि मेरे दरबारमें अंगरेज़ोंको निरपराध ठहरानेकी क्षमता किसी में नहीं है। यह आप चाहे जैसा कहें, दोषोंके कहनेसे कुछ नहीं हो सकता है। इस बार अंगरेज़ सौदागर सदैवके लिये बङ्गालसे निकाल दिये जायेंगे।

जहां अग्नि होती है,वहीं पवन भी होती है। वह और चुप न रह सका। यह सम्वाद पाते ही सिराज दरबारमें आ पहुँचा और बड़े गर्वित भावसे बोला, "नानाजी! देखो, जो कुछ मैं कहता था, वह सत्य है कि नहीं। अस्तु जो कुछ हो, परन्तु यह बड़े सुखकी बात है कि इतने दिनोंके बाद आपने अंगरेज़ सौदागरोंको पहिचाना है। यदि इस अवसर पर आप इनको दमन नहीं करेंगे, तो इनके द्वारा अन्तमें मुसल्मानोंको बहुत क्षति पहुंचेगी। मैं अब भी कहता हूं, कि ऐसा उपाय करना

चाहिये कि जिसमें क्रमशः उनकी स्वाधीनता का विस्तार जाता रहे। समय रहते उसका उपाय करना चाहिये।"

अली०—सिराज! जो कुछ कहते हो सब सत्य है। मैंने, अँगरेज़ सौदागरोंकी चातुरी समझ ली है; परन्तु इसका बदला लेनेकी इच्छा मैं नहीं करता हूँ, इसके कई कारण हैं। किन्तु उन सब कारणोंकी आलोचना करके, मैं उनको दमन करनेमें उदासीन न रहूँगा। सम्पूर्णतया दोषी होने पर भी, जब वह अपना दोष स्वीकार नहीं करना चाहते हैं; तो ऐसी अवस्थामें उचित शास्ति न देनेसे, उनकी धृष्टता शतगुण बढ़ जायगी। इतना कह कर जगत्सेठकी ओर फिरकर अलीवर्दी ने कहा, "सेठ जी! अँगरेज़ सौदागर जैसे सरल पथ पर चल रहे हैं, वह तो आपको ज्ञात ही है। अब हमको क्या करना चाहिये? राजशक्तिका कुछ कठोर भाव दिखाये बिना वे सहजमें इस क्षतिको पूरा करें, ऐसी तो हमको आशा नहीं है। अब यह बतलाइये, कि किस तरह उनको दण्ड दिया जाय?"

सिराज—नानाजी! जो राज्यके लिये अनिष्टकारी हैं, जिनके द्वारा अन्तमें हमारा सिंहासन पर्यन्त विचलित हो सकता है, मेरी समझमें उनका यथासर्वस्व लेकर राजभाण्डार में रक्खा जाय और उनको राज्यसे निकाल बाहर किया जाय।

महताबचन्द—आप राजा हैं और विचार-कर्त्ता हैं।

अंगरेज सौदागरोंने जो अपराध किया है, उसको वह स्वी कार करके क्षति पूरी करनेको तय्यार नहीं हैं। ऐसी अव स्थामें आपके विचारमें जो ठीक हो, वही करना चाहिये। जिसका जैसा काम है उसको वैसा ही फल भोग करना होगा परन्तु जहां तक मेरी समझ पहुंचती है, उन लोगोंके साथ यह अन्याय नहीं हुआ है।

अलीवर्दी कुछ देर तक सोचते रहे और बोले, "चाहे यह सत्य हो कि उन्होंने जहाज न लूटे हों परन्तु जब इतने मनुष्य विचार-प्रार्थी हैं, तो कैसे समझा जाय कि यह मिथ्यापवाद लगाया गया है। मुझको तो यही उचित मालूम होता है, कि एकबारगी उनका यथासर्वस्व राज भाण्डारमें न लेकर, सेना भेजी जाय और उनकी कोठी घेर ली जाय। यदि इससे भय पाकर वह लोग लूटे हुए द्रव्यको फेर दें अथवा उसका मूल्य प्रदान करनेको सम्मत हो जायें तो अच्छा है; नहीं तो सिराजुद्दौलाकी युक्तिके अनुसार यथासर्वस्व राजभाण्डारमें करके, उनको बङ्गालसे निकाल दूंगा।"

सिराजुद्दौलाने सोचा, "जब अंगरेजोंने एक बार अपराध अस्वीकार किया है, क्षति पूरी करनेमें भी असम्मत हुए हैं, तो न अब दोष स्वीकार करेंगे और न क्षति को पूरी करनेको सम्मत होंगे, इसलिये अब वे सदैवके लिये बङ्गालसे निकाल दिये जायेंगे और उसीके साथ उनका वाणिज्य अधिकार भी लोप हो जायगा।" ऐसी भावना करके उसकी बड़ा ही

आनन्द हुआ और पूर्वोक्त प्रस्तावमें कोई आपत्ति नहीं की।

नवाब अलीवर्दी ने सेनापति मीरजाफ़र को बुलाकर हुक्म दिया, कि अँगरेज सौदागरों की कासिमबाजार की कोठीको जाकर घेर लो।

चौथा परिच्छेद।
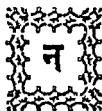
नवाबकी सेनाने कासिमबाज़ार की कोठी को घेर लिया है। बङ्गाल, बिहार और उड़ीसा में अँगरेज़ सौदागरोंका वाणिज्य एकबारगी बन्द हो गया है। यह क्षति क्या वह सह सकेंगे? वाणिज्य से ही जिसकी जीविका है, व्यवसाय के सिवाय जिसको और कोई उपाय नहीं है, जिसका वाणिज्य बन्द हो गया, वह कैसे निश्चिन्त रह सकता है? जहाँ प्रति दिन लाखों-रुपयोंका क्रय विक्रय होता रहा है, सहस्रों रुपये मुनाफेमें आते रहे हैं, वहाँ मनुष्य किस प्रकार चुप बैठा रह सकता है? विशेष करके जहाँ साझे का काम है, और वहाँ वाणिज्य बन्द होनेसे सब समूह की क्षति होती है। व्यवसाय बन्द होजानेसे अँगरेज़ वणिक-मण्डली में बड़े गड़बड़ पड़ गई। "सर्वनाश हुआ व्यवसाय गया!" इत्यादि शब्दोंसे आकाश और पृथ्वी दोनों ही फटने लगे। कोठी भरमें परामर्श और सभायें होने लगीं। चिट्ठी पत्री चलने लगी।

कलकत्तेमें एक विराट सभा का अधिवेशन हुआ। बहुत

से अँगरेज़ सौदागर इस सभामें बुलाये गये। महामति गवर्नर ड्रेक साहबने सभापतिका आसन लिया।

सभास्थलमें बहुत से अँगरेज़ सौदागरोंका शुभागमन हुआ था। वह लोग व्यवसाय-वाणिज्य के एक दमसे बन्द होनेके कारण बड़े क्षतिग्रस्त हो रहे थे। इसके लिये आपस में अपना अपना खेद प्रकाश करके कहने लगे, "इस तरह व्यवसाय-वाणिज्यके बन्द होनेसे यह क्षति कब तक उठाते रहेंगे? वास्तवमें नवाबको रुपये की आवश्यकता है, उनको मरहट्ठोंसे लड़नेके लिये रुपया चाहिये, इसीलिये प्रपञ्च करके यह दोष लगाया गया है; परन्तु अब आप लोग अपना व्यवसाय चलाना चाहें तो जो कुछ वह माँगें उनको देकर पीछा छुटाना चाहिये; जिससे यह झगड़ा मिट जाय और वाणिज्य-व्यवसाय आरम्भ हो। रुपये के देनेमें कष्ट अवश्य होगा, क्योंकि निरपराध दण्डित किये जा रहे हैं; परन्तु यही समझ लेना चाहिये कि जितना रुपया देना पड़ेगा, उसकी अपेक्षा वाणिज्यके बन्द होनेमें कहीं अधिक क्षति होना सम्भव है।"

इस बातका समर्थन करता हुआ एक और अँगरेज़ सौदागर बोला, "यदि नवाबके साथ शीघ्र ही इस बातका निबटारा न हो जायगा, तो बहुत सम्भव है कि नवाब सदैवके लिये वाणिज्यका अधिकार बन्द कर दें, अतएव इस झगड़ेको तो जैसे बने समाप्त ही करना चाहिये। बङ्गाल वाणिज्यके लिये बहुत अच्छी जगह है। यहाँ का वाणिज्य हाथसे जाते

रहनेपर हम लोगोंको बल बुद्धि, आशा भरोसा, क्या दर्प सब ही जाते रहेंगे, इसलिये इस कामको शीघ्र ही कर लेना चाहिये।"

ड्रेक—मेरी समझमें नवाबसे निबटारा कर लेना उचित है। जबकि बङ्गाल हमारे वाणिज्यका एक प्रधान स्थान है, जिसके बन्द हो जानेसे हम लोगोंकी असीम क्षति होगी, तो ऐसी अवस्थामें जो नवाब कहे वही हमको करना उचित है। यदि अन्याय है तो एक बार वह भी सह लेना चाहिये। परन्तु सिराजुद्दौला इस समय युवराज है, वह हम लोगोंका घोर विद्वेषी है। ऐसी अवस्थामें, यदि हम लोग आप ही नवाबके दरबारमें जावें और झूठा दोष स्वीकार करें और क्षती पूरी करनेपर उद्यत होवें, तो बहुत सम्भव है कि सिराजुद्दौला हमारा अपमान कर बैठे। क्षतिपूर्ण करानेके लिये न जाने कितना रुपया मांगे। ऐसी अवस्थामें जब तक कोई मध्यस्थ न हो, एकाएकी नवाब दरबारमें न जाना चाहिये। पहिले मध्यस्थ द्वारा बात चीत करके नवाबका अभिप्राय जान लेना चाहिये, फिर पीछे दरबारमें जाना ठीक है। मेरा यह परामर्श ठीक है कि नहीं, इस बातको आप लोग विवेचना करके निर्णय कर लीजिये।"

सब सभासद एक दम बोल उठे, "हां, यही परामर्श ठीक है। किन्तु नवाबके दरबारमें ऐसा कौन है, जो हमारी सहायता कर सके?"

यह सुन कर सब लोग चिन्तामग्न हो गये। थोड़ी देर पीछे वारवेल साहब ने निस्तब्धता भङ्ग की और धीरे धीरे बोले, "डाक्टर फोर्थ साहब नवाबके यहाँ जाते आते हैं। सम्भव है कि वह जानते होंगे कि दरबारमें किसका प्रभुत्व अधिक है।"

यह सुनकर सब लोग एक साथ बोल उठे, "ठीक बात है, डाक्टर फोर्थ साहब सब बातें बतला सकते हैं।"

फोर्थ—हाँ, नवाब प्रासादमें मैं जाता आता हूँ और दरबार भी बहुत बार देखा है। मेरी समझमें नवाब दरबारमें जगत् सेठ महताबचन्द का ही अधिक दबाव है। नवाब अलीवर्दी उससे परामर्श किये बिना, किसी काममें हस्तक्षेप नहीं करते हैं।

ड्रेक—तो हम लोगोंको उसी महतावचन्दसे कृपा भिक्षा मांगनी होगी।

फोर्थ—मुझको विश्वास है, कि यदि जगत्सेठ महताबचन्द हमारे लिये नवाबसे अनुरोध करें, तो नवाब अलीवर्दी उसके अनुरोधकी उपेक्षा नहीं कर सकेंगे।

इस आश्वासन वाक्यको सुनकर सभाके लोगोंमें एक प्रकार की आशा का सञ्चार हुआ। निविड़ अन्धकारमें, मानों उजेले की रेखा दिखाई पड़ी। सब लोगोंने फोर्थ साहब को घेर लिया और बोले, "प्रिय महाशय! आप इस विषयमें कोई उपाय करें। हम लोग तो नितान्त ही निरुपाय हो गये हैं और दिन पर दिन क्षतिग्रस्त होते जाते हैं। हम लोगोंके

लिये थोडो सी मिहनत करके एक बार जगत्‌सेठ महताब चन्द्के पास जाइये, और देखिये कि उनके द्वारा यदि वाणिज्य अधिकार फिरसे मिल जाय तो बड़ा अच्छा हो।"

फोर्थ—इस बातके लिये बहुत कुछ कहनेकी आवश्यकता नहीं है। अँगरेज जातिका प्रधान अवलम्बन व्यवसाय ही है। व्यवसायके सिवाय इम लोगोंको रुपया कमानेका और कोई उपाय नहीं है। क्या मैं इतना नहीं समझता हूँ कि व्यवसायका पथ बन्द होनेसे हम सब लोगों की बराबर ही हानि है। अपना वाणिज्य खो देनेसे, दो चार दस पांच मनुष्यों की कौन कहे, समग्र जातिके ऊपर आफत आ जायगी। इसमें सभी का स्वार्थ समान है। अतएव मैं यथासाध्य चेष्टा करूँगा। तोभी कह नहीं सकता हूँ, कि कहां तक कृतकार्य्य हो सकूँगा।

ड्रेक—चेष्टा, उद्यम, दृढ़ता, अध्यवसाय, अँगरेजोंके जातीय गुण हैं। इन्हीं गुणोंसे वह इतने बढ़े हैं। चेष्टा करने पर असाध्य कुछ भी नहीं है। आप प्रयत्न कीजिये, निश्चय ही कृतकार्य होंगे।

फोर्थ—मैं बड़े आनन्दसे आप सब लोगोंका काम अपने ऊपर लेता हूँ। मैं अपनी ओर से त्रुटि नहीं करूँगा और कल ही मुर्शिदाबाद जाऊँगा।

उस दिनकी सभा भङ्ग हुई। सब अपने अपने स्थानको गये।

पाँचवाँ परिच्छेद।

डाक्टर फोर्थ जगत्सेठ महताबचन्दके घर पहुँचे। गृहस्वामीने अतिथिकी यथायोग्य अभ्यर्थना करके कहा, "आप बहुत देरसे आये। अब बहुत कम आशा है कि इस काममें कुछ सफलता हो।"

फोर्थ—आपकी इच्छा होने पर, आप सब कुछ कर सकते हैं। मैं आपका शरणागत हूँ। यह काम तो आपको करना ही होगा।

ईषत् हास्य करके जगत्सेठ महताबचन्दने कहा, "यह आपकी समझकी भूल है, क्योंकि मैं तो नवाब नहीं हूँ, कि मेरे हुक्मसे यह काम हुआ हो। जो बङ्गाल, बिहार और उड़ीसा के अधिपति हैं, जो विचार-कर्त्ता हैं, उन्होंने आपका वाणिज्य बन्द कर दिया है, इसमें मेरा कोई वश नहीं है। समय रहते, आप आये नहीं; समय रहते, आपने कोई चेष्टा नहीं की; अब जब कि समय निकल चुका है, तब चेष्टा करनेसे क्या होगा? विशेष करके युवराज सिराजुद्दौला आप लोगों से बहुत अप्रसन्न हैं। उनका यही प्रयत्न है, कि आप लोग

किसी तरह बङ्गालमें वाणिज्य न करने पावें। ऐसी अवस्थामें आपको वाणिज्य फिरसे अधिकारमें करना बड़ा कठिन है। इसी कारण झूठा दोषारोपण भी लगाया गया है।"

थोड़ी देर तक दोनों ही चुपचाप रहे। अन्तमें, वही खेताङ्ग पुरुष नीरवताको भङ्ग करके बोला, "तो क्या सत्य सत्य ही ईस्ट इण्डिया कम्पनीका वाणिज्य अधिकार इस देश से लोप हो जायगा? सेठ जी! क्या इसका कोई उपाय नहीं है?"

सेठजी—मुझको तो कोई उपाय दिखाई नहीं देता, परन्तु यदि आपने कोई उपाय सोचा हो तो कहिये, मैं प्राणपणसे आपकी सहायता करनेको प्रस्तुत हूं।

फार्थ—हम लोगोंके ऊपर आपकी यथेष्ट दया और अनुग्रह है, इसको हम लोग खूब जानते हैं। इसी कारण मैं आपकी शरण आया हूं।

सेठजी—महाशय! मुझे बहुत सी बातें करनी नहीं आतीं। यदि मेरे द्वारा किसी का कुछ उपकार हो जावे, तो बड़े सौभाग्य की बात है।

फार्थ—देखिये,नवाब बहादुर आपकी सलाहके बिना कुछ नहीं करते हैं, यह मुझे मालुम है और मुझे इस बातका यकीन है कि यदि आप मेरी ओर से अनुरोध करेंगे तो नवाब साहब आपके कथनको टालेंगे नहीं।

सेहताबचन्द—यह सत्य है, कि वह मेरे कहनेको अग्राह्य न करेंगे; परन्तु मैंने आज तक किसी बातका अनुरोध नहीं

किया है और मुझको इसमें भी सन्देह है कि आपके सम्बन्ध में मेरा अनुरोध सफल होगा कि नहीं; क्योंकि सिराजुद्दौलाने सय्यद, आरमोनियन, मुग़ल, इरानी प्रभृति सौदागरोंको आपके विरुद्ध खड़ा किया है; तो कैसे आशा की जा सकती है कि मेरे कहनेको वह मानेगा? फिर एक और बात है, कि आप लोगोंने यह बात भी तो कही है कि आप लोगोंको बादशाह से बिना कर दिये वाणिज्य करनेका अधिकार मिला है। लेकिन वह फरमान तो केवल ईस्ट इण्डिया कम्पनी को ही मिला है और आप लोग सब ही राज्य में बिना कर के वाणिज्य करते हैं, जिससे राज्यको आय-सम्बन्धी, बहुत बड़ी चति पहुँचती है। आप लोगोंने राज्यके आय-सम्बन्धमें बहुत से विघ्न डाले हैं। नवाब बहादुरको यह सब मालूम होने पर भी और युवराज सिराजुद्दौलाके अनुरोध उत्तेजना देने पर भी, वह आप लोगोंको राजदण्ड देना नहीं चाहते थे। सिराजुद्दौलाके इस नये बखेड़े से पीड़ित होकर अन्तमें उन्होंने यह आदेश प्रचार किया है। इस समय आप ही सोच देखिये, कि मैं क्या कह कर नवाब से अनुरोध करूँ? मुझे तो ऐसी आशा नहीं है, कि वह आप लोगोंको निरपराधी समझें। तिसके ऊपर युवराज आपके घोर विरोधी हैं।

फोर्थ—जहाँ चार आदमियोंके हाथमें काम होता है, वहाँ पद-पद पर भूल हो जानेकी सम्भावना होती है; परन्तु हमने कोई ऐसा अपराध तो किया नहीं है। उनके हुक्मकी अवज्ञा

अवश्य ही है। सो क्या हम किसी भांति माफ़ नहीं किये जा सकते?

अहताब—यदि नवाब बहादुरसे थोड़ी अनुनय-विनय करके कहा जाय तो आशा है कि वह अपराध मार्जना करके, आप लोगोंको वाणिज्य अधिकार दे सकते हैं; किन्तु युवराज सिराजुद्दौला को समझाना अथवा राजी करना बड़ा कठिन है। हम लोगोंका तो कहना ही क्या है?। वह नवाबकी भी न मानेगा। विशेष करके आप लोगोंके ऊपर तो उसकी बड़ी ही कड़ी दृष्टि है। वह इस बातका पूरा उद्योग कर रहा है, कि जिसमें बङ्गालसे अंगरेज़ सौदागरोंका वाणिज्य अधिकार लोप हो जाय। जबकि सिराजुद्दौला आपके इतने विपक्षी हैं, तो बिना उनके सन्तुष्ट किये कुछ फल निकलनेकी आशा न करनी चाहिये।

फ़ोर्थ—अच्छा तो युवराज सिराजुद्दौलाकी अप्रसन्नताका कारण क्या है? क्या आप बतला सकते हैं? हम लोगोंने तो ऐसा कोई काम नहीं किया है, कि जिसमें उनका विराग-भाजन बनना पड़ा है।

यह सुन कर जगतसेठ अहतावचन्द कुछ मुस्करा कर बोले, "क्या आप जानते नहीं हैं, कि अर्थ ही सब अनर्थों का मूल है? आप का कर न देकर वाणिज्य करना ही, युवराजके विद्वेषको उद्दीपन करनेवाला है।

फ़ोर्थ दिल्लीके बादशाहके फ़रमान से ही हम लोग बिना

कर दिये वाणिज्य कर रहे हैं, इसमें हमारा क्या अपराध है? इसके लिये उनको इस तरहका विद्वेष-भाव क्यों रखना चाहिये?

महताब—यद्यपि आप लोग दिल्लीके बादशाहके फ़रमानके अनुसार ही, बिना कर दिये, वाणिज्य करते हैं; किन्तु युवराज इसको अपनी क्षति समझते हैं।

फ़ोर्थ—तो क्या वह हमसे कर लेना चाहते हैं?

महताब—नवाब बहादुरकी तो ऐसी इच्छा नहीं है, परन्तु युवराजकी है और वह आपसे कुछ रुपया भी वसूल किया चाहते हैं।

फ़ोर्थ—तो क्या वह दिल्लीके बादशाह के आदेशपत्रको रद्द करना चाहते हैं?

महताब—नवाब बहादुर तो नहीं चाहते हैं, किन्तु युवराजकी ऐसी इच्छा है। उनका इरादा ईस्ट इण्डिया कम्पनी से कर वसूल करनेका है। केवल नवाबकी ही सम्मति नहीं है, इसी से वह रुके हुए हैं।

फ़ोर्थ—बादशाहका आदेश उल्लङ्घन करना क्या उचित है?

महताब—जिसके हृदयमें धर्म-भय नहीं है, जो गुरुजनों की आज्ञा पालन नहीं करता, अर्थकी लालसामें जिसका हृदय डूबा हुआ है, जो जानता है कि मैं सदैव ही इस जगत्में रहूँगा, वह सब कुछ कर सकता है, किन्तु अलीवर्दी जैसे

धर्मपरायण विचक्षण नवाब अपने प्रभुके आदेशको अन्यथा करना नहीं चाहते हैं।

फोर्थ—तो क्या युवराज के प्रतिवादी होनेसे ईष्ट इण्डिया कम्पनी को अब बङ्गालमें वाणिज्य-अधिकार नहीं मिलेगा?

महताब—यह बात मैं नहीं कह सकता हूँ। जिसका राज्य है, जो दण्ड-मुण्डका कर्त्ता है, उसके रहते मैं क्या कह सकता हूँ? विशेष करके उनकी इच्छाके विरुद्ध। किन्तु तोभी मैं नवाब-दरबारमें यथासाध्य इसी बातका यत्न करूँगा, कि जिसमें आप लोगोंको आपका वाणिज्य-अधिकार फिर से मिल जाय।

फोर्थ—बस, इतना ही बहुत है। आपकी सहायता होने से हमारे कार्य्यकी सिद्धि अवश्य होगी। हम लोग आपके शरणागत हैं और आप भी शरणागतके रक्षक हैं। इस विपद् में हमारा उद्धार कीजिये।

मह॰—महाशय! मुझको बहुत बातें करनी नहीं आतीं। मैंने नवाब बहादुरसे कभी किसी बातका अनुरोध नहीं किया है। इस बार आप लोगोंके लिये, यह भी करूँगा। अच्छा हो, आप दरबारमें उपस्थित रहकर मेरे कार्य्य-कलाप को देख जायँ। मेरी यही इच्छा है, कि आपको वाणिज्य-अधिकार फिरसे मिल जाय। परन्तु एक बात आपसे पूछता हूँ, कि यदि नवाब बहादुर अङ्गरेजोंके झूटे आने जाने बात पर और देकर, आप लोगोंके ऊपर अर्थदण्ड

करना चाहें, तो क्या आप इस अर्थ-दण्डको देनेके लिये तय्यार हैं?

डाक्टर फ़ोर्थ बोले, "हम लोगोंपर आशा है कि बहुत भारी बोझ नहीं रक्खा जायगा, क्योंकि आपको सब हाल मालूम है कि हम लोग इस मामलेमें नितान्त ही निरपराध हैं—यह मिथ्या दोषारोपण हुआ है।"

मह०—यह बात नवाब बहादुरकी इच्छा पर निर्भर है। रुपये का लोभ दिखाकर भले ही राज़ी कर सको तो कर सको, बातोंसे तो कुछ भी नहीं होगा।

फ़ोर्थ—मैं आप ही के ऊपर सब भार अर्पण करता हूँ। आप जो कुछ ठीक समझें वही कीजियेगा।

मह०—मेरे ऊपर बोझ डालकर आप निश्चिन्त रहें, ऐसे काम नहीं चलेगा। आप लोगोंको भी नवाब-दरबारमें उपस्थित रहना पड़ेगा।

फ़ोर्थ—जबकि मैं सब ही बोझ आपके ऊपर रखता हूँ, फिर हम लोगोंके वहाँ उपस्थित रहनेकी क्या आवश्यकता है?

मह०—उपस्थित रहनेमें लाभके अतिरिक्त हानि तो कुछ नहीं है। आपकी दो चार खुशामद की बातोंसे कुछ न कुछ उपकार ही होगा और एक के दूसरे के सामने होनेसे आँखों को लज्जा भी होती है।

फ़ोर्थ—आपकी यह युक्ति बहुत ठीक है। मेरी

समझमें, विपद में अंगरेजोंका आपसे अधिक और कोई हितैषी बन्धु नहीं है। जब तक अंगरेज जाति रहेगी, तब तक उसको आपका यह उपकार, यह महृदयता, याद रहेगी।

इस प्रकार बात चीत करते करते रातके ग्यारह बज गये। निशानाथ मानों किसी के भय से अन्धकारमें अभी तक छिपे हुए थे। अब अंधेरमें से धीरे धीरे निकल कर, अपनी रजतरूप छटा चारों ओर फैलाते हुए, हंसते हंसते गगन मण्डलमें दिखाई दिये। जल थल, इर्मोंकी चोटी, अट्टालिका इत्यादि पर सर्वत्र सुधांशु की विमल किरण धारायें पड़ने लगीं, प्रकृति हास्यमई हो गई।

रातके ग्यारह बजते हुए सुन कर डाक्टर फोर्थने कहा, "रात बहुत गई है, अब मैं विदा होता हूं।"

मह्ताब—इतनी रातको कहां जाओगे? आज हमारे यहां ही ठहर जाओ।

फोर्थ—आपके व्यवहारसे मैं ऐसा सन्तुष्ट हुआ हूं कि जिसका पार नहीं है। किन्तु मेरी धृष्टताको क्षमा कीजियेगा, क्योंकि मैं आपके अनुरोधकी रक्षा नहीं कर सकता हूं। मुझ को और भी कुछ काम है, इसलिये मुझे अभी ही कासिम बाज़ारकी कोठी जाना होगा।

मह्ताब—आपके काम में मैं बाधा देना नहीं चाहता हूं, इसलिये और देर करना आवश्यक नहीं है, किन्तु कल

यथासमय दरबारमें उपस्थित रहियेगा, यदि और भी दो चार मनुष्य हों तो अच्छा है।

"आप जो कहेंगे वही किया जायगा",—कह कर डाक्टर फोर्थ सेठ महताबचन्दसे हाथ मिलाकर विदा हुए।

छठा परिच्छेद।

बड़ा भारी दरबार लगा हुआ है। दरबार-गृह लोगोंसे लोकारण्य हो रहा है। नाना लोग नाना विषयके विचार-प्रार्थी होकर दरबारमें आये हैं, सभी हाथ जोड़े खड़े हैं। किसी के मुखसे कोई बात नहीं निकलती है। आंखोंमें मानो पलक ही नहीं हैं। सभी निर्निमेष नेत्रोंसे, उत्कण्ठित चित्तसे, नवाब की ओर देख रहे हैं। किस समय किसको क्या हुक्म हो, किस समय कौन बुलाया जाय, इसी विचार-प्रार्थी मात्र सोचते हैं।

अंगरेज़ सौदागर भी इस दरबार-गृहमें विचार-प्रार्थनाके लिये आये हुए हैं। साधारण विचार-प्रार्थियोंकी अपेक्षा इन लोगोंकी उत्कण्ठा कुछ अधिक है। कहीं ऐसा न हो कि सदैवके लिये वाणिज्य अधिकार जाता रहे,—इसी चिन्तामें, इसी भावनामें, उनका प्रफुल्ल मुखमण्डल आज मलिन है, दुश्चिन्ताकी गम्भीर कालिमा अङ्कित है।

जगत् सेठ महताबचन्द इस समय अंगरेज़ सौदागरोंके एकमात्र बन्धु और वर्त्तमान विपद्के सहायक हैं। इन्हीं

भरोसे पर अँगरेज़ सौदागर नवाब-दरबारमें उपस्थित होकर साहसपूर्वक विचार-प्रार्थनाके लिये खड़े हैं।

महतावचन्दने अपने आसनसे थोड़ी ही दूर पर अँगरेज़ सौदागरोंको भी आसन दिया था और सुखसे रहनेवाले अँगरेज़ वणिक किसी प्रकारका कष्ट न पावें, इसके लिये उनका बन्दोबस्त कर दिया था। वह लोग ऐसे स्थानपर थे, कि नवाबके सिंहासनपर बैठते ही नवाबकी दृष्टि सबसे पहले उन्हीं पर पड़े।

नवाब अलीवर्दीके वामभागमें जगत्सेठ महतावचन्दके बैठनेकी जगह थी, दाहिनी ओर युवराज सिराजुद्दौलाका सिंहासन था, उसके बाद और और गण्यमान्य राजा, महाराजा मन्त्री और मित्र इत्यादिकोंके बैठनेकी जगह थीं।

नवाब अलीवर्दीका वेशभूषा कुछ बहुत परिपाटीके साथ नहीं था,परन्तु युवराज सिराजुद्दौलाके परिच्छद और वेशभूपाका तो कहना ही क्या था? उसके कपड़ोंके ऊपर एक बार जिसकी दृष्टि पड़ती, उसकी आँखोंमें चकाचौंध लग जाती। एक तो सिराजुद्दौलाकी नई वयस, तप्तकाञ्चन सी देह, अच्छी सुडौल गठन, तिसके ऊपर मोतियोंका हार और मणिरत्न जड़ी हुई पगड़ी, अँगरखेके भीतरसे रूपराशि मानों फूटी पड़ती थी। रूपकी प्रभासे सभास्थल आलोकित था।

सिराज विलासप्रिय युवक था। अलीवर्दी वृद्ध थे और परमार्थ-चिन्तामें मग्न थे। सिराज और वृद्ध नवाबके रूप और

वेशभूषाकी तुलना क्या हो सकती थी? तो भी वृद्ध नवाबके कुञ्चित शिथिल अवयव और उनकी गठन देखनेसे, अब भी मालूम होता था कि वह वीरश्रेष्ठ हैं।

नवाब अलीवर्दी मसनदपर बैठकर बोले, "देखो सेठ जी! ईस्ट इण्डिया कम्पनीने न तो लूटा हुआ द्रव्य ही वापिस दिया और न उसका मूल्य ही प्रदान किया और दरबारमें भी एक बार भी नहीं आये! सामान्य वणिक होनेपर भी उन लोगोंको इतना दर्प है! ऐसी स्पर्द्धा और नहीं सही जाती। मैं आज ही ईस्ट इण्डिया कम्पनीका सौदागरोंका सामान और धन-रत्न इत्यादि जो कुछ होगा, सब राज-भाण्डारमें जब्त कर लूंगा! इतने दिनोंके पीछे मुझे ज्ञात हुआ है, कि यह वणिक-कम्पनी सरल स्वभावसे नहीं चलती है।"

सिराजुद्दौला यह सुन कर क्या चुप रह सकता था? उसने मातामहको अंगरेज सौदागरोंके विरुद्ध और भी उत्तेजित करनेकी इच्छा से कहा, "नानाजी! आप अब भी इन लोगोंको उचित दण्ड न देकर निश्चिन्त बैठे हैं! आपकी इस ढील से ही इन लोगोंकी इतनी शक्ति बढ़ गई है। मैं तो बारम्बार आपसे यही कहता चला आता हूं, कि यह लोग ऐसे सरल प्रकृति के नहीं हैं। इनका अभिप्राय सहजमें समझमें नहीं आता है। यह लोग अभी तक अधम गरीब बने हुए हैं, यही बड़े आश्चर्यकी बात है। यदि आप अनुमति दें, तो मैं अभी इनका दर्प चूर्ण कर दूं। वह भी तो जाने कि देश

में राजा है कि नहीं है, और उस राजाका अवाध्य होनेमें और शासन दण्ड को उपेक्षा करनेसे क्या परिणाम होता है?"

डाक्टर फ़ोर्थ और वाट्स साहब इस दरवारमें उपस्थित थे। नवाब और सिराजुद्दौला की इन बातों को सुन कर उन लोगों के भयके मारे प्राण निकल गये, जिह्वा सूख गई, मुखमण्डल विवर्ण होगया। सिराजुद्दौलाकी वह उग्र मूर्त्ति देख कर, वङ्गाल देशमें वाणिज्य करनेकी आशा उन लोगोंने बिलकुल ही छोड़ दी। केवल यही नहीं, नवाब दरवारसे अपना जीवन लेकर स्वदेशको लौट जाना भी उनको कठिन ज्ञात हुआ।

और अधिक देर न करके, जगत् सेठ महताबचन्द ने डाक्टर फ़ोर्थ और वाट्स साहबको नवाबके सम्मुख आनेके लिये इशारा किया और उनको भयभीत देख कर साहस दिया। उन्होंने महतावचन्दके भरोसे पर नवाबके सम्मुख उपस्थित होकर, यथारीति कोनिशं की।

नवाबने पूछा, "आप लोग कौन हैं?"

वाट्स—हमलोग इँगलैण्डके रहने वाले ईस्ट इण्डिया कम्पनीके कर्मचारी हैं।

सुनते ही मानों सिराजुद्दौला जल उठा और नाक भौं सिकोड़ कर अप्रसन्नताका भाव दिखाने लगा।

सिराजुद्दौलाका भाव देखकर और उनको कुछ कहने

का अवसर न दे कर महताबचन्दने कहा, "आप लोग किस अभिप्रायसे दरबारमें आये हैं ?"

वाट्स, साहबने धीर, स्थिर और विनीत भावसे उत्तर दिया,—"नवाब बहादुरके पास विचार-प्रार्थनाके लिये।"

इस बार सिराजुद्दौला बड़े कर्कश स्वरसे बोल उठा, "जो राजाको नहीं मानता है, विचारको नहीं मानता है, जिसको शासनका भय नहीं है, उसका विचार प्रार्थनाके लिये आना कैसा ?"

बड़े धीर और नम्र भावसे डाक्टर फोर्थने कहा,—"राजाको तो वही लोग नहीं मानते हैं, जो विद्रोही होते हैं। जो विद्रोही होते हैं, वही शासनका भय नहीं करते हैं। हम लोग विद्रोही नहीं हैं।"

इस बातके सुनतेही सिराज कुछ क्रोध और घृणाके स्वरमें कहने लगा, "क्या अंगरेज सोदागर विद्रोही नहीं हैं ? यह तो नई बात है।"

फोर्थ—हुजूरके लिये नई हो सकती है, परन्तु नई होने पर भी यह बात सत्य है। हुजूर विचारपति हैं, विचारपतिके मुखसे अविचारकी बात नहीं निकल सकती है। यदि हम लोग विद्रोही होते, तो क्या नवाब बहादुरके पास विचार-प्रार्थी होकर आते ?

सिराज—यह विचार प्रार्थना अभी तक कहां थी ? जिस समय पत्र लिखा गया था, उस समय तो पत्रके उत्तरमें दोष अपनी

कार करके क्षति पूर्ण करनेमें असम्मत हुए ; परन्तु अब जबकि वाणिज्य-अधिकार बन्द हो गया है तब दौड़े हुए आये हो और विचार-प्रार्थी भी हुए हो! यह भी तुम्हारी चतुरता है!

फोर्थ—हमलोग सौदागर है, एक जगह नहीं ठहरते है। जलमें, स्थलमें, जहाँ कहीं मनुष्य हैं, वहीं हम लोग घूमते फिरते रहते हैं। इसी कारण हुजूरका हुक्म यथासमय न जान पाया और इसी कारण यथासमय दरबारमें उपस्थित होकर विचार-प्रार्थनाका सुयोग नहीं मिला। इस समय हम लोग विचार-प्रार्थनाके लिये हुजूरके सामने उपस्थित हैं। हुजूर! राजधर्म और सुविचारको लक्ष्य करके जान सकते हैं, कि अँगरेज़ सौदागर दोषी है कि निर्दोषी हैं।

यह सुनकर नवाब अलीवर्दी कुछ हँसकर बोले—"सेठजी! सुन लिया? अँगरेज़ सौदागर अब भी अपनेको निर्दोष बतलाना चाहते हैं।"

महताब—दोषी होने पर भी क्या कोई कभी अपना दोष स्वीकार कर सकता है?

सिराज—अँगरेज़ सौदागर समझते हैं कि वह निर्दोष हैं। परन्तु उनको यह नहीं मालूम है, कि उनके विरुद्ध यथेष्ट प्रमाण मिल चुके हैं। राज्यमें कोई वणिक अँगरेज़ों की तरह स्वाधीन प्रकृतिका नहीं है।

फोर्थ—हुजूर! विचार-कर्त्ता हैं। आपके विचारमें जब

तक दोषी न ठहरें, तब तक हम किस प्रकार दोषी हो सकते हैं ?

ग्लो—क्या तुम यह कहना चाहते हो कि, ईस्ट इण्डिया कम्पनी निर्दोष है ?

फोर्ब—हमारी समझमें तो ईस्ट इण्डिया कम्पनी निर्दोष है, परन्तु यदि हुजूरके विचारमें दोषी ठहरे तो वही ठीक है।

ग्लो—यदि हम ईस्ट इण्डिया कम्पनीको अपराधी प्रमाणित करें और उक्त कम्पनी वास्तवमें निर्दोष हो, तो क्या कम्पनी अपनेको दोषी स्वीकार कर लेगी ? किस लिये वह सदैवके लिये सफेदी पर स्याही लगवाना चाहेगी ?

यह सुनकर वाट्स साहबने कहा कि—"जब कि राजा ही की इच्छा पर सब बात निर्भर है, तो उसके विचारसे दोषी निर्दोष और निर्दोषी दोषी हो सकता है। राजाके हुक्मको अन्यथा करनेकी क्षमता प्रजामें नहीं है। जो राजाज्ञाको न माने वही विद्रोही कहा जाकर राज-दण्डसे दण्डित किया जा सकता है। जहां राज दण्डका भय है, वहां राज आदेश न्यायके रूपमें हो अथवा अन्यायके रूपमें हो, प्रजाको उसके अन्यथा करनेकी क्या सामर्थ्य हो सकती है ? जब राज आदेशके विपरीत आचरण करनेसे विद्रोही कहा जाकर राज दण्डसे दण्डित होना पड़ेगा, तब उस आदेशको उल्लङ्घन करनेका साहसी कौन हो सकता है ? हुजूरके विचारमें हमलोग ऐसे कुछ दोषी अथवा निर्दोष प्रमाणित हों, वही

हमको स्वीकार करना होगा। इसके अतिरिक्त और हम-लोग क्या कर सकते हैं?"

अली—तुमने जो आरमीनियन, मुग़ल और सैयद इत्यादि वणिकोंका सामान लूटा है, इस बातको हमने अच्छी तरह सुन लिया है। यद्यपि दिल्लीके बादशाहकी सनदसे ईष्ट-इण्डिया कम्पनीने इस देशमें बिना कर दिये वाणिज्य करने-का अधिकार पाया है; परन्तु उसने लोगोंपर अत्याचार करने अथवा उनका सर्वस्व लूटने की क्षमता अथवा आदेश नहीं पाया है। क्या तुम इस तरह पर लुटेरोंकी वृत्ति करके लोगोंका सर्वनाश करना चाहते हो? क्या तुमको मालूम नहीं है, कि अत्याचारीको कौनसे राज-दण्डका विधान है?

वाट्स—आप राजा हैं, दण्डमुण्डके कर्त्ता हैं, जैसी इच्छा हो वही कर सकते हैं। किन्तु एकबार सोच देखिये, कि हमलोग सामान्य वणिकमात्र हैं। जब कि हमलोग व्यवसायके लिये इस देशमें आये हैं, तो अत्याचार-उपद्रव और लड़ाई-झगड़े से हमको क्या लाभ है? जन साधारण के साथ सद्व्यवहार ही व्यवसाइयों की उन्नतिका मूल कारण है। विशेषकर ईस्ट इण्डिया कम्पनीमें ऐसी नीच प्रकृतिका मनुष्य कोई भी नहीं है, जो लोगोंका सर्वस्व लूटले। और जहाँ राजा वर्तमान है, जिसका विचार जाज्वल्यमान हो रहा है, शासन-दण्डसे पृथिवी कम्पायमान है, वहाँ पर लोगों का सर्वनाश करके कौन राजदण्डसे दण्डित होने की वासना

करेगा ? यद्यपि अँगरेज़ सौदागर रुपया कमानेके लिये जन्मभूमि छोड़कर, आत्मीय स्वजनों की माया-ममता तोड़कर, सात समन्दर तेरह नदी पार करके, इस बङ्गाल देशमें आये हैं; किन्तु यह लोग केवल वाणिज्यही करने को आये हैं, लूटने की आशासे नहीं आये हैं।

सिराजसे जब और कोई बात न बन आई तो दाँतो से दाँत पीसता हुआ बोला, "हाँ, यह अवश्य साधुता है। नानाजी! और निरर्थक बातों से क्या प्रयोजन है? इन लोगोंको अब एक क्षण के लिये भी राज्यमें स्थान न दीजिये। इनको अभी यहाँ से निकाल बाहर कर दीजिये।"

अली—तुम क्या कहना चाहते हो? आरमीनियन, सैयद, मुग़ल और एण्टनी इत्यादि का अभियोग क्या मिथ्या है? उन लोगों के सौदागरीके सामानके जहाज क्या लूटे नहीं गये!

फोर्थ—यह मैं किस प्रकार कह सकता हूँ कि यह बात मिथ्या है? राजा साक्षात् धर्मस्वरूप होता है। उसी राजाके सामने उन लोगोंने अभियोग उपस्थित किया है, तो हुजूर के सामने मिथ्या अभियोग उपस्थित करनेके साहसी तो वे न हुए होंगे, क्योंकि मिथ्या अभियोग उपस्थित करनेवाले को भी दण्डका भय होता है।

अली—जब कि तुम कहते हो कि तुमने यह काम नहीं किया है, तो क्या तुम बतला सकते हो कि यह जहाज़ किसने लूटे हैं?

फोर्थ—यह बात हमलोग किस प्रकार जान सकते हैं ?

अली—तो क्या तुम यह कहना चाहते हो, कि तुमको इस विषयमें कुछ भी नहीं मालूम है ?

जगत्सेठ महताबचन्दने देखा कि दोनों अँगरेज़ निरपराध होनेके कारण अपने को अपराधी कहना नहीं चाहते हैं; परन्तु जब सिराजकी इच्छा दोष स्वीकार करानेकी है तो किस प्रकार निरपराधी रह सकते हैं। इसमें लाभके बदले हानि होनेकी सम्भावना अधिक है, यह समझ कर उन्होंने उन दोनों अँगरेज़ोंको इशारे से रोक दिया और बोले :—"नवाब बहादुर! इनके साथ निरर्थक तर्क-वितर्क करनेसे क्या होगा ? दोषी क्या कभी अपने दोषको स्वीकार करता है ? जहाज़ोंके लूटनेके सम्बन्धमें अँगरेज़ सौदागरोंके विरुद्ध यथेष्ट प्रमाण मिल चुके हैं, इस समय हुज़ूरके विचारमें जैसा कुछ आवे वैसा कर सकते हैं।"

अली—तो फिर ईस्ट इण्डिया कम्पनीको इस समय क्या दण्ड देना चाहिये ?

सिराज—नानाजी! आप इस सुयोग पर अँगरेज़ सौदागरोंको बङ्गाल देशसे निकाल देनेमें अभी अन्य मत न कीजिये। यदि इस अवसरको छोड़ देंगे, तो अन्तमें इनके कारण आपको इतना कष्ट होगा जिसका पार नहीं है। मेरी बात सुनिये, इनके ऊपर क्षमा प्रदर्शन न कीजिये—अब इन लोगोंको वाणिज्य-अधिकार फिरसे न दीजिये।

भीतर भीतर सभी को यह इच्छा थी, कि अंगरेज़ सौदागरों को फिरसे वाणिज्य अधिकार मिल जाय, क्योंकि सिराज की उस समय की बातें, दरबारमें जो लोग बैठे थे, उनमेंसे किसी को भी अच्छी न लगीं थीं। मन ही मन कह रहे थे, कि सिराजुद्दौला बड़ा अत्याचारी राजा है।

महताब—यद्यपि अंगरेज सौदागरोंने भारी अपराध किया है, किन्तु यह उनका पहिला अपराध है। लोग समझ की भूलसे ही अपराध करते हैं, इसलिये राजाका यही कर्त्तव्य है कि पहिले अपराधका भारी दण्ड न देकर हलके दण्ड की व्यवस्था करे। मेरी इच्छा है कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी को बङ्गाल देशके वाणिज्य अधिकारसे एकबारगी वञ्चित न करके और कोई दण्ड दिया जाय, इसमें नवाब बहादुरका सुयश होगा।

अंगरेज़ द्वेषी सिराजुद्दौलाको यह बात अच्छी नहीं लगी। वह जगत्‌सेठ महताबचन्द पर बड़ा ही क्रोधित हुआ और रोषसे तर्जन गर्जन करता हुआ बोला, "अंगरेज़ सौदागरोंने जो काम किया है, उसका उपयुक्त दण्ड यही है कि बङ्गाल देशमें उनका वाणिज्य-अधिकार बन्द कर दिया जाय। इतना भारी दण्ड न देनेसे उनको कभी चैतन्यलाभ न होगा।"

अमी—ईष्ट इण्डिया कम्पनी पर और कौनसा दण्ड लगाया जा सकता है? महताब! यही दण्ड क्या उपयुक्त दण्ड नहीं होगा?

सिराजुद्दौला नाक भौं सिकोड़ कर बोला,—"अर्थ-दण्डको मैं दण्ड नहीं समझता हूँ।"

महताब—जो लोग पिता-माताको छोड़कर, जन्मभूमि की ममता छोड़कर, वाणिज्यका सामान सिर पर रखकर, सात समन्दर तेरह नदी पार करके, इतनी दूर बङ्गालदेशमें आये हैं, जिनका वाणिज्य ही एकमात्र जीविका है, क्या अर्थ-दण्ड उनके लिये उपयुक्त दण्ड नहीं है?

अली—सेठजी! आपकी सलाहको मैं युक्तिसङ्गत समझकर ग्राह्य करता हूँ। किन्तु इन लोगोंने जो काम किया है, उसके लिये कितना अर्थदण्ड ठीक होगा?

महताब—आप विचारपति हैं, आप जितना ही ठीक समझें उतना ही दण्ड करें। इसमें मैं क्या कह सकता हूँ?

नवाब अलीवर्दी इस बार सिराजुद्दौलासे परामर्श करने लगे। मातामह और दौहित्रके बीच बहुत सी बात-चीत, तर्क-वितर्क होनेके बाद, अन्तमें सिराजुद्दौला और नवाबका एक मत हो गया।

अली—यदि अर्थदण्ड से ही ईस्ट इण्डिया कम्पनीको दण्डित करना होगा, तो मैं सोलह लाख रुपया दण्ड करता हूँ। यदि अँगरेज़ सौदागर इस इतने दण्डको दे सकेंगे, तो फिर बङ्गाल देशमें उनको वाणिज्य-अधिकार प्राप्त होगा; नहीं तो हमारे राज्यमें ईस्ट इण्डिया कम्पनीको वह अधिकार नहीं रहेगा।

इस इतने अर्थदण्डसे दण्डित होने पर डाक्टर फोर्थ और वाट्स साहबने हाय-वावैला मचाना आरम्भ किया और बहुत कुछ विनती करने लगे।

इस बार जगत्सेठ महताबचन्द ईस्ट इण्डिया कम्पनीका पक्ष लेकर बोले, "अंगरेजोंके प्रति बहुत बड़े दण्डकी व्यवस्था हुई है।"

सिराज—आप क्या कहते हैं? क्या यह दण्ड अधिक हुआ है?

महताब—अधिक न होता, तो यह बात क्यों कही जाती?

सिराज—वणिक होकर अंगरेजोंने जो काम किया है, उसे देखते यह दण्ड कुछ बहुत नहीं है।

महताब—आपकी विवेचनामें यह दण्ड अधिक प्रतीत नहीं होता है; क्योंकि आप बङ्गाल, बिहार और उड़ीसाके भारी नवाब हैं। परन्तु अंगरेज़ सामान्य वणिक मात्र हैं। वाणिज्यसे ही जिनकी जीविका है, उनके लिये क्या यह भारी दण्ड नहीं है? आप राजा हैं, आपको अर्थका अभाव नहीं है; परन्तु जो साधारण व्यक्ति लोग हैं, एक रुपया पा जानेसे जिनके आनन्दकी सीमा नहीं रहती है, उनके लिये क्या यह भारी दण्ड नहीं है? नवाब बहादुरने ऐसा भारी दण्ड दिया है, यही नई बात है।

अलीवर्दी—यदि आपकी समझमें यह अधिक है, तो कह दीजिये कितना होना चाहिये।

महताब—मेरी समझमें बारह लाख रुपये ठीक होंगे।

यह सुनते ही सिराजुद्दौला चौंक पड़ा और बोला, "नहीं, यह कभी नहीं हो सकता। कहां सोलह लाख, और कहां बारह लाख, ऐसी कमी कैसे हो सकती है? मैं इस प्रस्तावसे किसी प्रकार सम्मत नहीं हो सकता हूं।"

अली—सेठजी! अंगरेज सौदागरोंके लिये क्या आप यही उपयुक्त दण्ड बतलाते हैं? ईस्ट इण्डिया कम्पनीने जो काम किया है, उसके दण्डस्वरूपमें बारह लाख रुपया क्या उपयुक्त दण्ड हो सकता है? मैं आपके इस अनुचित अनुरोधको किसी प्रकार रक्षा नहीं कर सकता।

महताब—ईस्ट इण्डिया कम्पनीने नितान्त अन्याय का काम किया है; परन्तु मेरे अनुरोधसे, एक बार अनुग्रह करके, क्षमा कीजिये। व्यवसाय और वाणिज्य जिनके प्राण हैं, उसी वाणिज्यके बन्द कर देनेसे इनकी बड़ी क्षति हो रही है। इस समय आपकी दयाके सिवाय इन लोगोंके परित्राणका और कोई उपाय नहीं है।

जगत्सेठ महताबचन्दने इस प्रकार ईस्ट इण्डिया कम्पनीके पक्षमें नवाबसे बहुत कुछ अनुरोध किया और बहुत कुछ विनती खुशामद भी की। दूसरी ओर वाट्स साहब और डाक्टर फोर्थ दोनों ही ने रोना-पीटना, अनुनय विनय और कातरता दिखलानेमें त्रुटि नहीं की।

नवाब अलीवर्दी ने जब यह अवस्था देखी, तो जगत्सेठ महताबचन्द के अनुरोधको टाल न सके और सोलह लाखके

बदले ईस्ट इण्डिया कम्पनी पर बारह लाख रुपया दण्ड करके छुट्टी कर दी।

जगत्सेठ महताबचन्द की कृपासे, बारह लाख रुपया दण्ड देकर, अँगरेज़ सौदागरोंने इस बार परित्राण पाया और अपना वाणिज्य अधिकार फिरसे ले लिया।

इस प्रकार जगत्सेठ महताबचन्द और अँगरेज़ सौदागरोंसे सौहार्द हो गया। अँगरेज़ोंने महताबचन्द को अपना परम बन्धु माना।

सातवाँ परिच्छेद ।

इन्द्रियाँ मनुष्यकी प्रधान शत्रु हैं। मनुष्यमें चाहे कितने ही गुण क्यों न हो, एक इन्द्रियोंकी उत्तेजनासे सभी गुण दोषमें परिणत हो जाते हैं। इससे बढ़कर चौड़ा रास्ता अधःपतनके लिये और दूसरा नहीं है।

इन्द्रियपरायण सर्वदा ही मधुपानकी अभिलाषामें भौंरेके समान लोलुप होता है। रमणीको देखते ही उसके प्रति आसक्ति उत्पन्न हो जाती है।

दोष हो, अथवा गुण हो, अच्छा हो, अथवा बुरा हो, जो स्वभावमें आ गया है, वह छोड़ देना मनुष्यके अधिकारमें नहीं है।

सङ्गतिके फलसे अथवा प्रमत्त यौवनके गुणसे सिराजुद्दौला के चरित्रमें जो दोष हो गया था, उसको वह किसी तरह छोड न सका। जितना ही समय बीतता गया, वैसे ही वैसे उसको पापेच्छा उत्तरोत्तर वृद्धि पाती गई।

जो सिराजुद्दौला एक दिन फैज़ीके प्रेमसे हताश होकर नारी जातिके प्रति इन्द्रियजित हो गया था, जो सिराजुद्दौला

फैजीको एक दिन अविश्वासिनी देखकर नारीमात्रको अविश्वासिनी समझ बैठा था, जो सिराजुद्दौला एक दिन फैजीके व्यवहारसे मर्म्माहत होकर नारी जातिका मुख देखने तकको अनिच्छुक हो गया था, जो सिराजुद्दौला लुतफुन्निसाके रूप गुण और प्रेमसे आकृष्ट होकर और दूसरी रमणीकी प्रणय इच्छा एकबारगी परित्याग करके उसके प्रेममें आबद्ध हो गया था, वही सिराजुद्दौला अब इन्द्रियोंकी प्रबल ताड़नासे रमणीको देखते ही उसको घोर लोलुप-दृष्टिसे देखने लगता है। कन्दर्प ! धन्य तुम्हारी शक्ति !

पतितपावनी भागीरथ्यर्थगोवारियो भागीरथीकी धारामें हिलोरें खाती नाचती हुई एक नौका आ रही है। यद्यपि नौका सामान्य काष्ठकी बनी हुई है, परन्तु बड़ी कारीगरी और कलाकौशलसे बनाई गई है। उसके एक ओर मोरकी तस्वीर बनी है, दूसरी ओर एक मकरीकी आकृति है। नौका प्राय सौम हाथ लम्बी है। एक तो वह नाना वर्णसे रञ्जित है, जिसके ऊपर तरह तरहके महामूल्य असबाबसे सज्जित है। जो कोई इस नौकाको एक बार देखता है, वह उसके निर्माण कौशल, कारीगरी और साज सज्जाकी प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकता। एक बार देखनेसे दर्शन पिपासा नहीं मिटती है, बारम्बार देखनेकी इच्छा होती है।

प्रियको एक बार देखकर फिर देखनेकी इच्छा होती है.

जिसको देखकर शतमुखसे प्रशंसा किये बिना नहीं रहा जाता है, वह सुन्दर नौका किसकी है?

वह नौका बङ्गाल, बिहार और उड़ीसाके नवाब अलीवर्दी की आंखोंके तारे, भावी उत्तराधिकारी, युवराज सिराजुद्दौला की है।

हीरा झील जिसके यत्नसे बनी है, उसकी नौका यदि मन को मुग्ध करनेवाली हो तो आश्चर्य्य ही क्या है? विशेष करके जो बङ्गाल, बिहार और उड़ीसाके नवाबकी आंखोंकी पुतली है, उसको रुपयेका अभाव नहीं है। उसकी विलास-नौका जन साधारणका मनमुग्ध करे, यह असम्भव नहीं है। परन्तु एक बात कहने की यही है, कि केवल रुपया रहनेसे ही सर्वजनप्रशंसित नौका नहीं बन सकती है, बनवानेवाले की रुचिकी भी आवश्यकता है।

यद्यपि सिराजुद्दौलाकी यह नौका साधारण लोगोंके नेत्र, और मनको तृप्त करनेवाली और प्रशंसा करने योग्य थी; यद्यपि पहिले लोग सुनकर कि यह नौका भागीरथीमें चलेगी, उसको दौड़कर देखनेको आते थे; कुलवती, सती स्त्रियां भी घूँघट खोलकर निर्निमेष नेत्रोंसे उसे देखती थीं। परन्तु कुछ ही दिन व्यतीत होने पर, इस नौकाका नाम सुनते ही वह लोग भयभीत हो जाती थीं। नौकाका आगमन-सम्वाद पाते ही, गङ्गाका घाट छोड़ छोड़ कर भाग जाती थीं। घर पहुँचने पर भी भयसे द्वारकी सांकल लगा लेती थीं।

जिस नौकाके देखनेके लिये लोग व्यग्र होते थे, कुलनारी घरसे बाहर निकल कर भागीरथीके किनारे आकर उसके दर्शन करती थीं, आज उसी नौकाका आगमन-सम्वाद पाकर नारीगण भयभीत होकर क्यों भागती हैं? तो क्या उस नौका के भीतर और मकली कुल नारियोंके यम हैं? नहीं, यह बात नहीं है। उस नौकाका मालिक उन सतियोंका यमस्वरूप है।

जब कुलवतियोंने जान लिया, कि इस नौकाका अधिपति सती कुलका राक्षस है, तो इस नौकाको भी उन्होंने अपना यम मान लिया। उसका नाम सुनते ही वह भयभीत हो जाती थीं, और आगमन सम्वाद पाते ही भाग जाती थीं।

सिराजुद्दौला विलासप्रिय अवश्य था, किन्तु बहुत सा खर्च करके तरह तरहकी कारीगरी और साज सज्जासे सज्जित करके सर्व्वजन मनोमुग्धकारी नौका निर्माण करानेका उसका एक और आशय था। वह यह था, कि इस सुन्दर नौकामें सङ्गियोंको लेकर गङ्गायच पर घूमते समय जो कुलवती युवती और महयवती सती घाटों पर आवें, उनमें कौन कैसी है यह देख लेवे और जो रूपवती हो उसको किसी न किसी उपाय से अपनी अङ्कशायिनी बनावे। बस, इसी अभिप्रायसे यह नौका बनी थी।

सिराजुद्दौला अपनी नौकामें सङ्गियोंको लेकर भागीरथीके वक्ष पर घूमता था। विहार-कालमें उसकी तीव्र दृष्टि गङ्गाके किनारे ही पर रहा करती थी। यदि कोई नारी उसकी
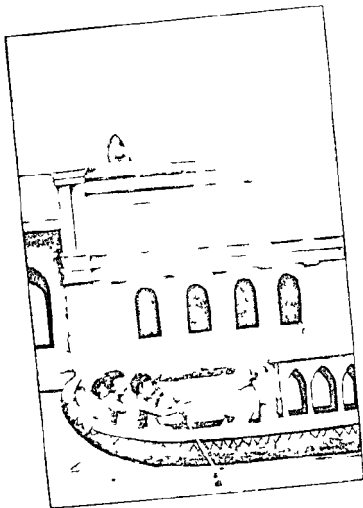
प्रखर दृष्टिके पथमें आती और यदि उसके नेत्र उस नारीके रूप-योवन पर आकृष्ट होते; तो छल, बल, कौशल, अर्थ अथवा भय दिखाकर जैसे होता वैसे उसको अपनी अङ्कशायिनी बनानेकी चेष्टा करता था।

दिन प्रायः अवसान पर है। सूर्य दिन भर अविश्रान्त किरणें प्रदान करता करता मानों थककर विश्रामके लिये पश्चिम-आकाशमें चला गया है। उसकी आरक्तिम किरणें छोटे बादलोंके टुकड़ोंसे निकलकर अपूर्व शोभा फैला रही हैं। वृक्ष मानों लोहितवर्ण की पगड़ी धारण किये हुए सन्ध्या-कालकी समीरणसे मानो खेल रहे हैं। सन्ध्याकी वायु मृदुमन्द गति से चल रही है। कोयलें सन्ध्या देवीका आगमन देखकर अपने अपने घोंसलोंकी ओर जा रही हैं। दिवाकरके अस्ताचल जानेके लिये, धरा देवी मानों एक अभिनव सज्जासे सज रही है।

ऐसे समयमें सिराजुद्दौलाकी नौका नाचती कूदती गङ्गाके वक्ष पर मन्द गतिसे चलती हुई बरनगरमें आकर उपस्थित हुई। सिराजुद्दौलाकी दृष्टि राजपक्षीकी तरह प्रखर थी। आँखोंके तारे कुम्हारके चाककी तरह चारों ओर घूमते थे। सहसा उसकी वही प्रखर दृष्टि एक प्रकाण्ड दो-मञ्जिली अट्टालिकाके ऊपरी भाग पर पड़ी। उसने देखा कि मानों उसकी आँखोंके सामने बिजली चमक गई। विस्मयके कारण उसकी आँखें फट गईं। अपने सङ्गियोंसे बोला, "देखो! देखो! उस दो

मस्जिदके मकानके ऊपरी भागमें कौन रूप लावण्यकी मान खड़ी हुई है। वह मनुष्य है कि परी!"

नौकामें जितने थे सभी उसके रूप लावण्यको देखकर मोहित हो गये। सब एक वाक्यसे बोल उठे, "अहा! क्या चमत्कारी रूप है! नारीका तो ऐसा रूप कभी देखा नहीं!"

इस रूपको देखकर सिराजुद्दौलाका धैर्य जाता रहा। केवल उसी रूपको उधेड़ बुनमें लग गया। सम्राट अला-उद्दीन जिस तरह राजपूत रमणी पद्मिनीके भुवनमोहन सौन्दर्य को देखकर विमुग्ध होकर उसे अपने वश करनेको उन्मत्त हो गया था, आज सिराजुद्दौला का भी वही हाल हुआ।

यह रमणी कौन है, किसकी कन्या है, किसकी भार्या है? अनुसन्धानके लिये सिराजुद्दौलाने गुप्तचर भेजे।

आठवाँ परिच्छेद।

यह कौन रमणी है, क्या पाठक जानना चाहते हैं? आशा है कि आपने सुना होगा और इतिहासमें भी पढ़ा होगा। जिसकी कीर्त्ति की कथा, दानशीलताकी कथा, इतिहासके पत्र-पत्रमें स्वर्ण-अक्षरोंसे लिखी हुई है, जिसकी कीर्त्ति का स्तम्भ मुर्शिदाबादके वरनगरमें अब तक विद्यमान है, जिसका नाम लोगोंको प्रातःस्मरणीय है, मैं उसी पुण्यवती सती रानी भवानी की बात कहता हूँ।

वरनगरमें, भागीरथीके पश्चिमी किनारे पर, जो एक प्रकाण्ड अट्टालिका दिखाई दे रही है, वह और किसी की नहीं है, पुण्यवती रानी भवानीका प्रासाद है और जो रमणी अट्टालिका की छत पर मृदु मन्द गतिसे विचरण करती हुई वायु-सेवन कर रही है, उसका नाम तारादेवी है। तारा देवी रानी भवानी की एकमात्र सन्तान है।

तारादेवी बाल-विधवा थी। अल्प वयसमें ही उसको इस दारुण दशामें उपनीत होना पड़ा था। किन्तु तारादेवी

अपनी माताके साधु आदर्शसे गठित हुई थीं। उसने भी अपनी माताकी तरह अनेक सत्कार्यका अनुष्ठान किये थे।

यद्यपि तारादेवी बाल विधवा थीं किन्तु वैधव्यके दारुण पीड़न से उसका रूप लावण्य मलिन न होकर और भी वृद्धि पा गया था। मिराजुद्दौला इन्द्रियपरायण था। वह उसका भुवनमोहन रूप देखकर एकबारगी उन्मत्त होगया।

मिराजुद्दौलाने अनुसन्धान से जान लिया, कि यह रमणी रानी भवानी की कन्या है और नाम तारासुन्दरी है।

कामान्ध युवक मिराजुद्दौलाको यह सब हाल जान लेने पर भी चैतन्य नहीं हुआ। उसने एक बार भी नहीं सोचा कि वह किसकी कन्या पर आसक्त हुआ है और किसके लिये उन्मत्त हो रहा है। रानी भवानी की बराबर भूसम्पत्तिका अधिकारी राजशाहीमें उस समय कोई नहीं था। जिसके राज्य की परिक्रमा करने में पैंतीस दिनसे अधिक लगते थे, जिसकी आमदनी डेढ़ करोड़ से अधिक थी, जिसके इशारे मात्र से सहस्रों नरनारी धनायाम अपने प्राण विसर्जन कर सकते थे उसी रानी भवानीकी एकमात्र कन्या तारादेवी है। उसके पाने की आशा, उसके प्रति आसक्ति, कहां तक ठीक है, यह आशा पूर्ण होगी कि नहीं, इन सब बातोंको उसने एक बार भी नहीं सोचा और बिना कुछ सोचे विचारे रानी भवानी की कन्याको हरण करनेके लिये उद्योग करने लगा।

सिराजुद्दौलाके चित्तमें यह अहङ्कार और धारणा थी, कि वह नवाब अलीवर्दीका उत्तराधिकारी है; बङ्गाल विहार और उड़ीसाका भावी नवाब है—बङ्गाल, विहार और उड़ीसाके सभी मनुष्य, उसके आधीन और उसकी प्रजा हैं; प्रजाको जिस समय राजा जो आदेश करेगा, प्रजा बिना कुछ कहे सुने तत्चण उसको मञ्जूर करेगी; राजाके किसी कामर्मे प्रजाको बाधा देनेकी चमता नहीं है और विशेष करके प्रबल प्रतापान्वित युवराजके काममें प्रतिवादी होनेका साहसी कौन होगा? रानी भवानी? वह क्या कर सकती है?

ऐसा भ्रमात्मक विश्वास करके सिराजुद्दौला उक्त गर्हित काम करनेमें प्रवृत्त हुआ। उसने एकबार भी न सोचा, कि रानी भवानी ब्राह्मण की कन्या है, तिस पर भी ऐसी धार्मिक है। जप, तप, दान, ध्यान, पूजा आन्हिक अतिथि-सेवा इत्यादि नाना प्रकारके सत्कार्य्यों में दिन-रात लिप्त रहती है। पुण्य सञ्चय करने के लिये, अपना राजशाहीका राज्य छोड़कर वरनगरमें पवित्र भागीरथीके तीर पर आकर बसी है। यह ब्रह्मचारिणी रानी भवानी क्या कभी अपनी कन्याको परपुरुष के हाथमें देसकती है? जिसको धर्म्म अधर्मका ज्ञान है, अपने धर्म्ममें श्रद्धा है, इहकाल और परकालमें विश्वास है, पाप-पुण्यका बोध है, देवता ब्राह्मणमें निष्ठा है, वह क्या इहलोक धर्म्मविगर्हित कामका अनुमोदन कर सकती है?

कामके वशीभूत होकर किसको ज्ञान वुद्धि लोप नहीं

हो जाती है? सिराजुद्दौलाका भी यही हाल हुआ। नहीं तो क्या समझ कर वह इस काममें प्रवृत्त हुआ?

सिराज! तेरी कामकी प्रबल ताड़ना से तुम्हारी बुद्धि विवेचना निश्चय ही लोप होगई है। यद्यपि तुम नवाब अली-वर्दीके उत्तराधिकारी हो—वर्तमान युवराज हो—बङ्गाल, बिहार और उड़ीसाके भावी नवाब हो,—किन्तु इतना होने पर भी रानी भवानी की तरह अतुल भूसम्पत्तिकी अधिकारिणी धर्मपरायणा रमणी क्या कभी तुम्हारे इस जघन्य प्रस्तावके सम्मत हो सकती है? हिन्दू लोग धन नहीं चाहते, प्राणोंकी ममता नहीं रखते, चाहते हैं केवल कुल-मान और जातीय गौरव! इस शुभ गौरवका मर्म हिन्दूके अतिरिक्त और कोई भी इतना नहीं जानता है।

नवाँ परिच्छेद ।

ना रीका रूप और पुरुषका ऐश्वर्य, दोनों ही सर्वनाशके कारण होते हैं। तारादेवी यदि असाधारण सुन्दरी न होकर कुत्सित और कुरूपा होती, यदि उसकी रूप-माधुरी देखकर लोगोंका मन सहसा आकृष्ट और मुग्ध न होजाता; तो उसको देखकर सतीकुल-राचस सिराजुद्दौला कभी उसपर मुग्ध होकर उसका प्रेमाभिलाषी न होता और, न उसको ले आनेके लिये लोगों को भेजता।

जब रानी भवानीने सुना, कि सिराजुद्दौला, उसकी तनयाके भुवनमोहन रूप-लावण्यके दर्शन करके, उसका प्रेमाभिलाषी हुआ है और उसके हरण करनेके लिये उद्यत हो रहा है; तो उसके सिरपर मानों वज्रपात हुआ, भयके मारे सारा शरीर काँपने लगा, चारों ओर अन्धकार दिखाई देने लगा। चीत्कार करके बोली, "बेटी! क्या तेरे भाग्यमें यह भी लिखा था!" और यह कह कर वह अचेत हो गई।

बहुत कुछ शुश्रुषा करनेके बाद रानी भवानीको चैतन्यता हुई। चेत होनेपर वह बड़े चिन्तासागरमें डूब गई। किस

जो हिन्दूकुलके मुखको उज्वल करनेवाली है; जिसका नाम लोग प्रातःकालमें उठतेही लेते हैं; जो श्वेतवस्त्र पहिननेवाली ब्रह्मचारिणी है; जिसकी कीर्त्तिकी कथा, तेजस्विता और दानशीलता की कथा, लोग उच्चस्वरसे गाते है; वही धर्मगत-प्राणा रानी भवानी क्या कभी हिन्दूकुल और हिन्दू नाममें कलङ्क लगाकर, अपनी तनयाको सिराजुद्दौलाके हाथमें दे सकती है? यदि धर्म-रक्षाके लिये, तनयाकी सतीत्व रक्षाके लिये, फांसी लगाकर विष पान करके अथवा प्रज्वलित चिताका आश्रय लेकर अपने कुल-मान, कुल-गौरवकी रक्षा करनी पड़े, तो वह भी करेगी; लेकिन रानी भवानी जीवन रहते ताराको सिराजुद्दौलाके हाथमें अर्पण करके हिन्दू-नाममें कलङ्क नहीं लगावेगी। विशेष करके जो हिन्दू नरनारी धर्मको अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय मानते हैं, जो हिन्दू स्त्रियाँ अपने सतीत्व को जगत् संसारके यावतीय धनरत्नको अपेक्षा बढ़कर समझती हैं, उसी धर्मको क्या हिन्दू सहजमें त्याग सकते हैं? उसी अमूल्य सतीत्वरत्नको सती नारी प्राण रहते क्या कभी किसी दूसरेको दे सकती है? यदि ऐसा कर सकती, तो हिन्दूका गौरव, भारतवर्षकी सती-महिमा इतनी बढ़ी हुई न होती।

बहुत कुछ सोचने विचारनेके उपरान्त रानी भवानीने एक उपाय ढूंढ़ निकाला। उसने कुछ नौकरोंको बुलाकर आदेश दिया,—"तुम साधक बागमें मस्तराम बाबाजीको सम्वाद

दो कि वह अपने दलबल और हथियारोंको लेकर अभी यहां चले आवें'।"

साधक बागमें सम्वाद पहुंचा। मस्तराम बाबाजी सम्वाद पाते ही चार पांच सौ वैरागी साथमें लेकर बरनगरमें रानी भवानीके भवन पर आपहुंचे और अधिक विलम्ब न करके उनसे मिलनेके लिये अन्तःपुरमें गये।

मस्तराम बाबाजी रानी भवानीके बड़े विश्वासी और अनुगत थे। वह सदा रानीसे सहायता पाते रहते थे। वह रानीसे मां कहकर बोलते थे। रानी भवानी केवल मस्तराम बाबाजीके ही जननी-पद पर अधिष्ठित थीं, ऐसा नहीं था। वह अपने दास-दासी और दीन, दुखी सभीकी जननी स्वरूपा थीं और सभी उनको 'रानी मां' कहकर पुकारते थे।

मस्तराम बाबाजी रानी भवानीके पास पहुंचकर साष्टाङ्ग प्रणाम करके बोले, "मा' मुझको दलबलके साथ क्यों बुलाया है?"

रानी भवानीने आशीर्वाद देकर बैठनेको कहा। मस्तरामके बैठनेपर रानीने कहा, "वत्स! और क्या कहूं, दुराचारी सिराजुद्दौलाके कारण लोगोंको कुलमानकी रक्षा करना कठिन हो गया है। पापीके कराल कवलसे सतीके सतीत्वका रक्षा पाना बड़ा कठिन है। पापिष्ट नारी-कुलका रावण हो गया है। उसने सैकड़ों नारियोंको अमूल्य सतीत्वधनसे सदैवके लिये वञ्चित कर दिया है। इतना करने पर भी वह

दुर्मतिकी पाप-वृत्ति निवृत्त नहीं हुई है। जो रमणी एक-बार उसके दृष्टिपथमें पड़ेगी, वह किसी प्रकार न बच सकेगी। उस पापीकी पाप-कथा मुखसे कहते भी घृणा और लज्जा आती है। मालूम नहीं, दुराचारीने किस प्रकार बेटीको देख लिया। वह ताराको देखकर, उसके रूप पर मुग्ध होकर, उसका प्रेमाभिलाषी हुआ है। अब वह ताराको हरण करके ले जानेके लिये उद्यत है। वत्स! समय रहते, ऐसा उपाय करना होगा कि जिससे कुल-मानकी रक्षा हो, ताराके सती-धर्मकी रक्षा हो। इसी लिये तुमको बुलाया है। नहीं मालूम, इस काममें मैं कहां तक क्षतकार्य होऊंगी।"

मस्तराम—मा! यदि सिराजुद्दौला ऐसा पापी हो गया है, तो क्या उसके दमन करनेका कोई उपाय नहीं है? उपाय न हो, यह सम्भव नहीं है। आप सी भूसम्पत्तिकी अधि-कारिणी, इच्छा करनेपर, उसको अनायास ही उचित शास्ति दे सकती हैं। मा! भगवान्‌की कृपासे, यह क्षमता रहते, यदि आप उस पापीके दमन करनेमें ढील करें और उसके भयसे भयभीत हों, तो और कौन इसका उपाय करेगा? नारी-कुलका सहाय और कौन होगा?

भवानी—वत्स! तुम सत्य कहते हो। किन्तु मैं सिरा-जुद्दौलाके विरुद्ध खड़ी होऊं, यह क्षमता मुझमें कहां है? मनुष्य कभी मनुष्यको दमन नहीं कर सकता। जब तक

भगवान् उसके विरुद्ध न हों, तब तक मनुष्यकी क्या सामर्थ्य है, कि उसके अहितका काम कर सके। दर्पहारी वही मधुसूदन हैं। दुष्टका दमन उनके सिवाय और कौन कर सकता है। विशेष करके सिराजुद्दौलाके अत्याचारी और पापचारी होने पर भी, अभी उसके पापकी मात्रा पूर्ण नहीं हुई है। इसीसे वह दीनबन्धु अभी उसका प्रतिविधान नहीं करते हैं। जब सिराजुद्दौलाका अत्याचार पापाचार पूरा हो जायगा ; जब लोगोंकी मर्मवेदना, हृदयकी कामना, उस अनाथबन्धु के पास पहुंचेगी, उस दिन अवश्य ही इसका प्रतिविधान होगा। जो सभीके दण्डमुण्डके कर्त्ता हैं, वह दण्ड न दें, तो हे वत्स! मनुष्यकी क्या क्षमता है ?

मन्तराम—मा! यदि इस विषयमें आप कुछ न करेंगी, बाधा न देंगी, तो दुराचारीको स्पर्द्धा और भी बढ़ेगी—उत्साह बढ़ेगा ; जिससे वह और भी सैकड़ों नारियोंका सतीत्व नाश करेगा। जननी ! तो क्या असतियोंकी संख्या बढ़ानेका ही आपका अभिप्राय है ?

भवानी—वत्स ! तुम क्या सोचते हो ? मैं इसके प्रतीकारके लिये निश्चिन्त हूं। मैंने जिस समयसे सुना है, कि मेरी तनया के प्रति सिराजुद्दौला की पापेच्छा उत्पन्न हुई है, उसकी कुदृष्टि पड़ी है, तभीसे समझ रही हूं कि अब उनका मङ्गल नहीं है। शीघ्र ही उसका पतन होगा।

मन्तराम—जननी ! इस समय यदि आप सिराजुद्दौलाके

दमनका कोई उपाय न करेंगी, केवल परमेश्वरके ऊपर छोड़कर निश्चिन्त रहेंगी, तो उसको और भी छुट्टी हो जायगी।

भवानी—वत्स! शार्दूलको संहार करनेके लिये, उसके सामने उपस्थित होनेकी अपेक्षा, भाड़में रहकर उसके विनाशका आयोजन करना ही बुद्धिमानका काम है।

मस्तराम—मा! आप आदेश दीजिये, मैं उसके विरुद्ध खड़ा होता हूँ। सती नारीके सतीत्व-नाशकी बातें और अधिक मुझसे सुनी नहीं जातीं।

रानी भवानी मृदु मधुर वाक्योंमें बोलीं,—"वत्स! स्थिर हो जाओ, धैर्य्य धारण करो, शीघ्रताका काम नहीं है। व्याकुल होनेसे कोई काम न होगा। सिराजुद्दौला अपनी मृत्युको आप ही बुला रहा है। वह जैसा दुर्दान्त है, और जैसा पापमें रत हो रहा है, इसका फल उसको शीघ्र ही मिलेगा। नवाब अलीवर्दी की जिस दिन आँखें बन्द हुईं, उसी दिन समझना कि सिराजुद्दौला का दम्भ-दर्प भी लोप हो जायगा। उसके सर्व्वनाशके साधनके लिये चारों ओर भीषण षड्यन्त्रोंका आयोजन हो रहा है, कि जिनसे उसकी किसी प्रकार रक्षा न हो सकेगी। वत्स! मेरी यह भविष्यत्‌वाणी अवश्य सत्य होगी। चिन्ता क्या है? यदि पृथ्वी पर धर्म्म है, तो इस अत्याचारको भगवान् कभी न सह सकेंगे।

मस्तराम—मा! आप जब यह बात कहती हैं, तो मैं समझ गया कि अब सिराजद्दौलाकी रक्षा नहीं है। किन्तु

जननी! जिसका रक्त मांसका शरीर है, वह ऐसा अत्याचार देख सुनकर चुप नहीं रह सकता है।

भवानी—वत्स! जब उपाय नहीं होता है, तब सभी सह लिया जाता है। दुर्बलके एक मात्र सहायक भगवान् हैं। उन्हींको सच्चे हृदयसे स्मरण करना चाहिये, वह अवश्य ही इसका प्रतिविधान करेंगे। नहीं तो, जो बङ्गाल बिहार और उड़ीसेका भावी नवाब है, उसके विरुद्ध प्रकाशमें खड़ा होना मूर्खता दिखाना है।

मस्तराम—मा! मुझसे और सहा नहीं जाता है। सिराजुद्दौला के अत्याचार और पापाचारकी कथा सुनकर, नाड़ियोंमें रक्त बड़े वेगसे बहने लगा है। ओह! राजा होकर यह अत्याचार! ऐसे अत्याचारका भगवान् ने अभी तक कोई प्रतिविधान नहीं किया है!

भवानी—वत्स! क्यों व्यस्त होते हो? बादल न होनेसे क्या कभी पानी बरसता है? सिराजुद्दौलाके पापोंके पूर्ण होनेमें अभी कुछ शेष रह गया है, इसीसे वह अनाथोंके साथ कोई प्रतिविधान नहीं करते हैं। बस! जिस दिन उनके सूक्ष्म तुलादण्डमें उसके पापका बोझ पूरा होगा, उसी दिन जान लेना, कि वह इस धामको छोड़ देगा।

मस्तराम—तो क्या सिराजुद्दौलाके पापका भार अभी तक पूरा नहीं हुआ है?

भवानी वत्स! प्रायः पूरा हो चुका है और अधिक

विलम्ब नहीं है। जब कि ब्रह्मचारिणी ताराके प्रति उस पापीकी कुदृष्टि पड़ी है, तब उसका निस्तार नहीं है। देखो वत्स! सिराजुद्दौला का भविष्य आकाशमें मेघाच्छन्न है, बहुत शीघ्र ही वह चारों ओर फैल जायगा, और सिराजुद्दौला किसी प्रकार परित्राणका पथ नहीं पावेगा। अकूलमें पड़कर, रक्षाके लिये बहुत कुछ चेष्टा करेगा, परन्तु किसी तरह रक्षा न पावेगा। उस समय बादलोंसे जो प्रलयकी आंधी उठेगी, उसमें उसके सुखकी नौका अकालमें ही डूब जायगी।

मस्तराम—जननी! आप साक्षात् भवानी स्वरूपा हैं। मैं समझता हूँ कि आपके यह वाक्य अमोघ हैं, कभी व्यर्थ जाने वाले नहीं हैं। जब कि पापिष्ट सिराजुद्दौलाने पुण्यवती सती ताराको पाप-दृष्टिसे देखा है, तो उसकी किसी प्रकार रक्षा न होगी। किन्तु मा! मैं यह पूछता हूँ, कि इस उपस्थित दशामें सिराजुद्दौलाके कराल कवलसे, सती लक्ष्मी ताराके सतीत्व-रत्न की रक्षा किस प्रकार होगी? और जाति-कुल मानकी रक्षा करनेका क्या उपाय स्थिर किया है?

भवानी—वत्स! इस समय ताराके मृत्यु-सम्वादको चारों ओर फैलानेके अतिरिक्त और कोई उपाय दिखाई नहीं देता है।

मस्तराम—मा! इससे क्या फल निकलेगा?

भवानी—क्यों वत्स! यदि सबको मालूम हो जाय, कि ताराने सहसा इस लोकको छोड़ दिया है, उसकी देह चिताकी

भव्रमें परिणत हो गई है, तभी क्या सिराजुद्दौलाकी पाप लिप्सा दूर न होगी?

मस्तराम—मा! सबकी आंखोंमें धूल डालकर, आप किस प्रकार यह काम करेंगी?

भवानी—वत्स! इसके लिये कुछ चिन्ता नहीं है। मैंने जो कौशल अवलम्बन करनेका विचार किया है, उसमें किसी को सन्देह अथवा अविश्वास करनेका स्थान नहीं है। उपस्थित अवस्थामें, कौशल ही एक मात्र उपाय है।

मस्तराम—जननी! ऐसा आपने कौन सा उपाय अवलम्बन किया है, जिससे सभीके हृदयमें विश्वास हो जायगा?

बुद्धिमती रानी भवानीने जो उपाय विचारा था, वह मस्तराम बाबाजी को कह सुनाया। सुनकर मस्तराम बोले, "मा! धन्य है आपकी बुद्धिको। धन्य है आपके कौशलको! इस कौशलसे अवश्य ही सिराजुद्दौला प्रतारित होगा और सतीका सतीधर्म्म जाति कुल मान सभी रक्षा पावेगा। किन्तु मा! सिराजुद्दौला ऐसा चतुर है, कि यदि वह छिपे छिपे अनुसन्धान करे और यदि ताराके बचनेकी बात प्रकाशित होजाय, तब क्या उपाय होगा?"

भवानी—वत्स! ताराकी मृत्युकी जनश्रुतिके साथ ही साथ, उसको लेकर मुझे भी पवित्र गङ्गा तीर जाकर रहना होगा और जब तक सिराजुद्दौला राज्यच्युत अथवा विनष्ट न हो जायगा, तब तक ताराको बड़ी सावधानतासे छिपाकर रखना होगा।

मस्तराम—जननी! इस तरह कब तक छिप छिप कर रह सकोगी? और आपके वरनगर छोड़नेसे, दीनदुखी, अनाथोंके लिये क्या उपाय होगा? मा! आप तो साक्षात् अन्नपूर्णा हैं।

रानी भवानीने विषाद भरे वाक्योंमें कहा, -"वत्स क्या किया जाय? एक समय देवताओं को भी, असुरोंके भयसे, स्वर्गराज्य छोड़कर गुप्तभावसे रहना पड़ा था।"

बातें करते करते रात प्रायः दो पहर बीत गई। रानी भवानीने नौकरोंको गङ्गातीर पर एक प्रकाण्ड चिता प्रस्तुत करनेका आदेश दिया।

चिता तय्यार हो गई।

सब संसार सो रहा है। प्रकृति स्थिर, निश्चल और नीरव है। जीव मात्रका कहीं शब्द नहीं है। सभी घोर निद्रामें मग्न हैं। बीच बीचमें केवल निशाचर पशु पक्षियोंका विकट चीत्कार, झींगुरकी झनकार, वायुकी सनसनाहट, वृक्षोंके पत्तों के गिरनेका शब्द, यही शब्द हैं जो सुनाई देते हैं।

रानी भवानीने, यही समय उद्देश्य सिद्धिके लिये ठीक समझ कर, चितामें आग दे देनेका आदेश दिया।

सभी उत्सुक थे, सभी कारण जाननेके लिये व्यग्र हो रहे थे, परन्तु किसीको इस बातका साहस न होता था कि कोई बात पूछे।

चितामें आग लगा दी गई, उसमेंसे धूम पुञ्ज निकलने लगा। इसी समय पूर्व परामर्शके अनुसार, मस्तराम बाबाजी

अपने दलबल सहित गम्भीर रातकी निस्तब्धताका भङ्ग करके हरनाम कीर्त्तन करने लगे। उस कीर्त्तनके शब्दसे वरनगरके आबाल वृद्ध वनिता सभी जाग पड़े।

रात्रि गई, अन्धकार दूर हो गया। निर्जीव जगत् सजीव हो गया। जीवगणोंने अपनी अपनी सुखदायिनी शय्या छोड़ी। निशाचर जीवजन्तु अपने अपने वास स्थानोंको चले गये; तथापि हरनाम कीर्त्तन बन्द नहीं हुआ, न चिताधूमकी शान्ति है, न चिताका अग्निको निर्वाण है।

सवेरा होते हो सैकड़ों हज़ारों नरनारी उस स्थान पर आकर उपस्थित हो गये। गङ्गाके तीर पर प्रज्वलित चिताको देखकर, सभी लोग विशेष व्यग्रताके साथ जिज्ञासा करने लगे। जब सब लोगोंने सुना कि गत रात्रिको तारादेवी ने यह लोक परित्याग किया है, तो सब लोग उसके रूप गुणको बातें कहकर दुःख प्रकाश करने लगे और बहुतोंने आंसू भी बहाये।

सूर्य्य देवके निकलते ही चिता भी ठण्डी हुई, हरिनाम भी बन्द हुआ। सब अपने अपने घरोंको गये। आबाल वृद्ध वनिता सभोंने ज्ञान लिया कि तारा स्वर्गको गई।

क्रम क्रमसे यह ख़बर मुर्शिदाबाद भी पहुंची, हीरा झील भी पहुंची, सिराजुद्दौलाके कानों तक भी पहुंची। परन्तु इस मृत्यु सम्वादसे काम किङ्कर सिराजुद्दौलाके हृदयमें ताराके प्रेमका ह्रास हुआ कि नहीं, यह प्रकाश नहीं हुआ।

दसवाँ परिच्छेद ।

किसी कविने कहा है कि पुराने कपडेकी चमक और अबला जाति बडे यत्नसे रक्षित की जा सकती है, और वास्तवमें है भी ऐसा ही कि नारी जाति बडे यत्नसे रखी जाती है। जहाँ स्त्री जातिके ऊपर तीक्ष्ण दृष्टि नहीं है, वहाँ तरह तरहके दोष दिखाई देते हैं। एक अभावसे स्वभाव नष्ट होता है, और जिस घरकी रमणी अधिक भोग विलासी होती है, उसी घरमें नारी चरित्रमें दोष दिखाई देता है।

स्त्री-चरित्रको मनन करनेसे स्पष्ट ही दिखाई देता है, कि जैसे नारी जातिमें धर्मभाव अधिक है, उसी तरह पापकाण्ड भी अधिक है। रमणीके भीतर सुधा भी है और विष भी है। जैसे साँपके विषसे मनुष्यके प्राण जाते हैं और प्राणरक्षा भी होती है, उसी प्रकार स्त्री-जाति जब अपने हृदयसे सुधा निकालती है, तो मनुष्य सुखी होकर अमर होनेकी वासना करता है, और जब वह हलाहल वमन करती है, तो मनुष्य अपार दुःख सागरमें गोते खाता है और आत्महत्या पर्य्यन्त कर डालता है।

नारी चरित्रमें दोष पड़ जानेके जो कारण हैं, उनमेंसे स्वाधीनता ही एक प्रधान कारण है। जिस घरमें रमणी सर्वतो भावसे स्वाधीन है, उसी घरकी नारियोंमें प्रायः नाना रूपके दोष लक्षित होते हैं। नारी जाति और कपूर दोनों ही समान हैं। कपूर डिब्बेके भीतर बन्द करके यत्नपूर्व्वक न रखनेसे जिस प्रकार उड़ जाता है, उसी तरह अन्तःपुरमें रखकर, तीक्ष्णदृष्टि न रखनेसे नारी जातिके सतीत्वकी रक्षा भी कठिन हो जाती है।

मैं पहिले ही कह चुका हूं और फिर कहता हूं, कि इन्द्रियां नरनारीकी प्रधान शत्रु हैं। जिसने इस कामरूपी शत्रुको जीत लिया है, वही इस संसारमें विजयी है। जो इस शत्रुके जय करनेमें असमर्थ है, जो सम्पूर्ण रूपसे इसीके वशीभूत है, उसको बराबर विडम्बनाका भागी और कौन है?

नवाब अलीवर्दी की तीन कन्याओंमेंसे अमीना बेगम और घसीटी बेगमके चरित्रमें दोष उत्पन्न हुआ। नारीका अमूल्यरत्न सतीत्वरत्न सदैवके लिये खो गया। "सती" नामके बदले "असती" नाम हो गया। अपनी इच्छासे सतीके गौरव धनसे वञ्चित हो गईं। लज्जा और निन्दाभय को छोड़कर, कलङ्क सागरमें डूब गईं।

क्या स्त्री, क्या पुरुष, रूपके उपासक सभी हैं। रूप देखकर मोहित न हों, ऐसे लोग संसारमें विरले हैं।

घसीटी बेगम और अमीना बेगम, दोनों ही ने, एक नायक

के रूप पर मोहित होकर उसको अपने प्राण, मन और यौवन सभी समर्पण कर दिये। दोनों ही उसके प्रेममें आबद्ध हो गईं, दोनों ही ने अपने अपने हृदय-राज्योंका अधीश्वर उसे बनाया।

अमीना वेगम और घसीटी वेगम जिस नायकके प्रेममें आबद्ध हुईं, उसका नाम हुसैनकुलीखाँ था। हुसैनकुलीखाँ में उतना गुण नहीं था, जितनी उसके रूपकी विलक्षण ख्याति थी। नारी-जाति जिस रूपको देखकर मोहित होती है, कार्त्तिक अथवा कन्दर्पकी तुलना जिस रूपकी लोग देते हैं, हुसैनकुली खाँ वैसा ही रूपवान था। उसका यह भुवनमोहन रूप ही नवाबकी दोनों पुत्रियोंका काल हुआ।

अमीना वेगम विधवा थी। राजभोग, सुखस्वच्छन्द, निश्चिन्त और स्वाधीन भाव थी। ऐसी अवस्थामें पतिहीनता उससे चरित्र-दोष उपस्थित कर दे तो क्या नई बात है? परन्तु घसीटी वेगम पतिके वर्त्तमान होने पर भी, हुसैनकुली खाँ के रूप पर मुग्ध होकर, उसके प्रेममें आबद्ध हुई।

पाप बहुत दिन तक छिपा नहीं रहता है। घसीटी वेगम और अमीना वेगम की भी यह पाप-कहानी शीघ्र ही प्रकाशित हो गई। दासी बाँदी सभीने जान लिया और परस्पर इसी विषयको छिपे छिपे आलोचना और हास्य-परिहास करने लगीं; क्योंकि हुसैनकुलीखाँ, रूपवान होने पर भी, ढाकेके नवाब नवाज़िश अली का नौकर था। प्रभुकी पत्नी अपनी मर्यादा

को भूलकर, अपने नौकरके प्रेममें पागल हुई, यह बात सभी को आंखोंमें बुरी मालूम हुई। इसी कारण दासी-बांदी अवसर पाते ही, जहां दो इकट्ठी हो जातीं, घसीटी और अमीना की कथा कहने लग जातीं।

घसीटी बेगमका हुसैनकुलीखां के साथ यह गुप्त प्रेम यद्यपि दासी बांदियोंको मालूम हो गया था; परन्तु यह तो उनको मालूम नहीं था कि प्रेमके सामने मालिक नौकर, धनी निर्धन, विद्वान मूर्ख नीच-उच्च, यह सब भेद स्थान नहीं पाते हैं। प्रेम तो केवल इतना देखता है, कि नायक नायिकाकी चारों आंखें मिलने पर परस्परका हृदय भाव किस प्रकार प्रकाश पाता है। प्रेम कुलके ऊँच नीचका विचार करना नहीं चाहता है। यदि ऐसा करता, तो उच्च और नीच वर्गियों के बीचमें गुप्त प्रेम दिखाई ही न देता।

मानो भोजनकी दासी बांदियोंसे चलकर, यह सम्वाद नवाब के महलोंमें भी पहुँचा। जब दासी-बांदियोंके बीचमें इस अनुचित प्रेमकी बात पर हास्य परिहास और आलोचना चलने लगी, तो नवाब-महिषियोंको भी इसके सुननेमें अधिक विलम्ब न लगा। शीघ्र ही उन्होंने भी दोनों कन्याओंके कुचरित्रकी कथा सुनी।

एक दिन रातको प्रायः दूसरा पहर था। रातका भोजन समाप्त हो चुका था। सभी अपने अपने विश्राम स्थानोंमें आ चुके थे। चार पांच बांदियां, दिन भरके बाद, इस समय अवसर

पाकर, इकट्ठी बैठी इधर उधरको बातें कर रही थीं। प्रेममें, घसीटी बेगम और अमीना बेगमके गुप्त प्रेम की कथा चली।

मैना बाँदीने कहा, "देखो खातिर! अभी तक मैंने तुम्हारी बातका विश्वास नहीं किया था। यही समझती थी, कि क्या कभी ऐसा भी सम्भव है? किन्तु आज जो कुछ आँखोंसे देखा, अपने कानों सुना, उससे तेरी बातोंका पूरा विश्वास हो गया।"

मैनाकी बात समाप्त होते ही खातिर बोली, "मेरी यह आदत नहीं है कि मैं किसीके ऊपर झूठा दोषारोपण करूँ, जो बात अपनी आँखोंसे न देख लूँ और अपने कानोंसे न सुन लूँ, उसको मैं कभी किसी से नहीं कहती। झूठे दोषारोपणसे मैं बहुत घृणा करती हूँ। अब तुमको मेरी बातका विश्वास हुआ है, यही यथेष्ट है।"

मैना—इस बातको अपनी आँखों न देखे, तो क्या कोई कभी इस पर विश्वास कर सकता है? जो बात पूर्णतया असम्भव है, उसमें किसीको कैसे सहजमें विश्वास हो सकता है? बङ्गाल बिहार और उड़ीसाके नवाबकी पुत्री होकर, नौकरके प्रेममें बावड़ होगी, ऐसी धारणा क्या कभी हो सकती थी? छिः! छिः! नवाब कुमारी क्या—

मैनाकी बात काटकर खातिर बोली, "ओहो! अकेली घसीटी बेगम ही नहीं, अमीना बेगम भी हुसैनकुलीखाँ ही के प्रेममें बावड़ हुई हैं। दो बहिनोंमें एक नायक है। किसी

समय ऐसी बात किसीने सुनी भी न होगी, वही आज देखी! समझकर फिरमे, देखो क्या क्या होता है!

सुनकर मैना बांदी कांप गई। विस्मयके साथ बोली, "ख़ातिर! तू यह क्या कहती है? क्या घसीटा बेगम भी हुसैन कुली पर आसक्त है! हे राम! न जाने क्या होनहार है!"

ख़ातिर—अच्छा होनहार है। जब यह बात चारों ओर प्रकाशित हो जायगी, छोटे बड़े सभी नवाब कुमारियोंके कुचरित्रकी बात जानेंगे, इस नीच प्रवृत्तिकी कथा सुनेंगे, तब यह सुख, दु:खमें परिणत हो जायगा—लोगोंके सामने मुँह दिखलाना भारी हो जायगा। पाप जब तक छिपा रहे तभी तक अच्छा है, प्रकाशित होने पर तो गड़बड़ हो ही गी।

मैना—अच्छा ख़ातिर! नवाब अथवा नवाब महिषी यह सब बातें यह सब घटनाएँ, जानते हैं?

ख़ातिर—ऐसा ख़्याल तो नहीं होता है, कि यह जानते होंगे।

मैना—मेरा भी अनुमान ऐसा ही है, यदि नवाब अथवा नवाब महिषी इसके विषयमें कुछ भी जान पाते तो अवश्य ही इसका कुछ प्रतिकार करते। उच्च कुलमें इस कलङ्कको क्या कभी कोई सह सकता है? विशेष करके एक नौकरके साथ यह सब काण्ड! और हुसैनकुली का कैसा साहस है! वामन होकर चन्द्रमाको हाथ बढ़ाता है!

ख़ातिर—साहस क्यों न हो? वामन होकर चन्द्रमा को

न पकड़े? छोटेसे बड़े होनेकी किसको इच्छा नहीं होती है? जो अपने मान-मर्यादाकी रक्षा न करे, तो दूसरेका इसमें क्या दोष है?

मैना—तो क्या हुसैनकुली को यह विश्वासघातकता का काम करना उचित था? यह नवाब नवाज़िश अली का ऐसा विश्वासी था! और उन्हींको पत्नीके साथ गुप्तप्रेममें आवड होकर क्या इसने समझदारोंका काम किया है? यह सुनकर लोग हुसैनकुली की निन्दा नहीं करेंगे?

यह सुनकर विरक्तिभाव से खातिर बोली, "तुम्हारी यह बात ठीक नहीं है। लोग हुसैनकुली को निन्दा क्यों करेंगे? यदि उनकी निन्दा ही करनी होगी, तो पहिले नवाब और नवाब महिषीकी न करेंगे?"

मैना—उनका इसमें क्या दोष है?

खातिर—उनका दोष नहीं है, तो क्या पाड़-पड़ोसियोंका दोष है? जो घरके मालिक हैं, उनको यह नहीं मालूम कि हमारे घरमें क्या हो रहा है, तो फिर इस बातको कौन देखेगा? यदि नवाब-महिषी दोनो कन्याओं पर तीक्ष्ण दृष्टि रखतीं, तो क्या वह दोनों ऐसे कुकर्ममें पड़ सकती थीं? जिस घरके कर्त्ता और गृहिणी अपने कामोंको, अपने पुत्र-कन्याओंको, तीक्ष्ण दृष्टिसे नहीं देखते हैं, उन्हीं लोगोंके घरमें ऐसी दुर्घटनाएँ हुआ करती हैं।

दासियोंमें इसी तरहकी बात-चीत हो रही थी, इसी समय

नबाब महिषी, नहीं मालूम किस कामसे, उसी घरके पाससे निकल रही थीं। सहसा, उन्होंने घसीटी बेगम और हुसेन-कुली खां का नाम सुना। दासी इन लोगोंके विषयमें क्या बात-चीत कर रही है, यह सुननेको इच्छासे वह उस घरके बाहर खड़ी होकर सुनने लगीं और चुपचाप सब बातें सुनती रहीं। जब उन्होंने सब बातें सुन लीं, तो उनका सारा शरीर कांपने लगा। दोनों कन्याओंके कुचरित्र की बात सुनकर, उनके हृदयमें बड़ी व्यथा हुई। वहां और न ठहर सकीं, सोचती सोचती शय्या पर जाकर लेट रहीं।

ग्यारहवाँ परिच्छेद ।
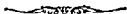
सन्तानके कुचरित्रकी कथा, कलङ्ककी बात, सुन कर कौन ऐसे माता-पिता होंगे जिनको दुःख न होगा ? क्या हिन्दू, क्या मुसल्मान, क्या अँगरेज, सभी जातियोंमें देखा जाता है कि पुत्र कन्याकी निन्दाकी बात सुनकर, पितामाता मर्माहत हो जाते हैं और उनके चरित्र संशोधनके लिये, दोष मिटाने के लिये, प्राणपनसे चेष्टा करते हैं ।

घसीटी और अमीनाके कुचरित्र और कलङ्ककी बात सुन कर नवाब-महिषीके हृदयमें बड़ी व्यथा हुई । किस उपायसे दोनों कन्याओंको सत्पथ पर लाना चाहिये, इसके लिये ऐसी चिन्ताकुल हुई कि जिसका पार नहीं । होते होते, एक दिन बातों ही बातोंमें, वह विषय उन्होंने नवाबको भी समझा दिया । बुद्धिमान् विवेचक नवाब अलीवर्दी यद्यपि मन ही मन बहुत रुष्ट हुए, किन्तु वह रुष्टभाव उन्होंने प्रकाश नहीं किया । वह डरते थे कि यह कलङ्क कहानी कहीं प्रकाश न हो जाय, इसलिये ऐसा उपाय सोचने लगे कि जिससे अमीना और घसीटी असत् पथको छोड़ कर सत्पथ पर आजावें ।

नवाब अलीवर्दी बेगमसे पूछने लगे, "तुमने इस बात को कैसे जाना?"

नवाब महिषीने जिस तरह पर उनको ज्ञात हुआ था वह सब कह सुनाया और कहा, "कि दासी बाँदियों को यह बात नहीं मालूम है कि मैंने उनकी बातें सुनली हैं। वह आपसमें चोरी-चोरी बातें कर रही थीं।"

अलीवर्दी—आप प्रकाश न हो कर जान लिया, यह अच्छा ही हुआ; परन्तु अब किस उपायसे दोनों कन्याओं को असत् कार्यसे हटाना चाहिये?

कुछ देर चुप रह कर नवाब महिषीने कहा, "यदि घसेटी और अमीना दोनों को यह बात मालूम होजाय कि हुसेन-कुली या विश्वासघातक है, वह छिपे छिपे दोनों ही से प्रेम करता है, तो आशा है कि दोनों ही इस कुकार्यसे हट सकती हैं।"

अलीवर्दीने उदास भावसे कहा, "इससे कौनसा विशेष फल होगा?"

बेगम—यह बात यदि किसी प्रकारसे एक बार भी घसेटी और अमीना जान पावें, तो वह हुसेनकुली की इस प्रतारणा को कभी न सह सकेंगी। अपने नायकके प्रति और का प्रणय कोई भी नायिका सह नहीं सकती है? नायक अथवा नायिकाओं अन्यके प्रेम में आसक्त होते देखकर अथवा उस आसक्ति की बात सुन कर, प्रतियोगी नायक या नायिका निश्चय

हो प्रतिहिंसासे अन्धे होकर उसके सर्वनाशका साधन करते हैं।, सब प्रेम, और अनुराग जाता रहता है, और दारुण प्रतिहिंसा की ताड़नासे अपने हाथों उसके प्राण नाश करने मे कुण्ठित नहीं होते हैं।

अलीवर्दी—अमोना और घसीटी यदि हुसैनकुलीखांके प्रति प्रतिहिंसा-परायण न हों और आपसमें ही एक दूसरे से विद्वेष-भाव करलें, तब क्या उपाय होगा? जब वह अग्नि प्रज्वलित होगी, तो किस तरह बुझाई जा सकेगी। इसमें अच्छा करते बुरा भी हो सकता है। हुसैनकुलीखां निहत न होकर घसीटी और अमोना ही मृत्युको प्राप्त होंगी। मेरी समझमें इस उपायसे कार्य्योद्धार न होगा। मेरी समझमें उत्तम युक्ति यह होगी कि सिराजुद्दौलाको, उसकी माता और मौसीके साथ हुसैनकुली की यह अनुचित प्रणयकी कथा सुना कर, उत्तेजित किया जाय और उसीके द्वारा हुसैनकुलीका प्राण संहार कराया जाय।

बेगम—इस कार्य्यके परिणाममें सिराजुद्दौलाको विपद्की आशङ्का है।

अलीवर्दी—सिराजुद्दौलाको किस बात की आशङ्का है?

बेगम—हुसैनकुलीखां नवाजिशअलीका बड़ा विश्वासी और प्रीति-पात्र है। घसीटी उसी हुसैनकुलीखां की प्रणयासक्ता है। यदि घसीटी हुसैनकुलीखांके साथ अमोनाके प्रणय का हाल न जान पावे, यदि उसके हृदयमे हुसैनकुलीखांके

प्रति विद्वेष की अग्नि प्रज्वलित न होवे, यदि घसीटी की इच्छा बिना हुसैनकुलीका सहार किया जाय, तो निश्चय ही घसीटी अपने प्रणयपात्रके हत्याकाण्डको देखकर सिराजुद्दौला से रुष्ट होगी और प्रतिहिंसाके वश होकर, या तो आप ही सिराजका विनाश करेगी, अथवा नवाजिश अलीका सिराजुद्दौलाके विरुद्ध उत्तेजित करेगा। हिताहित-विवेचनाशून्य नवाजिश अली, घसीटीके कहने के अनुसार, हुसैनकुलीखांकी हत्याका कारण अन्वेषण किये बिना ही सिराजुद्दौलाके सर्वनाश करनेमें प्रवृत्त होगा। अन्तमें फिर न जाने क्या हो? सिराजको क्या सदैवके लिये गवा बैठेंगे?

बेगम की यह बात नवाबकी समझमें आगई और कहा, "तो क्या उपाय करना उचित है?"

बेगम—वही उपाय अवलम्बन करना चाहिये, जिससे हुसैनकुलीके प्रति घसीटीका प्रतिहिंसा उत्पन्न हो। हुसैनकुलीके प्रति घसीटी की प्रतिहिंसा न होनेसे उसका विनाश करना सहज नहीं है।

अलीवर्दी—यह विद्वेष भाव किस प्रकार उत्पन्न हो सकेगा?

बेगम—घसीटी जानती है कि हुसैनकुली उसी अकेलीका प्रणयासक्त है, परन्तु जब सुनगी कि वह अमीनाके प्रेममें भी मुग्ध है, तो निश्चय ही घसीटी हुसैनकुलीको इस विश्वासघातकता और प्रतारणासे उसको चारसे घृणा करने लग

जायगी। और उसके सर्वनाश साधन करनेमें कुछ भी कुण्ठित न होगी।

अलीवर्दी—यदि घसीटो हुसैनकुलीखां की इस प्रतारणा को सुन कर भी उस पर क्रुद्ध न हो, तब क्या उपाय किया जायगा?

इस बातको सुनकर नवाब महिषी कुछ हँसकर बोली, "नारी जाति सब कुछ सह सकती है, परन्तु अपने प्रेमपात्रको दूसरेका प्रणयपात्र होते देख कर प्राण रहते कभी भी सह नहीं सकती है। दारुण प्रतिहिंसासे अधीर होकर उसके प्राण तक ले लेती है, किन्तु दूसरेका प्रणयपात्र नहीं होने देती है।"

अलीवर्दी—यदि यही बात है, तो इस कलङ्कके प्रकाश होनेके पहिले ही ऐसा उपाय करना चाहिये, जिससे हुसैन कुलीखां विनाशको प्राप्त होजाय।

बेगम—इसके लिये आपको अधिक चिन्ता न करनी होगी। जब कि मुझे यह बात मालूम हो गई है और जब कि आपसे मैंने मत ले लिया है, तब मै वही करूँगी जिसमें हुसैनकुलीखां शीघ्र ही मारा जाय। एक सप्ताहके भीतर ही आप सुन लेना कि हुसैनकुलीखां इस लोकको छोड़ गया।

अलीवर्दी—परन्तु इस कामको बहुत छिपाकर करना चाहिये, जिसमें लोग उसके मृत्यु सम्बन्धमें किसी तरहका सन्देह न करें। मुझको इसी बात की आशङ्का है कि

यह कुकार्य्य किसी तरह प्रकाश न होजाय। यदि ऐसा हुआ, तो किस प्रकार लोगोंके सामने मुँह दिखा सकूँगा? घसीटी! घसीना! मैंने इस बातको कभी कल्पना भी न की थी, कि तुम मुझको ऐसा दुःखी करोगी। यदि ऐसी कुल कलंक कन्या न होकर मैं निःसन्तान रहता, तो मुझको आज इतना चिन्तित न होना पड़ता। नवाब अलीवर्दी दोनों कन्याओंके कुचरित्र की बात सुनकर बड़े व्याकुल हुए—मर्मवेदनाके तीर लगे हुए हिरनकी तरह छटपटाने लगा।

बारहवाँ परिच्छेद।

पुरुष भ्रमर जाति है। जहाँ मधु है वहीं भ्रमर है, पुरुष भी ठीक उसी तरह का है। भ्रमर जिस तरह मधु-भरे हुए फूलको पाकर बासी फूलपर नहीं बैठता है, मधु होनेपर भी नहीं पीता है; पुरुष-जाति भी ठीक उसी तरहकी है। नई प्रेमिका पाने पर, पुरानी प्रेमिकाके साथ वैसा प्रेम, वैसा प्रणय नहीं रहता है।

जिस दिनसे हुसेनकुलीख़ाँने अमीना बेगमके प्रेमरसको चाखा, जिस दिनसे अमीनाने हुसेनकुलीख़ाँको अपना प्राणेश्वर बनाया, उसी दिनसे हुसेनकुलीका प्रेम घसीटी बेगमको ओर से घट चला। परन्तु फिर भी, वह घसीटी बेगमको एकबारगी छोड़ न सका। इच्छा न रहते भी, उसको मौखिक प्रणय दिखाना पड़ता था।

जो प्रणय अर्थसे अथवा रूपसे उत्पन्न होता है, वह स्थायी नहीं होता है। जब तक अर्थ रहता है, जब तक रूपकी छटा शेष रहती है, तभी तक प्रणय भी रहता है। अर्थ और रूप के जाते ही, प्रणय और प्रेम भी चल देता है।

घसीटीसे हुसैनकुलीखां का प्रेम धर्यक लिये था। मैं पहिले ही कह चुका हूँ कि हुसैनकुलीखां रूपवान पुरुष था। उसका रूप देखकर घसीटी उस पर मुग्ध हुई थी और हुसैन कुलीखां धर्यके लोभसे मुग्ध होकर घसीटीके प्रेममें आबद्ध हुआ था। इसीसे दोनोंका प्रणय स्थायी नहीं हुआ।

घसीटी यद्यपि रूपवती थी, किन्तु एक रूपके अतिरिक्त और कोई गुण उसमें नहीं था। उसको अपने रूपका बड़ा अहङ्कार था। इस रूपके अहङ्कारके कारण सभीको घृणा की दृष्टिसे देखती थी। हर एकको कहनी अनकहनी कह डालती थी। किसी में इतनी क्षमता नहीं थी, कि उसकी बातको लौट सके। यहां तक कि उसका पति नवाजिश मुहम्मद भी उससे कुछ न कह सकता था। वह जब जो बात कहती, नवाजिश मुहम्मदको वही करना पड़ता। घसीटी स्वाधीन प्रकृति की रमणी थी। नारीमें जो गुण आवश्यक हैं, वह कोई उसमें नहीं थे। इसीसे कोई उसकी प्रशंसा न करता था। हुसैनकुली भी उसके दोषोंके कारण, मुग्ध होने पर भी, सुखी न हो सका।

अमीना बेगम यद्यपि घसीटीके बराबर रूपवती न थी, तथापि ऐसी भी नहीं थी, कि उसके रूपकी कोई निन्दा कर सके। घसीटी बेगमके कोई पुत्र नहीं हुआ था, इसके उसका मुख यथेष्ट बना हुआ था और अमीना बेगमके पुत्र और कन्या हो चुके थे, उसके मनका सुख भी वैसा नहीं रहा

था, इसी कारण उसके सौन्दर्य में भी कुछ अभाव हो गया था।

सौन्दर्यमें अमीना बेगम घसीटी की बराबरी नहीं कर सकती थी, किन्तु गुणमें वह उससे बहुत श्रेष्ठ थी। उसके शरीरमें दया माया, स्नेह ममता और प्रेम था। अहङ्कार अथवा गर्व उसमें नहीं था। सरलता भी विलक्षण थी। वह धोर गम्भीर थी और सहिष्णुता भी उसमें विलक्षण थी। नवाब-कुमारी अमीना बेगमके इन गुणों पर मुग्ध होकर हुसैन-कुलीखां उसके प्रेममें आवद्ध हुआ था।

पुरुष सदैव ही स्वाधीनता-प्रिय है। नारी-जातिको अपने वशमें रखने के सिवाय, उसके सामने हीनता स्वीकार करनेका स्वभाव मनुष्यमें नहीं है। इसी कारण हुसैनकुलीखां, घसीटी बेगमके उसके ऊपर प्रेमाकाङ्क्षिणी होने पर भी, उसके प्रति अनुरक्त न होसका। वह अमीना की सरलता और उसके प्रेममें मुग्ध होगया।

पहिले कहा जा चुका है कि पुरुष भ्रमर-जाति है, नई वस्तु पानेपर पुरानीमें उसको अनुराग नहीं रहता है। जबसे हुसैनकुलीखां अमीना बेगमके प्रेमका पक्षपाती हुआ, उसी दिन से घसीटी बेगमकी ओरसे उसको विराग उत्पन्न हुआ। उसी दिनसे उसका मिलना-जुलना भी कम हो चला और नये प्रेमकी प्रेमिका अमीनाके प्रति अनुराग बढ़ता गया।

इच्छा न रहने पर भी, वह घसीटी बेगमको एकदम न

पति होने पर भी यदि वह कुरूप हो, तो रमणी विपथ-गामिनी हो सकती है। घसीटी बेगम पतिके वर्त्तमान होने पर भी, पतिके सम्भाषण-सुखको दिन भरके पीछे ही नहीं, एक पक्षके पीछे भी न पाती थी ; सुतरां, यदि वह उपपति पर आसक्त हुई तो इसमें परमेश्वरका ही विधान था।

परित्यक्ता स्त्रीको स्वामि-सम्भाषणके सुखसे वञ्चित होना पड़ता है। तो क्या घसीटी बेगम नवाज़िश मुहम्मदकी परित्यक्ता पत्नी थी? नहीं, यह बात नहीं थी। वह नवाज़िश-मुहम्मदकी प्रधान बेगम थी और नवाज़िश मुहम्मद उसको देख नहीं पाता था, यह बात भी नहीं थी।

तो घसीटी बेगम पति-सम्भाषणसे क्यों वञ्चित थी?

जिस स्थानपर अधिक सुख-सम्भोग होता है, जहाँ अतुल ऐश्वर्य होता है, उस घरमें नरनारियोंमें इन्द्रिय-दोष सहज ही होजाता है।

नवाज़िश मुहम्मद ढाकेका नवाब था। उसको अर्थ का अभाव नहीं था। भोग-विलास की भी सीमा नहीं थी। इसलिये यह सुख-सम्भोग ही उसके चरित्र दोषका प्रधान कारण हुआ। वह वारविलासिनियोंको लेकर नित्य-प्रति आमोद-प्रमोदमें लिप्त रहता था। इनके अतिरिक्त, भगवाई नामकी एक रमणीके प्रेममें पड़कर मत्त हो रहा था।

जिस घरका स्वामी बुरे कामोंमें लिप्त हो, उसका परिवार भी शीघ्र ही इसी पथका पथिक बनना चाहता है।

विशेष करके स्त्री सदैव ही पतिके दृष्टान्त पर चलनेवाली होती है।

स्वामीको कुकर्म करते देखकर, घसीटी भी क्रमशः निःशंक-चित्तसे स्वामीका अनुसरण करने लगी। नरनारीका मद्य मधु काम है। घसीटी इन्द्रियोंको जय करनेमें असमर्थ होकर हुसैनकुली की अनुरागिनी हुई। हुसैनकुलीका नारी-सेवनरूप ही घसीटीके सर्वनाशका कारण हुआ।

दसवाँ परिच्छेद ।
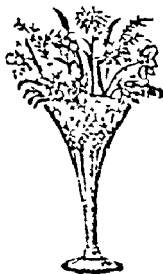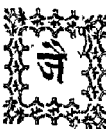
जैसे जैसे दिन पर दिन कटने लगे, हुसैनकुलीको उतना ही अमीना बेगम पर अनुराग और असोटी बेगम पर विराग होता गया। पहिले हुसैनकुलीखाँ, आन्तरिक न सही, मौखिक प्रेम ही सही, जितना असोटी बेगमको दिखाता था, जिस प्रकार पहिले अवसर पानेपर दोनों जने निर्जनमें बैठकर एक दूसरेके गलेमें बाँहें डालकर बैठते थे, अब वैसी कोई बात नहीं है। जिस दिनसे वह अमीनाके प्रेमका पचपाती हुआ, उसके गुणोंपर मुग्ध हुआ, उसी दिनसे असोटीके साथ आमोद-प्रमोद, बात चीत और भी कम होती गई।

असोटी हुसैनकुलीकी यह चातुरी, यह प्रतारणा, हले पहल समझ सकी; परन्तु यह नहीं कि कभी कभी उसका यह व्यवहार असोटीको खटक न जाता हो, परन्तु असोटीके अन्ध-विश्वासके आमने वह खटका ठहर न सकता था। वह समझती थी कि उसके प्रेमके आगे हुसैनकुलीखाँ और किसी से प्रेम नहीं कर सकता है।

असोटीको इस अन्ध-विश्वासके होनेका एक कारण भी था

बांदी—आपको नहीं, आमिना बेगमने दिया है।

घसीटी—किसको दिया है?

बांदीने उँगलीका इशारा हुसेन कुलीकी ओर कर दिया।

अब घसीटीकी उत्सुकताकी सीमा न रही। सन्देहके बादल और भी घनीभूत हो गये। बोली, "देखूं वह पत्र? देखें, क्या लिखा है?"

बांदीने और कुछ न कहकर पत्र घसीटी बेगमको दे दिया।

अब हुसेनकुलीका मुँह सूख गया। हृदय भयके मारे कांपने लगा। मन ही मन सोचने लगा कि अब निस्तार नहीं है। इतने दिनोंके बाद सब भेद खुल गया।

घसीटीने पत्र लेकर पढ़ना आरम्भ किया, उसमें इस प्रकार लिखा था :—

"प्राणेश्वर! दासीके जीवनके जीवन! क्या यही तुम्हारे प्रेमका परिचय है? जो तुम्हारे प्रेमाधीन है, उसको इस तरह यातना देना क्या तुमको उचित है? कह गये थे कि अभी आते हैं, सो अभी तक नहीं आये। तुम्हारे आनेकी आशामें सारी रात जागकर काटी, तब भी न आये। सब रात गई, अब भी दर्शन क्यों नहीं दिये? इस आशाकी उपेक्षाको मनुष्य कहां तक सह सकता है? यदि मार डालनेकी इच्छा न हो, तो जहां जिस अवस्थामें बैठे हो, पत्र पढ़ते ही, इस बांदीके साथ चले आना और इस दासीको बचाना। यदि उपेक्षा करके नहीं आओगे, तो बांदीके लौटने तक आपकी

राह देखते देखते बची ही रहूँगी; परन्तु यदि फिर भी दिखाई न दिये, तो तुम्हारे विरहमें मेरा बचना असम्भव है। तुम्हारा विरह मुझे अत्यन्त असहनीय हो रहा है। तुम्हारे प्रेमके कारण मैं अपने पतिका दुःख भूल गई हूँ। इस समय तुम ही मेरे वही पति हो। पत्नीकी यातना दूर करना, क्या पतिको उचित नहीं है? प्राणेश्वर! और अधिक क्या लिखूँ? दासी तुम्हारे विरहमें बड़ी कातर है, दर्शन देकर सुखी कीजिये। इति

तुम्हारी प्रेमाधीना,

अमीना।"

पत्र-पाठ शेष हुआ—आग भी भड़क उठी।

पत्र पढ़ कर घसीटीको ज्ञात हुआ कि, विश्व-संसार मानों जल रहा है, मानों आकाश पृथ्वी उलट-पुलट होरहे हैं। हृदयके भीतर भयानक उथल-पुथल होने लगा, मुख रक्तवर्ण हो गया, बड़ी भयानक मूर्त्ति हो गई। जैसे तारा टूटता है, उसी तरहसे हुसैनकुलीके पाससे उठ बैठी और बाणसे बिँधी हुई सिंहनीकी तरह गम्भीर गर्जन करके बोली, "क्या मुझको धोखा दिया गया है? मेरे आधीन होकर मुझसे ही इतनी चातुरी! ऐसा कपट! इतने दिन तक जिस बातका विश्वास नहीं किया था, जिस बातको विश्वास-योग्य न समझकर हृदयमें स्थान नहीं दिया था, क्या वह बात सत्यमें परिणत हो गई? ओह! कैसी चातुरी है! हुसैन! क्या यही तुम्हारा

धर्म है ? क्या यही तुम्हारा उचित काम है ? यही क्या तुम्हारी सत्यवादिताका परिचय है ? इससे थोड़ी देर पहिले क्या तुम नहीं कह रहे थे, कि मुझको छोड़कर और किसी रमणीसे तुमको प्रेम नहीं है ? तुम्हारी बातोंकी यही सत्यता है ? रे लम्पट ! रे कपटी ! मेरे हृदयमें जैसी तूने आग चोट मारी है, जिस प्रकार तूने मेरी आशाओंको धूलमें मिलाया है, जिस तरह तूने मुझे सदैवके लिये रुलाया है, इसी तरह तू भी उचित फल पावेगा।"

अग्नि प्रज्वलित हो गई, बांदी भी अवसर समझकर चल दी।

इधर घसीटीकी यह भयङ्कर मूर्त्ति देखकर, हुसेनकुलीके भयके मारे प्राण निकल गये। हृदय कांपने लगा। मन ही मन सोचने लगा कि घसीटीको सान्त्वना न कर पाई तो किसी प्रकार मङ्गल नहीं है, जीवनकी आशा भी वृथा है। परन्तु घसीटीके भीतर जो ज्वाला उठ रही है, उसको ठण्ढा करना सहज नहीं है।

आशा मनुष्यके जीवनकी प्रधान सहायक और परम अवलम्ब है। आशासे मुग्ध होकर, हुसेनकुली ने घसीटीके क्रोधको शान्त करनेके लिये बड़ी कातरताके साथ हाथ जोड़कर बोला, "घसीटी ! प्राणाधिके ! मुझको क्षमा करो। मैंने बिना समझे बूझे यह काम किया है। मैं शपथ खाकर कहता हूँ कि अब कभी ऐसा न होगा। तुम्हारे अतिरिक्त और किसी रमणीसे प्रेम

करना तो दूर रहा, बात तक भी न करूँगा। प्रियतमे! मेरा अपराध क्षमा करो, और मुझपर प्रसन्न हो जाओ।"

इस प्रकार अनुनय-विनय करता हुआ हुसैनकुली बारम्बार कातरता दिखाने लगा। क्षमा-प्रार्थना की, किन्तु गर्विता कठोरप्रकृति घसीटीका क्रोध किसी प्रकार कम न हुआ। उसने कहा, "क्या तुझको क्षमा! जीवन रहते तो हो नहीं सकती। विश्वास-भाजन होकर, जिसने विश्वास-घातकताकी चिर विरहाग्नि जला दी है, उसी को अब क्षमा! रे प्रतारक! तेरे प्रलोभनमें अब मैं मुग्ध होना नहीं चाहती हूँ। तेरी बातों पर अब मैं विश्वास न करूँगी। तुझसे प्रेम, तुझसे अनुराग, अब मुझको तनिक भी नहीं है। तेरा मुख देखने की भी इच्छा नहीं होती है। तूने जिस तरह मेरे सुखमें बाधा दी है, वैसी ही मैं भी आजसे तेरी शत्रु हो गई हूँ। अब मैं तेरा मुँह नहीं देखूँगी।" यह कह कर घसीटी चली गई।

घसीटी को लौटानेके लिये हुसैनकुली खाँ ने बहुत कुछ अनुनय-विनय और बहुत अनुरोध किया; परन्तु घसीटीने उसकी कोई बात न सुनी, एकबार फिर कर देखा भी नहीं।

हुसैनकुलीखाँ के सिर पर मानों आकाश टूट पड़ा। उसने समझ लिया कि अब सर्वनाश उपस्थित है, अब उसकी रक्षा नहीं है। घसीटी की प्रतिहिंसाकी आगमें, उसको भस्मीभूत होना पड़ेगा!

विश्वास घातकता करके हुसैनकुलीखाँ ने जो कुकार्य किया है, उसने उसको व्याकुल कर दिया है। वह सोचने लगा, "हाय! क्यों मैं इस कुकार्यमें प्रवृत्त हुआ? नवाजिश मुहम्मद का विश्वासी होकर, उसके साथ क्यों मैंने अविश्वासका काम किया? आत्मीय होकर, क्यों अनात्मीयोंका सा काम किया? क्यों उसकी स्त्रीके प्रेममें फँसा? छि:! छि:! यह काम क्या मुझसे अच्छा हुआ है? लोग सुनेंगे तो मुझसे क्या कहेंगे? नवाजिश मुहम्मद जान लेगा तो क्या कहेगा? यही क्या विश्वासका परिणाम है? यही क्या मेरा कर्त्तव्य है? हाय! मैं क्यों घसीटी के प्रलोभनमें भूल गया? हा घसीटी! हा अमीना! तुम्हारे प्रेमसे, तुम्हारे सौन्दर्यसे, तुम्हारे प्रलोभनसे मुग्ध होकर, यदि मैं यह जानता कि अन्तमें यह हलाहल उत्पन्न होगा, तो मैं कभी तुम्हारे धोखेमें न आता। कौन जानता था कि प्रेममें इतना दुःख होगा! अब समझमें आया है, कि बिना समझे बूझे इस प्रेममें जो भूलता है, परिणाममें वही दुःखका भागी होता है। घसीटी! प्राणाधिके! यही क्या तुम्हारे प्रेमका परिचय है? यदि नासमझीसे कोई अनुचित काम हो गया था, तो क्या वह क्षमा नहीं किया जा सकता था? क्षमा चाही, अनुनय विनय करके इतना कहा, तब भी दोष मार्जन नहीं किया? नहीं, नहीं, मैंने जो विश्वास घातकता काम किया है, उसके लिये क्षमा नहीं है। घसीटी! मैंने तुम्हारे साथ प्रतारणा करके अमीना बेगमसे प्रेम किया है। इसमें

शीककी वस्तु, प्रेमकी सामग्री, क्या कोई कभी किसी को देना चाहता है? हाय! मेरी ही दुर्बुद्धिके दोषसे यह अनर्थ हुआ! यह हलाहल उत्पन्न हुआ! प्रेम! प्रेम ही मेरा काल हुआ! नारीका प्रणय जिस तरह सुखका आधार है, वैसे ही दुःखका आकर है! इतने दिनोंके पीछे मैं समझा हूँ, कि नारी सब कुछ सह सकती है, किन्तु अपने प्रेमीको दूसरी नारीके प्रेममें आसक्त नहीं देख सकती है। और अन्यके प्रणयमें आसक्त देख कर उसका सर्व्वनाश करनेमें भी कुण्ठित नहीं होती है।

हुसेनकुलीखाँ इसी तरह बहुत देर तक सोच विचार करता रहा। किन्तु जिस चिन्ताकी सीमा नहीं, उसी चिन्ता सागरमें डूबने उछलने लगा। अन्तमें उसको भय हुआ। वहाँ और ठहर नहीं सका। व्याकुलचित्तसे, विषण्ण वदनसे, उस स्थानको छोड़कर चला गया।

चौदहवाँ परिच्छेद।
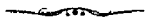
नवाब-महिषीका उद्देश्य सिद्ध हो गया। घसीटी और हुसेनकुलीके बीचमें सदैवके लिये विद्वेष की आग जलने लगी। घसीटी अब हुसेन-कुली का मुंह नहीं देखती है, यदि वह मिलना चाहे तो घसीटी नहीं मिलती है। नाम तक मुंह पर नहीं आने देती है। इससे पहिले घसीटी रात दिन हुसेनकुली के नामको जपती थी। इस समय नवाब महिषी के कौशलसे, वही हुसेनकुली घसीटी की आंखोंका शूल हो गया है। इस समय वह हुसेनकुली का नाम सुनते ही अग्निमें घृताहुतिके समान जल उठती है। धन्य नवाब महिषीकी बुद्धि! धन्य उनका कौशल।

अब नवाब-महिषीने यही उचित समझा कि सिराजुद्दौला को शीघ्र ही उत्तेजित करें। देर होनेसे सम्भव है, कि उद्देश्य-सिद्धिमें कुछ गड़बड़ पड़े। सम्भव है, कि हुसेनकुली भी के प्रति घसीटी का विद्वेष लोप हो जाय। यह सोचकर नवाब-महिषी देर न करके परिवारके कलह-मोचन और हुसेनकुली की मृत्यु साधनके लिये उपाय करनेमें प्रवृत्त हुईं।

सन्ध्याका समय था। दिवाकर दिन भर अविश्रान्त कर प्रदान करके, मानों थका हुआ, विश्रामके लिये पश्चिम-आकाश में चला गया है। इस समय उसका वह तेज, वह प्रखर किरणें, वह विश्व-संहारिणी मूर्त्ति नहीं है। जिस प्रकार बड़ी वयस होने पर मनुष्यका दर्प, गर्व, तेज, बल, बुद्धि साहस, यौवन कालके समान नहीं रहते हैं; दिवाकरमें भी इस समय वैसा ही परिवर्त्तन हो गया है।

सूर्यके अस्ताचल चले जाने बाद, धरणीने एक अपूर्व रूप धारण किया है। शीतल समीर मृदुमन्द गतिसे चल रही है। वृक्षों पर कोकिल आदि पक्षी बैठे हुए मधुर गान कर रहे हैं। वृक्षोंके पत्ते समीरके चलनेके कारण हिल रहे हैं, मानों उससे खेल रहे हैं। पश्चिम-आकाशमें कहीं लाल, कहीं नीले, कहीं हरे, कहीं पीले और कहीं श्वेत वर्णके बादलोंके ढेरके ढेर सज्जित होकर अनिर्वचनीय शोभा दिखा रहे हैं। दिवाकर के चले जाने बाद, इस समय सभी प्रीतिके भावसे परिपूर्ण हैं।

इस समय नवाब-महिषी अपने सोनेके कमरेमें बैठी हुई किसीकी प्रतीक्षा कर रही है। उनकी दृष्टि द्वारकी ओर है। कुछ भी शब्द होते ही, उत्सुकतासे उसी ओरको देखने लगती हैं।

इसी तरह बहुत देर हो गई, नवाब-महिषी मानों कुछ अधिक उत्कण्ठित और व्यस्त हो गई। सहसा उनके मुखसे यह दो चार शब्द बाहर निकल पड़े,—"कब का सम्वाद भेजा

है, न जाने अब तक क्यों नहीं आया ? ऐसे स्वेच्छाचारीसे काम निकालना बड़ा कठिन है।"

बात पूरी पूरी मुखसे निकलने भी न पाई थी, कि बाहर किसीका पद-शब्द सुनाई पड़ा। क्रम क्रमसे, जैसे जैसे वह शब्द निकटवर्त्ती और स्पष्ट सुनाई देता गया, नवाब महिषी वैसे ही वैसे उत्सुक चित्तसे द्वारकी ओर अधिक ध्यानसे देखने लगीं। अन्तमें दिखाई दिया, कि सिराजुद्दौला घरमें आ रहा है।

सिराजुद्दौला को देखकर नवाब महिषीकी उत्कण्ठा दूर हुई, परन्तु गाम्भीर्य कुछ बढ़ गया।

घरमें घुसते ही सिराजुद्दौला ने पूछा, "नानी ! क्या आपने मुझे बुलाया था ?'

बेगम—हाँ, बुलाया था।

सिराज—किस लिये बुलाया है ?

बेगम—एक आवश्यक काम है, बैठ जाओ, कहती हूँ।

सिराजुद्दौलाने बैठकर कहा, "नानाजी ! कहिये क्या कहती हैं ?"

नवाब महिषीने धीर गम्भीर भावसे कहा, "सिराज ! स्थिर हो जाओ, ऐसे व्यस्त क्यों हो रहे हो ? जिस कामके लिये मैंने तुमको बुलाया है, वह घबराहटका नहीं है। तुम ऐसा कौन सा भारी काम छोड़कर आये हो, जिसके लिये इतने घबरा रहे हो ? मैं जानती हूँ कि तुम दिन रात व्यस्त

आमोद प्रमोदमें कालक्षेप करते हो। राज्यकी चिन्ता, अपनी उन्नतिकी चिन्ता, परिवारकी चिन्ता, कोई भी चिन्ता तुम्हारे हृदयमें स्थान नहीं पाती है। तुम युवक हो गये हो, पर अभी तुम्हारा बाल्यकालका स्वभाव दूर नहीं हुआ है। तुम केवल निरर्थक कामोंमें ही समय नष्ट किया करते हो। दो दिन पीछे यह विशाल राज्य-भार तुम्हारे ऊपर पड़ेगा, परन्तु तुमको इन बातोंकी कुछ भी चिन्ता नहीं है। किसी भी विषय को तो तुम नहीं देखते हो। तुम अब बालक नहीं हो, जो इस समय भी आमोद प्रमोदमें समय नष्ट कर रहे हो! तुम दिन पर दिन जिस तरह आमोद-प्रिय होते जा रहे हो, इससे मुझे तनिक भी आशा नहीं है, कि तुम भविष्यत्में इस विशाल राज्यकी रक्षा कर सकोगे! तुम हमारे भावी उत्तराधिकारी हो, किन्तु तुम उस उत्तराधिकारके नितान्त ही अयोग्य हो! तुम इतने अयोग्य हो, यह मुझे नहीं मालूम था।"

सिराजुद्दौला मातामह और मातामहीके स्नेह और आदर का पाला हुआ था। उन्होंने कभी उसके ऊपर असन्तोष प्रकट नहीं किया था, स्नेह वाक्योंके अतिरिक्त कभी कोई कड़ी बात नहीं कही थी। इसी कारण आज मातामहीकी कड़ी बातोंसे वह बड़ा ही विस्मित हुआ और बोला, "नानी! आज आप यह सब बातें क्यों कह रही है? राज्यकी ओर मेरी दृष्टि नहीं है, आपने यह किस प्रकार जाना?"

यह बात सुनकर, कुछ अप्रसन्नता का भाव प्रकाश करके,

नवाब महिषी ने कहा,"जो मनुष्य अपनी जातिकी, अपने परिवारकी सुध नहीं रखता है, कि कहां क्या हो रहा है, वह समस्त राज्यकी सुध रक्खे, यह किस प्रकार विश्वास हो सकता है? सिराज! यदि तुम उस कामके योग्य होते, तो सदैव ही आमोद में रत न रहते। यदि तुमको सुख्यातिसे आनन्द और अख्याति से अपमान प्राप्त होता, यदि तुम अपनी वास्तविक मर्यादा समझते, तो तुम्हारे रहते ऐसी दुर्घटना कभी न होती। तुम तो कुछ देखते ही नहीं हो केवल आत्माभिमान और आत्मगर्व लिये बैठे हो।"

मातामही का यह आकस्मिक तिरस्कार, जैसा पहिले कभी न हुआ था, सुनकर सिराजुद्दौला बहुत मर्माहत हुआ। बोला, "नानीजी! आप यह सब क्या कह रही हैं? मैं आपका अभिप्राय कुछ भी समझ नहीं सका हूँ। क्या हुआ है, मुझसे स्पष्ट करके कहिये?"

अब नवाब महिषी विषण्ण वदनसे, दुःखित स्वरसे, बोलीं, "सिराज! और क्या कहूँ? जिसके सोचनेसे लज्जा मालूम होती है, जिसको मुखसे कहनेसे मुख अपवित्र हो जाता है, वही कलङ्ककी बात है, वह पाप कथा कौनसे मुखसे तुम्हारे सामने कहूँ?"

सिराजुद्दौला बड़े विस्मयसे पूछने लगा, "नानी! किसका कलङ्क और किसका पाप है?"

बेगम—तुम्हारी जननी और तुम्हारी मौसी, यही दो कल

ङ्किनी है, यही दो व्यभिचारिणी हैं। मैं बड़ी अभागिनी हूँ, इसीसे ऐसी कन्याओंको गर्भमें धारण किया था!

सिराजुद्दौला मन्त्रमुग्ध कालसर्पकी तरह स्तम्भित और विस्मित होकर बोला, "नानी! आप यह क्या कह रही हैं? मेरी माता और मेरी मौसी कलङ्किनी हैं?"

बेगम—हाँ, तुम्हारी माता और तुम्हारी मौसी ही है। यदि मेरी बातका तुमको विश्वास न हो, तो जाओ, हीरा झील जाकर अपने आमोद-प्रमोदमें मग्न हो जाओ; परन्तु यह कलङ्क-कहानी छिपी न रहेगी, शीघ्र ही लोगोंमें प्रकाशित हो जायगी।

सिराज—नहीं नानी! मैं आपकी बात पर अविश्वास नहीं करता हूँ; परन्तु मैं यह पूछता हूँ, कि इतना साहस किसका है जो सिंहकी माँदमें घुसे?

बेगम—सिंह यदि केवल सोता ही रहे, तो शृगाल भी साहस पा जाता है। तुम आमोद-प्रमोदकी मदिरा पिये हुए, आठों पहर, निद्रामें पड़े रहते हो; इसीसे शृगालकी स्पर्द्धा बढ़ गई है। और क्या कहूँ, खद्योतराशिने सूर्य्यकी प्रभा मलिन कर दी है। हुसैनकुलीखाँ ने हमारे निर्मल कुलमें कलङ्क लगाया है। इससे बढ़कर लज्जा और अपमान, और क्या हो सकता है? सिराज! धिक्कार है तुम्हारे जन्मको! धिक्कार है तुम्हारे अभिमानको! और धिक्कार है तुम्हारे पौरुष

सदैवके लिये विदा होता हूँ।" यह कहकर सिराजुद्दौला बड़े वेगसे घरके बाहर हो गया। नवाब-महिषीने समझ लिया कि हुसैनकुली का पक्ष निस्तार नहीं है। उसका उद्देश सफल हुआ।

पन्द्रहवाँ परिच्छेद ।

कोई कितना ही निर्वीर्य्य क्यों न हो, कितना ही भीरु क्यों न हो, चाहे जैसा कापुरुष क्यों न हो, परिवारकी किसी रमणीको कुपथगामी होते देखकर, उसके क्रोधकी सीमा न रहेगी। वह परिवारके कलङ्कको कभी चुपचाप न सह सकेगा। प्रतिहिंसाके हिताहित ज्ञानशून्य होकर, सम्भव है कि आत्म-प्राण विसर्जन करके मनकी व्यथा, भीतरकी ज्वालाको दूर करे, अथवा कलङ्क लगानेवालेके प्राण संहार करके मनकी अग्निको शान्त करे।

निष्कलङ्क कुलमें यह दारुण अमिट कलङ्क ! सिराजुद्दौला लज्जा और घृणा और अपमानसे जलने लगा। उसकी मर्मस्थलमें छेद हो गये ।। रोष और प्रतिहिंसासे सारे शरीरमें सैकड़ों विच्छुओंके काटने की सी ज्वाला मालूम होने लगी। एक तो जननीके कलङ्ककी बात, तिसके ऊपर मातामहीके तरह तरहके ताने और तिरस्कार ! उसके हृदयमें मानों किसी ने दावानल जला दी थी। आत्माभिमानी गर्वित सिराजको यह ज्वाला बड़ी ही असह्य ज्ञात होने लगी। उसके मनमें

शान्ति नहीं थी, आमोद-प्रमोदमें प्रवृत्ति नहीं थी, उठते-बैठते, खाते पीते, सोते जागते किसी समय शान्ति नहीं थी। जननीका कुचरित्र, हुसैनकुलीखांका दुःसाहस, मातामहीका तिरस्कार, एक एक करके चित्तमें घूमने लगे। वह प्रतिशोध की लालसासे व्याकुल हो उठा।

सिराजुद्दौला मातामही के पाससे प्रतिज्ञा करके, मनके आवेगमें मोतीझीलकी ओर चला; किन्तु कुछ दूर जाकर कुछ सोचकर खड़ा हो गया। खड़े खड़े न जाने क्या सोचता रहा। अन्तमें वहांसे चलकर जहां उसकी नौका बंधी थी, वहां पहुंचा और नौका पर सवार होकर मल्लाहसे हीराझील चलनेका आदेश किया।

देखते देखते नौका भागीरथीके पूर्वी किनारे हीराझील पर आ पहुंची। सिराजुद्दौला नौकासे उतर पड़ा।

प्रमोदशालामें सहचर लोग सिराजुद्दौलाकी राह देख रहे थे, परन्तु आज उसको आमोद प्रमोद,भोजन पान कुछ भी अच्छा नहीं लगा। किसी के साथ कोई बात-चीत न करके सीधा अपने शयनागारमें चला गया।

लुत्फुन्निसा उस घरकी अधिष्ठात्री थी, सिराजको असमय शयनागारमें आते देखकर बड़ी ही विस्मित हुई और बोली, "प्राणेश्वर! आज आपके इस असमयके आनेका क्या कारण है? कहनेमें यदि कुछ सङ्कोच न हो, तो दया करके दासीकी उत्कण्ठा दूर कीजिये।"

सिराज—लुतफुन्निसा! आज यहाँ मेरे इस प्रकार आनेको देखकर, वास्तवमें तुम विस्मित होगी और कारण जाननेके लिये आग्रह भी हो सकता है; परन्तु जिस कारणसे यह हुआ है, वह बड़ा भयानक है!

लुतफु—प्रभो! मेरा अपराध क्षमा कीजिये, परन्तु कारण जाननेके लिये दासी बड़ी उत्सुक है। क्या यह दारुण उत्सुकता निवारण न कीजियेगा?

सिराजुद्दौला एक गम्भीर, विषादपूर्ण,दीर्घ निःश्वास परित्याग करके बोला, "लुतफुन्निसा! और क्या कहूँ? जिसको ध्यानमें नहीं ला सकता हूँ, मुँहसे भी नहीं निकाल सकता हूँ, जिसको एक दिन सुनना होगा, इसकी सम्भावना भी नहीं थी, आज वैसी ही एक बात सुनकर हृदयमें बड़ी व्यथा हुई है। ऐसी मर्मान्तक वेदना जीवनमें कभी भी नहीं हुई थी! इस वेदनासे मैं अस्थिर हो गया हूँ। आमोद-प्रमोद सब ही विषवत् मालूम होते हैं। कोई वस्तु अच्छी नहीं लगती है।"

लुतफु—नाथ! ऐसी क्या बात है, जिसके कारण आप ऐसे कातर और दुःखित हो रहे हैं?

सिराज—लुतफुन्निसा! जो कुछ हुआ है, वह अति शोचनीय है। सिंहकी माँदमें शृगालने अधिकार कर लिया है! पुत्र होकर जननीके कलङ्ककी बात सुननी पड़ी है! इससे बढ़कर और क्या दुर्दैव हो सकता है? इससे बढ़कर और क्या मर्मवेदना हो सकती है? लुतफुन्निसा! धिक्कार है मेरे जीवनको!

धिक्कार है मेरे आत्माभिमानको। और धिक्कार है मेरे दर्पको। पुत्र होकर जननीके चरित्र दोषको बात सुनकर, मैं अभी तक जीवित हूँ। अभी तक कोई प्रतीकार न करके निश्चिन्त बैठा हुआ हूँ। मैं बड़ा ही भीरु हूँ, बड़ा ही कापुरुष हूँ, इसीसे शरीरमें रक्त होते हुए भी, बाँहोंमें बल होते हुए भी, कमरमें तलवार बँधी रहने पर भी अभी तक कलङ्क मोचनका यत्न न करके निश्चेष्ट बैठा हुआ हूँ। क्या यही मेरा तेज है। यही क्या मेरे पुरुषत्वका अभिमान है। यही क्या मेरा वीरत्व है। धिक्कार है मुझको "

मामाके कुचरित्रकी बात सुनकर लुत्फुन्निसा बड़ी ही विस्मित हुई। मन ही मन सोचने लगी "कैसे आश्चर्यकी बात है, जो मनुष्य सोच भी नहीं सकता है, कानोंसे सुनना तो दूर रहा आँखोंसे देखकर भी जिसका विश्वास नहीं हो सकता है, वही बात क्या सत्यमें परिणत होगई ? इसीलिये पुरुष रमणीको गोदमें बिठाये हुए भी उसका विश्वास नहीं करते हैं। धिक्कार है नारी जातिको। और धिक्कार है उनकी इन्द्रियोंको।"

लुत्फुन्निसा जितनी हो अपनी मामाकी बातोंको सोचने लगी, उतनी ही उसके चित्तमें नारी जातिके ऊपर घृणा बढ़ने लगी। नारी होकर भी वह नारी जातिकी निन्दा करनेसे रुक न सकी। नारीके ऐसे कुचरित्रकी बातें जितनी ही उसके ध्यानमें आतीं उतनी ही वह लज्जा और घृणासे मरणप्राय होने लगी।

लुत्फुन्निसा विषण्ण बदनसे बोली, "मुझको ऐसा ज्ञात होता है, कि हम लोगोंके किसी शत्रुने, हम लोगोंकी अप्रतिष्ठा करनेके लिये, यह मिथ्या कलङ्क लगाया है।

सिराजुद्दौलाने बड़े दु:खित स्वरसे कहा, "नहीं, लुत्फुन्निसा! तुम जो सोचती हो वह बात नहीं है। ऐसा किसका साहस है, कि सिराजुद्दौलाकी माता और मौसीके चरित्रमें मिथ्या कलङ्क लगावे?"

लुत्फु—आपने यह बात कहां सुनी?

सिरा—लुत्फुन्निसा! जिससे सुनी है, उस पर अविश्वास करनेका कोई कारण नहीं है। जनक-जननी अपने पुत्र-कन्या पर मिथ्या दोष नहीं लगा सकते हैं। लुत्फुन्निसा! यह कलङ्क मिथ्या नहीं है, मेरा हृदय इस बातकी साची देता है कि यह बात मिथ्या नहीं है। यदि मिथ्या होती, तो मेरा हृदय इस तरह एकबारगी उसको विश्वास न कर लेता, और विद्वेषकी आग भी इस तरहसे जी को न जलाती। ओह! ज्वाला! ज्वाला! असह्य ज्वाला! हृदय जल गया है! लुत्फुन्निसा! मैं और अधिक स्थिर नहीं रह सकता हूँ। लाओ, दो, मेरी तलवार मुझको दो। मैं इसी समय उस दुरात्मा हुसैनकुली के रक्तसे कलङ्क-मोचन करके, हृदयकी ज्वाला, अन्तरकी व्यथा, निवारण करूँगा! ओह! असह्य! असह्य!

लुत्फुन्निसा सिराजुद्दौलाके दोनों पैर पकड़ कर बोली, "नाथ! स्थिर हूजिये, इतने उतावले क्यों होते हैं? किसी

विहार, सोना-बैठना कुछ भी शान्ति न पहुँचाता था। वह सदैव ही चिन्तायुक्त रहता था।

यद्यपि हुसैनकुलीखाँ सदैव ही चिन्तायुक्त रहता था, तथापि इस भयसे कि कहीं घसीटा सब बातें न जान जाय, यह उसको चिन्तायुक्त देखकर किसी तरहका सन्देह न करे, जब वह घसीटासे मिलता, तो बहुत अच्छी तरह मिलता और अपने सब भाव छिपाये रखता।

तीन चार दिन हो गये, परन्तु हुसैनकुलीखाँ किसी तरह निःशङ्क अथवा निश्चिन्त न हो सका। दिन-रात उसके हृदय में घसीटी बेगमकी वही भयङ्कर मूर्त्ति बसी रहती थी। अनेक चेष्टा करने पर भी, वह उसको भूल नहीं सकता था।

रात दो पहर जा चुकी है। प्रकृति स्थिर, गम्भीर, निश्चल और नीरव है। जीवमात्रका कहीं शब्द सुनाई नहीं देता है। सभी शान्तिदायिनी निद्राकी कोमल गोदमें वाह्यज्ञान शून्य होकर सो रहे हैं। सुखसे शान्ति-सुख और विश्राम-सुख अनुभव कर रहे हैं।

हुसैनकुलीखाँ इस समय शय्या पर लेटा हुआ है, यद्यपि दुग्धफेन की भाँति शय्या स्वच्छ और कोमल है, परन्तु उसको अच्छी नींद नहीं आई है। क्षण क्षण पर तरह तरहके भयानक स्वप्न देखकर निद्रा सुखमें विघ्न हो जाता है। वह स्वप्न देख रहा है, कि मानों घसीटी खुले हुए केशोंसे, बड़े भीषण वेशसे, शय्याके पास आकर खड़ी हुई है। हुसैनकुली घसीटीको

वह भयानक मूर्त्ति देखकर कांप गया, उसको ओर देख न सका, कोई बात भी न बोल सका। परन्तु घसीटी उसको निर्व्वाक् देखकर, क्रोध भरे नेत्रोंसे, बड़े कर्कश स्वरसे बोली, "रे प्रतारक! तू क्या सोच रहा है? तू ने क्या समझा था, कि तेरी शठताको शास्ति दिये बिना ही मैं निश्चिन्त हो जाऊँगी? आज जो तुझको तेरी प्रतारणाकी उचित शास्ति देने आई हूँ, सो क्या तू नहीं जानता है? नहीं तो, घसीटीने जीवन भरके लिये तेरा मुँह न देखनेको जो प्रतिज्ञा की है, सो क्या अब तेरी प्रेमाभिलाषिणी होकर यहाँ आवेगी, क्या तू यही समझता है? रे प्रवञ्चक! घसीटी यहाँ प्रेमाभिलाषके लिये नहीं आई है। तेरे प्राण लेनेके लिये आई है। तू ने जैसी मेरे साथ प्रतारणा की है, तू ने जैसा मुझे रुलाया है, तू ने जैसा मुझे दावाग्निसे जलाया है, वैसे ही मैं आज तुझे सभी सुखोंसे वञ्चित करूँगी। इस जगत्से तेरा नाम सदैवके लिये मिटा दूँगी। तू जीवित रह कर, अमीनाको लेकर, सुखसे जीवन व्यतीत करे और मैं आँखोंके सामने उसको देखकर पेट की पेट में जलती रहूँ,—यह कभी न होगा—यह मैं कभी न सह सकूँगी! तुझको संहार करके, मनकी आगको, हृदयको ज्वालाको, आज ठण्डी करूँगी।"

घसीटीको प्राण-संहार करनेके लिये उद्यत देखकर, हुसैनकुलीखाँ बड़ा व्याकुल हुआ। जीवनकी आशासे बड़ा कातर

होकर बोला, "घसीटी! प्राणाधिके! मुझे क्षमा करो! मेरे प्राण नाश मत करो। मैंने बेसमझे बूझे जो काम किया है उसके लिये क्या क्षमा नहीं है? मैं जीवन-भर अब ऐसा काम कभी न करूँगा और तुम्हारा अवाध्य कभी न होऊँगा। तुम मेरे प्राण नाश मत करो। घसीटी! प्रियतमे! यदि मैंने भ्रममें पड़कर कोई अनुचित काम किया है, तो क्या उस अपराधकी मार्जना नहीं है? मुझको जीवन-भिक्षा दो, मैं तुम्हारा ही हूँ। जिसको एक दिन तुमने 'प्राणेश्वर' कहकर सम्बोधन किया है, आज कैसे निठुर होकर उसके प्राण-संहारको उद्यत होती हो? घसीटी! प्राणेश्वरी! मेरी रक्षा करो, मैं तुम्हारा ही हूँ। जीवनमें कभी तुम्हारा अवाध्य न होऊँगा।"

इस बार घसीटी जलती हुई आगमें घृताहुतिकी तरह क्रोधसे रक्तवर्ण हो उठी। विकट स्वर से चीत्कार करके बोली, "रे प्रतारक! तू 'प्राणेश्वरी' कहकर किसको सम्बोधन करता है? अब मैं तेरी प्रणयिनी नहीं हूँ। मैं तेरी प्राण लेनेवाली शत्रु हूँ। तू क्या समझता है कि घसीटी तेरे प्रलोभनमें मुग्ध होगी, अथवा तुझको 'प्राणेश्वर' कह कर हृदयमें स्थान देगी? इस मुंहसे जो बात एक बार बाहर हुई, वह अन्यथा न होगी। जबकि तेरे प्राण-संहार करनेकी ही एक मात्र प्रतिज्ञा की है, तब तुझको किसी प्रकार क्षमा नहीं कर सकती हूँ। जब तक तेरा प्राण विनाश नहीं कर सकूँगी, तब तक मेरे हृदय की आग किसी तरह न बुझेगी। तेरा प्राण नाश करना ही

मेरा एक मात्र उद्देश्य है। यह देख, इसीके लिये यह सान धरी हुई तलवार साथ लाई हूँ। अब तेरा परित्राण नहीं है।" यह कह कर मानों घसीटी हुसैनकुलीखाँ के प्राण-संहारको उद्यत हुई। वह भी भयके मारे विकट चीत्कार करके बोला, "घसीटो! मेरी रक्षा करो, रक्षा करो, प्राणोंसे न मारो!"

दारुण चीत्कारसे हुसैनकुलीखाँ की निद्रा भङ्ग हो गई। उठने पर देखा कि कहीं कोई नहीं है। वह अकेला अपने घरमें पलँग पर पड़ा हुआ है, पासही दीपक जल रहा है। यह देखकर यद्यपि वह कुछ स्वस्थ हुआ, परन्तु सम्पूर्ण रूपसे स्थिर न हो सका। भयानक स्वप्न देखनेसे उसकी छाती धड़क रही थी, चित्त अस्थिर हो रहा था, तरह तरहकी चिन्तायें आकर मनमें उदय होने लगीं। वह ऐसा भयभीत और व्याकुल हो गया कि जिसका पार नहीं।

शय्या पर पड़ा पड़ा, तरह तरहकी भावनाएँ करने लगा। सोचता सोचता फिर सो गया, और वाह्यज्ञानशून्य हो गया। शङ्का और भय सभी जाते रहे। शान्तिमयी निद्रादेवीकी सुकोमल गोदमें सोकर, कुछ देरके लिये, सब दुःख-कष्ट भूल गया।

किन्तु क्षण भरके बाद फिर स्वप्न देखने लगा। देखा, कि एक टिकटी पर रखकर कई एक फ़क़ीर उसको कन्धों पर उठाकर लिये जा रहे हैं। फ़क़ीरोंकी पोशाक अपूर्व ढँगकी

है। उसीके मुंहसे "चचा", चचा:, मुहम्मद, मुहम्मद," इत्यादि शब्द निकल रहे हैं।

यह स्वप्न देखकर हुसैनकुलीखां के हृदयमें बड़ा आघात पहुंचा, वह फूट फूटकर रोने लगा।

यह स्वप्न भी गया। हुसैनकुली फिर एक स्वप्न देखने लगा। मानों वह राजपथ पर जा रहा है। इसी समयमें सहसा सिराजुद्दौलाने आकर उसको घेर लिया, और बहुत कड़े वचनोंसे यथेष्ट तिरस्कार और अपमान करके द्वन्द युद्धमें प्रवृत्त हुआ, और अन्तमें उसके ऊपर तलवारका आघात करने लगा। तलवारके आघातसे उसका सारा शरीर क्षत-विक्षत हो गया, रुधिर बहने लगा, प्राण कण्ठागत हो गये। बचनेके लिये "घसीटा। घसीटा। मेरी रक्षा करो, रक्षा करो, सिराजने मुझको मार डाला" कह कर चिल्ला उठा। इस चिल्लानेसे फिर उसकी निद्रा भङ्ग हो गई। आंखें खुलने पर देखा, न राजपथ है, न सिराजुद्दौला है। कहीं कुछ भी नहीं है, घरमें अकेला शय्या पर पड़ा हुआ है।

एकके पीछे एक स्वप्न देखनेसे हुसैनकुली खां का चित्त बड़ा अस्थिर हो गया। फिर उसको नींद नहीं आई। सारी रात जागकर तरह तरहकी दुर्भावनायें करते करते कट गई।

प्रातःकाल हुआ। अन्धकार जाता रहा। निर्जीव जगत् सजीव हो गया। पक्षी घोंसलोंमें बैठे हुए प्रातःकालके मधुर गीत गाने लगे। सवेरेकी समीर मन्दमन्द गतिसे चलने

लगी। उद्यानोंमें फूल खिलने लगे। भौंरे उनकी गन्ध पाकर मधुपान करनेके लिये गुन गुन करते हुए उड़ने लगे। निशावसान होने पर सभी जाग उठे। पृथ्वी कोलाहलसे भर गई।

प्रातःकाल होने पर हुसैनकुलीख़ाँ उठा, धीरे धीरे घरके बाहर आया। रातका भीषण स्वप्न और दारुण दुश्चिन्ता उसके चित्तको अस्थिर करने लगी। उसको कुछ भी अच्छा नहीं लगता था।

देखते देखते दिवाकर रक्तवर्णसे पूर्व्व आकाशमें उपस्थित हुआ। नवोदित सूर्य्यकी किरणें जलमें, थलमें, वृक्षों पर पड़ने लगीं। कमलिनी-पतिके उदय होनेसे पृथ्वी आलोकित हो गई, पथ घाट सब लोगोंसे भर गये।

हुसैनकुलीख़ाँ दारुण चिन्ताकुल चित्तसे धीरे धीरे मोती झीलकी ओर चलने लगा। उसका चित्त आज बड़ा ही अस्थिर है। मनमें मन नहीं है, देहमें प्राण नहीं हैं, शरीरमें बल नहीं है, दृष्टिमें तेज नहीं है। मानों कठपुतलीकी भाँति चला जा रहा है। रातके दुःस्वप्न, सागरके पानीकी तरह चित्तको उथल पुथल कर रहे हैं।

हुसैनकुलीख़ाँ इस प्रकार चिन्तित हृदयसे जा रहा है। कुछ ही दूर गया होगा, कि उसको कालरूप सिराजुद्दौला दिखाई दिया। सिराजुद्दौलाको देखते ही उसको रातका स्वप्न याद हो आया। हृदय काँपने लगा, कण्ठ सूख गया, पैर और आगे न बढ़ सके।

सिराजुद्दौला इस भाँति कभी राजपथ पर नहीं चलता है; विशेष करके इस समय प्रातःकाल है। इसी कारण उसको देखकर हुसैनकुलीको भयका सञ्चार हुआ। सिराजुद्दौला उसको साक्षात् यम दिखाई देने लगा।

दोनों सामने आये। सिराजुद्दौला अभी तक प्रतीक्षा कर रहा था, अब शिकारको सामने पाकर, रोषमें भर गया। मुख नवोदित सूर्य्यकी तरह रक्तवर्ण हो गया। नेत्रोंसे अग्नि निकलने लगी। वह मूर्त्ति देखकर हुसैनकुली समझा, कि स्वप्न सत्य मालूम होता है।

साहस करके हुसैनकुली ने जानेका उद्योग किया, परन्तु सिराजुद्दौला उसका राह रोक कर खड़ा हो गया। दाँतोंसे दाँत पीसता हुआ चिल्लाकर बोला "और आगे मत बढ़, यहीं खड़ा रह। तेरे कर्मका उपयुक्त फल आज अभी, तुझको भोग करना होगा।"

किसी तरह भाग जानेकी इच्छासे, सिराजुद्दौलाके रोकने पर भी, हुसैनकुली ने दो चार पैर आगे बढ़ाये; किन्तु सिराजुद्दौलाने और अधिक उसको बढ़ने नहीं दिया। कमरसे तलवार निकाल कर बोला, "अब भी ठहर जा! यदि और एक पग भी आगे बढ़ा, तो अभी इस तलवारके आघातसे टुकड़े टुकड़े कर दूँगा!"

भयके मारे हुसैनकुली आगे नहीं बढ़ा। बहुत धीरेसे, काँपते हुए स्वरसे बोला, 'सिराज! आज तुम राजपथमें पद

होकर मुझसे ऐसे अपमान सूचक शब्द क्यों कह रहे हो? और जानेसे क्यों रोक रहे हो? किसके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये, क्या तुमको इसका ज्ञान अभी तक नहीं हुआ है? जानते हो, एक समय मैं तुम्हारा शिक्षा गुरु रह चुका हूँ। मुझसे ऐसे कटु वाक्य कहना उचित नहीं है। मैंने तुमको बड़े यत्नसे शिक्षा दी है, क्या शिक्षा दानका यही फल है? गुरुकी अवहेलना! गुरुकी अवमानना! अभी तक तुम्हारा वह बालकपन दूर नहीं हुआ है? छोड़ो, राह छोड़ो, राहमें गुरुजनोंके साथ ऐसा व्यवहार करना बड़ी लज्जाकी बात है।"

सिराजुद्दौला दांतोंसे दांत पीसता हुआ व्यङ्गसे बोला, "हां, लज्जाकी बात अवश्य है। तेरे सो नीच प्रकृतिवाले मनुष्यसे मुझको शिक्षा लाभ करना पड़ा है, इसलिये मुझको धिक्कार है। तुझसे शिक्षा लाभ किया है, इससे मुझको घृणा होती है, और तू उससे अपना गौरव समझता है। धिक्कार है तुझको! और धिक्कार है तेरे गौरवको! तू बड़ा ही मूर्ख है, इसीसे गौरव समझता है। तू लोगोंको मुख किस प्रकार दिखाता है। क्या तू जानता है, कि तेरे चरित्रकी कथा सिराजुद्दौलाको मालूम नहीं है? जब तक तेरी यह कथा न जान पाई थी, और नहीं सुनी थी, तबतक तुझको शिक्षागुरु समझ कर भक्ति और सम्मान करता था। परन्तु इस समय तेरी ओरसे श्रद्धा भक्ति जाती रही है। मैंने जान लिया है, कि तेरे बराबर पाखण्डी, नराधम और काफिर जगतमें दूसरा नहीं है।"

हुसेन—सिराज! तुम क्यों यह बात कहा रहे हो? मैंने तुम्हारा क्या किया है?

"क्या किया है? याद नहीं है? रे विश्वासघातक! तेरे बराबर नराधम क्या संसारमें कोई दूसरा है? जो तेरा विश्वास करे, उसीका तू सर्वनाश करे। आज तुझको उसका उचित फल भोग करना होगा। आज सिराजके इस कराल हाथमें तुझ को उपयुक्त शिक्षालाभ होगा। आज तुझको मालूम होगा, कि पत्निमें हाथ डालने से क्या परिणाम होता है? आज तू किसी तरह न बचेगा। तेरे रक्तसे आज मैं हृदयकी ज्वाला ठण्डी करूँगा। तुझको आज यमके घर भेजकर मनकी व्यथा दूर करूँगा।" यह कहकर सिराजुद्दौलाने हुसेनकुलीके ऊपर तलवारका आघात किया। एक ही आघातमें, हुसेनकुली की देह दो टुकड़े होकर, कदलीके पेड़ की तरह, पृथ्वीपर गिर पड़ी, रक्तका स्रोत बह निकला। हुसेनकुली की आँखें इस जीवनके लिये बन्द होगई। गुप्त प्रेमका परिणाम कैसा भयंकर है, हुसेनकुलीही इसका अच्छा दृष्टान्त है।

हुसेनकुलीखाँका संहार करके भी सिराजुद्दौलाके चित्तका दुःख दूर नहीं हुआ। उसने अनुचरोंको बुलाकर आदेश दिया,—"हुसेनकुलीकी इस खण्डित मृत देहको हाथी की पीठ पर डालकर घूमते हुए राजपथ पर ले जाओ और सब लोगोंको बतलाओ कि हुसेनकुलीने अपने दुष्कर्मके प्रायश्चित्तरूपमें सिराजुद्दौलाके हाथसे प्राण विसर्जन किये हैं।"

सिराजुद्दौलाका आदेश अन्यथा होनेवाला नहीं था। भृत्योंने वैसा ही किया। हुसैनकुलीख़ाँ की मृत देह हाथी की पीठ पर रखकर राजपथ पर ले चले। युवराजकी प्रतिज्ञा-पूर्ण हुई। नवाब-महिषीका उद्देश्य भी सिद्ध हुआ। परिवार की कलङ्क-कालिमाने अधिक वृद्धि नहीं पाई।

हुसैनकुलीख़ाँ की हत्या-कहानी मुर्शिदाबादमें, नगर-ग्राममें, लोगोंके घर घरमें, प्रचारित होगई। जो सुनता था, इस भीषण हत्याकाण्ड की बात सुनकर कांप जाता था। बहुतोंने नाना रूपसे इस भीषण हत्याकी आलोचना करके सिराजको "घोर दुर्दान्त नृशंस" बतलाया। परन्तु वास्तवमें बात क्या थी, किसीने अनुसन्धान नहीं किया, अथवा कोई जान भी न सका।

हुसैनकुली की हत्याके सम्वादसे राजा राजवल्लभके भय की सीमा न रही। वह अपना परिणाम सोचकर व्याकुल होगया।

इस सम्वादसे अमीनाके हृदयको भारी आघात पहुँचा। शोक और दुःखसे मुह्यमान होगई, परन्तु उसका पुत्र ही उसके शोकका एकमात्र कारण था; इसलिये वह उसका बदला न ले सकी। यदि और कोई होता, तो अमीना कभी शान्त न होती; परन्तु पुत्र चाहे जैसा दुःख, कष्ट, यातना, वेदना देवे; पुत्रवत्सला जननी क्या कभी सन्तानसे बदला ले सकती है? अमीना बेगमने निरुपाय होकर इस दारुण शोक-ताप, भीषण मर्मवेदना को हृदयमें ही छिपा रक्खा, प्रकाशित न कर सकी।

सत्रहवाँ परिच्छेद ।

नवाब अलीवर्दी बीमार हैं, उदर रोगसे पीड़ित हैं। यह आशा नहीं है कि रोगमुक्त होंगे। मरहठोंके साथ सदैवके लिये सन्धि होगई यह सत्य है, किन्तु उनलोगोंका दमन अलीवर्दी नवाबके लिये कालस्वरूप हुआ।

मरहठोंके दमनके लिये नवाब अलीवर्दी बराबर एक शिविरसे दूसरे शिविरमें घूमते फिरते थे, युद्ध विग्रहमें ऐसे लिप्त रहते थे कि एक घड़ी भी चैन नहीं था। बिना खाये-पिये, बिना सोये, दारुण दुश्चिन्तामें दिन कटता था। इसी कारणसे सदैवके लिये उनका स्वास्थ्य बिगड़ गया। शेषमें, उदर-रोग काल होकर उनके पीछे लगा। बल वीर्य, पौरुष क्रम क्रमसे लोप होने लगे। जीवनकी आशा भी क्रम क्रमसे टूटने लगी। हकीम वैद्योंके बड़े यत्नसे चिकित्सा करने पर भी, रोगमें कुछ कमी न हुई। जैसे जैसे दिन कटने लगे, वैसे ही वैसे रोग बढ़ने लगा। साथ ही सब लोग नवाबके जीवन की आशासे निराश होगये।

जब बहुदर्शी वृद्ध नवाबने समझ लिया, कि काल-व्याधि

ने उनपर आक्रमण किया है, अब इससे बचनेकी कोई आशा नहीं है। इस बातको अलीवर्दी बहुत अच्छी तरह समझ गये थे, इससे जितनी अपने जीवन की रक्षाकी चिन्ता नहीं करते थे, उससे अधिक सिराजुद्दौला की चिन्ताने उनको अस्थिर कर दिया था। नवाब मृत्युशय्या पर पड़े पड़े, सदा स्नेहके आधार सिराजुद्दौलाके विषयमें सोचते रहते थे। उसका परिणाम सोच सोच कर, समय समय पर, वह व्याकुल हो उठते थे।

अभी तक नवाबने स्नेहके वश सिराजुद्दौलाको बालक समझ कर कोई उपदेश नहीं दिया था। यदि सिराजने कभी कोई कुकर्म किया भी, तो उसको सुनकर, उससे कुछ कहना तो दूर रहा, अपनी आँखोंसे देख लेने पर भी कुछ नहीं, कहा था, न कभी निवारण किया था और राज्यका कोई गूढ़ कौशल भी नहीं सिखाया था। उनको विश्वास था कि, सिराजुद्दौला इस समय चञ्चल मति का बालक है। इस समय कोई उपदेश देना अथवा किसी विषयमें निवारण करना वृथा है। वयोवृद्धिके साथ ज्ञान भी बढ़ेगा, तब सब दोष दूर हो जायँगे और उपदेश भी सफल होगा। किन्तु इस समय अपनेको मृत्युशय्या पर पड़े देखकर, अलीवर्दी दौहित्रके लिये बड़े ही व्याकुल हुए और सिराजको सर्वदा ही शय्याके पास बिठा कर उपदेश देने लगे।

अभी तक सिराजुद्दौला समझता था, कि मेरे मातामह

यह सुनते ही सिराजुद्दौला की आँखोंसे आँसू बहने लगे। वह आँसू भरी आँखों और गद्गद स्वरसे बोला, "नानाजी! आप क्यों जीवन की आशासे हताश होते हैं? यह रोग ऐसा कठिन नहीं है, जिससे सुस्थिलाभ की आशा न हो।"

अली—भाई सिराज! यदि मैं तुम्हारी तरह युवक होता, तो मैं आरोग्य होजाने की आशा कर सकता था; किन्तु इस समय मैं बूढ़ा हूँ। इस अवस्था में, कोई उदर-रोगसे पीड़ित होकर किसी प्रकार बच नहीं सकता है। जब कि जन्म ग्रहण किया है तो एक न एक दिन मरना ही है, इसके लिये मैं तनिक भी भीत अथवा चिन्तित नहीं हूँ। यदि चिन्ता है, तो केवल तुम्हारी है। यदि तुम मेरी एक बात, एक अनुरोधकी रक्षा कर सको, तो मैं निश्चिन्त हो सकता हूँ और भविष्यत् में तुम इस बङ्गाल बिहार और उड़ीसा की मसनद पर आरो-हण करके प्रजापालन और राज्यशासन करने में समर्थ होंग कि नहीं, यह भी मैं जान सकूँगा।"

सिराज—ऐसी कौनसी बात है नानाजी?

अली—सिराज! पहिले शपथ खाओ, कि जिस कामके लिये मैं मना करूँ उसको जीवन भर कभी न करूँगा।

सिराज—नानाजी! आज्ञा कीजिये, किसका नाम लेकर शपथ खानी होगी? आप जो कुछ कहेंगे, मैं उसीके करनेको प्रस्तुत हूँ।

अली—सिराज! मुसल्मानके लिये एकमात्र धर्म पुस्तक

और विश्वास की वस्तु कुरान है। क्या तुम, उसको छूकर शपथ खा सकोगे?

सिराजुद्दौला कुछ विषाद की हँसी हँसकर बोला, "नानाजी! क्यों नहीं शपथ खा सकूँगा? मैं कुरानको छूकर सौगन्ध खाता हूँ, कि आप जिस कामके लिये निषेध करेंगे, मैं जीवनमें उसे कभी न करूँगा।"

अली—सिराज! खूब समझ-बूझ कर शपथ खाना। ऐसा न हो, कि अन्तमें धर्मपथ से पतित होकर लोगोंके सामने हास्यास्पद बनना पड़े।

सिराज—नानाजी! आप क्यों वृथा सन्देह करते हैं? यदि सिराजुद्दौलाने आपके वंशमें जन्म न लिया होता, तो आप सन्देह कर सकते थे।

अली—सिराज! इस बातका तुम्हारी ओरसे मुझे पूरा विश्वास है।

सिराज—तो कहिये, आपको प्रीतिके निमित्त मुझे क्या करना होगा।

अली—सिराज! कुरान छूकर शपथ खाओ, कि आजसे जीवन भर मदिराका पीना तो दूर रहा, कभी हाथसे भी न छूऊँगा।

यह सुनकर सिराजुद्दौला दम्भ करके बोला, "नानाजी! इस सामान्य बातके लिये आपको इतनी चिन्ता है? यदि इसको छोड़ देनेसे आप निश्चिन्त हो सकते हैं, तो मैं अपने

इस धर्मग्रन्थ कुरानको छूकर प्रतिज्ञा करता हूँ, कि आजसे जीवनभर मद्यपान करना तो दूर रहा, कभी हाथसे भी न छूऊंगा। यदि कभी स्पर्श करूँ, तो धर्म विरुद्ध होनेके कारण मैं जन्म-जन्म में भिक्षुक होऊँ।"

सिराजुद्दौला की इस दृढ़ प्रतिज्ञाकी बात सुनकर नवाब अलीवर्दी प्रसन्न होकर बोले, "सिराज! तुम्हारी प्रतिज्ञासे मैं अब निश्चिन्त होकर मर सकूँगा। किन्तु भाई! देखना, आजीवन इस शपथको भूलना मत।"

सिराज—नानाजी! सिराजुद्दौला यदि जैनुद्दीनका ही लड़का होगा, तो केवल प्रतिज्ञा ही की बात नहीं है, इस मुख से जो बात एक बार बाहर हो जायगी, जीवनभर उससे अन्यथा नहीं हो सकती है।

अलीवर्दीने सादर सिराजुद्दौलाकी ठोड़ी पकड़ कर कहा, "सिराज! तुमने जैसा आज मुझको सुखी किया है, मैं तुमको आशीर्वाद देता हूँ कि तुम यावज्जीवन सुखसे कालयापन करो और बादशाह होकर दिल्लीके सिंहासन पर बैठो।"

इस बार सिराजुद्दौला बड़े म्लानमुख और दुःखित भावसे बोला, "नानाजी! सिराजुद्दौलाके भाग्यमें यह आशा दुराशा मात्र है। दिल्लीका सिंहासन तो बहुत बड़ी बात है, बङ्गाल बिहार और उड़ीसा की मसनद भी मेरे भाग्यमें लिखी हो, इसमें भी सन्देह है।"

अली—सिराज! तुम इस समय मेरे उत्तराधिकारी हो,

तुमको तो जब मैंने युवराज बनाया है, तब सन्देह किस बात का है?

सिराजुद्दौलाने विषाद से कहा, "नानाजी! जब तक आप जीवित हैं, तब तक सिराजुद्दौलाको बङ्गाल, बिहार और उड़ीसा के सिंहासनके सम्बन्धमें कुछ भी आशङ्का नहीं है, किन्तु आपके न रहने पर मसनद की आशा दुराशा मात्र है।"

अलीवर्दी व्यग्रतापूर्वक पूछने लगे, "क्यों सिराज! तुम यह बात क्यों कह रहे हो? और सिंहासनके लिये क्यों निराश होते हो? क्या तुम समझते हो कि मैं उस सिंहासन को तुमको न देकर किसी औरको दे जाऊँगा?"

सिराज—ऐसा भाव तो मेरे चित्तमें कभी भी उदय नहीं हुआ कि, आपने स्नेह और प्रेमसे मेरा लालन पालन किया है और अन्तमें आप मुझको न देकर मसनद किसी और को देदें।

अली—तो तुम सिंहासनके सम्बन्धमें निराश क्यों होते हो?

सिराज—नानाजी! जब कि आपके सिवाय सिराजुद्दौला का मङ्गलाकांक्षी इस संसारमें और कोई नहीं है, तब मैं किस प्रकार उसकी आशा कर सकता हूँ।

अली—सिराज! तुमने किस तरहसे जाना कि, तुमको सिंहासन नहीं मिलेगा?

सिराज—नानाजी! आपके आशीर्वादसे सिराजुद्दौलाने लोगोंके हृदयोंका हाल जान लेना अच्छी रीतिसे सीखा है।

कौन मनुष्य किस ढंगका, किस प्रकृतिका है, सिराज एक बार ही देखकर उसे पहिचान लेता है। आपके जितने मन्त्री और कर्मचारी लोग हैं, वह सब मेरे विद्वेषी हैं। यद्यपि यह लोग सभ्यता, सरलता और प्रभु-भक्ति मुखसे बखान करते हैं, किन्तु इन लोगोंके हृदय हलाहल से परिपूर्ण हैं। आप रुग्नशय्या पर लेटे हुए हैं, इसीसे आपकी मृत्यु निश्चय मान कर, सभी छिपे छिपे भीषण षड्यन्त्र कर रहे हैं। प्रायः प्रति दिन रातको इस बातकी मन्त्रणा-परामर्श किया करते हैं, कि आपके न रहने पर उस सिंहासनपर कौन बैठेगा? इन लोगोंका चक्र बड़ा भयङ्कर है। जहां ऐसे, ऐसे, चक्र चल रहे हैं, वहां सिंहासन की आशा किस प्रकार की जा सकती है?

अली—इस चक्रका प्रधान नेता कौन है? और कहां यह सब सलाह परामर्श हुआ करते हैं?

सिराज—इसका प्रधान नेता राजवल्लभ है, और मोतीझील में परामर्श हुआ करते हैं।

अली—यह लोग किसको सिंहासन पर बैठाना चाहते हैं?

सिराज—अक्रा नवाज़िश मुहम्मदको।

यह सुनकर नवाब अलीवर्दी अतिशय चिन्ताकुल हुए। मन्त्रियों और नागरोंके व्यवहारसे उनको बड़ा कष्ट हुआ। मन ही मन सोचने लगे, "हाय! मनुष्य कैसा स्वार्थपर है!

कैसी भयङ्कर प्रकृति है! यह लोग अपने अपने मतलब के कारण, मौखिक अनुराग और मौखिक सरलता दिखलाते हैं! जबतक हमारा बल, विक्रम, सौभाग्य है तब तक हमारे हैं; किन्तु इन बातोंके न होनेपर सौहार्द्द-आत्मीयता कुछ नहीं रहेगी। धन्य है मानव-प्रकृति को!

मानव-प्रकृति की चिन्ता करते करते नवाब बड़े मर्माहत हुए। दुःख और क्षोभने उनको म्रियमाण कर दिया। एक तो रोगकी दारुण यातना पहिलेही से थी, तिसके ऊपर स्नेहाधार नेत्रोंकी पुतली सिराजुद्दौलाका सूखा हुआ मुख देखकर, उसके परिणाम की चिन्ता करके, और भी व्याकुल और अस्थिर होगये। शेषमें, वह आँखें बन्द करके परमेश्वर का स्मरण करने लगे।

अठारहवाँ परिच्छेद।

कण्टक दूर हुआ, शत्रुका नाश हुआ। आशङ्का एक प्रकारसे जाती रही। सिराजुद्दौलाके सिंहासनका प्रतिद्वन्द्वी और कोई नहीं है। जो एकमात्र प्रतिवादी था, वह शोथ रोगसे इस लोकको परित्याग कर गया। फिर सिराजुद्दौलाको किसकी आशङ्का है?

नवाजिश मुहम्मद मर गया यह सत्य है, परन्तु सिराजुद्दौलाके प्रधान शत्रु राजा राजवल्लभके जीते रहने तक, वह शत्रुशून्य और निश्चिन्त न रह सका। मातामहको मृत्युशय्याके पास बैठकर वह सदा ही राजा राजवल्लभके विरुद्ध नाना अभियोग उपस्थित करने लगा।

सिराजुद्दौलाने समझ रक्खा था, कि इस संसारमें यदि उसका कोई शत्रु है और सिंहासनका कण्टक है तो वह राजा राजवल्लभ है और राजा राजवल्लभ भी समझ गया था, कि यदि उसके धन प्राण, कुल मान इत्यादिका घोर वैरी कोई है, तो वह सिराजुद्दौला ही है। इस लिये दोनों सदैव

इसी उपायकी खोजमें रहते थे, कि जिसमें एकसे दूसरेको क्षति पहुँचे और दोनों दोनोंको विद्वेषकी आँखसे देखते थे।

जिस दिन नवाजिश मुहम्मदने इस संसारसे कूँच किया, जिस दिन उसकी मृतदेह मोतीझीलकी मसजिदके चौकमें गाड़ी गई, उसी दिनसे राजा राजवल्लभने समझ लिया, कि नवाब अलीवर्दीके मरनेपर सिराजुद्दौला अवश्य ही उसके दमन करनेमें प्रवृत्त होगा।

इसलिये राजा राजवल्लभ पहिले ही से सावधान हो गया। यद्यपि वह जानता था, कि अलीवर्दीके बाद सिराजुद्दौला ही बङ्गाल, बिहार और उड़ीसाके सिंहासन पर बैठेगा, मुर्शिदाबादकी मसनद उसीके सम्पूर्ण अधिकारमें आवेगी, तथापि विद्वेषके वशवर्त्ती होकर, चोरी-चोरीसे ऐसा उद्योग करने लगा, कि जिसमें अलीवर्दीके बाद सिराजुद्दौला मुर्शिदाबादकी मसनद पर न बैठ सके और राज्य और सिंहासन, उसका न होकर, इकरामुद्दौलाके शिशुपुत्रके अधिकारमें आवे। वह चारों ओर प्रचार करने लगा, कि नवाब अलीवर्दीके पीछे सिराजुद्दौलाको मसनद पर बैठनेका कोई अधिकार नहीं है, इकरामुद्दौलाका पुत्र ही उसका अधिकारी है, वही इस बङ्गाल, बिहार और उड़ीसाके सिंहासन पर बैठेगा।

राजा राजवल्लभका यह आशय था, कि इकरामुद्दौलाके बच्चेको मुर्शिदाबादके राज-सिंहासन पर बैठा कर घसीटी

बेगमकी मातहतीमें वह बङ्गाल, बिहार और उड़ीसाको विध्वस्त करे।

इस उद्देश्य सिद्धिके लिये राजा राजवल्लभ छिपे-छिपे मोतीझीलमें फौज जमा करने लगा। जिससे सिराजुद्दौला सिंहासन पर न बैठे, इसी काममें बद्धपरिकर हुआ।

अन्तमें इस काममें कृतकार्य होंगे कि नहीं, राजा राजवल्लभका बात कहां तक सत्य है, इसको अच्छी तरह समझे बिना ही, लोग उसके पक्षका अवलम्बन करने लगे।

पहिले कहा जा चुका है, कि नवाज़िश मुहम्मद ढाकेका शासनकर्त्ता था, किन्तु शासन-भार उसके हाथमें रहते हुए भी, वह कुछ नहीं करता था और न कुछ देखता ही था। वह प्रायः मुर्शिदाबाद आकर मोतीझीलमें रहा करता था। राजा राजवल्लभ उसका विश्वस्त मन्त्री था। इसलिये ढाकेका शासनभार सब उसीके ऊपर था।

इस समय राजा राजवल्लभने अपनी और घसीटी बेगमकी विपुल धनसम्पत्तिको निरापद करना ही युक्तिसंगत समझा। यद्यपि छिपे-छिपे सिराजुद्दौलाके बदले वह इक़रामुद्दौलाके लड़केको राजसिंहासन पर बैठानेके लिये बद्धपरिकर हो गया था; किन्तु परिणाममें जाने क्या होगा, इसलिये अपने मालिकके धनादिको निरापद करनेके लिये उसने अपने पुत्र कृष्णवल्लभको एक पत्र लिखा। उस पत्रका आशय इस प्रकार है :—

"वत्स कृष्णबल्लभ! क्या देखते हो! अब निश्चिन्त रहना उचित नहीं है। समय रहते ही सावधान हो जाओ। जो कुछ धनरत्न है, उसको निरापद करना ही बहुत आवश्यक है। नवाब अलीवर्दी अब अधिक नहीं जियेंगे, उनकी आयु अब पूरी हो गई है। वह बहुत शीघ्र इस लोकसे विदा हो जायँगे। नवाबके पीछे सिंहासनपर बैठनेकी सम्भावना सिराजुद्दौलाकी ही है, परन्तु मैं ऐसी चेष्टा करता हूँ कि इकरामुद्दौलाका शिशुपुत्र सिंहासनपर बैठे। फिर भी; मैं यह नहीं कह सकता हूँ, कि इस काममें कहाँ तक कृतकार्य्य होऊँगा। अतएव समय रहते सावधान हो जाओ, सब धन-रत्न और परिवारको लेकर शीघ्र कलकत्ते चले जाओ। वहाँके लिये मैं ऐसा बन्दोबस्त कर देता हूँ, कि जिससे ईष्ट ईण्डिया कम्पनीके आश्रयमें निरापद रह सको। अँगरेज़ सौदागरोंके साथ हमारा विशेष सौहार्द है। अँगरेज़ सौदागरोंके आश्रयमें रहनेसे आशङ्काका कोई कारण नहीं है। अतएव तुम और देर न करके शीघ्र कलकत्ते चले जाओ। जानेका हाल किसी पर विदित न होने पावे। ईस्ट ईण्डिया कम्पनी शरणागतको विमुख करनेवाली नहीं है।"

पुत्रको यह पत्र लिखकर राजबल्लभ निश्चिन्त हो गया हो, ऐसा नहीं है। वह, कम्पनीकी कासिमबाज़ारकी कोठीके अध्यक्ष, वाट्स साहबसे मिला, कि जिससे कृष्णबल्लभको कलकत्तेमें ईष्ट ईण्डिया कम्पनीके यहां आश्रय मिल जावे।

वाट्स साहब राजा राजवल्लभको अपनी कोठीमें आते देखकर कुछ शर्मा गये। बड़ी खातिरसे उनको लिया और आनेका कारण पूछा।

राजवल्लभ बड़ा चतुर मनुष्य था। बोला,"आपसे मिलनेको आया हूँ।"

यह सुनकर वाट्स साहब बड़े प्रसन्न होकर बोले, "आप-की मेरे ऊपर जो इतनी अधिक कृपा है, इस आपकी उदा-रताके लिये मैं अतिशय ऋणी हूँ।"

राजवल्लभ—आपसे मिलनेकी सदैव ही इच्छा रहती है, परन्तु कामकी अधिकतासे इतना समय नहीं मिलता है कि आपसे मिलसकूँ। विशेष करके जब तक इकरामुद्दौलाके पुत्र को मुर्शिदाबादके सिंहासन पर न बैठा लूँ, तब तक किसी तरह निश्चिन्त न हो सकूँगा।

वाट्स—डाक्टर फोर्थके कहनेसे मालूम होता है, कि नवाब अब अधिक जीवित नहीं रह सकते हैं।

राजवल्लभ—जब हकीमोंनि हार मान ली है, नवाब भी जीवनकी आशासे हताश हो चुके हैं, और रोग भी क्रमशः बढ़ता ही जाता है, तब यही ज्ञात होता है, कि शीघ्र ही वह परलोक सिधारेंगे।

वाट्स—नवाबकी मृत्युके पीछे ही ऐसी सम्भावना है, कि युद्ध छिड़ जाय।

राजवल्लभ—हाँ, यह बहुत सम्भव है। सिराजुद्दौला सहज

में सिंहासनकी आशा नहीं छोड़ेगा, इसलिये अवश्य युद्ध होगा।

वाट्स—यदि युद्ध होवे, तो क्या आप उसके लिये तय्यार हैं?

राजवल्लभ—एक तरह से तो तय्यार हूं। परन्तु नवाब अलीवर्दीके जीवनकाल पर्य्यन्त तो इसकी आवश्यकता नहीं है।

वाट्स—हां, यह तो कर्त्तव्य ही है, नहीं तो नवाबके विरुद्ध अस्त्र-धारण करना होगा।

राजवल्लभ—मैं तो यही सोचकर चुपचाप बैठा हूँ, किन्तु मेरा उद्देश्य यही है कि मसनद सिराजुद्दौलाको न मिले; क्योंकि वह बड़ा अत्याचारी है और मैं तो इकरामुद्दौलाके पुत्रको मसनदपर बैठाना चाहता हूँ। उसके लिये मैं कोई चेष्टा, कोई यत्न, उठा भी न रक्खूँगा।

वाट्स—सुना है, नवाब अलीवर्दीने सिराजुद्दौलाको अपना भावी उत्तराधीकारी स्थिर किया है।

राजवल्लभ—नवाबकी इच्छा है, कि सिराजुद्दौला बङ्गाल, विहार और उड़ीसाके सिंहासनपर बैठे; परन्तु सिराजुद्दौला सा स्वेच्छाचारी दुर्वृत्त यदि सत्य ही सिंहासनपर बैठे, तो अत्याचारकी सीमा न रहेगी। उसकी बराबर नृशंस और नहीं है। उस दिन अनायास, बिना दोषके, उसने हुसेनकुली खांको मार डाला। सिराजुद्दौलाके सिंहासनपर बैठनेसे पहिले ही, लोग धन प्राण, कुल-मानकी रक्षा की फ़िक्रमें पड़

गये हैं! फिर सोच तो देखिये, कि यदि वह बङ्गाल, बिहार और उड़ीसाके सिंहासन पर बैठ जायगा, तो लोगोंकी क्या अवस्था होगी! मालूम होता है, कि फिर किसीको धन-सम्पत्ति और स्त्री-पुत्रोंको लेकर घरमें रहना भी नसीब न होगा। जिसके नामसे लोग इस समय सशंक हैं, उसके नवाब हो जानेपर किस प्रकार रक्षा होगी? आजकल सिराजके भयसे मुझको भी बहुत सावधान रहना पड़ता है।

वाट्स साहब कुछ विस्मित होकर बोले—"क्या कहा! सिराजके भयसे आपको भी सतर्क रहना होता है?"

राजबल्लभ—हां, सिराजुद्दौलाके भयसे मुझे बड़ा उद्विग्न रहना पड़ता है। उसका कुछ भी ठिकाना नहीं है, कि कब किसको प्राणोंसे मार डाले, कब किसकी धन-सम्पत्ति छीन ले, कब किसका कुल मान बिगाड़ डाले। मुझको इन सब शङ्काओंके कारण ढाका छोड़ना पड़ता है। अपनी और घसीटी बेगमकी धन-सम्पत्ति और परिवारकी रक्षाका भार, मैं आपके सिपुर्द करना चाहता हूँ। इस समय आप लोग हमको सिराजुद्दौलाके हाथसे रक्षित रखिये।

राजा राजबल्लभकी यह बात वाट्स साहबको हँसी की सी ज्ञात हुई। कहा, "मैं कुछ स्थिर नहीं कर सकता हूँ, कि आप कहाँ तक सत्य कह रहे हैं। आप हमलोगोंकी सहायता लेंगे, यह बात कुछ असम्भव सी ज्ञात होती है।"

राजवल्लभ—मैं आपसे हँसी नहीं करता हूँ। सत्य कहता हूँ, कि जब तक नवाबकी मृत्यु नहीं होती है, जब तक और कोई सिंहासन पर नहीं बैठता है, तब तक तो मुझको आप का आश्रय लेना ही होगा। धन-सम्पत्ति और परिवारको लेकर कलकत्ते जानेके लिये,मैंने अपने पुत्र कृष्णवल्लभको लिख दिया है। आपका आश्रय पाकर मैं निश्चिन्त हो जाऊँगा, और आपका इतना अनुगृहीत होऊँगा जिसका पार नहीं है।

वाट्स साहब बोले,—"यदि वास्तवमें ही आपको हमारा आश्रय लेना है, और हमारी सहायतासे आपका कुछ उपकार हो जाय,तो हम उसके करनेको प्रस्तुत हैं। यदि आपकी सहायता करनेमें प्राण भी देने पड़े, तो हम वह भी कर सकते हैं।"

राजवल्लभ—आपसे मुझको सहायता मिलेगी, यह मुझको पूरा विश्वास था, तभी मैं आपके पास आया हूँ। आपका यह उपकार, मैं जीवनभर न भूलूँगा।

वाट्स—मैंने आपके पुत्र और परिवारको कलकत्तेमें आश्रय देनेको कहा और स्वीकार किया है, परन्तु नवाब और सिराजुद्दौला अप्रसन्न होंगे ही। अभी,उस दिन झूठा दोष लगा कर उन्होंने १२ लाख रुपये हमलोगोंसे दण्डस्वरूप लिये हैं, और जब आपका हमारे यहाँ रहना सुनेंगे तो अवश्यही अप्रसन्न होंगे, परन्तु हम लोग इसकी चिन्ता नहीं करते।

राजवल्लभ—यह बात किसी तरह प्रकाशित न होगी। आप

हमारा इतना उपकार करें, और हम इस बातको प्रकाशित करके आपको विपद्में डालें, यह कभी सम्भव है ?"

वाट्स--आप निश्चिन्त रहिये। परन्तु मैं आश्रय देनेको बुरा नहीं समझता हूँ और डरता भी नहीं हूँ। आपका पुत्र और परिवार कलकत्ते पहुँचकर वहाँ आश्रय पावे, ऐसा बन्दोबस्त मैं किये देता हूँ।

राजवल्लभ--मैं जानता हूँ, आप जो कहते हैं वही करेंगे। आप लोग जिस तरह प्राण तक देकर अपनी बातका प्रतिपालन करते हैं, ऐसा और किसी जातिमें नहीं है। आप लोगोंका मुझे इतना विश्वास है, तभी मैं सहायता पानेकी आशासे आपके पास आया हूँ। ऐसे सत्यनिष्ठ, उद्यमशील, अध्यवसायी न होते, तो क्या कभी आप लोग स्वदेशकी माया-ममता छोड कर, आत्मीय स्वजनोंके स्नेहपाश को तोडकर, सात समुद्र तेरह नदी पार करके, इतनी दूर विदेशमें आकर वाणिज्य कर सकते? आप लोगोंके चित्तमें स्थिरता है, कर्त्तव्यकी दृढता है, बातमें भी सत्यता है।

वाट्स साहब स्वजातिकी ख्याति सुनकर गदगद हो गये और बोले, "हर एक को हर एक की सहायता करना, मनुष्य मात्रका कर्त्तव्य है। आपको इसके लिये अधिक कहनेकी आवश्यकता न होगी। आपके पुत्र और परिवारको जिस तरहसे वहाँ आराम मिले। आप लिये विशेष अनुरोधसे चिट्ठी लिखकर अभी कलकत्ते भेजता हूँ।"

राजवल्लभ—तो अब मैं विदा होता हूँ।

"हाँ, कहकर वाट्स साहबने हाथ मिलाकर राजा राजवल्लभ को विदा किया।

राजवल्लभ चले गये। वाट्स साहब सब काम छोड़कर कलकत्तेको पत्र लिखने बैठे। पत्र इस प्रकार है:—

"आज घसीटी बेगमके मन्त्री राजा राजवल्लभ कासिमबाज़ार की कोठीमें आये थे। उन्होंने विशेष अनुरोध किया है, कि उनके परिवारको और पुत्र कृष्णवल्लभको हमारी कलकत्ते की कोठीमें आश्रय देना होगा। मैं उनके अनुरोधसे आश्रय देनेमें सम्मत हो गया हूँ। आप इसमें किसी प्रकारसे आनाकानी न कीजियेगा। राजवल्लभ इस समय नवाज़िश मुहम्मदकी घसीटी बेगमका विश्वस्त मन्त्री है। नवाब अलीवर्दीके अधिक जीनेकी अब आशा नहीं है। वह शीघ्र ही यह लोक परित्याग करेंगे। नवाबके न रहने पर घसीटी बेगमके गोद लिये हुए पुत्र, इकरामुद्दौला के पुत्र, की ही सिंहासन पर बैठनेकी पूरी सम्भावना है। राजवल्लभ ही सिराजुद्दौलाके सिंहासन पर बैठनेका घोरतर विरोधी है। राजवल्लभके रहते ऐसा विश्वास नहीं है, कि सिराजुद्दौला सहजमें बङ्गाल, बिहार और उड़ीसाके सिंहासन पर बैठें। अतएव, ऐसी अवस्थामें, राजवल्लभके साथ उपकार करना अच्छा ही होगा। हमारे अनुरोधसे राजवल्लभके परिवार और उनके पुत्र कृष्णवल्लभ को कलकत्तेमें स्थान देना चाहिये।

कासिमबाज़ार। } आपका—
वाट्स।"

वाट्स साहबने यह पत्र लिखकर कलकत्ते भेज दिया।

यथासमय वाट्स साहबका अनुरोध-पत्र कलकत्ते पहुँचा। परन्तु ईस्ट इण्डिया कम्पनीके कर्त्ता, गवर्नर ड्रेक साहब, उस समय कलकत्तेमें नहीं थे; वायु परिवर्त्तनके लिये वालेश्वर बन्दरमें गये हुए थे। गवर्नर ड्रेक साहबके उपस्थित न होने पर भी, वाट्स साहबका अनुरोध पत्र प्राप्त होने पर, उस कामको पूरा करनेके लिये, वहाँ जो कुछ अँगरेज़ थे, उन्होंने एक छोटी सी सभा की। इस सभामें, जानवुल, मेनिंहाम, इत्यादि कलकत्तेके प्रधान प्रधान अँगरेज जमा हुए और बहुत मन्त्रणा परामर्शके पीछे राजवल्लभके पुत्र और परिवारको आश्रय देनेमें सम्मत हो गये।

इधर राजा राजवल्लभका पत्र भी यथासमय, ढाकामें, कृष्ण वल्लभके पास पहुँचा। कृष्णवल्लभ, पिताके आदेश पत्रको पाकर, कलकत्ता जानेके लिये तय्यारी करने लगा। पीछे उसके जानेका सम्वाद खुल जाय, और यह समाचार सिराजुद्दौलाके कानों पड़ जाय, इसलिये उसने चारों ओर प्रचार कर दिया, कि वह सपरिवार पुरुषोत्तम श्रीमहाप्रभु जगन्नाथके दर्शनको जायगा। जगन्नाथ ही कलिकालमें जाग्रत देवता है। जो एक बार उनके दर्शन करे, उसको कुछ भी भव यन्त्रणा नहीं रहती है; फिर उसको इस नश्वर जगत्‌में नहीं आना पड़ता है।

चारों ओर उसने यही प्रचार कर दिया, किन्तु वास्तव

में उसका यह उद्देश्य था कि ढाकाके राज-भाण्डारकी विपुल सम्पत्तिको किसी प्रकार सिराजके हाथसे बचाकर कलकत्ते ले जाय।

कृष्णवल्लभने, बड़ी सावधानीसे राज भाण्डारकी सब धन सम्पत्ति अपने साथ लेकर, रातके समय ढाका छोड़ दिया और परिवारके साथ कलकत्ते निरापद पहुँच गया। पहुँचते ही, कलकत्तेके अँगरेज़ोंने बड़े आदरके साथ दुर्गमें उसे आश्रय दिया। यह सम्वाद पाकर कि धन-सम्पत्ति अब रक्षित ठौर पहुँच गयी, राजवल्लभ निश्चिन्त हो गया।

किन्तु यह बात छिपी न रही। कृष्णवल्लभके भागनेकी बात सिराजुद्दौलाके कानों तक पहुँची। उसने जिस समय सुना, कि राजवल्लभके पुत्र कृष्णवल्लभने ढाकाके राज-भाण्डारका धन-रत्न जो कुछ था, सब लेकर सपरिवार कलकत्तेमें अँगरेज़ों के दुर्गमें आश्रय लिया है, तो वह जिस तरह, शिकार भाग जाने पर व्याघ्रकी दशा होती है उस तरह, रोष-क्षोभमें आप ही आप तर्जन गर्जन करने लगा।

अन्तमें उसने राजवल्लभकी इस कार्य्यवाही की धूर्त्तता और अँगरेज़ोंकी इस कृपाकी अवाध्यता बताकर, मातामहसे चुगली खाई।

उन्नीसवाँ परिच्छेद।

दिन पर दिन बङ्गाल, विहार और उड़ीसाके प्रजा-हितैषी नवाब अलीवर्दीके जीवनकी आशा घटने लगी। उन्होंने निश्चय जान लिया, कि जिस खल व्याधिने उनको घेरा है, उसके कराल कवलसे किसी तरह छुटकारा नहीं मिलेगा। एक तो बूढ़ी वयस, तिस पर उदर-रोग। अलीवर्दी, जीवनकी आशासे निराश होकर, परमेश्वरके चरणोंमें शरणागत हुए।

नवाब अलीवर्दी को मृत्यु शय्या पर पड़े देखकर, और उनकी मौतको आयी हुई समझ कर, सभी लोग इस समय चारों ओरसे अपने अपने उद्देश्य साधन और अपने अपने भविष्यत्के सुभीतेके काम करने लगे। कोई नवाबसे कुछ न पूछता, कोई उनकी अनुमति की राह न देखता। जिसका जो प्रयोजन होता, अपनी इच्छासे ही वह उसको कर लेता। नाना प्रकारकी अराजकता चारों ओर फैल गई।

मातामहकी रोग शय्याके पास बैठकर सब बातें, सब सम्वाद, सिराज उनको सुनाता। मरणप्राय नवाब दौहित्रके मुँहसे राज्यके सब समाचार सुनकर बड़े व्याकुल होते और

दौहित्रके भविष्य-भाग्य-आकाशको घोर अँधेरेमें ढका हुआ देखते थे। किन्तु इस समय उपाय क्या है? उठनेकी शक्ति तो अब रही नहीं, किस प्रकार तलवार हाथमें लेकर शत्रु-दमनके लिये बाहर निकलें, किस प्रकार रणस्थलमें शत्रु के पीछे दौड़ें! इस समय तो वह परवश हो रहे हैं, मानों लोहेकी जञ्जीरमें बँधे हुए हैं। किस प्रकार दौहित्रकी भविष्य-उन्नतिके पथमें से काँटे निकाल फेंकें? उन्होंने सिराजुद्दौलाको शत्रु दमनके कौशल, राजत्वके गूढ़ तत्त्व सिखानेकी इच्छा की।

यह किसी दरिद्र मनुष्यकी बीमारी तो थी ही नहीं, कि उसके देखनेको कौन आता, उसके पास जाकर कौन बैठता। स्वयं बङ्गाल, बिहार और उड़ीसाके नवाब अलीवर्दी बीमार हैं! इस कारण राजा, महाराजा, ज़मीन्दार, उमराव और राज्यके प्रधान-प्रधान प्रतिष्ठित लोग, अपने ऊपर अनुग्रहकी आशासे, सदैव उनके पास रहकर, तरह तरहकी सेवा-शुश्रूषा करके, उनका चित्त प्रसन्न करनेमें लगे रहते थे। सभीको अनुग्रह की आशा थी। नवाबका घर सदैव लोगोंसे भरा रहता था। इससे नवाब दौहित्रको राजत्वकी गूढ़ नीति सिखानेका अवसर नहीं पाते थे, अवसरका अन्वेषण अवश्य किया करते थे, किन्तु दिन-रातमें एक बार भी कभी अकेले न रहने पाते थे।

सन्ध्या हुए थोड़ी देर हुई है। तारे चमकने लगे हैं। निशानाथ बड़ी क्षीणज्योतिसे पश्चिम-आकाशमें उदय हुए हैं। एक तो मधुर बसन्तकाल है, तिस पर सन्ध्याकी मलयानिल

मृदु मन्द गतिसे चल रही है। लोग उद्यानोंमें, रास्तों पर, और गङ्गातीर पर, घूमनेको बाहर निकले हैं।

नवाब अलीवर्दी आज निर्जन घर पाकर, सिराजको अपने पास बैठाकर, धीरे धीरे कहने लगे,—"भाई सिराज!, चित्त देकर मेरी दो एक बातों को सुनो। मैं देखता हूँ, तुम्हारे चारों ओर शत्रु इकट्ठे हो रहे हैं। सभी तुम्हें हरा देनेकी इच्छा रखते हैं। किसी को भी इच्छा नहीं है, कि तुम मुर्शिदाबादकी मसनद पर बैठो। यद्यपि मैं तुमको अपना उत्तराधिकारी जानता हूँ, यद्यपि मुर्शिदाबादकी यह मसनद तुम्हारी ही कहकर मैंने तुमको युवराज बनाया है; परन्तु साधारण प्रजा तुमको राजा बनाना नहीं चाहती है। ऐसी अवस्थामें, मेरे न रहने पर, तुम क्योंकर राज्य रक्षामें समर्थ होगे? सिराज! इस समय मैं अपने लिये कुछ भी नहीं सोचता हूँ, केवल तुम्हारे ही सोचसे मैं अस्थिर हो रहा हूँ। इस समय क्या उपाय किया जाय, क्या करनेसे तुम मेरे न रहने पर निरापद होकर सिंहासन-रक्षामें समर्थ होगे, दिन रात सोचने पर भी इसका कोई उपाय स्थिर नहीं कर सका हूँ। सिराज! सिराज! मुझको बड़ी आशा थी, कि मेरे न रहने पर, मेरे सिंहासन पर बैठकर तुम मेरा नाम रक्खोगे। बोलो सिराज! क्या तुम मेरा नाम रख सकोगे?"

सिराजुद्दौलाने अति दुःखित भावसे कहा, "नानाजी! आपकी कृपासे यदि एक बार सिंहासन पर बैठ पाऊँ, तो मैं

जानता हूँ कि हज़ार प्रतियोगी आने पर भी, सिराजद्दौलाके हाथसे राज्य न ले सकेंगे।"

यह सुनकर नवाब कुछ मुस्कराकर बोले, "सिराज! तुम बालक हो! तभी ऐसी बात कह रहे हो! विषय-वैभव बहुत लोग कर सकते हैं, किन्तु उसकी रक्षा करना बड़ा कठिन है। जो धन-सम्पत्तिको रक्षा कर सकता है, वही क्षमताशील पुरुष है! चारों ओर शत्रुओंको देखकर तुम सिंहासन पर नहीं बैठ सकोगे, ऐसा तुम समझ रहे हो; परन्तु मैं स्पष्ट रूपसे देख रहा हूँ, कि इस विषयमें तुमको कोई बाधा नहीं दे सकेगा। तुम निश्चय बङ्गाल, बिहार और उड़ीसाके सिंहासन पर बैठोगे; किन्तु सिराज मैं देखता हूँ कि सिंहासनकी रक्षा करना तुम्हारे लिये बड़ा कठिन होगा! तुम कभी सिंहासन की रक्षा न कर पाओगे। मैं अच्छी तरह समझता हूँ, कि अँगरेज़ सौदागरोंसे तुम मेल नहीं रखते हो, इस कारण उन्हीं के हाथसे सबसे बड़ा अनिष्ट तुम्हारा होगा।"

सिराज—नानाजी! यदि आपने ऐसा सोचा है, कि अन्त में अँगरेज़ोंके हाथसे ही मुसल्मान राज्य नाशको प्राप्त होगा, तो समय रहते उनका प्रतीकार क्यों नहीं किया?

अली०—प्रतीकार न करनेके कई कारण थे। उस समय क्या मुझे यह मालूम था, कि मुझको इतनी शीघ्रतासे इस संसारसे कूँच करना होगा। यदि आगे मुझे मालूम होता कि मरहट्टोंके दमन करने बाद, मुझे तलवार हाथमें

लेनेका अवसर प्राप्त नहीं होगा, यदि पहिले मैं यह जान पाता कि, यह काल-व्याधि इतनी शीघ्रतासे मुझ पर आक्रमण करेगी, तो अँगरेज़ सौदागरोंको दमन करनेसे पहिले मैं मरहट्ठोंके दमनमें कभी प्रवृत्त न होता।* हाय! मैं जीवन भर वृथा लड़ाइयोंमें लगा रहा। मतलबका काम कुछ नहीं किया। सिराज! मेरी बड़ी इच्छा थी, कि मैं जब इस संसारसे जाता तब, तुम्हारे सिंहासनका कोई शत्रु न रह जाता। परन्तु हाय, मेरी सब आशायें विफल हुईं!

सिराज—नानाजी! आपने इतने दिनों बाद अँगरेज़ सौदागरोंको पहिचाना है, इसके लिये मैं इस समय दुःखी होनेपर भी सुखी हुआ हूँ। किन्तु मालूम होता है, कि पहिले आपने इन लोगोंको पहिचाना नहीं।

अली०—मैं उनको अच्छी तरह जानता हूँ। जिसके साथ तुम बुरा व्यवहार करोगे, वह तुम्हारे साथ अच्छा बर्त्ताव नहीं कर सकता है। वह वास्तवमें बुरे नहीं हैं, तुमने ही

* ईश्वर को तो यही मंजूर था, कि भारत मुसल्मानोंके और अत्याचारोंसे रक्षा पावे, भारतके धन धान्य और प्रजाकी रक्षा होवे, सर्वत्र शान्तिका अटल राज्य हो, देशमें विद्याका प्रचार हो, कलाकौशल की उन्नति हो, इसीसे ईश्वरेच्छा के विरुद्ध नवाब अंगरेज़ों के विरुद्ध खड़े होनेके पहले ही परलोक को सिधार गये और बाद दुष्ट अत्याचारी सिराजुद्दौला सिंहासनच्युत होकर मारा गया। प्रकाशक।

उनको छेड़-छेड़ कर अपना वैरी बना लिया है। और यद्यपि मैं जान चुका था, कि अँगरेज़ सोदागर हमारे शत्रु हे, परन्तु वह लोग साधारण प्रजाके शत्रु तो थे ही नहीं, और मरहटे राजा-प्रजा सभीके शत्रु हो रहे थे; इस लिये पहिले अँगरेज़ोंको दमन करनेकी आवश्यकता नहीं थी। सिराज! उस समय यदि मैं मरहटोंको दमन न करके अँगरेज़ सौदागरोंके दमन करनेमें प्रवृत्त होता, तो वह अवश्य ही मरहटोंसे मिल जाते। इसी कारण मैंने जान सुनकर भी उनके दबानेकी चेष्टा नहीं की। इस समय कालव्याधिने मुझपर आक्रमण किया है, इच्छा करनेपर भी अब मुझमें सामर्थ्य नहीं है, कि उनको दमन कर सकूँ। यदि तुम अपने सिंहासनको शत्रु-शून्य करना चाहो, तो मेरी बात सुनो। सिंहासन पर बैठकर तुम अँगरेज़ सौदागरोंसे विद्वेषभाव बिलकुल मत रखना। अँगरेज़ तुम्हारे सिंहासनके प्रधान शत्रु हैं, परन्तु यदि तुम बनाया चाहो तो वही तुम्हारे परम मित्र हो सकते हैं।

सिराजुद्दौलाने विषादपूर्ण वाक्योंमें कहा, "नानाजी! केवल अँगरेज ही क्यों, और भी बहुतसे मेरे विपक्षी हैं।"

अली—क्यों सिराज! तुम्हारे सिंहासनका प्रधान शत्रु नवाज़िश मुहम्मद था, वह तो इस लोकको छोड़ गया है। हुसैनकुली खाँ भी तुम्हारी तलवारके आघातसे मृत्यु पा चुका है! तुम्हारा छोटा भाई इकरामुद्दौला भी जीवित नहीं है।

तब फिर तुम्हारे सिंहासनका प्रतिद्वन्दी सिवाय अंगरेजोंके और कौन है?

सिराज—राजा राजवल्लभ ही मेरे सिंहासनका प्रधान शत्रु है।

अली०—राजा राजवल्लभ तुम्हारे सिंहासनका प्रतिवादी क्यों है? उसका अभिप्राय क्या है?

सिराज - राजा राजवल्लभ इकरामुद्दौलाके शिशुपुत्र मुराद् दौलाको बङ्गाल, विहार और उड़ीसाकी मसनदपर विठाकर, घसीटी बेगमके नामसे आप राज्य शासन करना चाहता है।

अली०—घसोटीकी क्या इच्छा है?

सिराज—उसकी यही इच्छा है कि मैं सिंहासन पर न बैठ सकूँ। वह मेरे सिंहासन पर बैठनेमें बाधा डालनेको बद्ध परिकर है और यहां तक कि राजा राजवल्लभ की सलाह से छिपे छिपे सेना भी जमा कर रही है।

अली०—राजवल्लभ क्या तुम्हारा इतना बड़ा शत्रु है, कि तुम्हारे विरुद्ध सेना सग्रह करेगा?

सिराज—अगत्‌में यदि कोई मेरा शत्रु हो सकता है, तो वह राजवल्लभ है। यदि किसीके द्वारा मेरे अनिष्टकी सम्भावना है, तो वह राजा राजवल्लभ ही है। सैकड़ों कुमन्त्रणाओं का मूल राजवल्लभ है। मेरे सिंहासनपर बैठनेमें बाधा डालनेके लिये वह पहिले ही से सब बन्दोबस्त कर रहा है, और पीछेसे अपने काममें सफलकार्य्य होकर

मेरे कोपमें पड़कर अपने धनरत्नसे वञ्चित हो जाय, इस भयसे ढाकाके राज-भण्डारकी सब सम्पत्ति चुराकर अपने पुत्र और परिवारके साथ कलकत्तेमें अँगरेज़ोंके किलेमें भेज दी है। वहाँ के अँगरेज़ोंने कृष्णवल्लभको बड़े यत्नके साथ आश्रय दिया है।

अली०—किस आशासे उन्होंने राजवल्लभको आश्रय दिया है?

सिराज—उन्होंने समझ लिया है, कि नवाब तो अब बचेंगे नहीं! और उनके न रहनेपर, जब राजवल्लभ मुरादुद्दौलाको मुर्शिदाबादकी मसनदपर बैठा लेगा, तो ऐसी अवस्थामें राजवल्लभके मनकी करनेसे भविष्यत्‌में उनके व्यवसाय वाणिज्य में सुभीता होगा।

अली०—अँगरेज़ोंने क्या समझकर यह स्थिर कर लिया है, कि मुरादुद्दौला ही बङ्गाल, बिहार और उड़ीसाके सिंहासन-पर बैठेगा?

सिराज—धूर्त्त राजवल्लभने जैसा समझाया है वैसा ही उन लोगोंने समझा है, उसी तरह पर स्थिर किया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने केवल कृष्णवल्लभको आश्रय ही नहीं दिया है, वरं उन्होंने ऐसा बन्दोबस्त आरम्भ किया है जिससे उनका दुर्ग दृढ़ हो जावे।

अलीवर्दीने विस्मयसे पूछा, "सिराज बतलाओ तो! क्या अँगरेज़ सौदागर इतने अबाध्य हो गये हैं, कि मेरे जीते

रहनेपर भी मुझसे कोई बात न पूछकर कलकत्तेमें तुम बनाव रहे हो?"

सिराज—अंगरेजोंने समझ लिया है, कि नवाबको तो अब उठनेकी क्षमता नहीं है, बचनेकी भी आशा नहीं है, और मैं भी इस अवस्थामें युद्धमें प्रवृत्त नहीं हो सकता हूँ, इसी कारण इस सुयोगमें जहाँ तक हो सके अपने बलको दृढ़ कर रहे हैं।

अली०—हाय! मेरा इतना बल, इतनी चेष्टा, इतना परिश्रम,सभी वृथा हुआ! जिस आशासे सुख छोड़कर कष्टको कष्ट नहीं समझा, रणके श्रमसे कातर न होकर दिन रात केवल युद्ध करके मरा, क्या वह सब श्रम वृथा गया। हाय सिराज! जिस आशासे हृदय कड़ा करके मैंने इतना किया, वह आशा सफल नहीं हुई, तुम्हारे सिंहासनके शत्रुओंको निर्मूल न कर सका! जन्म भर केवल अशान्ति ही सञ्चय कर सका। परन्तु मैं फिर यही कहता हूँ, कि तुम अंगरेजोंसे मिलकर चलोगे तो तुम्हारे अनिष्टकी बहुत कम सम्भावना है।

एक तो नवाबको रोगकी असह्य यातना थी, तिसके ऊपर शरीरमें तनिक भी सामर्थ्य न थी; इससे इन सब कठिन विषयोंकी आलोचना उनको इस अवस्थामें विशेष कष्टकर हुई। यदि और किसी की बात होती तो कदापि उसको न सुनते, उसका उत्तर भी न देते, परन्तु यह तो उनके स्नेहको पुतली, सिराजकी भाग्य लिपिकी बात थी, इसी कारण बड़े कष्टसे

स्थिर होकर, निर्बल शरीरको मनके बलसे बलिष्ट करके, इतनी बातें सुनी और कहीं। उन्होंने देखा कि, सिराजके भविष्य-भाग्य-आकाशमें वर्षाकालकी अँधेरी रातसे भी अधिक अँधेरा हो रहा है। इससे उनको बड़ी घोर चिन्ता और उसके साथ ही नई यन्त्रणा उपस्थित हुई। उनका सिर चकरा गया, आँखोंके आगे चारों ओर अन्धकार दिखाई देने लगा। वह और कुछ न सोच सके और कुछ न पूछ सके। केवल इतना ही कहा, "सिराज! जल, जल, बड़ी प्यास है!"

सिराजुद्दौलाने सोनेके पात्रमें गुलाबमिश्रित शीतल जल लाकर दिया, पीकर नवाबकी प्यास बुझी। परन्तु और कोई बात उन्होंने नहीं पूछी। सिराजुद्दौला भी मातामहको अवसन्न देखकर और कोई प्रसङ्ग न छेड़ सका। उस दिन यहीं तक बातचीत हुई।

बीसवाँ परिच्छेद।

फो साहब एक डाक्टर थे। कासिमबाज़ारमें उनका एक औषधालय था। विलायतसे यह अपना चिकित्सा-व्यवसाय करनेको आये थे। नवाब सरकारमें अपनी नामवरी फैलानेके लिये कासिमबाजारमें एक कोठो ले ली थी।

जिस समयकी बात मैं कहता हूँ, उस समय डाक्टर लोगों की कुछ ख्याति नहीं थी। लोग रोगी होनेपर डाक्टरको नहीं बुलाते थे और न डाक्टरी औषधिमें विश्वास ही करते थे। वैद्योंके ऊपर विश्वास था। रोग होनेपर लोग वैद्योंको बुलाते थे, उनको खिलाते पिलाते थे। जाति चले जानेके भयसे, धर्मनाशको आशङ्कासे, लोगोंको मरजाना स्वीकार था, परन्तु सुरामिश्रित दवा खाना अथवा खिलाना स्वीकार नहीं था।

साधारण लोगोंमें डाक्टरोंका चलन न होनेसे, डाक्टर फोर्ड की ख्याति भी अधिक नहीं थी। केवल नवाब सरकारमें कुछ कुछ जान पहचान और आना जाना था।
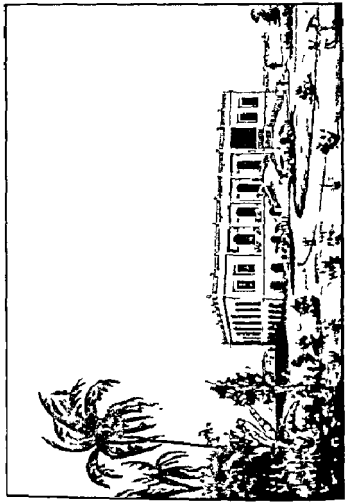
कासिमबाजार की पुरानी कोठी।

डाक्टर फोर्थ केवल डाक्टरी ही पर निर्भर नहीं थे। वह ईस्ट इण्डिया कम्पनीके एक कर्मचारी थे। वाणिज्य-सम्बन्धमें कम्पनीका प्राय, सभी काम देखते भालते थे।

नवाब-सरकारमें डाक्टर फोर्थको जान पहचान होनेके कारण, वह कभी कभी नवाब-प्रासादमें आते जाते थे। इससे नवाब दरबारकी बहुत सी बातें मालूम होती रहती थी। जबसे नवाब बीमार हुए थे, उसी दिनसे डाक्टर फोर्थको कुछ अधिक आना जाना पड़ता था, क्योंकि इस समय नवाब रोगी थे और वह चिकित्सक थे। वह प्रतिदिन नवाबको देखने जाया करते थे। वहाँ जाकर नवाबके यहाँ की सभी बातें देखने सुननेमें आती थी।

डाक्टर फोर्थ प्रतिदिन आठ बजे नवाब प्रासादमें जाते और दो तीन घण्टे वहाँ ठहरकर अपनी कोठीको लौट आते थे।

इसी तरह एक दिन यथासमय वह नवाब-प्रासादमें आये। नवाबने बैठनेको कहा। डाक्टर भी बैठनेके बाद नवाबके अनुग्रह-लाभकी आशासे सहानुभूति दिखलाकर पूछने लगे, "नवाब बहादुर! आज आपकी तबियत कैसी है?"

नवाब अलीवर्दी उदास भावसे बोले, "अब अच्छे बुरेकी क्या पूछते हो? जैसा दुरन्त रोग मुझको हुआ है, उससे बचनेकी क्या आशा है? जो रोग दिन-दिन चण-चण बढ़ता जाता है, उसका अच्छा बुरा क्या है?"

फोर्थ—यदि आप कुछ दिनके लिये वायु परिवर्त्तनार्थ बाहर चले जायें, तो आशा है कि रोग कुछ कम हो जाय।

अलीवर्दीने गम्भीर दीर्घ निःश्वास त्याग कर कहा, "नहीं डाक्टर साहब! यह रोग किसी प्रकार कम होनेवाला नहीं है, सिवाय मृत्युके आरोग्यता किसी प्रकार न होगी।"

अभी तक सिराजुद्दौला यहां नहीं था। अब उसने घरमें प्रवेश किया। उसको आते देखकर अलीवर्दीने कहा "सिराज क्या खबर है?"

सिराज—सम्वाद मिला गया है, अँगरेज़ सौदागरोंने बागबाजार में 'पेरिंग' नामका एक दुर्ग बनाना आरम्भ किया है।

डाक्टर फोर्थका हृदय कांप गया। वह मन ही मन कहने लगे, "क्या सर्वनाश हुआ! सिराजुद्दौलाने यह नई पख निकाली।"

"सिराज! अच्छे समय पर तुम यह सम्वाद लाये। डाक्टर साहब इस समय उपस्थित हैं, अभी ही इसका विचार हो जायगा।" यह कहकर नवाबने फोर्थ साहबसे कहा, "डाक्टर साहब! बागबाजारमें जो पेरिङ्ग दुर्ग तुम बनवा रहे हो, वह किसके आदेशसे बन रहा है?"

डाक्टर फोर्थ विषम विपद्में पड़ गये। क्या उत्तर दें, यह भी न सोच सके। जब कुछ उत्तर न बन पड़ा तो चुप रहे।

उनको चुपचाप देखकर अलीवर्दीने कहा, "डाक्टर साहब चुप क्यों हो गये? कोई उत्तर क्यों नहीं देते?"

फ़ोर्थ—जो बात सत्य नहीं है, उसका उत्तर क्या दूँ नवाब बहादुर!

यह सुनते ही सिराजुद्दौलाका क्रोध बढ़ा। उसने रुष्ट होकर कहा, "आप इसके छिपानेकी यदि चेष्टा करें, तो इसमें आश्चर्य क्या है!"

"सिराज शान्त होओ, मैं अभी सब बातोंका विचार किये देता हूँ।"

यह कहकर नवाब अलीवर्दी फ़ोर्थ साहबसे बोले, "तुम क्या कहना चाहते हो? तुम अपनी कोई खबर नहीं रखते हो अथवा सब बातें तुमको मालूम हैं, और पेरिङ्ग दुर्गकी बात मिथ्या है?"

फ़ोर्थ—मुझको वहाँ की सब बातें मालूम हैं, परन्तु बाग-बाज़ारके पेरिङ्ग दुर्ग निर्माण करनेकी बात झूठ है।

डाक्टर फ़ोर्थकी बात पर सिराजुद्दौला बड़ा क्रोधित हुआ, परन्तु कोई बात नहीं कही।

अली०—तो यह बात कही किसने?

फ़ोर्थ—हमलोगोंको नवाब बहादुरके विद्वेष-भाजन बनाने के लिये, किसी शत्रु पक्षवालेने यह मिथ्या अफ़वाह उड़ा दिया है।

अली०—कासिमबाज़ारमें तुम्हारी कोठी है कि क़िला है?

फोर्थ—किलेकी बनावट की कोठीमात्र है।

अली०—वहां कितनी सेना रहती है ?

फोर्थ—जितनी का नियम है, उससे अधिक नहीं रहती।

अली०—कितने आदमियोंका नियम है ?

फोर्थ—कर्मचारी और सैनिक, कुल मिलाकर चालीस मनुष्य।

अली०—इससे अधिक कभी नहीं रहते हैं ?

फोर्थ—कभी बढ़ भी जाते हैं, परन्तु इस समय नहीं हैं।

अली०—कबसे नहीं हैं ?

फोर्थ—जबसे वर्गियों का हङ्गामा बन्द होगया है, जबसे मरहठोंके साथ हुजूर की सन्धि हो गई है, अधिक सेना तब ही से चली गई है।

अली०—तुम्हारे लड़ाई के जहाज कहां रहते हैं ?

फोर्थ—बम्बई में।

अली०—तुम्हारे जङ्गी जहाज बङ्गालमें तो नहीं आवेंगे ?

फोर्थ—अभी तो उनके आनेका कोई कारण नहीं है।

अली०—कुछ दिन पहिले तुम्हारे कई एक जङ्गी जहाज यहां आये थे कि नहीं ?

फोर्थ—आये थे।

अली०—किस लिये ?

फोर्थ—रसद जमा करने के लिये।

अली०—सब जङ्गी जहाज क्या रसद जमा करने के लिये ही इस देशमें आते हैं ?

फ़ोर्थ—हाँ।

अली०—यदि रसद जमा करना ही अभीष्ट है, तो जङ्गी जहाज़ों की क्या आवश्यकता है? और बङ्गदेशमें रह कर क्या रसद जमा नहीं हो सकती है?

फ़ोर्थ—हो सकती है, किन्तु बङ्गाल की तरह सुलभ मूल्य पर प्रचुर सामान कहीं नहीं मिलता है।

अली०—रसद जमा करने के लिये हर साल जङ्गी जहाज़ों के आनेका क्या प्रयोजन है?

फ़ोर्थ—प्रयोजन रसद का जमा करना, रास्ते घाटों को याद रखना और जनसाधारण को जङ्गी जहाज़ दिखलाना है।

अली०—रास्ते घाटों को पहिचानने और जनसाधारणको दिखलाने से क्या प्रयोजन है?

फ़ोर्थ—यदि हठात् कभी आवश्यकता पड़े, तो रास्ते घाटों का पहिचान रखना अच्छा है और युद्ध-जहाज़ दिखलाने से जनसाधारण भय पावेंगे, भय पानेसे हमलोगोंके साथ कोई अत्याचार करनेके लिये साहसी न होंगे।

अली०—तो क्या जङ्गी जहाज दिखाकर सभी लोगोंको भयभीत करना तुम्हारा उद्देश्य है?

फ़ोर्थ—सबको दिखाना अभीष्ट नहीं है, केवल फ़रासीसियोंको ही भय दिखाना चाहते हैं।

अली०—अच्छा, फरासीसियोंको ही भय दिखाने से क्या होगा?

फ़ोर्थ—युद्धकी कुछ अधिक आशङ्का न रहेगी ।

अलौ०—जो कुछ हो, परन्तु तुम लोग हरसाल जो जहाँ जहाज़ इस तरह बिना अनुमति के ले आते हो; इससे तुम लोगों की बड़ी अवाध्यता मालूम होती है ।

फ़ोर्थ—अँगरेज़ लोग कभी नवाब बहादुरके अवाध्य नहीं हुए और कभी होंगे भी नहीं। बतलाइये, कभी आपके अवाध्य हुए हैं ?

अब सिराजुद्दौला और चुप न रह सका। बोला, "तुम लोगोंने राजवल्लभ की सलाह से घसीटी बेगमका पक्ष अवलम्बन किया है और कृष्णवल्लभ को कलकत्ते के किलेमें आश्रय दिया है; इससे बढ़ कर और क्या अवाध्यता होगी ?"

अलौ—ठीक बात है, क्या यह सब तुम सुन रहे हो ?

फ़ोर्थ—नवाब बहादुर ! आपके राज्यमें रह कर अँगरेज़ लोग आपके अवाध्य होंगे, यह भी क्या कभी सम्भव है ? विशेष करके व्यवसाय हो जिनका एकमात्र उद्देश्य है, वह पक्षापक्ष अवलम्बन करने क्यों जायेंगे ? इससे बाणिज्य में क्षति होनेके सिवाय लाभ नहीं है और देखिये, ईस्ट इण्डिया कम्पनी सैनिक नहीं सौदागर है। राष्ट्रविप्लवमें सौदागरको योग देने से क्या लाभ है ? हमलोग घसीटी बेगमका पक्ष क्यों समर्थन करेंगे ? अँगरेज़ लोग कभी एकका समर्थन करके दूसरे के विद्वेष भाजन बनना नहीं चाहते हैं ।

सिराजुद्दौला इसको सुनकर बड़े कर्कश स्वरमें बोला, "क्या

यह बात भी झूठ है कि कलकत्ते के किलेमें कृष्णवल्लभ को सपरिवार आश्रय दिया है? क्या यह भी किसी शत्रुपक्षवाले की उड़ाई हुई बात है? क्या कहना चाहते हो?"

फोर्थ—जो बात सत्य है, उसको क्यों नहीं कहूंगा? अँगरेज़ जाति प्राणान्त तक झूठ नहीं बोलती है।

अली—तुमने कृष्णवल्लभ को आश्रय क्यों दिया है?

फोर्थ—सौदागर होने पर भी अँगरेज़ लोग निराश्रयको आश्रय देनेमें पराङ्मुख नहीं हैं।

सिराज—जब तुमने हमारे शत्रुको आश्रय दिया है, तब तुम लोग हमारे अवाध्य क्यों नहीं हो?

फोर्थ—यह किस तरह मालूम होता, कि कृष्णवल्लभ आपके शत्रु हैं? यह बात आज मैंने आप ही के मुखसे सुनी है।

सिराज—अच्छा, अब कृष्णवल्लभ को छोड़ सकते हो?

फोर्थ—ईस्ट इण्डिया कम्पनी का सब काम सभाके आधीन है। अतएव इस बातका उत्तर मैं अकेला किस प्रकार दे सकता हूँ?

अली—अच्छा, इस विषयमें तुम्हारी क्या राय है, सभा करके शीघ्र मुझको बतलाओ।

इस बातचीत में ग्यारह बज गये। डाक्टर फोर्थ वहाँ से विदा हुए और कोई बात नहीं हुई।

इक्कीसवाँ परिच्छेद।

दिन प्राय: समाप्त होने को है। नवाब कभी अच्छे हैं, कभी नहीं। वह किसीसे अधिक नहीं बोलते हैं, तो भी दो चार बातें कह देते हैं, परन्तु वह केवल सिराजुद्दौला से। रोग की यन्त्रणा से अब उनकी मति स्थिर नहीं है।

आज पीड़ा बहुत बढ़ गई है, क्षण क्षण पर श्वासावरोध होता मालूम होता है, यन्त्रणा की सीमा नहीं है। पेट बहुत बढ़ गया है, एक एक नस दिखाई दे रही है। शरीर में हड्डी ही हड्डी शेष रह गई है। हाथ पैर सूज गये हैं। मृत्युके सब लक्षण दिखाई दे रहे हैं। तोभी कब प्राण निकलेंगे, इसको स्थिरता नहीं है। विज्ञ चिकित्सक लोग भी इस रोगके मृत्युकाल को बतला नहीं सकते हैं।

विचक्षण नवाब अलीवर्दी, अपना अन्तिम काल समझ कर, दौहित्र को कुछ अन्तिम उपदेश देने की इच्छा से बोले, "सिराज! मैं तो अब चलता हूँ। मालूम होता है, कि अब अधिक देर नहीं है। किन्तु तुम मेरी यह अन्तिम समय की बातें याद रखना। यदि तुम सिंहासन दृढ़ करना चाहो,

यदि तुम शत्रुओंको वशमें और पराभूत रखना चाहो, तो मेरे इस उपदेशानुसार काम करना। सिराज! तुम्हारे लिये ही मुझको इतना सोच है। लोग मरकर चिन्ताके हाथ से छुटकारा पा जाते हैं; परन्तु मुझको मालूम होता है, कि मरने पर भी मैं तुम्हारी इस चिन्ता से छुट्टी न पाऊँगा। वत्स! तुम्हारा परिणाम सोच कर मरने की इच्छा नहीं होती है। रोग-पीड़ित मनुष्य बच भी जाय तो उससे क्या, परन्तु तुम्हारे लिये मैं फिर भी बचना चाहता हूँ। परन्तु मरना जीना तो मनुष्यके हाथ में नहीं है, बचने की इच्छा करने से अब क्या होगा? तो भी तुम्हारे लिये बचना चाहता हूँ।"

ऐसी कातरता की बातसे किसको दुःख न होगा? सिराजुद्दौला और चुप न रह सका, वह रोने लगा। आँखों में आँसू भरे गद्गद स्वरसे बोला, "नानाजी! तो क्या आप सत्य ही मुझको छोड़कर जाते हैं?"

हाँपते हाँपते अलीवर्दीने कहा, "सिराज! क्यों रोते हो? रोनेका अब समय नहीं है। जो कहूँ उसको चित्त से सुनो, और उसी तरह करो। अँगरेज़ सौदागरों से मिलकर रहो, यदि उनसे मेल रक्खोगे तो युरोपके सौदागरमात्र उत्पात न कर सकेंगे और कोई शङ्का भी न रहेगी। यदि कभी कोई हमारे बङ्गाल, बिहार उड़ीसा का शत्रु हो सकता है, तो यही अँगरेज़ सौदागर। उनको मिलाये रहने की सदैव चेष्टा करते रहो।"

बोलते बोलते नवाब थक गये। थोडी देर विश्राम करके फिर कहने लगे,"सिराज। जो राजा अच्छे मन्त्री की मन्त्रणा नहीं सुनता है, जो विनीत नहीं होता है और उग्र स्वभावका होता है,राज्य सञ्चालन उसके लिये कठिन हो जाता है। राजा का कर्त्तव्य है, कि होशियार मन्त्रियोंके साथ परामर्श करके राज्यका काम करे। तुम भी बहुदर्शी विज्ञ मन्त्रियों के साथ मन्त्रणा करके राज कार्य्य चलाओ। युद्धकाल उपस्थित होने पर, सब से पहले शान्ति स्थापन करने की चेष्टा करनी चाहिये। सेना को सन्तुष्ट रखनेमें सदा यत्नवान रहना चाहिये। राजा और प्रजा सभी को स्नेह की दृष्टि से देखना चाहिये। सब के साथ सद्भाव रखना चाहिये। राज कोष की ओर सतर्क दृष्टि रखनी चाहिये। राज्यके अभावको पूरा करने की चेष्टा करते रहना चाहिये। ऐसा विचार करना चाहिये,जिससे निरपराधको दण्ड न मिले, शत्रुके ऊपर तीक्ष्ण लक्ष्य रखना चाहिये। अवसर पाते ही राज्योन्नति की चेष्टा करनी चाहिये। युद्धके लिये सदा तय्यार रहना चाहिये। जब जो काम करो, आगा पीछा सोचकर, विशेष विवेचना के साथ करो। अकारण अपनी ही बात रखने की चेष्टा मत करना।"

इतना कहते कहते अलीवर्दी का श्वास घुटने लगा। आंखें टंग गई। उन्होंने बडे कष्टसे कहा,—"सि राज। सा व धा न, र ह ना, अँ ग रे ज़ सौदा ग रों से मे ल र ख ना—और

कुछ मुख से न निकल सका। मुख की बात मुख में ही रह गई। श्वास बन्द हो गया। नवाब अलीवर्दी ने सदैव के लिये आँखें बन्द कर लीं। सब शेष हो गया। मुसल्मानोंके गौरव का सूर्य सदैव के लिये अस्त होगया। मुसल्मानों का सिंहासन काँप उठा।

यथासमय, खुशबागमें, अलीवर्दी की मृत देह गाड़ी गई। सभी ने नवाबके लिये अन्तिम आँसू बहाये।
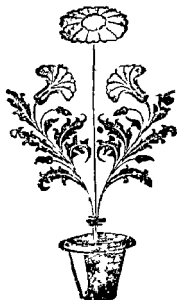
तीसरा खण्ड।

पहला परिच्छेद।

चारों ओर शत्रु हैं। सिंहासनका प्रबल विरोधी राजवल्लभ कब क्या विपद् उपस्थित करदे, कौन जानता है? इसीसे सिराजुद्दौला देर न करके, सन् १७५६ के अप्रेल महीने में बङ्गाल, विहार और उड़ीसा के सिंहासन पर बैठा। शत्रु दल इतने दिनोंसे छिपा छिपा सिंहासनके लिये जो दारुण षड़यन्त्र रचता था, सो सब वृथा हुआ। वाधा देने अथवा प्रतिवादी बनने का कोई साहसी न हुआ। वर मनकी वात मन ही में रख कर, प्रकाशमें सभी ने सभास्थल में उपस्थित होकर राज भक्ति दिखलाई और सिराजुद्दौलाको बङ्गाल, विहार और उड़ीसाका 'नवाब स्वीकार किया। सबने देखा, सबने जाना सबने सुना कि नवाब सिराजुद्दौला—मन्सूरुलमुल्क सिराजुद्दौला शाहकुलीखाँ मिर्जा मुहम्मद हैबतजङ्ग बहादुर—मुर्शिदाबादकी मसनद पर बैठा।

सिंहासन पर बैठ कर, सिराजुद्दौला का भय दूर हुआ। उसको आशङ्का थी, कि सिंहासनके लिये न जाने कितने विघ्न-विपत्ति, कितने खूनका चय और कितने लड़ाई भगड़े होंगे। परन्तु जब कहीं कुछ नहीं हुआ, किसी ने किसी तरह की बाधा न डाली, आसानीसे वह सिंहासन पर बैठ गया, शत्रुपचने भी बिना आपत्तिके उसको वङ्गाल, बिहार और उड़ीसाका 'नवाब' कह कर स्वीकार किया; तो उसको बड़ा ही आश्चर्य मालुम हुआ और वह नवाबके अन्तिम उपदेशके अनुसार काम करनेमें प्रवृत्त हुआ।

सिंहासन पर बैठनेके पहिले सिराजुद्दौला घोर अँगरेज़-विद्वेषी था। सिंहासन पर बैठ कर भी मातामहके अन्तिम उपदेशके ऊपर बिल्कुल न चला। वह अपनी दुर्दमनीय इच्छा को दमन न कर सका। जिन अँगरेज़ सौदागरोंको दमन करनेके लिये वह मातामहको सदैव उत्तेजित करता रहता था, वङ्गालदेशसे उनको निकाल देनेके लिये बारम्बार अनुमति चाहता था; सिंहासन पर बैठकर, नवाबी पद पाकर, आज उसने उन्हीं अँगरेज़ सौदागरों पर अत्याचार करनेकी मनमें ठानी और सहसा युद्ध-विग्रहमें प्रवृत्त न होकर, कासिमबाजार से वाट्स साहब को बुला भेजा, कि वह आकर अपने अपराध की मीमांसा कर जायें।

सम्वाद पाते ही, सब काम छोड़ कर, वाट्स साहब नवाब सिराजुद्दौलासे मिलने चले। नवाब उस समय दरबारमें बैठे

हुए विचार कर रहे थे। वाट्स साहबको उपस्थित देखकर, विचार का काम बन्द करके, उनके साथ बात-चीत करनेमें प्रवृत्त हुए।

क्रोध के वशीभूत होकर, परन्तु सरल और धीर भावसे नवाब सिराजुद्दौला बोला, "देखो वाट्स साहब! तुम लोग बहुत ही स्वेच्छाचारिता का परिचय दे रहे हो। मालुम होता है, कि तुमने समझ लिया है कि तुम लोग ही इस देश के हर्त्ता-कर्त्ता विधाता हो, इसीसे अनुमति न लेकर, जो इच्छा होती है वही करते हो। तुम्हारे इस व्यवहारसे मैं तुमसे इतना असन्तुष्ट हुआ हूं,जिसका पार नहीं है। तुम लोग राजाको मानते नहीं हो। जो कुछ तुम्हारे मनमें होता है वही कर बैठते हो, एक बात भी नहीं पूछते हो। इतनी उपेक्षा, ऐसी स्वाधीनता क्यों है, नहीं जानता हूं। इससे तुम आप ही अपना अनिष्ट बुलाते हो। यदि देशमें विचार कर्त्ता न होता, देश यदि अराजक होता, तो यह स्वेच्छाचार शोभा देता। तुम तो देखते हो, नवाब अलीवर्दीका सिंहासन खाली नहीं है. तब हमारी अनुमति न लेकर, हाशुवाबारमें पेरिंग दुर्ग क्यों बनवा रहे हो? किस लिये, मुझसे कोई बात न पूछ कर, कृष्णवल्लभको आश्रय दिया है? यह सब काम किस साहस से और किसको आज्ञासे करते हो? मैं तुमको सौदागर जानता हूं, व्यवसायके लिये तुम लोग यहां आये हो। तुम लोगोंने दिल्लीके बादशाह से जो आदेश पत्र पाया है, वह

तो केवल बिना कर के दिये वाणिज्य करनेके वास्ते है। दुर्ग-निर्माण, युद्ध-विग्रहमें योग-दान देने अथवा स्वेच्छाचारी होनेकी अनुमति तो नहीं पाई है? यदि तुम सौदागर होकर, केवलमात्र व्यवसाय-वाणिज्य करके, शान्तिभावसे रहना चाहो, तो मैं तुमको इस देशमें रहने दूँगा; और यदि मेरे अवाध्य होगे, मेरी अनुमति न लेकर कोई काम करोगे, तो किसी प्रकार इस देशमें रहकर वाणिज्य न कर सकोगे। तुमको अबसे, मेरे हुक्मसे, मेरे शासनके अनुवर्त्ती होकर चलना होगा। मैं तुमसे साफ़-साफ़ कहता हूँ, कि यदि तुम इस देशमें रहकर वाणिज्य करना चाहो तो क़िलेको तुड़वा डालो और कृष्णवल्लभको शीघ्र मेरे पास पहुँचा दो; और यदि तुम ऐसा न करोगे तो तुम्हारी यह धृष्टता मैं किसी प्रकार क्षमा न करूँगा।

वाट्स साहब उसके उत्तरमें बोले, "नवाब बहादुर! मैं स्वयं इस बातका उत्तर नहीं दे सकता हूँ। कालकत्तेके कर्त्ता लोगोंको लिखता हूँ, वह जो कुछ ठीक समझेंगे वही होगा।"

सिराज—मैं शीघ्र ही इसका उत्तर चाहता हूँ। विलम्ब करनेसे परिणाममें तुम्हारे अमङ्गल होनेकी सम्भावना है। मैं अपने कर्मचारियोंको अभी तुम्हारे क़िलेके तोड़ने की आज्ञा दे देता; केवल यही देखनेको रुक गया हूँ,कि देखूँ, तुम मेरी बातका सम्मान करते हो या नहीं। यदि निरर्थक खून न

बढ़ाना चाहो, यदि भद्राश्यता न दिखलाना चाहो, तो किले को तोड़नेमें और कृष्णवल्लभको मेरे पास पहुंचानेमें, तनिक भी विलम्ब न करो।

"हुजूरके सभी हुक्म अवश्य कर्त्ता लोगोंको लिखूंगा, और वही करूंगा जिससे शीघ्र उत्तर आवे।" यह कह कर और सलाम करके वाट्स साहब विदा हो गये।

कई दिन हो गये, परन्तु कोई उत्तर नहीं आया। सिराजुद्दौला उत्तरकी प्रतीक्षामें और समय नष्ट न कर सका। उसने एक पत्र लिख कर कलकत्तेके फिरंगियोंके पास दूत भेजा। दौत्यकार्य फ़ख़रुत्तिजार ख़्वाजा वाजिदके सिपुर्द हुआ।
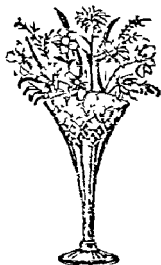
दूसरा परिच्छेद।

यथा समय ख्वाजा वाजिद अँगरेज़ोंके दरबार में पहुँचे और गवर्नर ड्रेक साहबसे मिलकर उनको नवाबका पत्र दिया। गवर्नर ड्रेक साहबने पत्र तो हाथमें ले लिया और पढ़कर रख लिया और कुछ सोचने लगे।

इस तरह कुछ देर हुई, जब कोई उत्तर न पाया तो शेषमें ख्वाजा वाजिद और चुप न रह सके और बोले, "आप लोगों को क्या राय है? क्या पत्रका कोई उत्तर न दीजियेगा?"

यह सुनकर एक अँगरेज़ बोला, "हम क्या उत्तर दें? यदि हमने नवाबका कोई अपराध किया होता, तो उसका उत्तर देते। जब हमने कोई अपराध ही नहीं किया है, तो क्या उत्तर दें?"

ख्वाजा वाजिद सिराजुद्दौलाके दूत थे। सौदागर अँगरेज़ों का उनको क्या भय था? उन्होंने कहा, "तो आप लोग नवाब बहादुरके आदेश-पालनमें असम्मत हैं?"

कप्तान ग्राण्ट साहबने कहा, "सम्मत हैं या असम्मत, यह तो हमने कुछ नहीं कहा है।"

ख्वाजा—तो आप लोग बाग़बाज़ारके पेरिंग दुर्गको न तोड़ेंगे?

याग्ट—यदि किला बनाया होता तो उसको तोड़ते, जब बनाया ही नहीं है तब तोड़ें किसे?

ख्वाजा—तो आप लोग नवाब बहादुरके अवाध्य हैं?

याग्ट—हम लोग अपना वाणिज्य निरापद करना चाहते हैं, अवाध्य होना नहीं चाहते। और यदि आप अवाध्य समझें तो हम निरुपाय हैं।

ख्वाजा—जो राजाका आदेश न पालन करे, वह अवाध्य नहीं तो कौन है?

याग्ट—हम तुम्हारे साथमें वादानुवाद करना नहीं चाहते, तुम सामान्य दूतमात्र हो। तुमको अधिक बातें करना आवश्यक नहीं है, जाओ, अपने स्थानको जाओ।

ख्वाजा—अच्छी बात है, परन्तु मैं यहां रहने को नहीं आया हूँ। क्या तुम लोग समझ सकते हो कि मेरे चले जाने पर कैसा भयङ्कर काण्ड उपस्थित होगा? एक तो नवाब सिराजुद्दौला पहिले ही से आपका घोर विरोधी है, तिसके ऊपर आपको यह उपेक्षाकी बात सुनकर रक्षाका कोई उपाय नहीं रहेगा। आप लोग अपने आप ही यह निरर्थक विपद आवाहन क्यों करते हैं? सात समुद्र, तेरह नदी, पार करके, इस बङ्गाल देशमें आकर, उपायका पथ बन्द करके, सदैवके लिये नवाबके विद्वेष भाजन बनना क्या युक्तिसङ्गत है? नवाब

सिराजुद्दौलाके विद्वेष-भाजन बन कर, समरानलमें जलना अच्छा नहीं है।

ख्वाजा वाजिद की यह बातें अँगरेज़ों को अच्छी न लगीं। परन्तु फिर भी अपने क्रोध को रोककर बोले, "ख्वाजा साहब! जब हमने कोई अपराध ही नहीं किया है, तो अवाध्य किस प्रकार से आप कह रहे हैं? और हम क्या करें कि नवाबके विद्वेष-भाजन न बनना पड़े? नवाब यदि बिना अपराध ही हमको समरानलमें जलाना चाहते हैं, तो हमारे करने से क्या होगा? उनको सब क्षमता है, जो चाहें कर सकते हैं।

ख्वाजा वाजिद इन बातोंको सुनकर, रुष्ट होकर, चल दिये

तीसरा परिच्छेद ।

नवाब सिराजुद्दौला इस उत्तरसे और भी रु
हुआ। उसको तो किसी न किसी वहानें
रुष्ट ही होना था ; अतः वह उचित शास्ति
देनेका प्रयासी हुआ। किन्तु फिर भी न जाने
कैसे, मातामहके अन्तिम उपदेश की उपयोगिता समझ कर,
सहसा युद्ध विग्रहमें प्रवृत्त न होकर एक बार फिर एक दूत
भेजनेमें यत्नवान हुआ।

परन्तु इस दौत्यभार को कौन अपने ऊपर ले। कोई
वाक्पटु, चतुर मनुष्य आवश्यक है। किन्तु ऐसा कौन
मनुष्य है? वह किसको अँगरेजोंके पास भेज सकता है?
एक ख़्वाजा वाजिद है, वह भी उस दिन गये परन्तु कुछ
भी न कर आये। अब उनसे कुछ न होगा।

इस तरह स्थिर होने पर, नवाब सिराजुद्दौलाने राजा
रामरायसिंह को बुलाकर कहा,—"वणिक अँगरेजों की
उद्दण्डता को तुमने सुना होगा, अब क्या कर्त्तव्य है?"

राजा रामरायसिंह एक विश्वासी और उपयुक्त मनुष्य
थे। नवाब सरकारमें उनकी खातिर और नामवरी बहुत थी।

यह जैसे ही कार्य्यकुशल थे, वैसे ही साहसी और प्रभुपरायण थे। नवाब अलीवर्दी ने इनके कामोंसे सन्तुष्ट होकर, इन्हें "राजा"को उपाधि देकर, मेदिनीपुरकी फौजदारीसे चारगणका अधिपति बनाया था। इसके अतिरिक्त, अनेक समयों पर इनकी मन्त्रणा-परामर्श के अनुसार नवाब काम करते थे।

अकेले नवाब अलीवर्दी ही राजा रामरायसिंह के परामर्श से काम करते थे, ऐसा नहीं है। उपयुक्त मन्त्रणाकुशल, जान कर, नवाब सिराजुद्दौला भी समय समय पर उनकी सलाह लिये बिना न रहता था। परन्तु अपनी ज़िद् के आगे, मानता वह किसी की न था।

सिराजके प्रश्नके उत्तरमें राजा रामरायसिंहने कहा,—"मैंने सब सुना है, किन्तु उनके ऐसे व्यवहारका कोई कारण तो मेरी समझमें नहीं आता है। जो दण्ड-मुण्ड का कर्त्ता है, जिसके अनुग्रहके अभिलाषी बङ्गालमें सभी हैं, उसकी उपेक्षा, उसके आदेशका उल्लङ्घन, बड़े विस्मय की बात है! निश्चय ही इसमें कोई गूढ़ रहस्य है।"

सिराज—वह रहस्य मुझे एक प्रकारसे ज्ञात हो गया है। मैंने जिस दिन सुना था, कि अंगरेज़ लोगोंने राजवल्लभके पुत्र कृष्णवल्लभको परिवार सहित कलकत्तेमें आश्रय दिया है; उसी दिन मैं समझ गया था, कि वह लोग राजवल्लभके प्रलोभनमें भूल कर और उसका पक्ष अवलम्बन करके छिपे-छिपे घसीटी बेगमकी सहायता करने पर सम्मत हो गये हैं।

राम०—घसीटी बेगमकी अब क्या सहायता करेंगे?

सिराजुद्दौला कुछ मुस्करा कर बोला, "क्यों? जिससे मैं इस बङ्गाल,बिहार और उड़ीसाके सिंहासन पर न बैठ सकूं।"

राम०—वह आशा तो पूर्ण हो गई, अब फिर क्या होगा?

सिराज—राजवल्लभने जो धोखा सब लोगोंको दिया है, वह अभी उन लोगोंके हृदयोंमें बना हुआ है। उसके पक्षवाले विश्वास करते हैं, कि राजवल्लभ इकरामुद्दौलाके शिशु पुत्र मुरादुद्दौलाको मसनद पर बिठा कर, घसीटी बेगमके नामसे राज्य शासन करेगा।

राम०—आपको सिंहासन पर बैठा देख कर भी, क्या वह भ्रम दूर न हुआ?

सिराज—यदि दूर ही हो गया होता, तो अंगरेज़ हमारे ही राज्यमें रह कर, हमारे ही दूतकी अवहेलना कैसे करते?

राम०—परन्तु जहाँ तक मैंने सुना है, आपके दूतकी अवहेलना नहीं हुई है और वास्तवमें यह अपराध इन्होंने नहीं किया है, यह आपको भ्रम हो गया है।

सिराज—नहीं, नहीं, मुझको भ्रम नहीं हुआ है। मैं घसीटी बेगमका रुपया, जो कृष्णवल्लभ ले गया है, चाहता हूँ। युद्ध विग्रह अथवा विवादमें लिप्त होनेकी कोई आवश्यकता नहीं देखता हूँ। युद्ध विग्रह बड़ा ही अशान्तिकर होता है। परन्तु रुपया अवश्य मिलना चाहिये और किला जो अंगरेज़ लोग बना रहे हैं उसका टूट जाना भी

आवश्यक है। इसके लिये मैं अँगरेज़ोंके पास फिर दूत भेजना चाहता हूं। यदि अब की बार वह मेरे कहे के अनुसार न करेंगे; तो अवश्य ही रणक्षेत्रमें उतरकर उनको शास्ति दूंगा।

सिराजुद्दौलाकी इस बातको सुन कर राजा रामरायसिंह बड़े आश्चर्यमें आये। सिंहासन पर बैठनेसे पहिले, वह अँगरेज़ सौदागरोंके दमन करनेके लिये सदा ही बहाना ढूँढ़ा करता था। एक भी दोष पाने से ही मातामह को उनके विरुद्ध उत्तेजित करने की चेष्टा करता था। अब केवल रुपयेके लालचसे यह ढोंग रचा है। राजा रामरायसिंह अपने विस्मयभावको छिपा कर बोले,—"तो क्या आप अँगरेज़ोंके पास दूत भेजनेकी इच्छा करते हैं?"

सिराज—हां, एक बार और दूत भेज कर देख लूँ। और, वह दूत का भार मैं तुम को ही दिया चाहता हूँ। तुम आप कर सको तो बहुत अच्छा, न कर सको तो कोई योग्य पुरुष भेजो। इस बार भी यदि वह पहिले की तरह अवज्ञा और असम्मानका भाव प्रकाश करेंगे, तो उनको इस अविवेचनाका फल उनको हाथों-हाथ मिल जायगा।

सिराजुद्दौलाको जो कुछ करना है वह करेगा। फिर दूत भेज कर क्या होगा? राजा रामरायसिंह को यह बात अच्छी न लगी। परन्तु क्या करते प्रभुकी आज्ञा! इच्छा न होने पर भी अन्यथा करनेका उपाय नहीं है। इसलिये प्रभु

को राजी करनेको बोले,—"मेरा भाई इस काममें विशेष दक्ष है। मेरी इच्छा है, कि उसी को कलकत्ते भेजा जावे।"

सिराज—तो और देर करनेकी आवश्यकता नहीं है। जितना शीघ्र हो सके, अपने भाई को यह पत्र देकर कलकत्ते अंगरेजोंके पास भिजवा दो।

'जो आज्ञा' कह कर, राजा रामरायसिंह नवाब सिराजुद्दौलासे विदा हुए।

राजा रामरायसिंह इस समय सोचने लगे,—"जबकि अंगरेजोंने ख्वाजा वाजिदसे साफ़ साफ़ कह दिया है कि उन्होंने कोई अपराध नहीं किया है और वह वास्तवमें निरपराधी हैं, तब भाई को कलकत्ते ड्रेक साहबके पास क्योंकर भेजूं? गवर्नर ड्रेक साहब से साक्षात् करके क्या कहना होगा? वह फिर वही उत्तर देंगे।" यह सोच कर उन्होंने एक कौशल जाल बिछाया। उन्होंने भाईको एक फेरीवालेके रूपमें बना कर, एक डोंगीमें बैठा कर कलकत्ते भेज दिया।

राजा रामरायसिंहके भाईका नाम रामहरिसिंह था। यह भी रामरायसिंह की तरह चतुर, बुद्धिमान्, साहसी कार्यदक्ष और उपस्थित बुद्धि सम्पन्न थे। यह बड़े भाईके साथमें, गुप्तचर विभागमें, काम करते थे।

चौथा परिच्छेद ।

उमाचरण अथवा अमीचन्द पाठकों के अपरिचित नहीं हैं। सेठ लोगोंमें फ़तहचन्द जैसे धन-मर्यादा प्रभृतिमें प्रधान और विख्यात थे ; बनियोंमें उमाचरण अथवा अमीचन्द भी उसी तरह श्रेष्ठ थे। वह बङ्गाली न थे, पश्चिमके हिन्दू बनिये थे, व्यवसाय-वाणिज्यके लिये यहाँ आये थे। ये दो भाई थे,—अमीचन्द व दीपचन्द । जिस समय अलीवर्दी नवाब सरफ़राजखाँके विरुद्ध युद्ध घोषणा करके, सेना लेकर मुर्शिदाबाद आये थे और सरफ़राजखाँको मार कर मुर्शिदाबादकी मसनद पर बैठे थे, उसी समय उमाचरण अलीवर्दीके साथ इस देशमें आये थे। उमाचरण अलीवर्दीके अतिशय विश्वासपात्र थे। उमाचरण केवल बीस हज़ार रुपया लेकर इस देशमें आये थे। किन्तु जब किसीके ऊपर लक्ष्मीकी कृपा दृष्टि होती है, उस समय वह महादरिद्र होने पर भी, थोड़े ही दिनोंमें, अतुल ऐश्वर्य्यका अधीश्वर हो जाता है। उमाचरणके भाग्यमें भी वैसा ही हुआ।

बङ्गालमें आकर उमाचरण व्यवसाय-वाणिज्यमें प्रवृत्त हुए। कमलाकी क्रपासे उनका व्यवसाय दिन दिन उन्नति करने लगा। देखते देखते वह एक विख्यात मनुष्य हो गये। देश देशमें उमाचरणका नाम मशहूर हो गया। सबने जान लिया कि अमीचन्द एक प्रधान वणिक हैं। व्यवसाय-वाणिज्य के कौशलको उमाचरण जितना समझते थे, जितना जानते थे, उतना और कोई न समझता था।

एक पुरानो कहावत प्रचलित है कि "व्यापारमें अपार लाभ है, खेतीमें लाभ है और चाकरी कूकर हत्ति है इसमें देश देश घूमना पड़ता है।" थोड़ा ध्यान करके देखा जावे, तो इसकी सत्यता ज्ञात होती है।

उमाचरणका नाम देश विख्यात हो गया था। सब लोग उनको जानते थे, उनकी नामवरी भी सब लोग जानते थे। यहां तक कि अँगरेज सौदागर सदैव इनकी सहायता लिया करते थे। इन्हीके द्वारा अंगरेज लोग कपास, वस्त्र इत्यादि खरीदते थे।

व्यवसाय वाणिज्य करके उमाचरण इस समय धनकुबेर हो गये हैं। अँगरेज़, फरासीसी, आरमीनियन इत्यादि नाना जातीय वणिक लोग तमसुक लिखकर इनसे कर्ज़ लेते थे। उस समय कलकत्तेमें कोई वणिक,धन सम्पत्तिमें उमाचरणके, बराबर न था।

उमाचरण बनिये होने पर भी, व्यवसायी होने पर भी, बड़े

विलासी थे। अतुल ऐश्वर्य्यके अधीश्वर होने पर भी, वह धनको कञ्जूसकी तरह जमा न करते थे, भोग विलासमें बहुत कुछ खर्च कर देते थे।

उमाचरणने बहुत सा रुपया लगाकर, कलकत्तेके नन्दबाग में, अपना एक प्रासाद बनवाया था। वह मकान कई महलोंमें विभक्त था। इसका निर्माण कौशल अपूर्व था। प्रासादके सामने पुष्पोद्यान था, यह तरह तरहके पुष्पवृक्षोंसे सुशोभित था। प्रकाण्ड सिंहद्वार सर्वदा सशस्त्र प्रहरियोंसे रक्षित रहता था।

उमाचरणके इस प्रासादको देखकर कोई भी बिना प्रशंसा किये न रह सकता था। उनके इस विशाल प्रासाद और धन सम्पत्तिको देखकर, अँगरेज़ सौदागर उनको राजा समझते थे। लक्ष्मीकी कृपा होनेसे सभी कुछ हो सकता है।

छद्मवेशी रामहरिसिंह निरापद कलकत्ते पहुंच गये और उमाचरणके घर आश्रय लिया। उमाचरणके साथ रामहरि-सिंह की पहिले ही से जान पहिचान और विशेष सद्भाव था। इसीसे उमाचरण ने इनको बड़े आदरसे अपने प्रासादमें स्थान दिया।

दूसरे दिन उमाचरण रामहरिसिंह को लेकर अँगरेज़ोंकी सभामें पहुँचे। सभास्थलमें उपस्थित होकर, रामहरिने अपना परिचय देकर नवाब सिराजुद्दौलाका दिया हुआ पत्र कौन्सिलके सभ्यागणोंके हाथमें दे दिया। मेनिङ्हाम साहब पत्र लेकर पढ़ने लगे। पत्र इस प्रकार था,—

"कलकत्तेकी ईस्ट इण्डिया कम्पनीके सभ्यगण! मैं तुम्हारे व्यवहारसे बड़ा ही असन्तुष्ट हो गया हूँ। तुमने हमारे दूत की यथेष्ट अवमानना की है और हमको भी अवहेलना दिखलाई है। हमारे राज्यमें रहकर, हमारे साथ ऐसा व्यवहार करके, तुमने बड़े ही उद्धत स्वभावका परिचय दिया है। तुम जानते हो, कि यदि मैं चाहूँ तो तुम्हारे इस व्यवहारकी उचित शिक्षा दे सकता हूँ। राजाकी अवज्ञा करनेकी सज़ा क्या है सो तुम निश्चय ही जानते होगे और यह भी अच्छी तरह जानते होगे, कि मैं ही इस देशके दण्डमुण्डका कर्त्ता हूँ। जान सुन कर भी, ऐसा साहस क्यों? इस समय भी तुमसे कहता हूँ,कि यदि तुम अपना मङ्गल चाहते हो, यदि बङ्गाल देशमें रहकर वाणिज्य करना चाहते हो, तो पत्र पढ़ते ही मेरे आदेशका पालन करो। यदि यह न करके निरर्थक टोल करोगे. तो तुम्हारे दमन करनेमें देर न करूँगा। सेना लेकर तुम्हारे ऊपर चढ़ाई करूँगा। उस समय क्षमा माँगनेसे कुछ न होगा। इसीसे कहता हूँ, अभी समय है, अब भी विवेचना करके काम करो, नहीं तो अन्तमें पछताना पड़ेगा। दूतके लौटनेकी राह देख रहा हूँ। देखो आग लगाना इतना कठिन नहीं है, इच्छा करते ही लग सकती है। परन्तु लग जानेके पीछे उसका बुझाना कठिन है, इच्छा के साथ ही बुझाई नहीं जा सकती। इति

नवाब सिराजुद्दौला।"

पत्र पाठ शेष हुआ। सुनते ही कौन्सिलके सभ्य-लोग क्रोधके मारे जल उठे। सब एक साथ बोल उठे, "हम लोग किसीके आधीन नहीं हैं। हम नवाबका आदेश पालन नहीं कर सकते। हम विलायतके राजाकी प्रजा हैं। उन्हीके आदेश में काम करते हैं। वही हमारे दण्डमुण्डके कर्त्ता हैं। सिराजुद्दौलाके आदेश पर, हम लोग कभी नहीं चल सकते हैं।"

कौन्सिलके सभ्योंके इस प्रकार मत प्रकाश करने पर, नवाब दूत रामहरिसिंह बोले—"इँगलेण्डेश्वर आपके राजा हैं, यह सत्य है, किन्तु आप लोग नहीं जानते हैं कि सिराजुद्दौला की आजकल तूती बोल रही है। उसके निगाह उठानेके साथ ही, आप लोगोंकी क्या दशा हो सकती है! फिर आप ऐसी स्वाधीनताका परिचय क्यों देते हैं? क्या आप सिराजुद्दौलाको नवाब स्वीकार नहीं करते हैं?"

उसके उत्तरमें मेनिंहाम साहबने कहा, "हम नवाब होना तो मानते हैं, परन्तु हमारा अपराध क्या है, जिसके लिये इतनी आपत्ति हमारे ऊपर लाना चाहते हैं। हमने अपनी जानमें कुछ भी अपराध नहीं किया है।"

रामहरि—तो मुझसे क्या कहते हो? क्या मैं जाऊँ?

मेनि॰—आप स्वच्छन्दतापूर्व्वक जा सकते हैं।

रामहरि—यह क्या! मैं तो नवाबका पत्र लाया हूँ, क्या उसका उत्तर न दोगे?

मेनि॰—मुझको जो कुछ कहना था वह कह चुका, और

में कुछ न कहूंगा। अंगरेज़ लोग अपना कर्त्तव्य आप ही समझते हैं, तुमको समझानेकी आवश्यकता नहीं है।

रामहरि—तो पत्रका उत्तर क्यों नहीं देते हो?

अंगरेज़ सभ्योंको और सह्य न हो सका, सभीको क्रोध हो आया; परन्तु फिर भी क्रोधको रोक कर बोले, "अब आप यहां से चले जाइये, हम और कुछ कहना नहीं चाहते हैं। जब नवाब हमको दुःखी ही करना चाहते हैं, तो जैसी उनकी इच्छा हो करें, परन्तु हम फिर भी यही कहते हैं कि हम निरपराध हैं।"

यह सुनकर रामहरिसिंह मेनिङ्गाम साहबके यहां से चल दिये; क्योंकि वह भी इसी उत्तरको आशा कर रहे थे। उन्होंने मनमें कहा कि "देखो तो सिराजुद्दौलाको कैसा समझाता हूं।"

पाँचवाँ परिच्छेद।
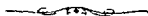
दूत रामहरिसिंह के मुर्शिदाबाद पहुँचने पर, नवाब सिराजुद्दौला क्रोधके मारे जलने लगा। सोते हुए सिंहको उठानेसे उसकी मूर्त्ति जैसी भयानक होती है, नवाब सिराजुद्दौला की भी वैसी ही हो गई। दोनों आँखोंसे अग्नि वर्षण होने लगा। मुखमण्डल नवोदित सूर्य्यकी भाँति रक्तवर्ण हो गया। हाथ कमरसे लटकती हुई तलवारसे जाकर लग गया। दाँतोंसे दाँत काटता हुआ विकट चीत्कार करता हुआ, बोला, "क्या अँगरेज सौदागरोंकी इतनी स्पर्द्धा है कि बारम्बार हमारे दूतसे हमारे आदेशका उल्लङ्घन! क्या उनको नहीं मालूम है कि किसके राज्यमें रहकर वह वाणिज्य कर रहे हैं? बङ्गाल बिहार और उड़ीसाका सिंहासन खाली तो पड़ा नहीं है। कैसे आश्चर्य्यकी बात है, कि जो इच्छा करते ही उन लोगोंको इस बङ्गालसे निकाल सकता है, उसीके साथ ऐसी उद्दण्डता! कैसा दुःसाहस है! एक बार उचित शिक्षा न देनेसे, इनको किसी प्रकार चैतन्यता न होगी। यह किसी तरह न समझेंगे, कि राजाकी अवज्ञा करनेका परिणाम क्या होगा?"

दूत रामहरिसिंह और चुप न रह सके। हाथ जोड़कर धीरे धीरे बोले, "नवाब बहादुर! वह अपराध ही स्वीकार नहीं करते हैं। वह कहते हैं कि हमने अपराध ही क्या किया है?"

सिराज—वह क्या कहते हैं?

रामहरि—वह कहते हैं कि कृष्णवल्लभ हमारे मित्रका लड़का है। उसको अपने यहां ठहराना हमारा धर्म है। दूसरा अपराध किला बनाना है, सो भी हमने नहीं बनाया है।

यह सुनते ही सिराजुद्दौलाके ध्यानमें कुछ और ही बात आई। वह इस बातका यह अर्थ समझा, कि अंगरेज़ोंकी इस उपेक्षाका मुख्य कारण घसीटी बेगम है। पहिले घसीटी बेगमको वशमें कर लेना चाहिये, पीछे अंगरेज़ोंसे बदला लूंगा। यह समझकर उस समय वह शान्त हो गया।

सिराजुद्दौला बङ्गाल, बिहार और उड़ीसाके सिंहासन पर बैठा अवश्य, परन्तु राजवल्लभका खटका उसके चित्तसे दूर नहीं हुआ था। राजवल्लभ ही तो सब अनर्थोंकी जड़ है। राजवल्लभ जिस बलसे बलवान् हो रहा है, जबतक उसका दर्प चूर्ण न होगा, तबतक राजवल्लभका आशा-भरोसा न टूटेगा, और तबतक अंगरेज़ सौदागर भी भयभीत न होंगे। घसीटी बेगमका दर्प चूर्ण करना ही होगा।

यह समझकर सिराजुद्दौलाने मौसी घसीटी बेगमको अपने प्रासादमें, अपनी माता और मातामहीके पास, ले आनेका

सङ्कल्प किया। उसने समझ लिया, कि घसीटी एक तो पतिहीना है, सिर पर कोई है नहीं, और तिस पर चरित्रहीन है। इस अवस्थामें, स्वाधीन भावसे उसके अकेली मोती झीलके प्रासादमें रहनेसे, अन्तमें उसके अमङ्गलकी आशङ्का है। और सम्भव है कि राजवल्लभके परामर्शसे, सिराजुद्दौलाके साथ शत्रुता करनेमें त्रुटि न कर सके। इसको सोचकर सिराज सबसे पहिले घसीटी वेगमको मोतीझीलसे अन्तःपुरमें लानेके लिये उद्यत हुआ।

परन्तु लावेगा किस प्रकारसे ? यही सोचनेका विषय है। वह जानता था, कि संसार उसके शत्रुओंसे भरा पड़ा है। यह सोचकर उसने मौसीको एक खुशामद भरा हुआ पत्र लिखा। पत्र इस प्रकार था'—

"मौसी !

पुत्रके योग्य होने पर, माताका कर्त्तव्य है, कि वह पुत्र के मतानुसार चले। सोचने पर मालूम होगा, कि आपका सब भार इस समय मेरे ही ऊपर है। मैं आपको अपनी जननीसे भिन्न नहीं समझता हूँ। मेरी इच्छा है, कि आप अकेली मोती झीलके प्रासादमें और न रहे, अपनी जननी और भगिनी के साथ इकट्ठी यहाँ आकर रहे। जहाँ आप हैं, वहाँ आपके ऊपर कोई नहीं है। सुतरां, वहाँ रहना आपके लिये किसी प्रकार उचित नहीं है। मैं आपके यहाँ आनेके लिये पालकी और आदमी भेजता हूँ। आप किसी प्रकारकी द्विविधा न

करके, मुझको कोई दूसरा न समझ कर, यहां आ जायें, तो मैं इतना सुखी होऊँगा, कि जिसको पत्रमें लिखनेकी मुझमें क्षमता नहीं है।

मैं पैगम्बरकी शपथ खाकर कहता हूँ, कि आप यदि इस जगह आकर मेरे अन्तःपुरमें अपनी जननी और भगिनीके साथ रहें, तो मैं सदैवके लिये आपका दासानुदास होकर रहूँगा और उस कामके करने में प्राणपण से उद्यत रहूँगा, जिसमें आपके मान सम्भ्रम में किसी प्रकार की त्रुटि न होने पावेगी।

आपका अनुगतदास
"सिराजुद्दौला"

यह पत्र लिखकर, सिराजुद्दौला ने घसीटी बेगम को बड़े समारोह और सम्मान से लाने के लिये पालकी भेजी।

किन्तु सिराज की यह चेष्टा वृथा हुई। घसीटी बेगम ने उसके प्रस्ताव को ग्राह्य न किया और लोगों को बुरा भला कह कर उलटा लौटा दिया।

चरित्र दोष एक बार होजाने पर, उसका संशोधन होना दुःसाध्य होता है। घसीटी बेगम के चरित्र में जो दोष पैदा हो गया, वह दोष, वह अभ्यास, वह किसी तरह न छोड़ सकी। वरं पतिहीना और ऊपरवाले के न होनेसे एवं मोतीझीलके प्रासाद में अकेली रहने से उसको मनमानी करने में और भी सुभीता हो गया। उसने मीर नजरअली नामक व्यक्तिको

अपना प्रणयपात्र बनाया। उसके मोतीझीलके प्रासादको न छोड़नेका यह भी एक विशेष कारण था।

इसके अतिरिक्त एक और भी प्रधान कारण था। राजा राजवल्लभ घसीटी का दीवान था। उसी के कहने से वह उठती बैठती थी, राजवल्लभ जो कुछ कहता था, वही करती थी। राजवल्लभका आशा-भरोसा भी घसीटी ही थी। यदि घसीटी बेगम चली जावे तो सभी चक्र टूट जावें, सभी आशा जाती रहे, स्वार्थसिद्ध की राह ही बन्द हो जावे; इसी कारण राजवल्लभ उसको लगातार ऐसे ही कुपरामर्श देने लगा जिससे वह मोतीझीलका प्रासाद न छोड़े। घसीटी भी स्वार्थपर राजवल्लभ की कुमन्त्रणासे और अपने प्रणयभाजन मीर नज़रअली के प्रेम के भुलावे में मोतीझील छोड़कर जानेमें सम्मत न हुई। उसने सेना संग्रह करके, ऐसा आदेश देदिया कि सिराजुद्दौला मोतीझील पर आक्रमण न करसके। राजवल्लभ और मीर नज़रअली दोनों ही ने अपने अपने स्वार्थसाधन के लिये, प्रबल उत्साह से, सिराजुद्दौला को बाधा देनेके लिये मोतीझील के सिंहद्वार पर सेना इकट्ठी करली।

सिराजुद्दौला मौसी को अपने अन्तःपुरमें लाने के लिये यथासाध्य चेष्टा करने परभी जब कृतकार्य न होसका, जब उसने देखा कि मौसी राजा राजवल्लभ की मन्त्रणा से और मीर नज़रअली के उत्साह से उसको बाधा देनेके लिये, उसके साथ युद्ध करने के लिये, बद्धपरिकर होकर मोतीझील के द्वारपर

सेना एकत्र कर रही है, तो मौसोकी मान रचा की ओर परवाह न करके, उसका गर्व खर्व करने, राजवल्लभ के सभी चक्रान्त चूर्ण करने, उसको स्वार्थसिद्धि को सदैव के लिये रोकने और मीर नज़रअली को उचित शास्ति देनेके लिये, सेनाध्यक्ष दोस्त मुहम्मदखाँ और रहीमखाँ को सेना सहित मोतीझील पर आक्रमण करने का आदेश दिया और कह दिया कि घसीटी बेगमको उसके धन सम्पत्ति के साथ बन्दी करके राज अन्तःपुर में लाना होगा।

विपक्षवालोंकी सभी चेष्टाएँ, सभी आशाएँ, सभी उद्यम हथा हुए। सिराजुद्दौला को बाधा देनेके लिये राजा राजवल्लभ और मीर नज़रअली ने जो सेना इकट्ठी की थी, उसेंमें से अधिकांश नवाब की विपुलवाहिनी को युद्ध के लिये बढ़ती हुई देखकर प्राण भय से भागगये। जो दस पाँच शेष रहगये, उन्होंने अस्त्र शस्त्र छोड़ दिये। नवाब सिराजुद्दौलाकी सेना ने आकर मोती झील पर अधिकार कर लिया।

युद्ध करना तो बड़ी कठिन बात है। प्राण भी बचजाय तो बहुत है। मीर नज़रअली प्राणों के भय से सिराज सेनापति के शरणागत हुआ और बहुतसी भेट देकर छुट्टी पाई।

बिना युद्ध के, बिना रक्तपात के, मोतीझील अधिकार में आगई और घसीटी बेगम की सब धन सम्पत्ति भी सिराजुद्दौलाके हाथमें आगई। परन्तु सिराजुद्दौला ने घसीटी बेगम की शत्रुता की सब बातें भूलकर, उसको बड़े सम्मान से राज

अन्तःपुर में जननी और मातामहीके पास स्थान दिया; क्योंकि वह जानता था कि बिना-सम्मान किये काम चलना कठिन है।

सब शेष होगया! राजवल्लभ का आशा-भरोसा एक दम निर्मूल होगया। जिस आशाके धोखेमें मुग्ध होकर वह अभी तक सिराजुद्दौला को सिंहासनच्युत करने का स्वप्न देख रहा था, वह आशाका भुलावा टूटगया। सब कौशल, सब चेष्टा व्यर्थ हुई; किन्तु कुचक्री की कुटिलता दूर न हुई।

छठा परिच्छेद ।
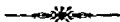
अँगरेजोंने जब देखा कि, बहुत भड़कना बढ़ाना अब अच्छा नहीं है तब नवाब दरबारमें एक दूत भेजा।

नवाब सिराजुद्दौला अँगरेज़ोंसे अतिशय असन्तुष्ट और क्रुद्ध था। अब अँगरेज़ोंके पक्षके वकीलको उपस्थित देखकर बोला, 'मैं तुम्हारे व्यवहारसे बहुत ही विरक्त हो गया हूँ। तुमने बारम्बार हमारे आदेशका तिरस्कार किया है और मेरे दूतको यथेष्ट अवमानना और लाञ्छना करके निकाल दिया है, इस सबका क्या कारण है?"

अँगरेज सौदागरके प्रतिनिधि वकील कहने लगे, "हुजूर! आप विचारपति हैं। विचार करके देखिये, अँगरेज लोग आपके राज्यमें वास करके आपके दूतको अपमान करके निकाल दें, यह बात नितान्त ही असम्भव है।"

सिराज—तुम क्या कहना चाहते हो, क्या हमारे दूतको तुमने अपमान करके निकाल नहीं दिया है?

वकील—आप धर्मावतार हैं, दण्ड मुण्डके कर्त्ता हैं, आपके सामने मिथ्या बात किस प्रकार कह सकता हूँ? एक

दूत कलकत्ता अवश्य गया था, किन्तु यह कैसे समझमें आता कि नवाब बहादुरका दूत एक सामान्य फेरीवाले के रूपमें जायगा ?

सिराज—क्यों क्या दूतने अपना परिचय नहीं दिया था ? और क्या हमारा पत्र नहीं दिया था ?

वकील—पत्र दिया था। किन्तु कौन्सिलके लोगोंको उसका विश्वास नहीं हुआ।

सिराज—परिचय होने पर भी विश्वास नहीं हुआ, यह क्यों ?

वकील—अमीचन्द हम लोगोंका परम शत्रु है। आपके दूतको उसीके साथमें आते देखकर हम लोगोंने यही समझा कि यह केवल अमीचन्दकी धूर्त्तता है। कौशल और भय दिखाकर यह कार्य्य सिद्ध करना चाहता है। यदि आपका दूत अमीचन्दके यहाँ न ठहर कर और फेरीवालेके रूपमें न जाकर, राजदूत बनकर जाता तो उसका इतना आदर होता जिसका ठिकाना नहीं।

सिराज—मैं समझ गया। परन्तु मैंने पेरिङ्ग दुर्ग तोड़ने के लिये और राजबल्लभके पुत्रको मेरे पास भेज देनेको लिखा था, उसका क्या हुआ ?

वकील—कलकत्तेके सभ्यगण इस विषयमें निश्चिन्त नहीं हैं। उन्होंने इँगलेण्डके कर्त्तागणोंको सम्वाद भेज दिया है, अब उसके उत्तरकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

सिराज—कब तक उत्तर आवेगा?

वकील—सम्भव है, कि दो ही चार दिनोंमें आ जावे।

सिराज—ईस्ट इण्डिया कम्पनी यदि शीघ्र ही उसका कोई बन्दोबस्त न करेगी, तो पेरिङ्ग दुर्ग तोड़ने, और साथ ही तुम्हारे वाणिज्यके बन्द करनेमें मैं कभी निरस्त न रहूँगा।

वकील—नवाब बहादुरको इसके लिये और कष्ट स्वीकार न करना होगा, शीघ्र ही इसकी मीमांसा हो जायगी।

यह सुनकर सिराज चुप रहने पर बाध्य हो गया।

सातवाँ परिच्छेद।

राजाका राजत्व केवल सुनने ही का है। वास्तविक सुख-शान्ति और स्वच्छन्दता इसमें कुछ भी नहीं है। इसमें यदि है तो दारुण दुश्चिन्ता, उद्वेग, भय, स्वार्थपरताका भीषण सङ्घर्ष, मारकाट, रक्तपात, लोक-क्षय इत्यादि।

एक, गृहशत्रुको दमन करते न करते, निश्चिन्त होनेका अवसर पाया भी न था, कि सिराजुद्दौला एक दूसरे गृहशत्रु को दमन करनेके लिये व्यस्त हो गया। पुर्नियाका अधिपति, शौकतजङ्ग, इस समय सिराजके सिंहासनका प्रतियोगी हो गया। इसलिये उसे अपनी सेना सहित पुर्नियाकी ओर जाना पड़ा।

तरलमति सिराजुद्दौला अभी पुर्नियाकी ओर को चला भी नहीं था, कि फिर अँगरेज़ोंके उत्तर आनेकी बात याद आ गई। अपना पहिला आदेश याद करके, उसने कलकत्तेको एक पत्र लिखा। उस पत्रका भाव इस प्रकार है:—

"तुमको कई बार बागबाज़ारके पेरिङ्ग दुर्गके तोड़नेके लिये लिखा जा चुका है; परन्तु न तो तुम किसी तरह उसके

अनुसार करने पर तैयार हुए हो और न क्षणवल्लभको अभी तक हमारे पास पहुँचाया है। अब मैं तुम्हारे मुलाविमें नहीं आऊँगा। इस समय मैं युद्ध यात्रा पर जा रहा हूँ,नहीं तो आप ही आकर उसको तुड़वा देता। अब भी कहता हूँ, कि यदि अपना मङ्गल चाहो, यदि विवाद सम्वादकी इच्छा न करते हो, तो पत्रको देखते ही पेरिङ्ग दुर्गका तोड़ना आरम्भ कर दो और क्षणवल्लभको मुर्शिदाबाद भिजवा दो। यदि देर करोगे तो निश्चय जानना, कि दुर्गको समूल नष्ट करके ड्रेक साहबको भागीरथीमें डुबा दूँगा।

नवाब सिराजुद्दौला।

अँगरेजोंको यह पत्र लिखकर सिराजुद्दौला युद्धके लिये चल दिया।

यह दृढ़ताव्यञ्जक भय दिखानेवाला पत्र पहुँचने पर, अँगरेज लोग और चुप न रह सके। पत्रका उत्तर देना ही होगा। वह लोग भयभीत होकर पत्रका उत्तर देने पर वाध्य हुए। ड्रेक साहबने पत्रका उत्तर दे दिया। वह इस प्रकार है—

"नवाब बहादुरका आदेश उल्लङ्घन करना हमारी शक्तिके बाहर है। सात समुद्र, तेरह नदी पार करके, इतनी दूर विदेशमें आकर, युद्ध करनेकी इच्छा हमारी कदापि नहीं है। अकेले फरासीसियोंसे युद्ध होनेकी आशङ्का हमको सदैव लगी रहती है, तिसके ऊपर आपसे युद्ध छेड़ कर हम और अनर्थ अपने सिर पर नहीं ले सकते हैं। युद्ध करनेसे सिवाय क्षतिके

और क्या लाभ हो सकता है ? हम लोग आपके अवाध्य नहीं हैं। हमारे शत्रु-पक्षके लोगोंकी बातें सुनकर आप भले ही समझ लें कि हम लोग आपके अवाध्य हैं ; परन्तु वास्तवमें यह बात नहीं है। हम लोग इस तरहका कोई काम नहीं करते हैं, जिससे हमारी अवाध्यता प्रकाशित हो। आपने जो कुछ सुना है, वह किसी शत्रुकी कही हुई बात है। हमने कलकत्ते नगरकी चहारदीवारी नहीं बनाई है। परन्तु हमारे प्रबल शत्रु फरासीसियोंकी ओरसे शीघ्र ही युद्ध छिड़नेकी आशङ्का है ; इसीलिये गङ्गाकी ओर तोप चलानेके जो स्थान टूट गये थे, केवल उन्हीं को फिरसे मरम्मत किया है, केवल इतना ही काम किया गया है। जहाँ पर ऐसी आशङ्का है, वहाँ पर सतर्क न रहनेसे किस प्रकार काम चल सकता है ? इति।

आपका अनुगत और आश्रित,

ड्रेक

कलकत्तेका गवर्नर।"

सिराजुद्दौला को, राजमहलमें पहुँच कर, गवर्नर ड्रेक साहबका यह पत्र मिला। पत्र पढ़ते ही वह क्रोधके मारे आग-बबूला हो गया, पैरसे कुचले हुए विषधर सर्पकी तरह अपने स्थानसे उठ बैठा और बड़े ज़ोरसे चिल्लाकर बोला,—"क्या! बारम्बार हमारी बातका उल्लङ्घन! बारम्बार हमारे साथ चातुरी ! अँगरेज़ लोग क्या नहीं जानते हैं, कि वह लोग यह कौशल किसके साथ कर रहे हैं ? और नहीं ! अब मैं अपेक्षा

नहीं कर सकता हूँ। इस बार म इन लोगोंको उचित शिक्षा दूँगा, इस बार उनको वाणिज्यकी आशाको अथाह जलमें डुबा दूँगा, अब उनको किसी तरह क्षमा न करूँगा।"

सिराजकी भयानक मूर्त्ति हो गई। यह हाल देखकर मित्र, नौकर, सेनापति और सैनिक सभी स्तम्भित हो गये। किसीका भी इतना साहस न हुआ, कि उसके सामने जाकर उसको ठण्ढा करता और सान्त्वना वाक्य सुनाता। सभी निर्व्वाक् और भयभीत थे।

सिराजुद्दौला और विलम्ब न सह सका। वह शौकतजङ्गके दमन करनेको जारहा था, परन्तु इस कामको उसने छोड दिया। पहिले अँगरेज़ोंको दमन करना होगा। उसने पुर्निंयाको यात्रा न करके सेनापतिको आदेश दिया, कि सैन्य सामन्त, गोला-गोली, तोप बन्दूक, हाथी घोडे इत्यादि जो कुछ हैं, सबको मुर्शिदाबाद भेज दो, तनिक भी देर न होने पावे।

यह सुनते ही गडबड पड गई। हाथीके सवार हाथियों पर, घोडोंके सवार घोडों पर, पैदल अपनी अपनी बन्दूकें कन्धों पर रक्खे हुए पैदल चलने लगे। बडे बडे बैल तोपोंको खींचने लगे। गोला गोली बारूद छकडों पर लदकर चली। ऊँटों पर लदकर बडे बड़े विराट् खेमे चल दिये। महा कल रवसे दिगमण्डल गूँज उठा। सिराजकी विपुल वाहिनी मुर्शिदाबादकी ओर चली। सभीने समझ लिया, कि अब अँगरेज़ सौदागरोंको खैर नहीं है।

आठवाँ परिच्छेद।

नवाब-सेनाने कासिमबाज़ारमें आकर अपने शिविर स्थापन किये। उमरबेग जमादार तीन हज़ार सेना लेकर अँगरेज़ोंके क़िलेके सामनेके मैदानमें पहुँचा। सहसा इस प्रकार सेनाको जमा होते देखकर किसीने किसीसे कुछ भी न पूछा और किसी के मनमें कोई सन्देह भी न हुआ। सभी जानते थे, कि नवाबकी सेना बीच-बीचमें आकर इसी तरह शिविर स्थापन किया करती है। यह भी उसी तरह है।

सन् १७५६ ईसवीकी २४वीं मईको सोमवार था, वह दिन इसी तरह कट गया। किन्तु २५वीं मई मङ्गलवारको, सूर्योदय के साथ ही साथ, दोसौ अश्वारोही उमरबेगके शिविरमें आकर उपस्थित हुए। इसके बाद एक पहरके बीचमें और दो तीन सौ बरकन्दाज़ भा उपस्थित हुए। साथ ही साथ कई एक रण-निपुण हाथी भी दिखलाई पड़े। जो अँगरेज़ कासिमबाज़ार में थे, इस तरह पर सेना एकत्रित होती देखकर, उनके चित्तमें एक प्रकारका आतङ्क उत्पन्न हुआ। उन्होंने अनुमानसे ज्ञान

लिया, कि यह गति कुछ भली नहीं है। इतने दिनोंके पीछे नवाब हम लोगोंके सत्यानाश पर उतारू हुए हैं।

बाहर नवाब सेना चुपचाप पड़ी हुई है। भीतर अंगरेज़ोंके दुर्गमें गड़बड़ मची हुई है। सभा बैठी। सभामें साइक्स, वारेन हेस्टिङ्गस, डाक्टर फोर्थ, एच वाट्स, वाट्सन कलेट, विलियम वाट्स, चेम्बर्स इत्यादि एकट्ठे हुए। बहुत कुछ वाद-विवाद और तर्क-वितर्कके बाद स्थिर हुआ, कि नवाब अवश्य ही युद्धकी इच्छासे सेना इकट्ठी कर रहा है। अब और निश्चिन्त रहना ठीक नहीं है। वह लोग भी युद्धके लिये तय्यार होने लगे।

अंगरेज़ोंका क़ासिमबाज़ारका क़िला वर्त्तमान क़िलेकी तरह प्रकाण्ड नहीं था। गठन प्रणाली भी ऐसी नहीं थी। परन्तु उस समयका वह क़िला, क़िला ही कहलाता था और उसके द्वारा शत्रुका आक्रमण भी बहुत कुछ रोका जा सकता था। क़िला ठीक चौकोन नहीं था, परन्तु देखनेसे चौकोन ही ज्ञात होता था। उसके चारों ओर अच्छी दृढ़ चहार दीवारी बनी हुई थी। चहारदीवारीमें चार बुर्ज थे। प्रत्येक बुर्जपर दस दस तोपें थीं। चहार दीवारीके ऊपर भी गङ्गाकी तरफ़ बाईस तोपें थी। सिंहद्वारके दोनों किनारों पर भी बड़ी बड़ी दो तोपें थी। इनके अतिरिक्त, दुर्गके भीतर भी और बहुत सी तोपें यथाक्रम लगी हुई थी। वह सलामीके

काममें आया करती थीं, परन्तु युद्धके समय वह बहुत काम दे सकती थीं।

इस किलेमें, उस समय ३५ गोरे सिपाही और ३५ हिन्दुस्तानी सिपाही, कुल मिलाकर ७० सैनिक थे। विल वाट्स साहबने देखा, कि इतनी थोड़ी सेना लेकर नवाबकी सेनासे युद्ध करना असम्भव है। परन्तु क्या किया जाय, इतनी ही सेना लेकर एनसाइना इलियट साहब युद्धके लिये प्रस्तुत होने लगे। गोला-गोली-बारूद गोदामसे निकल निकल कर युद्धस्थलमें आने लगी। तोपें युद्धके योग्य हैं कि नहीं, इसकी भी परीक्षा होने लगी। वाट्स साहब दिन-रात परिश्रम करके खानेकी सामग्री इकट्ठी करने लगे। किलेके भीतर युद्धकी तैयारी होने लगी।

२४-२५-२६ मई, तीन दिन कट गये। सत्ताईसवींकी रात भी कट गई, तथापि नवाब-सेना युद्धके लिये फिर भी तय्यार नहीं हुई। उसने केवल शिविर स्थापन कर लिये, परन्तु युद्धका कोई उद्योग न था।

नवाब सेनाको इस प्रकार निश्चेष्ट देखकर, अँगरेज़ोंकी उत्कण्ठाकी सीमा न रही। अनेक तर्क-वितर्क करने पर भी इसका कारण न समझ सके। अन्तमें यह जाननेके लिये कि मामला क्या है, डाक्टर फ़ोर्थको उमरबेग जमादारके पास भेजा।

कुछ आज ही नहीं, अँगरेज़ लोग सदैवसे ही साहसी, अध्य-

बसायी, परिश्रमी और कार्य्यकुशल हैं। जो चित्तमें आता है उसको करके ही छोड़ते हैं। जहां बुद्धिकी पहुंच नहीं है, वहां भी उनकी दृष्टि पहुंच जाती है। उनको प्राणोंकी ममता नहीं है, शोक दुःख भी उनको कष्ट नहीं पहुंचाता है। किसी काममें पीछे हटना भी यह नहीं जानते हैं। इसी कारण, आज यह लोग सौभाग्यके स्थान पर हैं और हमारे राजराजेश्वर हैं।

डाक्टर फोर्थ साहस करके नवाबके सेना निवासमें घुस पड़े। उमरबेग जमादारसे मिलकर पूछने लगे, "तुम्हारा इस प्रकार सेना जमा करनेका क्या कारण है?"

उमरबेगने कहा,—"वाट्स साहबको पकड़ कर ले जाना होगा, इसीलिये नवाब बहादुरने यह सेना भेजी है।"

एक आमद्दा दूर हुई, दूसरी आमद्दाने उसका स्थान ले लिया। उमरबेगकी बात सुनकर डाक्टर फोर्थको इतना विस्मय हुआ जिसका कुछ ठिकाना नहीं। पूछा,—"वाट्स साहबको किस लिये पकड़ ले जायेंगे?"

उमरबेग—अंगरेज सौदागर बड़े स्वेच्छाचारी हैं। यह लोग नवाब बहादुरको ग्राह्य नहीं करते हैं, उनकी कोई बात नहीं सुनते हैं, जैसा चाहते हैं वैसा करते हैं, और अपनी स्वाधीनताका यथेष्ट परिचय देते हैं। वाट्स साहबको मुचलकानामा लिखना होगा, कि जिससे भविष्यत्में इस प्रकारके काम न हों।"

डाक्टर फोर्थने समझ लिया कि सहज व्यापार नहीं है।

बोले, "यदि वाट्स साहब इस मुचलकेनामेके लिखनेमें सम्मत न हों, वह पकड़ाई न देवें तो क्या होगा ?"

उमरबेग जमादारने गम्भीर भावसे उत्तर दिया, "तो फिर नवाब बहादुरने इतनी सेना क्यों भेजी है ? यदि सहजमें न जायँगे, तो बलपूर्व्वक ले जाये जायँगे। नवाब सेनाके सामने अँगरेज़ सौदागर कितनी देर ठहर सकते हैं ?"

डाक्टर फ़ोर्थ जो बात जाननेको आये थे सो मालूम हो गई। और कुछ न कहकर, नवाबके सेना-निवाससे विदा हुए।

हाल जानकर अँगरेज़ सौदागरोंकी उत्कण्ठा और भय कुछ दूर हुआ, किन्तु सहसा नवाब-दरबारमें हाज़िर होनेका साहस किसीको भी न हुआ। तब वाट्स साहबने अपनी विपद्‌के प्रधान सहायक जगत्‌सेठ महताबचन्दसे मिलकर यह सब बातें पूछी कि, सिराजुद्दौलाका अभिप्राय क्या है ? वह क्या चाहता है ? क्या करनेसे उसका क्रोध शान्त होगा ? और हमने तो कोई अपराध नहीं किया है वह क्या अपराध लगाता है ?

जगत्‌सेठ महताबचन्द, नवाब सिराजुद्दौलाके साथ बात-चीतमें, उसके आकार प्रकार और भावभङ्गीसे जो कुछ समझ सके थे उससे उनको यही मालूम हुआ, कि अँगरेज़ोंका इस बार भला नहीं है। सेठजी ने कहा, "इस बार सिराजुद्दौला पेरिङ्ग दुर्गको विना तोड़े शान्त न होगा, और मुचलकानामा जब तक न लिखा लेगा तब तक युद्ध करनेसे न हटेगा। रुपये भेंट देकर अबकी बार काम न चलेगा। ऐसा

ख्याल भी मत करना। अब उसके ऊपर कोई रोकनेवाला नहीं है। अलीवर्दी बहुत कुछ समझाते बुझाते रहते थे, अब उसको समझाना बड़ा कठिन काम है। इस समय तुम्हारे क्षमता खर्व न करके और तुमसे कोई विशेष शर्त्त न कराके, नवाब बहादुर किसी प्रकार निरस्त न होंगे।"

यह सुनकर वाटस साहब कांप गये। उन्होंने समझा था कि, कासिमबाजारकी कोठी का आक्रमण सिराजुद्दौलाका जुर्माना लेनेका कौशलमात्र है, किन्तु अब समझे कि, उनकी यह भूल थी।

वाट्स साहबने निरुपाय होकर कलकत्तेके अंगरेज़ोंके पास यह सम्वाद भेजा। उन्होंने भी बहुत कुछ परामर्श करनेके बाद वाट्स साहबसे कहला भेजा, "सिराजुद्दौला यदि जुर्मानेसे तुष्ट न होवे तो जिस प्रकार राज़ी हो वही करना चाहिये।"

कलकत्तेको अंगरेज़-सभाका आदेश पाकर, वाट्स साहब साहस करके नवाब दरबारमें गये।

सिराजुद्दौला उनके ऊपर बड़ा ही क्रुद्ध होरहा था। वाट्स साहबको देखते ही, क्रोधके मारे कांपता हुआ, लाल लाल नेत्रोंसे, बड़े कर्कशस्वरमें बोला—"मैंने समझा था, कि अंगरेज़ लोग सरल स्वभावके हैं, लड़ाई झगड़ा कुछ नहीं जानते हैं, परन्तु अब मैं देखता हूं, कि जो कुछ मैंने समझा वह मेरी बड़ी भूल थी। उपयुक्त दण्ड विधान जबतक तुमको न मिलेगा, तबतक तुम्हारा यह उद्धत स्वभाव न सुधरेगा।"

सिराजुद्दौलाकी उग्र मूर्त्ति देखकर वाट्स साहबका गला सूख गया, बात कहनेका साहस न हुआ। वह समझने लगे, कि अब कुछ देरमें सिराजुद्दौला उनके प्राण लेनेका हुक्म देता है।

पात्र, मित्र, सभासद सभी स्तम्भित थे। किसीके मुखसे एक बात भी न निकलती थी। सभी समझ रहे थे, कि निश्चय ही आज वाट्‌स साहबकी जीवन लीला शेष हुई।

वाट्‌स साहबको भयभीत और नीरव देखकर सिराज बोला, "अबकी बार मैं तुमको सहज न छोड़ूँगा। यदि तुम अबसे मेरे राज्यमें रहकर वाणिज्य करना चाहो, तो एक मुचलका-नामा लिख दो; नहीं तो तुमको क़ैदमें रहना होगा।"

वाट्‌स साहबने सोचा कि जब हमको किसी से लड़ना झगड़ना नहीं है, तो मुचलकानामा लिखनेमें क्या हर्ज है। उन्होंने हाथ जोड़कर कहा, "किस प्रकारका मुचलकानामा लिखना होगा, आज्ञा कीजिये।"

सिराज—बागबाज़ारका पेरिङ्ग दुर्ग जड़से खोदकर फेंक देना होगा। जो विश्वासघातक कर्मचारी राजदण्डके भयसे भागकर कलकत्तेमें छिपे हुए हैं उनको मेरे पास हाज़िर करना होगा। ईस्ट इण्डिया कम्पनीने बङ्गाल देशमें विना कर दिये हुए वाणिज्य करनेकी सनद दिल्लीके बादशाहसे पाई है, उस-की दुहाई देकर यूरोपके और-और लोग विना कर दिये वाणिज्य करके राजभाण्डारको क्षति पहुँचा चुके हैं वह

पूरी करनी होगी और कलकत्तेके जमीन्दार हालवेल साहब देशी प्रजापर जो अत्याचार कर रहे हैं वह और न कर सकेंगे ।

इन शर्तों पर मुचलकानामा लिखा गया । वाट्स साहबने बिना कुछ कहे सुने, उसपर दस्तखत कर दिये । इस समय उनको इस प्रकार छुटकारा मिला ।

नवाँ परिच्छेद।

मुचलकेनामे पर दस्तखत तो भय दिखाकर करा लिये, परन्तु जो बातें उसने लिखा ली थी, वह हो किस तरह सकती थीं? कलकत्तेके अँगरेजोंने उस मुचलकेनामेके पालन करनेमें असम्मति प्रकाश की। यदि वह इस पर चलते, तो उनको वाणिज्य करना भी कठिन हो जाता।

यह सम्वाद पाकर नवाब सिराजुद्दौला अधीर हो गया और मुचलकेनामेकी शर्तोंके अनुसार काम करानेके लिये वह युद्ध करनेको उद्यत हुआ और कासिमबाज़ारके दुर्गको अधिकारमें लेकर, वाट्स साहबको पकड़ लानेके लिये सेना भेजी।

आदेश पाते ही सेना कासिमबाज़ारकी ओर चली। अश्वारोही, गजारोही, पैदल, दल के दल छूटे। घोड़ोंकी हिनहिनाहट, हाथियोंकी चिंघाड़, तोपोंकी खड़खड़ाहटसे दिग्मण्डल काँपने लगा। नवाब सेनाने आकर कासिमबाज़ारके दुर्गको घेर लिया।

उस समय तक, अँगरेज़ लोग भारतवर्षमें ऐसे दृढ़ नहीं हो

पाये थे, कि सिराजद्दौला सरीखे नृशंस नवाबसे युद्ध कर सकते। इस कारण विना लड़ाई हुए ही सिराजुद्दौलाको फौज वाट्स साहब और चेम्बर्स साहबको पकड़कर ले गई। सिराजने सोचा था, कि इनको पकड़ ले आनेसे कलकत्तेके सभ्य अंगरेज़ उनके छुड़ानेको आकर कुछ भेंट देंगे, परन्तु उसका यह अनुमान निष्फल हुआ। क्योंकि उनके छुड़ानेको कोई नहीं आया। अंगरेज़ जानते थे, कि सिराजुद्दौला रुपये का बड़ा लालची है।

वाट्स साहबकी मेमसाहब नवाबके अन्तःपुरमें आती जाती थीं। पहिले तो उन्होंने कुछ नहीं कहा, परन्तु जब नवाबने कई दिनतक वाट्स साहबको नहीं छोड़ा, तो उक्त मेम साहिबाने बेगमोंसे अपना दुःख प्रकाशित किया। सिराज की माता अमीना बेगमसे भी कहा। कठोर होनेपर भी रमणीका हृदय मायासे और स्नेह-ममतासे नितान्त ही शून्य नहीं होता है। और यही हाल अमीना का भी था।

चरित्रहीन होनेपर भी, सिराजकी जननी बड़ी दयावती और दूसरेके दुःखसे कातर होनेवाली थी। दूसरेका दुःख देखकर वह पानी-पानी हो जाती थी। पतिके उद्धारके लिये वाट्सकी मेमसाहबाको दुःखी देखकर, अमीना बहुत दुःखी हुई। उसने सान्त्वनायुक्त वाक्योंमें कहा,—"क्यों इतनी कातर होती हो? दुःखी मत होओ, मैं शपथ खाकर कहती हूँ, कि मैं सिराजसे कहकर तुम्हारे पतिको छुड़वादूँगी।"

यह कहकर अमीना बेगमने सिराजको बुलाया और कहा, "सिराज! मैं एक बात कहती हूँ, क्या तुम मेरा कहना मानोगे?"

सिराज—आज्ञा कीजिये। क्या करना होगा?

अमीना—मेरे सामने शपथ खाओ, तब मैं कहूँगी।

सिराजद्दौलाने कुछ हँसकर कहा, 'आप इतनी आग्रह क्यों करती हैं? आप कहिये,मैंने आपकी बात कब उलङ्घन की है?

इतनेमें सिराजकी नानी भी आ गई और बोली,"सिराज! क्या तुम कासिमबाज़ारकी कोठीसे दो अँगरेज़ों को पकड़ लाये हो?

सिराज—यह बात आपने कहाँ सुनी?

नानी—वाट्स साहबकी मेमने कहा है।

सिराज—वह आपको कहाँ मिली?

नानी—क्यों, वह तो हमारे यहाँ प्रति दिन आती हैं उसका दुःख देखा नहीं जाता है।

सिराज—वह मेम अन्तःपुरमें कैसे आती है?

नानी—वह तुम्हारी माताकी सखी है। अहा! वह बड़ी सरल प्रकृति की स्त्री है। वास्तवमें उसका दुःख देखनेसे चित्त बड़ा दुःखी होता है।

अमीना बेगमने कहा, 'सिराज! मेरे अनुरोधसे एक काम तुमको करना होगा। मेरी इच्छा है, कि तुम वाट्स साहबको छोड़ दो।"

यह सुनते ही सिराजकी आंखें रक्तवर्ण हो गईं। उसने कहा, "अब मैं समझा कि वाट्स साहबको मेमने आपलोगोंको फुसलाया है। पर अँगरेज़ लोग छोड़ने योग्य नहीं हैं। यह मुझको बड़ा क्लेश पहुँचा रहे हैं। मेरे राज्यको यह लोग बड़ी हानि पहुँचाते हैं। मैं अपनी हानि पूरी किये बिना न छोड़ूंगा।

यह सुनकर अमीनाने कहा, "यह मैं जानती हूँ, कि तुमने राज्यके मङ्गलके लिये ही उनको बन्दी किया है, परन्तु मैंने वाट्सकी मेमके आगे शपथ खाई है, कि मैं उसके स्वामीको छुड़वा दूँगी। सिराज! मेरी शपथ रक्खो!"

सिराजुद्दौलाको क्रोध तो बहुत आया। परन्तु उसने सोचा कि जिस मतलबके लिये मैंने उन दोनों अँगरेज़ोंको बन्दी किया था, सो मतलब तो सिद्ध न हुआ। अब माताका अनुरोध ही क्यों न रक्खूं? यह सोचकर उसने दोनों अँगरेज़ों को छोड़ दिया।

दसवाँ परिच्छेद।

परन्तु सिराजुद्दौलाकी क्रोधाग्नि इनको छोड़ देनेसे और भी बढ़ गई। उसने मन्त्रियोंको बुलाकर कहा,—"देखो, मैंने अपनी माताके कहनेसे वाट्स और चैम्बर्सको छोड़ दिया; परन्तु जो मेरी इच्छा थी वह तो कुछ भी न हुई। मैं उन्हें अर्थ-दण्डसे दण्डित करना चाहता था, वह भी न हो सका। अब मेरी यही इच्छा है कि उचित शास्ति देकर ही इन लोगोंको दबाऊँ। मैं आप ही वहाँ जाकर, इनको उचित दण्ड दूंगा।"

सिराजुद्दौलाकी बात सुनते ही नवाब अलीवर्दीके समयके लोग जो राज्यके शुभाकांक्षी थे कहने लगे। पहले जगत्सेठ महताबचन्दने कहा, "राजधानी छोड़कर इस समय युद्ध-यात्रा करना उचित नहीं है। जब तक आप शौकतजङ्गको पराजय न करपावें, तबतक सिंहासन निरापद न होगा, उस समय तक आपको राजधानी छोड़ना उचित नहीं है। विशेष करके अँगरेज़-जाति बड़ी शान्त-स्वभाव है। वह वाणिज्य-व्यवसायसे ही सन्तुष्ट रहती है। इससे बढ़कर और कोई जाति धर्मभीरु नहीं है। यह लोग प्राण देकर भी लोक का

उपकार करते हैं। इन लोगोंके द्वारा देशके बहुत कुछ कल्याण की सम्भावना है और हो भी रही है। जो लोग देशका ऐसा कल्याण करनेवाले हैं, उनके विरुद्ध नवाब बहादुरकी युद्ध यात्रा किसी प्रकार शोभा नहीं पाती है। इसके अति रिक्त नवाब बहादुरने आपसे कहा भी है, कि अँगरेजोंके साथ मित्रभाव रखना चाहिये, इसीमें राज्यका कल्याण है।"

मानिकचन्द—जो लोग सामान्य वाणिज्य जीवी हैं,उनको दमन करनेके लिये स्वयं नवाब बहादुरको चढ़ कर जानेकी क्या आवश्यकता है? यदि आप मुझको आज्ञा दें, तो अभी जाकर उन लोगोंको दबा दूँ। मछली मारनेके लिये, तोप चलानेकी क्या आवश्यकता है?

इसी प्रकार सब मन्त्रियोंने सदुपदेश दिये। परन्तु सिरा जुद्दौलाको ता अच्छे बुरेका कुछ ज्ञान ही न था, वह तो केवल क्रोधके वशीभूत हो रहा था। उसने स्पष्ट कह दिया कि, "तुम लोग अंगरेजोंकी ओर हो गये हो, इसी कारण उनकी झूठी प्रशंसा किया करते हो। तुम लोग जितना ही उनका पक्ष समर्थन करते हो उतना ही मैं उन लोगोंको अधिक दण्ड देनेकी इच्छा करता हूँ।"

सभासद और अमात्यवर्गने सोचा था,कि समझाने बुझानेसे यदि नवाब समझ जावें और अँगरेजोंको दमन करनेका ख्याल छोड़ देवें तो इस समय राज्यमें कुछ शान्ति रहेगी। परन्तु जब उन लोगोंकी चेष्टा वृथा हुई, और नवाब सिराजुद्दौला किसी

प्रकार सङ्कल्पसे न हटा तो अमात्यवर्ग दुःखित होकर चुप हो गये।

सिराजुद्दौलाने किसीकी कुछ न सुनकर सेनाको तय्यार होनेका आदेश दिया। उसके चित्तमें यह शङ्का उत्पन्न हुई कि जगत्‌सेठ महताबचन्द, मानिकचन्द और मीर जाफ़र दुश्मनोंसे मिल गये हैं। कहीं ऐसा न हो, कि जब मैं कलकत्ते जाऊं तो मेरे पीछे यह लोग मेरे सिंहासन पर शौकतजङ्ग को बैठादें, इस डरसे उसने उनको भी अपने साथ चलने की आज्ञादी। केवल एक मोहनलाल के ऊपर भरोसा था, उनको राज्य-रक्षा का भार अर्पण करके अपनी फ़ौज लेकर चलदिया।

नवाब की सेना युद्ध को आ रही है, सुनकर अँगरेज़ लोग भी निश्चन्त न रहे। उन्होंने भी नगर-रक्षाका जहाँ तक हो सका बन्दोबस्त किया। गवर्नर ड्रेक साहबने और-और कोठियोंमें जो अँगरेज़ थे उनको बुला लिया, परन्तु फिर भी वह लड़ाईके लिये पहिले से तय्यार तो थे ही नहीं। उनके यहाँ साधारण व्यवसाय-वाणिज्यका काम था, उसीसे जो कुछ तय्यारी कर सके वह कर ली।

ग्यारहवाँ परिच्छेद।

किसके ऊपर किस समय कौनसी विपत्ति उप स्थित हो सकती है, यह कौन कह सकता है? यदि पहिले से मालूम हो जाया करता, तो लोग उससे सावधान हो जाया करते।

सिराजुद्दौला को विपुल सैन्य सामन्त साथ लेकर बड़े आडम्बरसे युद्ध यात्रा करते देखकर, सभी ने समझ लिया कि इस बार कलकत्तेका सत्यानाश हुआ। अब अँगरेज़ लोग, सदैवके लिये इस देश से विदा हो जायँगे।

गुप्तचर विभाग के अधिपति राजा रामरायसिंह के मनमें भी यही विश्वास होगया। उनके मित्र उमाचरण ने कलकत्ते में बहुतसा धन लगाकर एक बड़ा भारी प्रासाद बनवाया था। रामरायसिंह ने गुप्तभाव से एक चिट्ठी लिख भेजी। उसमें उसने सावधान रहने और अँगरेज़ोंके विपक्षमें रहकर उनको कष्ट पहुँचाने की बहुतसी बातें लिखीं। परन्तु मङ्गल करते अ-मङ्गल होगया, अर्थात् पत्र वाहक उमाचरण के पास न पहुँच कर अँगरेज़ोंके हाथ पड़गया।

अँगरेज़ोंने देखा कि अब तो यह कलाकौशल सब ही चलने

लगी, और उमाचरण ऊपर ऊपरसे उनको मित्रता दिखलानेपर भी षडयन्त्रकारी है, इससे अँगरेज़ोंको भी क्रोध आगया।

अँगरेज़ लोग जिस समय देशमें व्यवसाय-वाणिज्य से अनभिज्ञ थे, बंगाल के सब स्थान भली प्रकार जानते न थे, किसी के साथ जान-पहिचान न थी, बंगाल में कौनसी वस्तु कहां उत्पन्न होती है, किस वस्तु का क्या मूल्य है, किसानों और शिल्पियों को किस प्रकार दादनी देकर अटकाना होता है, इन सब बातों की अनभिज्ञता थी, उस समय तक उमाचरण अँगरेज़ों के परम बन्धु थे। परन्तु जब उन लोगों को व्यवसाय के गूढ़ तत्व मालूम होगये, तो उमाचरण को इन लोगों से ईर्षा होगई, यह एक स्वाभाविक बात थी। क्योंकि अब उमाचरण को उनसे इतना लाभ होना असम्भव था, जितना पहिले हुआ करता था। षडयन्त्र रचनेका एक यही कारण मुख्य था।

जब अँगरेज़ोंको यह चिट्ठी हाथ लगी, तो उन्होंने आपसमें सलाह करके यही निश्चय किया कि नवाब आरहे हैं। न जाने इस समय उमाचरण क्या क्षति पहुँचावे, इससे यही अच्छा है कि उसको पकड़कर क़ैद कर लिया जाय। यह सोचकर, ४-५ अस्त्रधारी सिपाहियों को आज्ञा दी, कि उमाचरण को पकड़ लाओ। उमाचरण अपने बैठकख़ानेमें बैठे हुए थे, कोई लड़ाई झगड़ा नहीं हुआ। उमाचरण बन्दी होगये।

बारहवाँ परिच्छेद।

अँगरेज़ों को विश्वास था, कि जब उन्होंने कोई अपराध नहीं किया है, तो सिराजुद्दौला सेना लेकर कभी कलकत्ते न आवेंगे। केवल कलकत्ते आनेका भय दिखाकर, रुपया चाह रहा है, परन्तु वहाँ तो कुछ और ही बात थी। उसको तो किसी न किसी बहाने से इन व्यवसाय वाणिज्य-जीवी लोगोंको देश से निकालना अभीष्ट था। जब सुना, कि सिराजुद्दौला बारानगर में आगया है तो उनको शंका उत्पन्न हुई और उनका वह भ्रम, वह विश्वास, जाता रहा और समझ गये कि जब आप ही नवाब आरक्षा है तो नगर की रक्षा असम्भव है।

नवाबके आनेसे नगरमें बड़ा कोलाहल मच गया। सभी लोग अपने अपने स्त्री पुत्र, परिवार को ले ले कर भागने लगे। अँगरेज़ोंने समझाया भी, कि तुम लोगों को भागने की आवश्यकता नहीं है। यदि नवाब आवेंगे भी तो वह हमसे शत्रुता रखते हैं, तुम लोगोंसे उनको क्या दुःख पहुँचा है जो तुमको मारेंगे। परन्तु सिराजुद्दौला का डर ऐसा न था जो शीघ्र ही उन लोगों के चित्तसे निकल जाता। अस्तु, वह लोग जहाँ जिसके सींग समाये भाग गये।

सिराजुद्दौलाने आते ही अँगरेज़ोंके किले पर आक्रमण कर दिया और बिना रक्तपात किये ही दुर्ग विजय कर लिया, क्योंकि अँगरेज़ लोग तो लड़ना चाहते ही न थे और वह यह भी जानते थे कि नवाब अर्थ लोलुप है, रुपया लेकर छोड़ देगा, परन्तु इस नृशंस नवाबने, किलेमें उस समय जो प्रायः १४३ मनुष्य थे, उन सबको बन्दी करके एक छोटीसी कोठरी में बन्द कर दिया। वह इतिहासमें (Black Hole) काल कोठरीके नामसे प्रसिद्ध है। परन्तु खेदके साथ कहना पड़ता है कि प्रातःकाल जो कोठरी खोली गई तो केवल २३ मनुष्य उसमें जीवित पाये गये। गरमीके दिन थे, तिसपर उस दिन बड़ी भारी गरमी थी, प्यासके मारे रात भर में ही इतने आदमी मर गये।

तेरहवाँ परिच्छेद।

सिराजुद्दौलाको अँगरेज़ों के ऊपर अकारण ही इतना क्रोध था, कि कलकत्ता अधिकृत करने के बाद उसका नाम तक बदलकर अलीनगर रक्खा। जब अभिप्राय सिद्ध हो गया, तो राजा मानिकचन्द को कलकत्तेका शासनभार अर्पण करके, उनके आधीन तीन हजार सेना करदी और दूसरी जुलाई को वहां से राजधानीकी ओर को चलदिया।

मोहनलाल को मंत्री के पदपर और मीरमदन को सेना पतिके पदपर अधिष्ठित करने से मीरजाफ़र, रहीमखां इत्यादि पुराने राज्य सेवक लोगोंको बुरा मालूम हुआ। उसके ऊपर तुर्रा यह, कि मानिकचन्द को कलकत्तेका शासनभार दिया। जिसका फल यह हुआ, कि इन लोगों के चित्त सिराजुद्दौला से फिर गये।

कलकत्तेसे आने पर थकावट दूर करनेके लिये, सिराजुद्दौला कुछ दिनके लिये हुगली ठहर गया। हुगली के हालेण्डीय और फ़रासीसी लोगों ने सुना कि उसने अँगरेज़ों पर ऐसा घोर अत्याचार किया है, तो वह लोग ऐसे भयभीत हुए कि

अपनी भेंटें लेलेकर अभ्यर्थना के लिये दौड़े। हालेण्डीज़ ने साढ़े चार लाख और फ़रासीसियों ने साढ़े तीन लाख रुपये नज़र किये।

ग्यारह जुनाई को नवाब मुर्शिदाबाद पहुँच गया। समरमें मानों जीतकर आया था, इससे नगरमें बड़े उत्सव मनाये गये। राज-पथपर, स्थान स्थान पर तोरण बांधे गये और वे फूल पत्तोंसे सुशोभित किये गये। छोटे बड़े सब ही के द्वारों पर केलेके वृक्ष लगाये गये। समग्र नगर में नृत्यगीत होने लगे। यह सब काम मोहनलालके यत्नसे हुआ था, क्योंकि उनको ही नई पदवी मिली थी।

सिराजुद्दोला चाँदीकी पालकीमें जा रहा था। अश्वारोही, गजारोही और पैदल इत्यादि नङ्गी तलवारें हाथोंमें लिये हुए, उसके आगे आगे जा रहे थे। इस प्रकार नगरकी प्रदक्षिणा करके, राज-प्रासाद पर पहुँच कर, नवाब पालकीसे उतरकर, पात्र मित्र सैन्य सामन्तको विदा करके, जननी और मातामही के पास पहुँचा।

चौदहवां परिच्छेद।

रप विजयी पुत्र को देखकर अमीना बेगम आनन्द से पुलकित होगई। उसने पुत्रका मुख चुम्बन करके कहा,—"वत्स! आशीर्वाद करती हूँ कि चिरजीवी होओ और बार बार इसी प्रकार युद्धमें विजय प्राप्त करके अपने वीरत्वके गौरव को बढ़ाओ।"

अलीवर्दीकी बेगमने कहा,—"सिराज! तुम्हारी विजय की बात सुनकर मैं अति ही प्रसन्न हुई। परन्तु इन २३ मनुष्योंको बन्दी करके क्यों लाये हो? इनको मेरे कहने से छोड़दो।" वह इनको नहीं मालूम था कि यह २३ क्या,उसने तो १२० निर पराधियों को ऐसी नृशंसता से मारा है, कि जैसा आज तक किसी हिन्दू मुसलमान राजाने नहीं किया। मातामही के अनुरोधसे उसने तीन अँगरेज़ अर्थात् वाट्स, हालवेल और कोटको छोड़ दिया। शेष मातामही से छिपाके मार डाले!

धन्य सिराज! धन्य तुम्हारे हृदय की कठोरता! इतना करके सिराजुद्दौला हीरा झीलकी लुत्फुन्निसा से मिलने चला।

पन्द्रहवाँ परिच्छेद ।

लुतफुन्निसा आज, विविध वसन-भूषणोंसे भूषित होकर, पति-दर्शनके लिये व्याकुल हो रही है। कभी घरमें, कभी द्वार पर, समय काट रही है। इसी समय सिराजुद्दौला वहाँ पहुँचा। सती पतिको सम्मुख पाकर, पुलकित चित्तसे हँसती हुई आगे बढ़कर, प्रेमसे उससे लिपट गई और अनिमेष नेत्रोंसे एकटक उसकी ओर देखती रह गई। पतिप्राणाके इस पवित्र प्रेमको देखकर, उस नृशंस अत्याचारी की आँखोंसे भी आँसू निकल पड़े। लुतफुन्निसा पतिको हृदयमें धारण करके स्वर्ग-सुख भोग करने लगी।

कुछ देर तक इस अवस्थामें रहकर, सिराजुद्दौलाने बड़े प्रेमसे मुख-चुम्बन करके कहा, "प्राणाधिके, लुतफुन्निसा! तुम एकटक क्या देख रही हो?"

लुतफुन्निसा मृदु मधुर स्वरसे हँसती हँसती बोली, "प्राणेश्वर! दासी आज आपके भीतर सौन्दर्यकी एक अनुपम शोभा देख रही है, इसीसे आज देखनेकी इच्छा नहीं मिटती है।"

सिराज—लुत्फुन्निसा! आज क्या बात है, जो तुम्हारी दर्शन पिपासा शान्त नहीं होती है?

लुत्फुन्निसा हास्यपूर्ण मुखसे बोली, "स्वामिन्! केवल आज ही नहीं, पत्नी प्राणपतिको जब देखती है, तभी उसकी यह दशा हो जाती है। विशेष करके जब स्वामी किसी प्रकारके गौरव भूषणसे भूषित होवे, तब पत्नीको आँखोंमें पति की और भी सुन्दर मूर्त्ति दिखाई देती है। अँगरेजोंसे समरमें विजय लाभ करके, आप उसी अभूतपूर्व शोभासे शोभायमान हो रहे हैं, इसी कारण नयन भरकर देखने पर भी दासीकी आज तृप्ति नहीं होती है।"

प्रणयिनीकी इस बातके सुननेसे सिराजुद्दौलाके सुखकी सीमा न रही। उसने बड़े प्रेमसे लुत्फुन्निसाको हृदयमें धारण करके कहा, 'लुत्फुन्निसा प्राणाधिके! इसी कारण सिराज तुम्हारा इतना अनुरक्त है। तुम्हारे गुण, तुम्हारे इस अतुल रूपके अनुरूप हैं।"

लुत्फु—नाथ! दासीमें ऐसे कौन से गुण हैं, जो आप को मुग्ध करते हैं। परन्तु मुग्ध होनेके कारण आप जो प्रशंसा करते हैं, यह और कुछ नहीं, आपका अनुग्रह है।

सिराज—नहीं लुत्फुन्निसा! तुम्हारे रूपकी अपेक्षा तुम्हारे गुण ही मुझको अधिक आकृष्ट करते हैं, इसी कारण तुमको नेत्रोंकी ओट करनेसे चित्तको व्यथा होती है। प्राणा धिके! युद्धयात्रा करनेमें अब जो कई दिन मुझको विरह

यातना सहनी पड़ी है, उसको प्रकृत विरही ही कह सकता है और कोई नहीं।

लुत्फु—नाथ! आपके अदर्शनसे दासीके प्राण भी शून्य हो गये थे। हर समय ईश्वरको याद करती थी और रो रो कर यही प्रार्थना किया करती थी, कि अँगरेज़ोंके समरमें मेरे प्राणेश्वरको जय लाभ हो, वीरके वीरत्व-गौरवकी रक्षा हो और दुःखिनीका पति अक्षत शरीरसे घर लौट आवे। इस प्रार्थनाके अतिरिक्त, इस दासीकी और कोई कामना नहीं थी। नाथ! तुम्हारे सुखमें ही मेरा सुख है, और तुम्हारे ही आनन्द में मेरा आनन्द है।

इसी समय एक स्वर्ण प्रतिमाके तुल्य बालिकाको लिये हुए एक बाँदी वहाँ आई। बालिकाको देखकर सिराजुद्दौला ने हाथ बढ़ाये। बालिका भी हँसती हुई कूदकर उसकी गोदमें चली गई और गला पकड़ कर मुखके ऊपर मुख रख कर टूटे फूटे शब्दोंमें कहने लगी, "बाबा! तुम इतने दिनों तक कहाँ थे?"

ममताकी आधार और नयनोंकी पुतली तनयाके मुखसे "बाबा" शब्द सुनकर, सिराजुद्दौलाका वात्सल्य प्रेम उथल पड़ा। बड़े स्नेहसे बारम्बार दुहिताका मुख चुम्बन करने लगा और कहा, "मेरिना! बेटी! क्या तुमको मेरी याद आती थी?"

तरलमति बालिकाने उस ओर ध्यान नहीं दिया और अपने आप ही बोल उठी, "बाबा! क्या तुम मुझे चाहते हो?"

सिराज—हां मेरिना ! मैं तुमको बहुत चाहता हूँ।

मेरिना—और मां को ?

यह सुनते ही सिराजुद्दौला और लुत्फुन्निसा दोनों ही हँसने लगे । लुत्फुन्निसा बडे आदरसे प्राण सम दुहिता को पतिकी गोदसे अपनी गोदमें लेकर बारम्बार मुख चूमने लगी। अहा ! संसारमें जिसके पुत्र कन्या नहीं है, जो वात्सल्यके अमिय रससे वञ्चित है, वह निश्चय ही बडे दुःखी हैं।

सोलहवाँ परिच्छेद ।

सिराजुद्दौलाने समझा था, कि अँगरेज़ोंको दमन करनेके पीछे निश्चिन्त हो जाऊँगा। और निरापद होकर राज्यशासन करूँगा। परन्तु इतना करने पर भी वह निश्चिन्त न रह सका। एक महीना भी न बीतने पाया था, कि एक गुप्तचरने आकर सम्वाद दिया कि पुर्नियाके नवाब शौकतजङ्गने दिल्लीके बादशाहसे सनद लाकर, अपने आपको बङ्गाल-बिहार और उड़ीसाका नवाब बतलाकर घोषणा की है, और युद्धके लिये तय्यार हो रहा है। वह शीघ्र ही मुर्शिदाबादपर आक्रमण करेगा।

गुप्तचरके मुखसे यह सम्वाद पाकर, सिराजुद्दौला और स्थिर न रह सका। उसने गृहशत्रुको नष्ट करनेके अभिप्राय से, अपने विश्वासी सेनापति मीरमदन और मोहनलालसे गोपनीय मन्त्रणा करके, उनको युद्धके लिये प्रस्तुत होनेका आदेश दिया।

सिराजुद्दौलाको ऐसा विश्वास हो गया, कि उसके मन्त्रियों की उत्तेजनासे और उनकी ही परामर्शसे शौकतजङ्ग, परम आत्मीय होने पर भी, सिंहासनका लोलुप हुआ है और युद्ध करना चाहता है।

परन्तु प्रजाकी यही इच्छा हो रही थी, कि किसी प्रकार अँगरेज़ोंसे लड़कर सिराजुद्दौलाका दर्प चूर्ण हो। उसके अत्याचारसे क्या प्रजा, क्या मन्त्रीवर्ग सभी व्याकुल हो रहे थे। परन्तु उस समय परमेश्वरको यह अभीष्ट नहीं था और न उस समय तक अँगरेज़ोंकी ही इच्छा थी, कि किसीका राज्य छीनें। परन्तु जब उन लोगोंसे प्रजाका दुःख देखा नहीं गया, तब उन्होंने अपनी शक्तिको बढ़ाकर उस अत्याचारीके पञ्जोंसे प्रजाकी रक्षा की, जिसकी कथा आगे चलकर कहूँगा। अस्तु जब लोगोंकी यातना असह्य हुई तो, वह लोग शौकतजङ्गके पास गये और उसको मुर्शिदाबादकी मसनद छीन लेने पर आमादा किया।

मन्त्रीदलसे सिराजुद्दौला बहुत कुछ विरक्त हो गया था; परन्तु इतना ज्ञान उसको नहीं था, कि इन लोगोंको तो प्रसन्न रख सकता, अकेली प्रजा ही अप्रसन्न रहती। वह अपने इने-गिने मन्त्रिमण्डलको भी राज़ी न रख सका। उसको यही दिखाई देने लगा, कि यदि मैं कभी राज्यभ्रष्ट होऊँगा तो इस मन्त्रिमण्डलके षड़यन्त्रसे ही होऊँगा। अपने अत्याचारका उसको कुछ भी विचार नहीं था, कि मैं क्या कर रहा हूँ।

उसने सोचा कि जब शौकतजङ्ग सिंहासनका प्रतिद्वन्दी हुआ है, और मसनद पर बैठनेके लिये दिल्लीसे सनद ले आया है, तो यही अच्छी तरकीब है, कि जबतक स्वयं बादशाह उसकी सहायताके लिये यहाँ तक पहुँच पायें तब तक मैं

शौकतजङ्गको संहार कर दूँ, अथवा बन्दी कर लूँ। नहीं तो बादशाहके आ जाने पर, मेरे शत्रु खुलाखुली बादशाहसे कह कर शौकतजङ्गके पक्षमें हो जायँगे, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

सिराजुद्दौला यह समझता था कि यद्यपि दिल्लीश्वरका प्रबल प्रताप इस समय क्षीण हो गया है, किन्तु सम्राट् नाम की महाशक्ति अभी भी लोप नहीं हुई है, जिसके आगे अब भी सभी सिर झुकाते हैं।

अस्तु जो कुछ हो, इस समय सिराजुद्दौलाने अपनी बुद्धि-मानी दिखलाई, और उस सम्वाद पर निर्भर न रहकर उसकी सत्यताकी जाँच करनेके लिये एक कौशल-जाल बिछाया। अर्थात्, पुर्नियाके वीरनगरमें फ़ौजदारका पद खाली देखकर, रायदुर्लभराम के भाई रासबिहारीको वह पद प्रदान किया, और शौकतजङ्गको एक पत्र लिखकर भेज दिया। उस पत्र का मर्म इस प्रकार है:—

"पूर्निया-प्रदेशके वीरनगरके फ़ौजदारका पद खाली है, मैं अपने विश्वस्त और अनुगत रासबिहारीको उस पद पर नियुक्त करके भेजता हूँ। तुम वह काम इसके सुपुर्द कर देना।

नवाब सिराजुद्दौला शाहकुली खाँ।"

पत्र लेकर रासबिहारी पुर्नियाको चल दिया। राजमहल पहुँच कर, नवाबका पत्र उसने शौकतजङ्गके पास भेज दिया।

पत्र पाकर शौकतजङ्ग कार्य्य निर्धारण करनेके लिये अपने मन्त्रीसे सलाह करनेमें प्रवृत्त हुआ। बोला, "देखो मन्त्री! सिराजुद्दौलाने वीरनगरके फ़ौजदारके पद पर एक व्यक्ति रामबिहारीको नियुक्त करके भेजा है, मैं उसको यह पद कदापि न दूँगा। जबकि मैं दिल्लीसे बङ्गाल, बिहार और उड़ीसाकी सूबेदारीको सनद ले आया हूँ, तब सिराजका आदेश पालन क्यों करूँगा? इस समय बङ्गाल, बिहार और उड़ीसाका शासनकर्त्ता मैं हूँ, तब वीरनगरके फ़ौजदारके पद पर किसीको नियुक्त करनेका सिराजुद्दौलाको क्या अधिकार है? सिराजुद्दौला नामसात्रका नवाब है।"

सुविज्ञ मन्त्री सय्यद गुलाम हुसैन बोला, "आप जो कुछ कहते हैं वह सब सत्य है, किन्तु सिराजुद्दौला आपका परम आत्मीय है। आत्मीयके साथ इस प्रकार लड़ाई भगड़ा करना लोक-समाजमें बड़ी निन्दाका विषय है। यद्यपि आप दिल्लीसे बादशाही सनद ले आये हैं और बङ्गाल-बिहार और उड़ीसाका नवाबी पद और शासन-भार प्राप्त कर लिया है, परन्तु विवेचना करके देखिये कि इस सनदमें राजशक्ति कहाँ है? सिराजुद्दौला अपने बाहुबलसे सिंहासन पर बैठा है, अपनी क्षमतासे अपनेको नवाब बनाया है। जब तक उसको आप पराजित न करें, तब तक केवल बादशाही सनदसे क्या होगा? सिराजुद्दौलाका इस समय प्रबल प्रताप है। अभी एक महीना भी नहीं बीता है, कि उसने अँगरेज़ोंको समरमें

हराया है। ऐसे प्रबल प्रतापी परम आत्मीयके साथ अनर्थक विवाद करना अनुचित है।"

शौकतजङ्ग मन्त्रीको यह बातें सुनकर अप्रसन्न हुआ और बोला,"मैं समझा था कि तुम मुझे सिराजुद्दौलाके विरुद्ध उत्तेजित करोगे और युद्ध करनेका परामर्श दोगे। तुमको नहीं मालुम है, कि वह प्रजा पर कैसा अत्याचार कर रहा है। अँगरेज़ोंके हरानेको तुमने खूब कही, वह विचारे लड़े ही कब हैं? उनको लड़ना अभीष्ट ही कब था? वह तो वाणिज्य-व्यवसाय करनेवाली जातिके लोग हैं, वे लड़ना कब चाहते हैं? ऐसी जातिको हरानेसे क्या वह प्रतापशाली हो गया? अँगरेज़ोंको ऐसी नृशंसतासे मार डालना, क्या कोई वीरताका काम है? मुझको ज्ञात होता है, कि तुम नितान्त भीरु हो।

"अँगरेज़ोंको हरा देनेसे क्या वह मुझको हरानेमें समर्थ हो सकता है? जिसमें अपने मन्त्रियोंको अपने वशमें करनेकी क्षमता नहीं है, जिसके पास बादशाही सनद नहीं है, वह मेरा क्या कर सकता है? तुम निश्चय जानना, कि युद्धका नाम सुनते ही वह राज्य-सिंहासन छोड़कर भाग जायगा। जबकि मुझको दिल्लीसे सनद मिल चुकी है, तब कोई सन्देह नहीं है कि बङ्गाल, बिहार और उड़ीसाकी नवाबी मेरी है। मन्त्री होकर तुम मेरे शुभकार्य्यमें बाधा मत डालो। मैंने जिस कौशलसे दिल्लीके बादशाहसे सनद पाई है, उसी कौशलसे सिराजुद्दौलाको सिंहासनच्युत करूँगा। जाओ, तुम

अपना काम देखो, मैंने तुमसे सलाह लेकर बड़ा अनुचित काम किया है।"

शौकतजङ्गने, मन्त्रीकी बात न मानकर, निम्न लिखित पत्र सिराजुद्दौलाके पत्रके उत्तरमें भेज दिया—

"सिराज! तुम्हारे कथनानुसार रासबिहारीको मैं बीरभूम का फ़ौजदारी पद न दूँगा। यद्यपि वह पद खाली है, परन्तु उस पर जिसको मेरी इच्छा होगी उसीको नियुक्त करूँगा। मैं तुम्हारा आज्ञानुवर्त्ती नहीं हूँ, तुम ही मेरे आधीन हो। मैं इस समय बङ्गाल, बिहार और उड़ीसाका नवाब हूँ। दिल्लीश्वरने मुझको सनद प्रदान की है। तुमने जो अभी तक जन साधारणके सामने अपनेको नवाब कहकर परिचय दिया है, वह तुम्हारी प्रतारणा मात्र है। तुम्हारे पास बादशाही सनद नहीं है, न तुमको वह मिली ही है। परन्तु मेरे पास वह है और मुझको मिली है। खैर जो कुछ हो, जब कि तुम अलीवर्दीके वंशधर हो तो मेरे भी परम आत्मीय हो। अपने आत्मीयके ऊपर कोई अत्याचार करूँ अथवा प्राणसंहार करूँ, ऐसी मेरी अभिलाषा नहीं है। तुम पत्रको पढ़ते ही समस्त राज्य धनको छोड़कर पूर्वी बङ्गालके किसी निर्जन स्थान में चले जाओ लोभके वशवर्त्ती होकर राज कोषसे कोई अनु मत लेना। यदि तुम्हारे भरण पोषणमें कोई अभाव हो तो उसका बन्दोबस्त मैं कर दूँगा। परन्तु यदि तुम मेरे आदेश पर नहीं चलोगे, तो तुम मेरी दयाका कोई भाग न पाओगे और

शत्रुता बढ़ जायगी। मैं युद्धके लिये प्रस्तुत हूँ। सेना तय्यार है। समय रहते समझकर काम करना, नहीं तो युद्ध छिड़ने पर मेरा अनुग्रह लाभ करनेमें समर्थ न हो सकोगे।

नवाब शौकतजङ्ग।"

शौकतजङ्गने यह पत्र लिखकर, राजमहलमें रासबिहारीके पास भेज दिया। रासबिहारीने भी लौटकर मुर्शिदाबादमें सिराजुद्दौलाको वह पत्र दे दिया।

उद्देश्य सिद्ध हुआ। शौकतजङ्गका पत्र पढ़कर, सिराजुद्दौलाको बड़ा क्रोध हो आया। उसने अपने सेनापतियोंको युद्ध-यात्राके लिये तय्यार होनेकी आज्ञा दी। परन्तु युद्धमें जानेके पहिले दरबार हुआ। सिराजुद्दौलाने पात्रमित्र सभीको शौकतजङ्गके उस पत्रके हालसे अवगत करके कहा, कि आप लोगोंकी इसमें क्या राय है।

अलीवर्दीके समयके जो लोग थे, उन्होंने अपनी अपनी सम्मति प्रकाश की; परन्तु उनकी कुछ भी सुनवाई नहीं हुई। जो लोग शौकतजङ्गसे मिले हुए थे, उन्होंने भी कहा कि वर्षाकाल ऊपर आ गया है, अब युद्धका समय नहीं है, इस समय युद्ध करनेसे सैनिकोंके कष्टकी सीमा न रहेगी; शरत्काल आने पर युद्ध करनेमें सुभीता होगा।

सिराजुद्दौला बोला, "अच्छा मैं समझ गया। परन्तु बादशाही सनद पाकर क्या वह बैठा रहेगा? वह बङ्गाल-बिहार और उड़ीसाका सूबेदार होना जो लिखता है, सो

वह सनद उसको कहां मिली ? और वह नवाब किस तरह हुआ ? अलीवर्दीका सिंहासन मुझको मिला है। बादशाही सनद भी मुझको ही मिलेगी। शौकतजङ्गको क्यों मिलेगी? और यदि बादशाह उसको सनद दे ही देगा, तो मैं क्या सहजमें अपनी मसनद छोड़ सकता हूं ?"

इसके उत्तरमें जगत्‌सेठ महताबचन्दने कहा,—"सम्भव है, कि शौकतजङ्गने अपनेको अलीवर्दीका वंशधर बतलाकर सनद प्राप्त की हो।"

इतना सुनते ही सिराजके क्रोधकी सीमा न रही, और नेत्रोंको रक्तवर्ण करके बोला, "तुम क्या कहना चाहते हो ? क्या सिराजुद्दौला अलीवर्दीका वंशधर नहीं है ?"

महताब—यह तो मैं नहीं कहता कि आप उनके वंशधर नहीं हैं, परन्तु जब शौकतजङ्ग सनद ले आया है तो सब लोग उसको ही मानेंगे, क्योंकि बादशाह जिसको नवाब बनावेगा, उसकी नवाबीको कौन इनकार कर सकेगा ?

सिराज—तो मालूम होता है, कि तुम मेरा नवाब होना स्वीकार नहीं करते हो ?

महताब—मैंने यह कब कहा है कि आप नवाब नहीं हैं, परन्तु जब दिल्लीका बादशाह दूसरेको सनद देता है, तो लोग उसको नवाब क्यों न मानेंगे ? जिसके पास बादशाहकी सनद नहीं है, उसको कौन नवाब कहेगा ? आपको बादशाहसे

सनद मँगानी चाहिये थी, बिना सनद पाये आपको लडना उचित नही है।

यह सुनते ही सिराज क्रोधके मारे जल उठा और बडे जोरसे चिल्लाकर बोला, "तो मेरी सनद कहाँ है?"

महतावचन्दने भयभीत होकर कहा, "मैं उसके विषयमे क्या जानूँ कि कहाँ है?"

सिराज—दिल्लीके बादशाहके पाससे सनद लानेका काम तो तुम्हारे ही सुपुर्द है, तुम उसको क्यों नही लाये?

महताव—आपने तो सिंहासन अपने बाहुबलसे प्राप्त किया है, अलीवर्दीके नामकी जो सनद थी वह मेरे पास है, परन्तु आपने तो कभी उसके लानेके लिये मुझसे नहीं कहा, विशेष करके आपने बादशाहका राज कर भी बन्द कर दिया है और स्वाधीन भावसे राजत्व कर रहे हैं। बादशाहको कैसे मालूम होता, कि शौकतजङ्ग अलीवर्दीका वंशधर नही है, असली वंशधर आपही है?

जब सिराजको कोई उत्तर न आया ता क्रोधसे उन्मत्त होकर सिंहासनसे उठ बैठा और बड़े वेगसे महामान्य जगत् सेठ महतावचन्दके पास जाकर उनकी गरदन पर बड़े वेगसे एक घूँसा मारा और क्रोध-भरे कम्पित स्वर से कहा, "यदि इस अवहेलनाके जुर्मानेमें तीन करोड रुपया न दोगे, तो जबतक न दोगे तबतक बन्दो रक्खे जाओगे।" यह कह कर, सिराजुद्दौलाने दरबार भङ्ग किया और जगत्सेठ महतावचन्दको बन्दो कर दिया।

सत्रहवाँ परिच्छेद।

सिराजुद्दौलाने और विलम्ब न करके शौकतजंग को दमन करनेके लिये अपनी सेना लेकर यात्रा की। उसने अपनी सेनाको तीन भागों में बाँटा। एक भागका सेनापति मीरजाफ़र को किया, उसके साथ नवाब रहा और राजमहल की ओर को चला। दूसरे दलका सेनापति राजा रामनारायणको किया। उसने बादशाहका पथ अवरोध करनेके लिये पटना की ओर यात्रा की। तीसरी ओर, मोहनलाल एक तीसरा दल लेकर, पद्मा नदी पार करके रानी भवानीके राज्यमें होकर, पुर्निया की ओरको चले। शौकतजंगके भागनेकी कोई राह न रही और बादशाह आकर सहजमें उसकी सहायता कर सके सो पथ भी बन्द होगया।

सिराजुद्दौलाके आनेका समाचार पाकर शौकतजंग शीघ्र ही सेना लेकर बाहर निकला। नवाबगञ्जके पास उसके शिविर स्थापित हुए। शौकतजङ्गके प्रवीण सेनापतिने जिस स्थानपर शिविर स्थापन किये थे उसके सामने बहुत दूर तक एक प्रकाण्ड जलाशय था और वह इतना लम्बा चौड़ा था कि

शत्रु-सेना सहजमें उसके ऊपर आक्रमण नहीं कर सकती थी। उसके भीतर आनेका एक छोटा सा रास्ता था, जिसमें से एक समय में बीस मनुष्योंसे अधिक नहीं निकल सकते थे।

शौकतजंगके रण-निपुण सेनापतिने सर्वथा अनुकूल समझ कर इस स्थानको रणक्षेत्र निर्दिष्ट किया था, किन्तु गर्वोन्मत्त शौकतजंगके दोषसे सभी वृथा हुआ। ऐसे अनुकूल युद्धक्षेत्रके पाने पर भी, कार्य्य सिद्ध न हुआ। शौकतजंगने सेनापतियों की कोई मन्त्रणा ग्रहण न करके, जैसा उसके चित्त में आया वैसा करना आरम्भ किया। उसने दूर दूर पर हरेक सेनापतिका एक एक पटमण्डप निर्देश करके, एक अद्भुत व्यूह-रचना की।

प्रवीण सेनापति बहुत चेष्टा करने पर भी जब शौकतजंग को अपने परामर्शके भीतर न लासके और जब किसी मन्त्रणा पर उसने कर्णपात नहीं किया, तो वह लोग विरक्त होकर चुप हो रहे और अपने अपने पटमण्डपमें चले गये।

जिस शौकतजङ्गने एक दिनके लिये भी कभी रणस्थलमें पदार्पण नहीं किया था, आँखोंसे कभी युद्ध देखा भी नहीं था, युद्ध-कला और व्यूह रचना की कभी शिक्षा न पाई थी, तोपके चलने का कभी शब्द भी नहीं सुना था, शत्रुके सम्मुख खड़े होकर किस तरह युद्ध किया जाता है, किस प्रकार सेनाको चलाकर गोलागोली बरसाते हैं, जिसको ये बातें कुछ भी न मालूम थीं, वही शौकतजङ्ग आज रणकुशल

सेनापतियों की बात की उपेक्षा करके, स्वयं व्यूहरचना करके सेना-सञ्चालनमें प्रवृत्त हुआ।

मोहनलाल और सिराजुद्दौला दोनोंके दल दो ओरसे आकर मिल गये,जिससे सिराजुद्दौलाका पक्ष बहुत ही प्रबल हो गया। रण निपुण मोहनलालने शत्रु सेनाको सज्जित होनेका अवसर न देकर तोपें दागदीं। यद्यपि गोले उस उबरी हुई भूमिको पार करके जा नहीं सकते थे, उसी कीचड़ में पड़े रह जाते थे; परन्तु जो दो एक वहां से निकल कर शत्रुकी सेनामें पहुंच जाते थे, उन्हीं के मारे शौकतजङ्गकी सेनाका विनाश होने लगा। मोहनलाल भी कोई बाधा न पाकर उस सङ्कीर्ण पथ पर होकर चलने लगे।

शौकतजङ्ग रणस्थलमें उपस्थित था और देख रहा था, कि शत्रुसेना धीरे धीरे अग्रसर हो रही है और विपक्षियोंके गोलोंके आघातसे बहुत सी सेना हताहत हो रही है; परन्तु वह उसकी रक्षाका कोई उपाय ही नहीं कर रहा था,शत्रुकी गतिको रोकने की भी कोई चेष्टा नहीं कर रहा था। उस समय एक अफगान सेनानायक उसके सामने आकर हाथ जोड़ कर बोला, "बादशाह ! यह कैसा युद्ध है ? शत्रु-दल धीरे धीरे आगे बढ रहा है, कोई उसके रोकने की चेष्टा नहीं करता है, सभी निश्चेष्ट भावसे खड़े हैं। मैंने बहुत युद्ध देखे हैं, बहुत युद्धोंमें लड़ा हूं, परन्तु ऐसी युद्ध-पद्धति कहीं नहीं देखी। सभी सेना स्वेच्छाधीन हो रही है। जिसके मनमें

जो आता है, वह वही करता है। शत्रु तो सामने पहुँच गया है, परन्तु हमारा एक भी मनुष्य युद्धमें प्रवृत्त नहीं है। मालूम होता है, कि सभी लोग बिना युद्ध किये आहत और बन्दी होंगे। यदि जहांपनाह को युद्ध करना अभीष्ट हो, तो सेना को इकट्ठी करके युद्धमें प्रवृत्त हूजिये, तोपें चलाने की आज्ञा दीजिये, पैदल सेनाको आगे बढ़ा दीजिये। वृथा समय नष्ट करके, शत्रु-दलको अग्रसर न होने दीजिये। यह देखिये, विपक्षी सेना सङ्कीर्ण पथमें प्रवेश करनेको अग्रसर हो रही है।"

हिताहित विवेचनाशून्य, अनिभिज्ञ शौकतजङ्गने देखकर भी नहीं देखा। सिखाने पर भी नहीं सीखा। मदगर्वमें अन्धे शौकतजङ्गने तीव्र स्वरसे कहा, "जाओ जाओ, बहुत बक चुके। तुमको रणशिक्षा देने की आवश्यकता नहीं है। तुम युद्धके विषयमें क्या जानते हो? मैंने जो कौशल अवलम्बन किया है, उससे सिराजुद्दौलाको क्या मजाल है, कि युद्धमें जय लाभ कर सके। यदि तुमको अपने प्राणोंका भय हो तो भाग जाओ, नहीं तो स्थिर भावसे यहां खड़े खड़े देखते रहो, कि युद्धमें कौन जयलाभ करता है?" यह सुन कर अफ़ग़ान सेनापतिने और कोई बात नहीं कही, चुपचाप वहाँ से चल दिया।

इधर मोहनलाल विपुल विक्रम और प्रबल उत्साहसे धीरे धीरे अग्रसर होने लगे। उस समय श्यामसुन्दर नामक एक हिन्दू सेनानायक चुप न रह सका और शौकतजङ्ग को किसी

अनुमति की राह न देखकर, मोहनलाल को गतिरोध करने के लिये अवसर हुआ और सामनेके पैदलों को पीछे करके तोप लेकर सिंह विक्रमसे युद्ध आरम्भ किया ।

दोनों पक्षमें तुमुल संग्राम होने लगा। तोपोंके शब्द सुनाई देने लगे। श्यामसुन्दरको तोपोंके धुएँ में चारों ओर अन्धकार छागया । लगातार गोले चलनेके कारण मोहनलाल और आगे न बढ़ सके, घाड़ोंकी बागें वहींपर रोक लीं और बड़ी सतर्कतासे श्यामसुन्दरके उन विघ्नकारी गोलोंसे अपनी सेनाको बचाने का उद्योग करने लगे ।

श्यामसुन्दरकी अद्भुत रणपटुता देखकर, शत्रु मित्र सभी विस्मित और स्तम्भित हो गये। शौकतजङ्ग उत्साहित हो उठा। उसने परिणाम न सोचकर, अश्वारोही सेनाको उस गयकी भूमि पार करके पीछेसे सिराजुद्दौलापर आक्रमण करने का आदेश दिया। अश्वारोहियोंने इस प्रस्तावको स्वीकार न करके कहा, "वहां पर कीचड़ बहुत है। घोड़े उसपर होकर नहीं निकल सकेंगे, कीचड़में फँस जायँगे, फिर उसमें से निकल नहीं सकेंगे, लाभके बदले शत्रुके गोलोंसे सभी विनाश को प्राप्त होंगे।"

यह हित-वाक्य निर्बोध शौकतजङ्गके कानों में नहीं पहुँचे। उसने क्रोधसे अधीर होकर कहा "तुमलोग नितान्त भीरु और कापुरुष हो, इसी लिये समरके वास्ते आगे नहीं बढ़ते हो। धिक्कार है तुम्हारे वीरत्व को। तुमने अस्त्र क्यों धारण

किये हैं? श्यामसुन्दर सामान्य कर्मचारी होने पर भी लड़ाई में जैसा वीरत्व और साहस दिखला रहा है, जिस भावसे शत्रु-सेना पर गोले बरसा रहा है, इसको देखकर भी क्या तुम लोगोंको उत्साह नहीं होता है? धन्य है वीर श्यामसुन्दर!"

इस अनुचित तिरस्कारको अश्वारोही सह न सके। अभिमान और अपमानके कारण, जीवन की ममता छोड़कर, एक दमसे उस दलदलके ऊपरको चल दिये।

हिताहित-ज्ञानशून्य शौकतजङ्गने समझा, कि अब शत्रु-दल अवश्यही निर्मूल हो जायगा। युद्धमें निश्चयही हमारी जीत होगी। श्यामसुन्दर कैसे अमित विक्रमसे युद्ध कर रहा है। उसके गोला-वर्षणसे शत्रु-सेना स्तम्भित होगई है, एक पग भी आगे बढ़नेका साहस नहीं करती है। अब अश्वारोही सेना शत्रुके पीछे से आक्रमण करनेके उद्देश्यसे दलदलके ऊपरसे प्रचण्ड वेगसे जा रही है, वहां पहुँच कर यह अश्वारोही सेना अवश्यही शत्रु-सेनाका विध्वंस कर देगी। मेरी इस अमित तेजवाली अश्वारोही सेनासे शत्रु कितनी देर तक लड़ सकते हैं? विजय अवश्य मेरी ही होगी। अब मेरे रणस्थलमें और खड़े रहने की क्या आवश्यकता है? अब मैं शिविर में जाकर विश्राम करता हूँ।

शौकतजङ्ग मन ही मन ऐसी कल्पना करता हुआ, आशाके धोखेमें मुग्ध होकर, उत्फुल्लचित्त से रणस्थल से चल दिया और पटमण्डपमें प्रवेश करते ही आज्ञा दी कि, "नाच रङ्ग होने

दो, मुझको थोड़ी सी शराब दो।" नाचरङ्ग होने लगा, शराब उड़ने लगी। पटमण्डपके बाहर रणक्षेत्रमें तोपें चल रही हैं, भयङ्कर युद्ध हो रहा है, इसकी कुछ भी सुध न रही।

शौकतजङ्ग अपरिमित सुरापानमें उन्मत्त था। उसके ऊपर मधुर गाना वाराङ्गनाओंका मोह जाल, इन सब बातोंने उसको एकदम अचेत कर दिया। पटमण्डपके भीतर गीत वाद्य मद्य अविराम चलने लगा। आनन्द की सीमा न रही।

इधर पटमण्डपके बाहर, अश्वारोही कुछ दूर तक उस दल दल पर चलकर आगे उसमें फँसने लगे और आगे न चल सके। दलदलमें आधी दूर तक जाकर ही रुक गये। उधर जानेकी अथवा वापिस लौटने की आशा न रही। हाइ उसीमें फँसकर रह गये।

सिराजुद्दौला की सेनाने यह सुयोग पाकर, गति शक्तिहीन अश्वारोहियोंके ऊपर गोले बरसाना आरम्भ किया। वह बचारे क्या करते, निरुपाय होकर, दलदलमें शत्रुके गोलोंके आघात से पञ्चत्वको प्राप्त होने लगे।

इधर श्यामसुन्दर अविश्रान्त युद्ध करते करते क्रमसे थक चला। उसका गोलावर्षण भी शिथिल होने लगा। उस समय रण विशारद मोहनलालने, अवसर समझ कर, उस सकीर्ण पथ पर धीर धीर अग्रसर होना आरम्भ किया और सावन की झड़ी की तरह श्यामसुन्दरके ऊपर लगातार गोला वर्षण आरम्भ कर दिया।

श्यामसुन्दर थककर बिलकुल ही अवसन्न होगया था; तो भी उसने गोला चलाना बन्द नहीं किया। सहसा शत्रु-पक्षका एक गोला आकर उसके ऊपर पड़ा; जिससे वह आत्म रक्षा न कर सका और उसके आघात से उसने प्राण त्याग दिये। सेना भीत और निरुत्साहित होगई। नाविकहीन नौका की तरह, सारथीहीन रथकी तरह, वह सेना कुछ भी स्थिर न कर सकी और रणक्षेत्र छोड़ देनेका उपक्रम करने लगी।

अश्वारोही सभी पञ्चत्वको प्राप्त होगये। श्यामसुन्दरने भी प्राण त्याग दिये। सेना भी भागनेका उद्योग करने लगी। उस समय और सेनापति निश्चेष्ट न रह सके। वह लोग सेना इकट्ठी करनेके लिये प्राणपणसे चेष्टा करने लगे। परन्तु छत्रभङ्ग सेना कभी इकट्ठी हुई है? शेषमें, सारे सेनापति यह सोचकर कि यदि शौकतजङ्ग रणक्षेत्र में उपस्थित हो, तो सेनाका एकत्रित होना सम्भव है, उसके पट-मण्डपमें गये। परन्तु शिविरमें प्रवेश करने पर ज्ञात हुआ, कि शौकतजङ्ग सुरापान किये हुए बाह्यज्ञान शून्य हो रहा है, आँखें बन्द है, हाथ पैर ढीले पड़े हुए है, बैठने की शक्ति नहीं है, चलने की इच्छा करने से गिर पड़ता है, पगड़ी गिर गई है, तलवार अपने स्थानसे च्युत हो रही है, बुलाने पर कोई उत्तर नहीं मिलता है।

नाचगान उस समय भी बन्द नहीं है। यह हालत देख

कर भी सेनापति चुप नहीं रहे। उन लोगोंने दाखानू होकर हाथ जोड़कर कहा, "बादशाह सर्व्वनाश उपस्थित है। शत्रु सेनाके हाथसे अश्वारोही सेना सब मारी गई, श्यामसुन्दर भी इस लोकमें नहीं है। सभी सेना पलायनोद्यत है, विपक्षदल निकटवर्त्ती हो रहा है। हम लोगोंके बहुत कुछ चेष्टा करने पर भी, तितर बितर सेना इकट्ठी न हो सकी। ऐसी आशा है कि यदि आप इस समय रणस्थलमें चलें, तो फिरसे सेना इकट्ठी होकर फिर युद्धमें प्रवृत्त हो जाय। जहांपनाह! शीघ्र उठिये, विलम्ब करनेसे सभी नष्ट हुआ जाता है।"

सेनापतियोंका कहना जङ्गलका रोना हो गया। शौकतजङ्ग ने किसी बातका उत्तर नहीं दिया, आंखें खोलकर देखा भी नहीं, आंखें मलकर बंधे हुए गलेसे कहा, 'गाओ गाओ सर्व्वनाश बोओ, जोरसे गाओ। राज्यधन सब जाने दो, गाना बजाना मत छोड़ो।"

सेनापति बड़ी विषम विपदमें पड़ गये। क्या यत्न करें, कुछ भी स्थिर न कर सके। इधर शत्रुदल धीरे धीरे आगे बढ़ रहा था। वह लोग जितने ही आगे बढ़ते थे, उतने ही उनके गोले गोलियोंसे, इधरवाले धराशायी होते जाते थे। युद्ध नहीं होता था, वरन् नर हत्या हो रही थी।

सेनापतियोंने आपसमें सलाह की, कि यद्यपि शौकतजङ्ग सुरापानमें उन्मत्त है, तथापि यदि उसको किसी प्रकार रणक्षेत्र में ला सकें, तो उसको देखकर सम्भव है कि भागती हुई सेना

रुक जाय और पुनः उत्साहित होकर युद्धमें प्रवृत्त हो जाय इस प्रकार स्थिर करके, उन लोगोंने शीघ्रतासे शौकतजङ्गको उठाकर एक हाथीके ऊपर बिठा दिया और उस हाथीको रणक्षेत्रमें ले चले।

परन्तु सेनानायकोंकी वह चेष्टा निष्फल हुई। सेना उस हाथीकी पीठ पर लेटे हुए बाह्यज्ञानशून्य शौकतजङ्गको देख कर अवसन्न हो गई। जो थोड़ी बहुत सेना अब तक युद्ध कर रही थी उसने भी पलायनकी तय्यारी कर दी। शत्रु प्रचण्ड वेगसे आगे बढ़ रहा था। उसको बाधा देनेवाला कोई नहीं था। जो थोड़ी सी सेना अभी तक जीवित थी, वह भी एक एक करके पीछे हट रही थी और भागनेको तय्यार थी।

सेनापतियोंने शौकतजङ्गको होशमें लानेकी बहुत चेष्टा की। कातर स्वरसे बारम्बार विनय करने लगे कि, "जहाँपनाह! शत्रुके हाथमें सब जाता है, एक बार आँखें खोलकर देखिये, एक बार सेनाको अपने श्रीमुखसे बुलाइये। देखिये, सब लोग आपके मुँहकी ओर देख रहे हैं। आपके मुँहका एक शब्द सुनते ही सब तितर-बितर सेना इकट्ठी होकर लड़ाई लड़ेगी।"

सेनापतियोंकी यह चेष्टा भी वृथा हुई। सुरा पिये हुए, उन्मत्त, बाह्यज्ञानरहित शौकतजङ्गने आँख खोल कर भी न देखा, न कुछ बात ही कही।

सहसा एक गोली शत्रुपक्षसे आकर शौकतजङ्गके ललाटमें

लगी। उसीके साथ राज्यको आशा, नवाबीकी लालसा, सदैवके लिये जाती रही। हतभाग्यके प्राण निकल गये। विलासप्रिय राजदेह हाथीकी पीठसे पृथ्वी पर गिर पड़ी।

शौकतजङ्गको मरा हुआ देखकर, एकबारगी सेनाने लड़ना छोड़कर, जिधर राह पाई उधरसे भागना आरम्भ किया। परन्तु कोई भाग न सका। बहुतोंने तो सिराजुद्दौलाके गोले गोलियोंसे प्राण त्याग किये और शेष बन्दी हो गये।

सिराजुद्दौलाकी जय हुई। पुर्निया-प्रदेश उसके अधिकारमें आ गया।

सिराजुद्दौला जिस समय बड़े उत्साहसे मुर्शिदाबादको लौटा; उस समय राजा, महाराजा, उमराव सभीने मिलकर जगत्सेठ महताबचन्दको कारागारसे मुक्त करनेकी प्रार्थना की। उसने भी उस हर्षके समयमें सेठजी को छोड़ दिया।

अठारहवाँ परिच्छेद।

ॐ

अँगरेज़ों के भाग्य के दिन अभी फिरे न थे। एक दिन एक गोरा सिपाही कलकत्ते के बाज़ारमें जा रहा था; दूसरी ओर से एक मुसल्मान फ़क़ीर आ रहा था। फ़क़ीरने गोरे को देखते ही पृथ्वी पर थूक दिया। गोरेको उसका यह व्यवहार अच्छा न मालूम हुआ। उसने फ़क़ीर से पूछा कि आपने किस मतलब से थूका। इसके उत्तर में फ़क़ीरने बड़ी निर्भयता से कहा,"तुम लोग शराब पीनेवाले हो। तुम्हारा मुख देखना भी हम लोगोंके लिये पाप है।" यह बात फ़क़ीरने इस कारण कही, कि वह जानता था कि सिराजुद्दौला अभी अँगरेज़ों से रुष्ट है।

गोरा—शराब पीना कोई बुराई नहीं है। तुम्हारा नवाब भी तो शराब पीता है। फिर तुम शराब पीनेवाले को क्यों बुरा कहते हो?

फ़क़ीर—तोबा। तोबा। मैं तुम से कुछ बात नहीं करना चाहता। यदि तुम बहुत बकवाद करोगे,तो तुम्हारा अभियोग नवाब के पास लेजाऊँगा। सोच देखो कि मेरा अभियोग

पहुँचते पहुँचते तुम्हारी क्या दशा होसकती है, तुम शीघ्र ही हाथी के पैर के नीचे होगे।

इतना सुनना था, कि गोरे को क्रोध आगया और उसने उसी क्रोधमें फकीरके मुख पर एक घूँसा मार दिया, जिसके कारण वह बुड्ढा फ़कीर अचेत होकर गिर गया।

फ़कीरका राह पर गिरना था, कि महा कोलाहल मच गया। सिराजुद्दौला के पास भी यह समाचार पहुँचा, कि एक गोरे ने एक शाह साहबके ऊपर महा अन्याय किया है—राह चलते एक बुड्ढे शाहको बड़ा भारी आघात पहुँचाया है। बहुत से फ़कीरों ने नवाब-दरबार में पहुँच कर निवेदन किया, कि अँगरेज़ लोग बड़ा अत्याचार कर रहे हैं; हर किसी के धर्ममें आघात पहुँचा रहे हैं, यहाँ तक कि लोगोंके प्राण लेने में भी कुण्ठित नहीं हैं।

स्वजाति पर और विशेष कर फ़कीरों के ऊपर ऐसा घोर अत्याचार सुनकर, सिराजुद्दौला कब चुप रह सकता था? उस के क्रोध की सीमा न रही। उसने कलकत्ते के शासनकर्त्ता राजा मानिकचन्द से कहला भेजा, कि अँगरेज़ों को शीघ्र ही कलकत्तेसे निकाल दो। अब मैं अधिक सहन नहीं कर सकता हूँ। अँगरेज लोग बड़े अत्याचारी होगये हैं।

मानिकचन्द तो पहिले ही से अँगरेज़ोंसे रुष्ट हो रहा था। यह सुयोग उसके हाथ लग गया। वह सदैव ही सोचा करता था, कि किस प्रकार इन लोगोंका वाणिज्य व्यवसाय बन्द करूँ

और किस तरह इनको देश से निकालूँ, परन्तु कोई अवसर हाथ न आता था। यह मौका उसे बहुत अच्छा मिल गया। कुछ सोच विचार न करके उसने एकबारगी हुक्म देदिया कि अँगरेज़ मात्र को, और यहां तक कि जो अँगरेज़ी कपड़े भी पहने हों उनको भी, एक पहर में कलकत्ते से निकाल दिया जाय।

अँगरेज़ लोग क्या करते, अपना अपना व्यवसाय-वाणिज्य छोड़ कर जहाज़ों पर जा चढ़े और जहाज़ोंको फल्ताब न्दरको ओर लेगये। कलकत्ता अँगरेज़ शून्य हो गया। इस प्रकार धूर्त मानिकचन्द ने अपनी शासन क्षमता दिखलाई।

उन्नीसवाँ परिच्छेद।

अँगरेज लोग फल्ता बन्दर में आकर रहने होगये। व्यवसाय के बन्द होने से उनको बहुत क्लेश होने लगा। जिस वाणिज्य के लोभसे, जन्मभूमि की ममता छोड़कर, इतनी दूर आये थे वही सब समूल नष्ट होगया।

अब यदि कोई भरोसा था, तो वह मदरासका था। वहाँ से सेना लाकर कलकत्ते का पुनरुद्धार होसकता है, वहाँ से यदि कोई सुयोग्य व्यक्ति आकर किसी प्रकार नवाब सिराजुद्दौलाको लुट कर सके तो फिर वाणिज्य अधिकार मिल सकता है। परन्तु यह आशा दुराशा मात्र है। मदरासको सम्वाद भेजा गया, दिन पर दिन बीतनेलगे, लेकिन न तो सेना ही आई और न कुछ सम्वाद ही आया। राह देखते देखते सब लोग एक प्रकार से निराश होगये।

फल्ता में आकर इन लोगों की दुर्दशा की सीमा न रही। एक तो वर्षा काल, तिसके ऊपर आश्रय के लिये पूरा पूरा स्थान नहीं। ऐसा कोई घर नहीं कि जहाज से उतरकर वहाँ बैठे, दिनरात जहाज पर ही रहना बड़ा कष्टकर होगया। तिस

के ऊपर खाने पीने की वस्तुओं की कमी, पास में कोई बाज़ार भी नहीं, कि जहां से खाने पीने का सामान मोल लेसकें और उससे अपने जीवन की रक्षा कर सकें।

किन्तु इन सब कष्टों की जड़ एक मात्र राजा मानिकचन्द ही थे। *मानिकचन्द के आदेश से कोई भी दूकानदार अपनी* दूकान फ़ल्ता में न लेजा सकता था। इच्छा होनेपर भी, कोई भय के मारे उनकी सहायता न कर सकता था।

इस दुरवस्था में पड़कर भी अँगरेज़ लोग अपने कर्त्तव्य को न भूले। मदरास में जो कर्मचारी थे, उनको सम्बाद देने के लिये मैनिंहाम साहब को मदरास भेजा।

मदरास के कर्मचारियों को १५ जुलाई को खबर लगी थी, *कि क़ासिम बाज़ार की कोठी अवरोध की गई है। उन्होंने* समझ लिया, कि बीच-बीच में सिराजुद्दौला से ऐसे ही झगड़े हो जाया करते हैं; परन्तु उन लोगों को विश्वास था कि कुछ भेंट दे देने से सब झगड़े शेष हो जाया करते हैं। सुतराँ, वह लोग कुछ विशेष विचलित नहीं हुए और कलकत्ते की रक्षा के लिये कौनसा बन्दोबस्त आवश्यक है, इसका भी कोई विचार नहीं किया। व्यवसाय-वाणिज्य करने में ऐसे झगड़े हो ही *जाया करते हैं, मिट भी शीघ्र ही जाते हैं। यही* समझ कर, मदरास वालों ने कुछ विशेष चिन्ता न करके, केवल २३० मनुष्य मेजर किलपैट्रिक की अध्यक्षता में कलकत्ते के क़िले की रक्षा के लिये भेज दिये।

बीसवाँ परिच्छेद।

सिराजुद्दौला दिल्लीके बादशाहको उनका भाग राज-कर देनेमें बहुत दिनोंसे टालमटोल कर रहा था। बादशाह उससे बहुत असन्तुष्ट हुए और अपने मन्त्रिवर्गसे परामर्श करके शहजादेको बङ्गाल, विहार और उड़ीसाका सूबेदार नियुक्त किया। उद्देश्य यही था, कि सिराजुद्दौला सिंहासनच्युत किया जाय और शहजादेके नामसे शौकतजङ्गको राज्यशासन का भार दिया जाय। शहजादा इस अभिप्रायसे बादशाहकी विपुल वाहिनी लेकर पुर्नियामें शौकतजङ्ग से मिलने के लिये चल दिया, किन्तु उसके आनेसे पहिले ही शौकतजङ्ग का जीवन शेष हो चुका था।

शौकतजङ्गकी ललाट-लिपि पूर्ण हो चुकी थी, परन्तु पुर्नियाके विद्रोहानलके कारण सिराजुद्दौला को अँगरेजोंके कोई समाचार नहीं मिले थे। इस अवसर पर, अँगरेजोंने देशके गण्यमान्य लोगोंसे घनिष्टता बढ़ा ली थी।

रोग शेष होने पर कोई औषधि नहीं खाता है, दुःखके

न रहने पर कोई किसी की कृपा की आकांक्षा नहीं रखता है, इसी प्रकार सिराजुद्दौला को भी अँगरेज़ोंसे अब कुछ और चाहना नहीं थी। इधर अँगरेज़ोंके दुःखका भी अन्त आगया था, इसी कारण उनके पक्ष में सुलक्षणोंका आभास दिखाई देने लगा!

लक्षण ऐसे बदलने लगे, कि मानिकचन्दने भी फल्ता बन्दर में बाजार लगाने की आज्ञा देदी और अँगरेज़ों को अपनी इच्छानुसार खाने पीने को मिलने लगा।

और कहने सुनने पर उमाचरणने भी फिर से वाणिज्य-अधिकार दिला देनेका वचन दिया। इधर मदरासमें भी सभामें स्थिर हुआ, कि वाणिज्यके लिये कलकत्तेसे अधिक उपयोगी और कोई स्थान नहीं है। उसको नहीं छोड़ना चाहिये। यद्यपि सैन्य-बल कम है और फ़रासोसियोंसे भी युद्ध अवश्य ही होगा, परन्तु सबसे पहिले सिराजुद्दौलाके हाथसे कलकत्तेका उद्धार अवश्य करना होगा।

जब यही निश्चय हुआ, तो इस बातकी आलोचना आरम्भ हुई कि सेनापति कौन बनाया जावे? सब लोग अपना अपना मत प्रकाश करने लगे। एकने कहा,—"मेरी समझमें पदगौरव में गवर्नर पिगट साहब ही सब से श्रेष्ठ हैं। इनको ही सेना-पति बनाया जाय।"

इस प्रस्ताव पर और सभ्य सम्मत नहीं हुए। उन्होंने कहा, "इसमें सन्देह नहीं है कि पद-गौरवमें वह सबके शीर्षस्थान

पर हैं, परन्तु युद्धके विषयमें उनकी वैसी अभिज्ञता नहीं है। उनको सेनापति बनानेसे कुछ लाभ न होगा।"

"तो इस पदके उपयुक्त कौन है?"

इसके उत्तरमें एक सभ्यने कहा, "क्यों, कर्नल एण्डर आदन को सेनापति क्यों नहीं बनाते हो?"

इस प्रस्तावपर भी कोई सम्मत नहीं हुआ। सभ्योंने कहा, "बङ्गाल देशके युद्धके विषयमें वह बिल्कुल ही अनजान हैं।" इसी प्रकार बहुत देर तक सम्मति प्रकाशित होती रही। एकने कहा,लारेन्सको सेनापति बनाना चाहिये। उसके उत्तर में दूसरेने कहा कि वह अवश्य उपयुक्त सेनापति हैं, परन्तु उनको दमको बीमारी है, बङ्गालकी जलवायु वह सहन नहीं कर सकेंगे।

एक एक करके तीन आदमियोंके नाम लिये गये, परन्तु कोई भी मनोनीत न हुआ। सभ्यगण विषम समस्यामें पड़ गये। तो क्या कलकत्तेका उद्धार-साधन ही न होगा? क्या अंगरेज-जातिमें कोई भी उपयुक्त सेनापति नहीं है?

सहसा, कर्नल क्लाइवकी याद आई। एक सभ्यने सेनापतिका पद उनको देनेका प्रस्ताव किया और कर्नल लारेन्स ने उसका समर्थन किया। उन्होंने कहा, "हाँ, क्लाइव बङ्गाल उद्धार करनेके लिये उपयुक्त सेनापति है। वह साहसी है। उसमें बल-विक्रम भी है, अभिज्ञता भी है। वह सरकारके

अत्याचारी नवाब सिराजुद्दौला को परास्त करके, भारत में
अंगरेजी राज्य की बुनियाद डालनेवाले वीरवर
लार्ड क्लाइव।

NARS NGH PRESS CALCUTTA

युद्धमें विजयी हुआ है, और निश्चय है कि बङ्गाल देशका भी उद्धार कर सकेगा।"

इस बार किसीने कुछ आपत्ति न की। सभी एक साथ बोले, "बङ्गाल देशके उद्धारके उपयुक्त वही है। सिराजुद्दौलाके हाथसे यदि कोई बङ्गाल देशका उद्धार कर सकता है, तो वह क्लाइव ही है। कर्नल क्लाइव उपयुक्त पात्र है, इसीको सेनापतिका पद प्रदान करना चाहिये।"

कर्नल क्लाइव सबकी सम्मतिसे सेनापति बनाये गये। मानों पूर्व आकाशमें सौभाग्यसूर्य्यकी प्रथम किरण प्रकाशित हुई।

सेनापतित्व पाकर कर्नल क्लाइवने धीरे धीरे कहा, "आपका आदेश मैं शिरोधार्य करता हूँ; परन्तु सामरिक व्यापारमें मुझको पूर्ण स्वाधीनता देनी चाहिये। यदि इस प्रस्तावमें आप लोग अपनी सम्मति प्रदान करें, तो मैं इस भारी बोझको उठा सकता हूँ; नहीं तो इतनी थोड़ी सेना लेकर विपक्षियोंके सम्मुखवर्त्ती होना नितान्त असम्भव है।"

यह सुनकर मिस्टर मैनिङ्हाम बोले, "एकबारगी सम्पूर्ण स्वाधीनता नहीं दी जा सकती है। सेनापतिको कलकत्तेके गवर्नर और कौन्सिलके आधीन होकर चलना होगा, नहीं तो क्या जाने किस समय राज्य अथवा अर्थके प्रलोभनमें आकर सेनापति नवाबसे मिल जाय।"

मिस्टर मैनिङ्हामकी बात युक्तिसंगत होनेपर भी उस

समयके दरबारमें न टिक सकी। सब लोग प्रतिहिंसाकी आग-से ऐसे जल रहे थे, कि यह बात किसी के हृदयमें न समाई और सब सभ्यगण एक साथ बोल उठे, 'सामरिक व्यापारमें क्लाइव सम्पूर्ण रूपसे स्वाधीनतापूर्वक काम करेंगे।"

सब स्थिर हो गया। जल और थल दोनों ही स्थानोंपर एक ही समय युद्ध होनेपर अकेला क्लाइव किस प्रकार रक्षा करेगा, इसके लिये उन लोगोंने इङ्गलेण्डश्वरके नौ सेनापति एडमिरल वाट्सनको क्लाइवकी सहायताके लिये नियुक्त किया। क्लाइव स्थलयुद्धमें अधिनायक हुए, और जलयुद्धका भार वाट्सन साहबको अर्पण किया गया। क्लाइव और वाट्सनका ऐसा मेल हुआ, मानों मणि और काञ्चन मिल गये।

युद्धयात्राका आयोजन होने लगा। नौ सौ गोरे सोलजर और पन्द्रह सौ देशी सिपाही, सब मिला कर केवल २४०० सिपाहियोंकी सेना इकट्ठी हुई और केण्ट, केम्बरलैण्ड, टाइगर, सेलसबरी और ब्रिजवाटर नामके पांच जहाजों पर गोला-गोली बारूद और रसदका सामान इकट्ठा किया गया। २६४ तोपें इन पांच जहाजोंपर रक्खी गई।

युद्ध यात्राका सब सामान ठीक हो गया। परन्तु इसी समय एक दुःखदायी घटना हुई। अर्थात् कर्नल एल्डर क्राउनको जब सेनापतित्व नहीं मिला, तो वह मन ही मन बड़ा रुष्ट और ईर्षान्वित हुआ। इङ्गलेण्डेश्वरकी जितनी सेना गोला-गोली बारूद इत्यादि जो उसके आधीन थी, और

जहाजके ऊपर चढ़ाई गई थी, उस सबको अवसर पाकर ईर्षावश उसने जहाजसे उतार लिया। द्वेषभाव तो सभी जातियोंमें थोड़ा बहुत होता है।

प्राय दो सौ सैनिक और उसके उपयोगी गोला-गोली-बारूद और रसद इत्यादि कम हो गई। एक तो पहिले ही से थाड़ी सेना थी, युद्धका ऐसा सामान्य सरञ्जाम, तिसपर सिराजुद्दौला सरीखे उद्दण्ड नवाबसे युद्ध करना, जिसकी इच्छामात्रसे लाखों सेना एकत्र हो सकती थी,—उसके साथ यह मुट्ठीभर सेना लेकर युद्ध करने जाना, वातुल अथवा बालकके अतिरिक्त और कौन कर सकता था? परन्तु निर्भीक क्लाइव इससे कुछ भी भीत अथवा विचलित न हुआ। वह साहसके साथ हृदय कड़ा करके, धीरोत्साहसे उत्साहित होकर, भविष्यके गौरवकी आशासे, उस अल्प सेनाको लेकर युद्ध-यात्राके लिये तय्यार हुआ।

सन् १७५६ ईस्वी की १६वीं अक्टूबरको महावीर क्लाइव और एडमिरल वाटसन अन्यान्य सहकारियोंके साथ जहाज़पर चढ़े। विदा होनेकी महा धूम पड़ गई। मदरासके समुद्रके किनारे पर, अँगरेज नरनारी जो जो थे सबने इकट्ठे होकर उन लोगोंको विदा किया। जहाज़ छूट गये। जब तक दिखाई देते रहे, जहाँ तक दृष्टिने काम किया, सभी उस स्थानपर खड़े होकर, उनके उत्साहकी वृद्धि करते रहे।

इक्कीसवाँ परिच्छेद।

महावीर क्लाइवने भविष्य उन्नति और उसकी आशासे यह मुट्ठीभर सेना और सामान युद्धका सामान लेकर मदरासके उपकूलको छोड़ दिया। उनके जहाजी जहाज समुद्र वक्षको विदारित करते हुए, निशान भण्डे उड़ाते हुए, पाल फैलाये हिलते डोलते, कलकत्तेकी ओर को चले।

एक एक करके पाँचों जहाजोंने जब किनारा छोड़ दिया। तो पवनदेवने क्लाइवके विरुद्धाचरण करना आरम्भ किया। हवा प्रबल वेगसे चल निकली। उसने सारे समुद्रको उथल पथल कर दिया। जहाज उस हवाके मारे इधर उधर मारे मारे फिरने लगे। नाविक और कर्नल इत्यादिकोंको बहुत चेष्टा करने पर भी वह स्थिर न हो सके और धीरे धीरे सभी एक दूसरेसे अलग हो गये। सब भयभीत हो गये और जीवन की आशा छोड़ बैठे। परन्तु निर्भीक हृदय क्लाइव अचल और अटल रहकर सबको आश्वासन देकर उत्साहित करने लगे।

सहसा यह उत्पात क्यों उठ खड़ा हुआ? सम्भव है कि

पवनदेवने क्लाइवकी परीक्षा करनेके लिये ही यह उपाय रचा हो। इस मुट्ठीभर सेनाको लेकर किस प्रकार वीर क्लाइव उस दुर्द्धर्ष विपुल नवाब-सेनासे लड़ेंगे; किस प्रकार वे समर-सागरको पार करेंगे; -शत्रुसेना और विपदको सामने देख-कर धीरजके साथ इस विपदसे उत्तीर्ण हो सकेंगे कि नहीं, इन्हीं सब बातोंको परीक्षा करनेके हेतु, मालूम होता है, पवनदेवने ऐसा किया था। परन्तु जब उसने देखा कि महावीर क्लाइव उसकी परीक्षामें उत्तीर्ण हुए, तो क्लाइवको दिग्विजयी समझकर धीरे धीरे अपनी सौम्यमूर्त्ति प्रकाश की। जो भाग्यशाली है, विधाता जिसके ऊपर दयावान है, सामान्य कारणोंसे क्या वह कभी विचलित हो सकता है?

अनेक बाधाविघ्न और विपत्तियोंको तुच्छ समझ कर, महावीर क्लाइव बालेश्वर बन्दर पर उतरे। वहाँ पहुँच कर देखा कि, पाँच जहाज़ोंमें से केवल इन्हींका जहाज़ पहुँचा है। यह देख कर वीरवर क्लाइव कुछ विचलित हुए, और अपार चिन्तामें मग्न होकर जहाज़के ऊपर टहलने लगे। इसी समय, बहुत दूरपर, एक जहाज़का मस्तूल थोड़ा थोड़ा दिखाई पड़ा। देखते ही वीरवरका चित्त कुछ शान्त हो गया।

धीरे धीरे वह जहाज़ आगया। क्लाइवने देखा कि वह जहाज़ उनके प्रिय बन्धु एडमिरल वाट्सनका है। यह देख कर क्लाइव बड़े ही आनन्दित हुए। हृदय आशा और उत्साहसे पूर्ण हो गया। वाट्सनके आ जानेपर और जहाज़ों-

की राह न देखकर, दोनों वीर फल्ता बन्दरकी ओर को चल दिये। पन्द्रहवीं दिसम्बरको दोनों जहाज़ फल्तामें पहुँच गये।

देखते देखते चार दिन कट गये। २० वीं दिसम्बरको एक जहाज और आ गया, केवल नहीं आया तो केम्बरलेण्ड नहीं आया, जो सबसे बड़ा जङ्गी जहाज़ था। उसमें एडमिरल पोक और २५० गोरे सैनिक थे। और मार्लबरा नहीं आया, जिसमें गोलागोली बारूद और तोपें थीं।

इन दो विशेष प्रयोजनीय जहाज़ोंके न आनेसे क्लाइव कुछ बलहीन हो गये; परन्तु इससे वह कलकत्ता-उद्धारके लिये निरस्त नहीं रहे, युद्धकी तय्यारी करने लगे।

इससे पहिले किलपेट्रिक २३० सैनिकोंको लेकर फल्ता बन्दर में आकर शिविर स्थापन कर चुके थे, जिन में से प्रायः आधे अस्वास्थ्यकर जलवायुके कारण मर चुके थे, शेष आधे में से भी बहुत से बीमार और बेकाम हो रहे थे। पक्के बलवान और युद्धोपयोगी केवल ३० मनुष्य थे। क्लाइवको बड़ी आशा थी, कि इन लोगोंसे सहायता मिलेगी, परन्तु यह अवस्था देखकर उनकी आशा दुराशामात्र हो गई; परन्तु फिर भी वह विचलित नहीं हुए।

फ़ल्तामें पहुँच कर क्लाइव युद्धका आयोजन करने लगे। परन्तु कलकत्तेके अँगरेज़ सहसा युद्ध करना नहीं चाहते थे। उनकी आशा थी, कि उमाचरण नवाबके पास गये हैं, अवश्य

हो उनको वाणिज्य-अधिकार प्राप्त हो जायगा ; फिर युद्ध करने की क्या आवश्यकता है? परन्तु वास्तविक बातका उनको ज्ञान नहीं था, कि सिराजुद्दौला किसी प्रकार उनको वाणिज्य-व्यवसायका अधिकार न देगा। अस्तु, सभीने एक वाक्य होकर कहा, कि युद्ध न होना चाहिये, कुछ दिनके लिये शान्त रहना चाहिये।

परन्तु वीरवर क्लाइव सिराजुद्दौला को खूब जानते थे। इसलिये उन्होंने किसी की भी न सुनी और युद्ध की तय्यारी करने लगे। अधिक विलम्ब न करके, कलकत्ते की ओर को धावित हुए। राहमें बजबजका क़िला था। उस पर अधिकार न करलें, तब तक आगे नहीं बढ़ सकते थे। इसलिये क्लाइव २७ वीं दिसम्बर को, मायापुरके मैदानमें, सेना लेकर जहाज़से उतर आये और उसी स्थानसे युद्ध-यात्राका उद्योग करने लगे, कि जिससे बजबजके दुर्ग पर आक्रमण करें।

भागीरथीके किनारे पर बजबज दुर्ग था। दुर्ग बहुत छोटा और मिट्टी की चहारदीवारीसे घिरा हुआ था। मिट्टी की होने पर भी, चहारदीवारी दृढ़ बनी हुई थी। चहारदीवारीके बाहर एक खाई थी। शत्रु सहसा चहारदीवारीके नीचे न पहुँच जाय, इसलिये वह खाई सदैव पानीसे भरी रहती थी।

किस प्रकार बजबज-दुर्गपर आक्रमण करना होगा, कौन सी दिशासे आक्रमण करना होगा, क्लाइव और वाट्सन इसी

की मन्त्रणा करने लगे। स्थिर हुआ, कि क्लाइव स्थल पथसे और वाट्सन जल पथसे क़िलेपर आक्रमण करें, जिससे क़िलेमें से कोई भाग न सके। यदि भागना चाहे, तो उसको यम घर जाना पड़े।

यह स्थिर तो हो गया, परन्तु मायापुरसे बजबज प्रायः पाँच कोस दूर है, इतनी दूर स्थल पथसे क्लाइवके युद्धका सामान किस तरह पहुँचे? पथ भी अच्छा नहीं। ऐसी अवस्थामें, तोपें, गोले गोली, बारूद और रसद किस तरह साथ जावे? ऐसे सामानके ले जानेके लिये, घोड़े अथवा बैल चाहियें। क्लाइवने कलकत्तेके अँगरेज़ोंसे उन पशुओंके जमा करनेके लिये कहा, परन्तु वह लोग इसका कुछ बन्दोबस्त न कर सके।

परन्तु अध्यवसायशील क्लाइव इससे भी चान्त होनेवाले न थे। युद्धका सङ्कल्प वह त्याग न सके। अपनी ही सेना द्वारा उन पशुओंका बन्दोबस्त करा लिया। उद्योगी मनुष्यको क्या कभी कोई रोक सकता है?

केवल दो तोपें और एक गाड़ीमें गोला बारूद भरकर सेनाके साथ क्लाइव चल दिये। ये तोपें वन जङ्गलमें होकर बड़े कष्टसे बजबजके पास पहुँची। दारुण पथके कष्टसे सेना बहुत ही थक गई।

सेना बजबजके क़िलेमें बहुत थोड़ी थी, परन्तु विचक्षण क्लाइवने दो कारणोंसे क़िलेपर आक्रमण नहीं किया। एक

थी इस कारणसे, कि वाट्सन साहब अभी तक न आये थे। यदि उनके आनेसे पहले आक्रमण किया जाता, तो क़िलेके सिपाही जलकी राह भाग जाते, क्योंकि उधर बाधा देनेवाला कोई न था। दूसरी बात यह थी, कि पथके श्रमसे सब सेना थक गई थी। यदि उन लोगोंको विश्राम न देकर, युद्धमें प्रवृत्त कर देते, तो जैसा बल-विक्रम चाहिये था वैसा वे प्रकाश न कर सकते। इन्हीं दो कारणोंसे, क्लाइव युद्ध करनेसे निरस्त रहे और सेनाको विश्राम करनेको छोड़ दिया।

राहके थके हुए सिपाही नङ्गी भूमिपर बैठकर थकावट दूर करने लगे। सब लोग ऐसे थक गये, कि लेटते ही घोर निद्राके वशीभूत हो गये और ऐसे सो गये, कि कोई पहरा देनेवाला भी न रहा।

धूर्त्त मानिकचन्द सभी कामोंमें चतुरता किया करता था। उसमें दम्भ और वाक्चातुरी बहुत थी, साहस कुछ भी न था। यद्यपि अँगरेज़ लोग कलकत्तेसे निकाल दिये गये थे, परन्तु वह लोग शीघ्र ही किसी न किसी तरह कलकत्ता वापिस ले लेंगे, यह बात मानिकचन्द बहुत अच्छी तरह समझे हुए था। वह जानता था कि सिंह पराजित होकर कभी भागता नहीं है। आज हो या कल, एक न एक दिन, वह अपना बल-विक्रम अवश्य ही दिखलावेंगे।

जब उसने सुना, कि मदरासले कलकत्तेके उद्धार करनेके लिये सेना सहित अरकाट-विजयी क्लाइव आ रहे हैं, तो उसके

पेटमें पानी हो गया। परन्तु उसने एक कौशल किया। क्लाइवकी सेना सो रही थी। उस असहाय अवस्थामें, उस धूर्त्तने उस सेनापर गोलागोली बरसाना आरम्भ कर दिया। इस आकस्मिक घटनासे निद्रित सेना जाग पड़ी; किन्तु भीत, चकित, स्तम्भित और किंकर्त्तव्यविमूढ हो गई और दस बीस मनुष्य भी मारे गये।

सहसा शत्रु पचके आक्रमणसे सेनाको स्तम्भित और भयभीत होते देखकर, महावीर क्लाइवने रणोत्साहसे उत्साहित करनेके लिये कहा, "सैन्यगण! यही तुम्हारा प्रथम युद्ध है। तुम लोग यदि इस युद्धमें हारकर भागोगे, तो हिन्दुस्थानी सिपाही सदैव ही तुम्हारी हँसी किया करेंगे और कहेंगे कि अँगरेज़ सिपाही देखने के ही हैं, किसी कामके नहीं। तुम लोग वीर नाम ग्रहण करके, यह उपहास किस प्रकार सह सकोगे? यदि कापुरुष न कहलाना हो, तो अभी युद्धमें प्रवृत्त हो जाओ और अपना वीरत्व और रण-कौशल दिखलाओ। शत्रुको पीठ दिखलाकर, रणस्थलसे भागकर जीवन रक्षा करनेकी अपेक्षा, सामने समरमें जीवन विसर्जन करना निश्चय बड़े गौरवकी बात है। आओ, युद्धमें प्रवृत्त होओ, युद्ध करके वीरनामके गौरवको बढ़ाओ।

क्लाइवके ये ओजस्वी और उत्साहपूर्ण वाक्य सुनकर सेना होशमें आ गई। सभी रणोत्साहसे उत्साहित हो गये और अदम्य विक्रमसे शत्रुके साथ युद्ध करने लगे। दोनों

पक्ष शक्ति परीक्षा और रण कौशल का परिचय देने लगे।

अंगरेज़ी सेनाने विपुल विक्रमसे युद्ध आरम्भ किया। तोपें दगने लगीं। तोपोंके शब्दसे जल और थल कांपने लगे। पक्षी भयभीत होकर, विकट रव करते हुए, आकाशकी ओरको उड़ गये। वन्यजन्तु, भीषण आर्तनाद करते हुए, बजबजको छोड़कर भागने लगे।

मानिकचन्द तीन हज़ार अश्वारोही और दो हज़ार पैदल लेकर युद्ध करने आया था; परन्तु उसमें साहस, बल, वीरत्व अथवा रण-कौशल कुछ भी न था। विशेष करके उसकी इच्छा भी न थी, कि जयलाभ मुझको ही हो, वह तो केवल नवाबको दिखानेके लिये लड़ रहा था। सहसा, एक गोला उसकी पगड़ीके पाससे सन सन करता हुआ निकल गया। मानिकचन्द असीम साहसी तो थे ही, प्राणों-के भयसे रण छोड़कर अपना हाथी फिराकर भागे और ऐसे भागे कि बजबज ही क्या कलकत्ते तकमें न ठहरे। सीधे मुर्शिदाबाद पहुंचे।

उस धूर्त्तके भागते ही, सेना भी जिधर जिसका मुँह उठा भाग निकली। क्लाइवको और युद्ध न करना पड़ा। बिना युद्धके ही बजबजका क़िला हाथ आ गया। क़िलेके ऊपर अँगरेज़ी झण्डा उड़ाया गया। यहीं अँगरेज़ोंके सौभाग्यका प्रथम सूत्रपात हुआ। ३० दिसम्बर सन् १७५६,में क्लाइवने

बजबजके किलेपर अधिकार किया। बहुत उत्साहित होकर, जयपराजय होनेकी आशासे मुग्ध होकर, क्लाइव स्थल-पथसे और वाट्सन जल-पथसे कलकत्तेकी ओर धावित हुए।

राहमें ही टानाका किला था। इसपर भी वीरवर क्लाइवने बिना युद्धके ही अधिकार कर लिया और किलेके ऊपर सदैव के लिये अँगरेजोंकी विजय वैजयन्ती उड़ने लगी। सन १७५७ की पहली जनवरको, यह किला अँगरेजोंके अधिकार में आया।

वहां से फिर उसी प्रकार क्लाइव और वाट्सन कलकत्तेको चले। इस बार वाट्सनका जहाज क्लाइवसे पहले कलकत्तेके क़िलेके पास आकर ठहरा। ज्योंही किलेवालोंने देखा त्योंही उन्होंने जहाज़ के ऊपर गोले मारने आरम्भ कर दिये। उसी जहाज 'केण्ट' पर अविरल धारसे गोला वर्षन होने लगा। केण्टसे भी गोले चलने लगे।

देखते देखते महावीर क्लाइव भी पूर्व दिशासे आकर क़िलेके आक्रमणमें दत्तचित्त हुए। क्लाइवको पहलेसे मालूम हो गया था, कि कलकत्तेके किलेमें केवलमात्र डेढ़ हजार सिपाही हैं और भागीरथीकी ओरकी जो तोपें लगी हुई हैं, वह प्राय सभी वेकाम हैं। केवल २ ४ तोपें हीं काम-लायक हैं। चारों बुर्ज बेकार हैं। किलेके विषयमें ऐसी अभिज्ञता होनेके कारण,क्लाइवने विपुल विक्रमके साथ क़िलेपर आक्रमण किया और ऐसी वीरता दिखलाई कि किलेके भीतरके सिपाही

एकबारगी लड़ाई छोड़कर भागने लगी। युद्ध शेष हो गया। महामति क्लाइवने बड़े हर्षसे किलेपर अधिकार करके, बड़ी प्रसन्नतापूर्वक, अपने हाथसे किलेके ऊपर विजय-निशान लगाया। वह कैसा शुभ दिन और शुभ घड़ी थी, जब कि ब्रटिश-पताका किलेके ऊपर उड़ी। सन् १७५७की दूसरी जनवरीसे आज पर्यन्त, वह पताका समभावसे उड़कर लार्ड क्लाइवकी अक्षय कीर्त्तिकी घोषणा कर रही है।

दुर्ग अधिकृत हुआ। रण कोलाहल भी बन्द हो गया। सेना अपनी बन्दूकोंसे संगीनें उतारकर विश्रामके लिये प्रस्तुत हुई।

बाईसवाँ परिच्छेद ।

कलकत्तेका पुनरुद्धार और वाणिज्य अधिकार फिरसे प्राप्त हो गया। जो लोग कलकत्तेसे चले गये थे, वह फिरसे आगये। शून्य घरोंमें फिरसे आनन्द कोलाहल सुनाई देने लगा। अँधेरे घरमें फिरसे दीपक जला। फिरसे दूकानें खुल गईं, और लेन देन आरम्भ हो गया।

इधर क्लाइव, वाट्सन और मेजर किलपैट्रिक इत्यादि हुगली आक्रमणकी सलाह करने लगे। हुगली बहुत पुराना बन्दरगाह है। वहां बहुतसे धनी रहा करते थे। बहुतसे बनियोंकी दूकानें, नवाबके फौजदारका स्थान और राजधानी थी। अतएव हुगलीका आक्रमण ही स्थिर हुआ।

इस समय फिर यही प्रश्न उठा, कि कार्य्यभार किस को दिया जाय ?

फिर मन्त्रणा परामर्श होने लगे। वीरवर क्लाइव इस तुच्छ विषयमें तलवार धारण करने में सम्मत न हुए। एडमिरल वाट्सनने कुछ दिन विश्राम करना चाहा, इससे वह भी वहां जाने को राजी न हुए। शेषमें, मेजर किलपैट्रिकने

ऊपर कार्य्यभार अर्पण किया गया। वह बहुत दिन से खाली भी बैठे थे।

मेजर किलपेट्रिक इस अभियानके सेनानायक हुए। वे १०५० मल्लाह २०० गोरे और २५ देशी सिपाही लेकर हुगलीको चल दिये। ब्रिजवाटर और सेलसबरी दो जङ्गी जहाज़ भी अपने साथ ले लिये।

सन् १७५७ की चौथी जनवरीको, यह सेना लेकर मेजर किलपेट्रिक हुगलीको चले। परन्तु जितनी शीघ्रतासे पहुँचनेकी आशा थी उतनी शीघ्रतासे न पहुँचे। और न मालूम किस तरह एक जहाज़ रेतमें अटक गया।

यद्यपि विधाताके अनुग्रहसे वह जहाज़ विपद्से निकल गया; परन्तु इसमें पाँच दिन लग गये। दसवीं जनवरीको, मेजर किलपेट्रिक हुगली पहुँच गये।

अँगरेज़ हुगलीपर आक्रमण करनेके लिये आ रहे हैं, यह सम्वाद पाकर फ़ौजदार नन्दकुमार हुगलीकी रक्षा करनेका बन्दोबस्त करने लगे। इससे पहिले नवाबने तीन हज़ार सेना भेज दी थी। और दो हज़ार नन्दकुमारके आधीन थी। इन्हीं पाँच हज़ार सिपाहियोंसे नन्दकुमार अंगरेज़ोंसे लड़नेको तय्यार हुए।

हुगली बड़ा समृद्धिशाली प्राचीन नगर था। इसके उत्तर में क़िला बना हुआ था। क़िला ईंटोंका बना हुआ था, परन्तु कुछ दृढ़ नहीं था। इसमें पचास सिपाही रहा करते थे।

मेजर किलपेट्रिक हुगली पहुंचते ही, जहाज़ोंसे अति-चान्त गोला वर्षण करने लगे। किलेसे भी जहाज पर गोले बरसने लगे। दिन भर इसी तरह गोले चले। रातको दोनों ओरसे गोला चलना बन्द हो गया। अंगरेज सहजमें किला ले तो नहीं सके, परन्तु वह बहुत जगहोंसे टूट गया।

ग्यारहवीं जनवरीको अंगरेजोंने कुछ गोरे सिपाही लेकर किलेके द्वार पर धावा किया और गोले मारना आरम्भ किया। नवाब-सेना यह समझकर कि द्वारकी रक्षा करनी चाहिये, उधरको ही चली गई। यह अवसर पाकर, कप्तान कुक ने कुछ मल्लाह सेना लेकर टूटे हुए किलेकी राहसे भीतर प्रवेश किया। यह देखकर नवाब-सेना भयभीत होकर, दुर्ग रक्षाकी माया त्याग, रख छोड़कर गुप्त द्वारसे भागी।

यह सम्वाद सिराजुद्दौलाके पास पहुंचनेमें कुछ देर न लगी। इससे कुछ ही पहिले वह मानिकचन्द द्वारा सुन चुका था, कि अंगरेजोंने बजबज दुर्ग पर अधिकार कर लिया है। यह सुनते ही वह युद्धकी तय्यारी करने लग गया था। जब यह दूसरी खबर पहुंची, तो क्रोधके मारे प्रज्वलित हो उठा। शीघ्र ही अठारह हज़ार अश्वारोही, साठ हजार पैदल, दस हजार पथ प्रदर्शक अर्थात् सफ़रमैना, चालीस हजार कुली, चालीस तोपें और पचास हाथी लेकर कलकत्तेको चला। हुगलीके पास पहुंच कर, वाट्सन साहबको एक पत्र लिखा, वह इस प्रकार है.—

"तुम लोगोंने हुगलीमें बहुत दङ्गा मचा रक्खा है। मेरी प्रजाके ऊपर बहुत अत्याचार कर रहे हो। तुम लोग वणिक हो, जो काम तुम कर रहे हो वह व्यवसाय वाणिज्य-जीवी मनुष्यों का नहीं है। तुम्हारे इस व्यवहारसे मैं बहुत रुष्ट हो गया हूँ,और सेना लेकर कलकत्ते आ रहा हूँ। इस समय मैं हुगलीमें हूँ, और नदी-पार होनेका बन्दोबस्त कर रहा हूँ। कुछ सेना पार हो भी चुकी है, इस बार मेरी इच्छा है कि तुम लोगोंको अच्छी तरह उपदेश दूँ। यदि ईश्वरने चाहा, तो अबकी बार तुममें से एक को भी जीता न छोड़ूँगा; नहीं तो-जितना मेरा नुकसान हो चुका है, उसके क्षति पूरण-स्वरूप मेरे पास भेज दो, अथवा उचित उत्तर भेजो।

नवाब सिराजुद्दौला शाहकुलीखाँ"

२३ जनवरी सन् १७५७ ई०

पत्र यथासमय एडमिरल वाटसनके पास पहुंचा। कर्त्तव्य: निर्धारण करनेके लिये वह क्लाइवके पास गये। अनेक मन्त्रणा-परामर्शके बाद यह स्थिर हुआ, कि सन्धि कर लेनी चाहिये। सन्धिका एक कारण यह था,कि फ़रासीसी लोगोंसे युद्ध-छिड़नेकी तय्यारी हो रही थी। और दूसरा कारण यह था, कि अँगरेज-जाति सदैवसे ही शान्तिप्रिय है, वह कभी निरर्थक लड़ाई झगड़ा पसन्द नहीं करती है।

———

तेईसवाँ परिच्छेद।

बकिङ्घम उमाचरणका उद्यान कलकत्तेमें उस समय सबसे बढ़कर प्रशंसनीय और मनोरम स्थान था। इससे नवाब सिराजुद्दौला, उसी उद्यानमें अपना विराट् पटमण्डप स्थापन करके, वहीं ठहर गया। उमाचरणने आकर एक लाख रुपये भेंटमें दिये। नवाब उमाचरणसे बहुत देर तक वार्त्तालाप करते रहे। पीछे, उमाचरणने डरते डरते कहा कि यदि मेरा अपराध क्षमा किया जाय तो एक बात पूछूँ। आप इतनी सेना लाये हैं, वह किस अभिप्रायसे लाये हैं?

सिराज—मैं इतनी सेना इस कारण लाया हूँ, कि इस बार अँगरेजोंको समूल नष्ट कर दूँगा। अब की बार बङ्गाल-भूमि पर उनका बीज तक न रक्खूँगा। कुमन्तोंसे वाट्सनको मैंने एक पत्र लिखा है। उसका उत्तर आने तक राह देखता हूँ। उत्तर आते ही, वहाँसे उनका किला तोपोंसे उड़ा दूँगा और एक अँगरेजको भी जीता न छोड़ूँगा। मैं भी तो देखूँ, क्लाइव कैसा वीर है।

उमा०—मैं बड़े नवाबके समयमें आपका नमक खा रहा

हूँ। यदि सेवामें कोई त्रुटि हो जाय तो वह नमकहरामी ठह-रेगी, इसलिये मेरा जो कर्त्तव्य है वह मैं अवश्य करूँगा। आप मेरे कथनको एक बार सुन लीजिये, तदोपरान्त जैसी इच्छा हो वैसा कीजिये।

सिराज—अच्छा अच्छा, कहो क्या कहते हो?

उमा०—अँगरेज़ लोग अब वैसे अँगरेज़ नहीं रहे हैं, अब उनके पास गोला गोली-बारूद और सेना इत्यादि सभी कुछ है। मेरी तुच्छ बुद्धि जहाँ तक काम कर रही है, मुझे यही ज्ञात होता है कि सहसा आप उन लोगोंको अब नहीं दबा सकेंगे। उनके साहसका एक नमूना मैं कहता हूँ, कि ३० दिसम्बर को उन्होंने बजबजका किला लिया, और पहिली जन-वरीको टाना दुर्ग छीन लिया, उसके पीछे दूसरी जनवरीको कलकत्ता ले लिया। जिस क्लाइवको तीन किलोंके अधिकार करनेमें एक सप्ताह नहीं लगा, क्या वह वीर नहीं है? यह मैं कभी नहीं कह सकता हूँ, कि आपके सामने वह जयलाभ करेगा; परन्तु इसमें सन्देह नहीं है कि आपकी सेनाकी बड़ी भारी क्षति हो चुकने पर कलकत्तेका किला आपके अधिकारमें आ सकता है। इस कारण मुझे यही पथ सुगम मालूम होता है, कि इस समय उनसे सन्धि कर ली जाय, फिर पीछे से देखा जायगा। यह क्लाइव मृत्युसे भी डरनेवाला मनुष्य नहीं है।

सिराजुद्दौलाने जब उमाचरणकी यह बातें सुनीं, तो उसकी

समझमें भी कुछ आ गया और सन्धि करने पर आरूढ़ हो गया। परन्तु दूसरेके कहनेके अनुसार चलनेके लिये यह उसकी पहिली और अन्तिम बेर थी। यह विचार दृढ़ करके, उसने क्लाइव और वाट्सनको एक पत्र लिखा। उसका मर्म इस प्रकार है :—

"मैंने सुना है कि तुम लोग सन्धि करने पर तय्यार हो। मैं जानता हूँ कि सन्धि हो जाने पर सदैवके लिये विद्वेष भाव जाता रहेगा। आपसमें मित्रता हो जाने से समरानल प्रज्ज्वलित न होकर, शान्तिकी सौम्यमूर्त्ति प्रकाश पावेगी। ईसाई और मुसल्मान एक हो जायँगे। परन्तु खैर, जो कुछ होना था सो हो गया, अब उसके चर्चा पर लिखनेकी कुछ आवश्यकता नहीं है। अब से वैसा कोई काम न हो, इसीलिये और इसी आशासे यह पत्र मैं लिख रहा हूँ। अतएव, अब वृथा विवाद विसम्वादकी इच्छा नहीं है। यदि ईसाई लोग प्रकृतिसे ही शान्त हों, तो पिछली सब बातें भूलकर सन्धि बन्धनमें आबद्ध होनेके लिये इनकार मत करना।

सिराजुद्दौला।"

नवाबका पत्र क्लाइवके पास पहुँचा। पत्र पढ़कर क्लाइव बहुत हँसे और सन्धि करने पर सम्मत हो गये। परन्तु वाट्सन साहब फिर भी सन्धि करनेमें सम्मत न हुए। उनको सिराजुद्दौला पर बड़ा क्रोध हो रहा था। परन्तु उनकी कोई बात न सुनकर, ता० ७ फरवरी सन् १७५७ को सन्धिपत्र

लिखा गया। सिराजुद्दौलाने, बिना कुछ कहे सुने, उस पर हस्ताक्षर कर दिये। मीरजाफ़र और दुर्लभरायके भी हस्ताक्षर हुए। इस सन्धि पत्रका नाम,—"अलीनगरका सन्धिपत्र" हुआ।
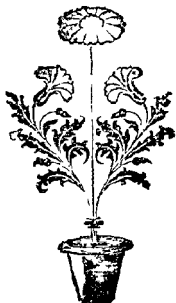
चौबीसवाँ परिच्छेद ।

सन्धि हो गई। सिराजुद्दौलाने क्लाइव, वाट्सन और ड्रेक साहबके लिये विविध मणिमुक्ता लगी हुई बहुमूल्य पगड़ियाँ भेजीं। यह पगड़ियाँ क्यों भेजीं? चाहे सन्धि-बन्धनके दृढ़ करनेकी इच्छासे हो, अथवा खुशामदसे हो, हम यह नहीं कह सकते हैं। परन्तु वीरवर क्लाइव और वाट्सनने वे पगड़ियाँ नहीं लीं, नवाबके पास लौटा भेजीं और कहला भेजा कि, "हम महामान्य इंगलिशेश्वरकी प्रजा हैं, उनके मानके लिये बहालिये आये हैं। नवाबका सिरोपाव हम ग्रहण नहीं कर सकते।"

सन्धि होनेके बाद सिराजुद्दौलाको यह आशा थी, कि वीर-वर क्लाइव इन पगड़ियोंको लेनेमें अपना सौभाग्य समझेंगे; परन्तु उसकी यह भूल थी, वीर लोग किसीको खुशामद न चाहते हैं न करते हैं। अस्तु, सिराजुद्दौला अपनी सेना लेकर कलकत्तेसे चल दिया। उसके जानेके बाद अंगरेज लोग गङ्गा पार करके, फरासीसियोंके चन्द्रनगर पर आक्रमण करनेको आगे बढ़े। नौ-सेनापति एडमिरल वाट्सन और क्लाइव दोनों

हो तय्यार हुए और अधिक विलम्ब न करके चन्द्रनगरके सामने जा पहुँचे।

सिराजके पास सम्वाद पहुँचा, कि अँगरेज़ लोग फ़रासीसियोंकी चन्द्रनगर वाली कोठी पर आक्रमण करनेका उद्योग कर रहे हैं। सिराज क्रोधके वशीभूत होनेसे न रह सका, वह सन्धिपत्रको भूल गया और नन्दकुमारको कहला भेजा,—"तुम्हारे पास हुगली, अग्रद्वीप और पलासी में जो सेना है, उसको ले जाकर फ़रासीसियोंकी सहायता करो।"

क्लाइवने जब यह सन्धि भङ्ग होती देखी, तो कुछ रुष्ट न हुए, परन्तु कुछ विचलित अवश्य हुए। क्योंकि एक तो फ़रासीसियोंकी सेना अच्छी थी, दूसरे उनका क़िला बहुत दृढ़ था। उनके पास तोपख़ाना भी था। रणपाण्डित्यका अभाव भी न था। इस सबके ऊपर, नवाबकी उन लोगों पर कृपादृष्टि भी थी। नवाबने नन्दकुमारको भी उनकी सहायताके लिये कहला भेजा था। पलासीसे दुर्लभराय दस हज़ार सेना लेकर नन्दकुमारकी सहायताको आ रहा था। पाँच हज़ार सेना हुगलीमें मानिकचन्दके पास थी। वह भी क्षणमात्रमें पहुँच सकती थी। युद्ध होते ही यह सब लोग सिंहकी तरह अँगरेज़ों पर टूट पड़ेंगे और सम्भव है, कि अँगरेज़ोंको सदैवके लिये कलकत्तेसे निकाल दें। इन्हीं बातोंको सोचकर, क्लाइव कुछ विचलित होकर सहसा फ़रासीसियों पर आक्रमण

करनेका साहस न कर सके, किस कौशलसे उनके ऊपर जय लाभ करेंगे, यही चिन्ता करने लगे।

यह बात प्रसिद्ध है, कि साधन करनेसे सिद्धि होती है। वीरवर क्लाइवने प्रचण्ड विक्रमसे फरासीसियों पर आक्रमण किया। वह लोग भी दुर्गरक्षाके लिये प्राणपणसे चेष्टा करने लगे। दोनों ओरसे गोला वर्षण होने लगा। फ़रासीसियोंके गोलोंसे अँगरेज़ी नौ सेनाके १४० सिपाही मारे गये और कुछ पैदल भी मरे। इधर अँगरेजोंकी तोपोंसे फ़रासीसियोंके दलके दल प्राण विसर्जन करने लगे।

युद्ध केवल दो घण्टे मात्र हुआ। परन्तु इतने थोड़े समय में, नन्दकुमारको सहायता पहुँच भी न पाई, कि युद्ध शेष हो गया। इस लोमहर्षण भयङ्कर युद्धमें दोनों ओरकी सेना मरी, तथापि अँगरेज़ लोग कुछ भी भयभीत अथवा निरस्त न हुए। वह लोग अदम्य उद्यमसे लड़ते रहे। शेषमें, फ़रासीसी बाहुबल शिथिल हो चला। भीम विक्रमसे युद्ध करने पर भी, वह लोग दुर्गरक्षामें समर्थ न हो सके और दुर्ग छोड़कर भागना आरम्भ किया।

२३ मार्च १७५७ को सन्ध्याको, अँगरेजोंने महाकोलाहलसे फ्रेञ्च-किलेपर अधिकार कर लिया। आनन्द निनादसे जल थल-आकाश गूँज गये और फ्रेञ्च किले पर अँगरेज़ी विजय वैजयन्ती उड़ने लगी।

अँगरेज़ लोग दुर्ग पर अधिकार करके ही निरस्त न रहे।

उन्होंने फ्रेञ्च सिपाहियोंको कैद करना आरम्भ किया। जो लोग नदीमें नावों पर सवार होकर भागे, उनको अंगरेजी सिपाही अपनी नावों पर चढ़कर पकड़ने गये। वह लोग भागकर मुर्शिदाबाद पहुँचे, उनको वहीं बचनेकी आशा थी।

फ्रेञ्च लोग भागकर मुर्शिदाबाद पहुँचे और नवाब सिराजुद्दौलाके पास जाकर अपने सर्वनाशकी कथा सुनाई और आश्रय चाहा। सिराजुद्दौला तो पहिले हो से उनके पक्षमें था, शीघ्र ही उनको कासिमबाजारमें आश्रय दिया गया। यही नहीं, कई एक सुदक्ष फरासीसियोंको अपनी सेनाका सेनापति बनाया तथा और और विभागोंमें रख लिया।

अँगरेज लोग नवाबके इस व्यवहारसे क्रोधसे अधीर हो गये। फरासीसियोंके अँगरेजोंके शत्रु होने पर भी और नवाबके सन्धि कर लेने पर भी, नवाबने उनको आश्रय दिया, यह बात अँगरेजोंको असह्य हो गई। वाट्सन साहबने नवाबको एक पत्र इस प्रकार लिखा :—

"आपके कोई एक पत्र आये, परन्तु बहुतसे आवश्यक कामोंमें व्यस्त होनेके कारण उनका उत्तर न दे सका। क्षमा कीजिये, बड़े आनन्दके साथ आपको सुनाता हूँ कि, ईश्वरकी कृपासे, केवल दो घण्टे मात्र युद्ध करके, हम लोगोंने २३ मार्चको सन्ध्याके समय फ्रेञ्च किले पर अधिकार कर लिया और बहुतसे फ्रेञ्च भी बन्दी कर लिये हैं। बहुत से भाग गये हैं जिनके पकड़नेको हमारे सिपाही गये हुए हैं। उनको पकड़नेमें

और किसीके अनिष्टकी सम्भावना नहीं है। आशा है कि आप असन्तुष्ट न होंगे। हमलोग ठीक सन्धिके ऊपर चल रहे हैं और चलेंगे। इस सन्धि-बन्धनके अनुसार जो हमारा शत्रु है वह आपका भी शत्रु है और जो आपका शत्रु है वह हमारा शत्रु है। अतएव, हमारे शत्रु फ़रासीसी आपके पास आश्रय न पावें। ड्रेक साहबके सम्बन्धमें जो बात आपने लिखी थी, उसकी बाबत मैंने ड्रेकको बहुत फटकारा है। आशा है, कि ड्रेक मानिकचन्दसे क्षमाप्रार्थी होगा और भविष्यत्‌में ऐसा व्यवहार कभी न करेगा।

एडमिरल वाट्सन"

वाट्सन साहबके पत्रका उत्तर नवाबने कुछ न दिया, तो वाट्सन साहबको बहुत क्रोध आया; परन्तु फिर भी उन्होंने कुछ न कहा।

इधर कुछ दिनोंसे सिराजुद्दौलाको कुछ भ्रम सा हो गया था। वह न मन्त्री लोगोंकी बात सुनता था, न उनसे सलाह ही लेता था। वाट्सन साहबने कई बार फ्रेञ्च लोगोंको भेज देनेके लिये लिखा, परन्तु नवाबने कुछ उत्तर न दिया। यह देखकर मन्त्री लोगोंने नाना रूपसे समझाना आरम्भ किया, कि फ़रासीसियोंको आश्रय देकर निरर्थक अँगरेज़ोंके साथ युद्ध विग्रह करना उचित नहीं है। यदि फ़रासीसियोंको छोड़ देनेसे, अँगरेजोंके साथ सौहार्द्र बढ़े और सन्धि भङ्ग न हो, तो यही सबसे बढ़कर अपना हितकर काम है।

सिराजुद्दौलाको किसी प्रकार यह करना अभीष्ट नहीं था। उसको तो यही अच्छा जान पड़ता था, कि जिस तरह हो सके अँगरेज़ोंको क्षति पहुँचे। जब मन्त्रियोंने बहुत ही दबाया, तो फ़रासीसियोंको अँगरेज़ोंके पास न भेजकर अज़ीमाबाद भेजने पर राज़ी हुआ। परन्तु फ़रासीसी लोग इस पर भी राज़ी न होते थे। लेकिन किसी न किसी तरह सिराजुद्दौला ने उनको यह कहकर अज़ीमाबाद भेज दिया, कि कुछ दिनके लिये तुम वहाँ चले जाओ, जब बात ठण्डी पड़ जायगी, तो मैं तुम सबको बुला लूँगा। यदि इस समय मैं तुमको न भेजूँ, तो मेरा मन्त्रिदल रुष्ट हो जायगा और सम्भव है कि अँगरेज़ लोग मुर्शिदाबाद पर आक्रमण करें।

पच्चीसवाँ परिच्छेद ।

जिसका जब दुःखका समय आ जाता है और भाग्य उलट जाता है, तो बुद्धि भी ठिकाने नहीं रहती है। सिराजको अच्छे बुरेका ज्ञान न रहा। यह भी न जान सका, कि कौन उसका शुभाकाङ्क्षी है और कौन नहीं। जब उसकी मतिमें भ्रान्ति हो गई, तो मन्त्रिदलमें से बहुतोंने अँगरेज़ोंकी शरण ली। जिनको क्लाइव और वाट्सन साहबने, असन्तुष्ट न होकर, बड़े शिष्टाचारके साथ रक्खा। इन्हीं में वे एक मीर जाफर भी थे। मीरजाफर बहुत समझदार और ढलती हुई वयसके मनुष्य थे। क्लाइवने सोचा, कि यदि सिराजुद्दौला ही सिंहासन पर रहेगा तो नहीं मालूम क्या क्या अनर्थ हों। इससे किसी और को ही राज्य शासन का भार मिलना चाहिये। दिल्लीके बादशाह की भी यही इच्छा थी, कि सिराजुद्दौला बङ्गाल, बिहार और उड़ीसा को सूबेदारी पर न बैठे। इसीलिये शौकतजङ्ग को उन्होंने सनद दी थी। परन्तु अत्याचारी सिराजने उसको और उसकी सेना को हत्या कर डाली थी। यह सुनकर शाहज़ादा और

नवाब मीरजाफर।

NARSINGH PRESS CALCUTTA

गया और अँगरेजोंसे कहला भेजा, कि तुम जिसको उपयुक्त समझो उसी को इस सिंहासन पर बैठा दो। इसलिये भी क्लाइव को एक उपयुक्त मनुष्य की खोज थी। अन्तमें, होते होते मीरजाफ़र ही उपयुक्त मनुष्य दिखलाई पड़े। इसका भी विचार होगया, कि अपनी इच्छासे न हो तो ज़बरदस्ती सिराजुद्दौला को सिंहासनच्युत करके, मीरजाफ़र गद्दी पर बैठाया जावे।

जब बात तय होगयी, कि मीरजाफ़र ही गद्दी पर बिठाया जावे, तो मीरजाफ़रसे एक सन्धिपत्र ता: १० जून को लिखाया गया कि वह सिंहासन पर बैठकर धर्मपूर्वक और सब जातियों को एकसा समझकर राज्य करेगा। किसी प्रकार का अत्याचार प्रजाके ऊपर न करेगा—इत्यादि।

जब यह सन्धिपत्र, जो कि सिराजुद्दौला से गोपनीय लिखा गया था, लिख गया; तो क्लाइवने युद्ध की घोषणा कर दी और युद्ध की तैयारी होने लगी।

छब्बीसवाँ परिच्छेद।

यह बात सिराजुद्दौला से भी छिपी न रही, कि मीरजाफ़र दिल्लीके बादशाह और अंगरेज़ों की ओरसे बङ्गाल, बिहार और उड़ीसा का सूबेदार बनाया गया है और सिराजुद्दौला सिंहासनच्युत किया जायगा।

सुनते ही सिराजुद्दौलाके क्रोधका ठिकाना न रहा और शीघ्र ही मीरजाफ़र को बन्दी करने का आदेश दिया, परन्तु आदेशानुसार काम नहीं हुआ। हिताकाङ्क्षी मन्त्री मोहन लालने नवाबको समझाया,—"इस समय मीरजाफ़रको बन्दी न करके, अपने पक्षमें लाना चाहिये।"

मोहनलालके निषेध से और गुप्तचरके मुखसे चारों ओर विद्रोह फैलने का सम्वाद पाकर नवाबने मीरजाफ़रको बन्दी नहीं किया, वरं उसको राजप्रासाद में बुला भेजा।

मीरजाफ़र को यह भय हुआ, कि न जाने नवाब कैसा व्यवहार करे और उसका भय सच्चा भी था, इस कारण वह राजप्रासादमें नहीं गया।

सिराजुद्दौलाने सोचा था कि मीरजाफ़र को समझाऊँगा,

यदि नहीं समझेगा तो सदैवके लिये उसका झगड़ा साफ़ करूँगा। परन्तु जब वह नहीं आया, तो आप ही पालकी पर सवार होकर सिराजुद्दौला उसके घर पहुँचा।

अन्तमें मीरजाफ़र बिना मिले न रह सका। जब कि बङ्गाल, बिहार और उड़ीसाके नवाबने स्वयं उसके घर आगमन किया है, तो वह किस प्रकार छिपकर रह सकता था? ग्रोपमें, दोनों का साक्षात् हुआ।

सिराजुद्दौलाने कहा, "सेनापति! जो कुछ हुआ सो होगया, अब उसके सोचने से कुछ लाभ नहीं है। इस समय एक प्राण होकर ऐसी चेष्टा करनी चाहिये, कि जिससे मुसल्मानोंका गौरव रक्षा पावे। तुम और हम एक कुटुम्बके हैं, कोई दूसरे नहीं हैं। कुटुम्बी को कुटुम्बी का नाश न करना चाहिये। तुम नवाब अलीवर्दीके बहनोई हो। उनके वंशधरका नाश करने में क्या तुमको कुछ भी सङ्कोच न होगा? तुम मेरे विरुद्ध अस्त्र धारण करने को उद्यत हुए हो। राज्य और राजसिंहासन की इच्छा करते हो, यह तुमसे योग्य पुरुषोंका काम नहीं है। सेनापति! यदि राज्य ही तुमको प्रिय है, राजसिंहासन पर बैठने ही की तुम्हारी इच्छा है, यदि मुझको सिंहासनच्युत करने ही से तुम्हारी कामना पूरी हो सकती है, तो तुम वैसा ही करलो; परन्तु अँगरेज़ों से, मेरे कट्टर शत्रुओं से, क्यों मिले हो?"

मीरजाफ़रने इसके उत्तरमें कहा,—"नवाब बहादुर!

मैंने आपके विरुद्ध कुछ भी नहीं किया है। न मैं सिंहासन चाहता हूं, न मेरी इच्छा है कि आपको सिंहासनच्युत करूं। अँगरेजोंके पास दिल्लीके बादशाह के पाससे आदेश आया है, कि किसी उपयुक्त मनुष्यको सिंहासन पर बिठाना चाहिये, जिसके लिये अँगरेजोंने मुझे पसन्द किया है। उन्होंने मुझसे सन्धिपत्र भी लिखा लिया है, कि मैं धर्मपरायण होकर राज्य करूँ। मैंने सिंहासन लेना अस्वीकार किया था, परन्तु वीरवर क्लाइव की ऐसी ही इच्छा है। मैंने अपनी इच्छासे कुछ भी नहीं किया है। और शेषमें यह देखो, कि नवाब आपने मेरे साथ बहुत कुछ असद् व्यवहार किये हैं। परन्तु मैं उन सबको भूल गया हूं। मैंने आज तक तुम्हारे साथ कोई अधर्म का काम नहीं किया है। यह तुम्हारी ही भूल है, कि अँगरेजों को निरपराध सताते रहे हो। मुझसे कहो, सो अब भी मैं करने को तैयार हूं. परन्तु अब मैं परवश होगया हूं। लार्ड क्लाइव की इच्छाके विरुद्ध करने की क्षमता मुझमें नहीं है। और जो कुछ सेवा मेरे योग्य हो, उसको मर आंखोंके बल करने को तैयार हूं।"

जब सिराजने यह बातें सुनीं तो उसके क्रोधका क्या कहना था। शीघ्रतासे उठकर एक घूँसा मीरजाफ़रके मुंहपर मारा और अपने प्रासादको चल दिया। वहाँ पहुँच कर, मीर मन्नालको बुलाकर बहुत शीघ्र सेना तैयार करने की आज्ञा दी।

सत्ताईसवाँ परिच्छेद ।

नवाबकी सेना और अँगरेज़ी सेना पलासीके मैदानमें एकत्रित हो रही हैं। उत्तर दक्षिण दो कोस और पूरब पश्चिम एक कोसके लम्बे चौड़े मैदान में सेनायें जमा हो रही हैं।

अँगरेज़ी सेनाके पहुँचने के बारह घण्टे पहिले नवाबकी सेना मैदानमें पहुँच गई थी। जहां पर भागीरथी में घोड़ेके सुमकी तरह कोलचक है वहीं पर, खाई से घिरे हुए स्थानमें, नवाबके सेनापतियोंने अपने शिविर स्थापन किये और अँगरेज़ोंने आमों की बाड़ीमें आश्रय लिया।

बाईसवीं जूनका दिन युद्धके लिये तैयारी करते बीत गया। रात हुई। वह रात बड़ी गम्भीर रात थी। सभी सो रहे। नवाब भी अपने शिविर में पलँग पर लेटे। परन्तु उनको अच्छी नींद नहीं आई, रातभर स्वप्न देखने से व्याकुल रहे। स्वप्नमें नवाबने देखा कि धीरे धीरे एक रमणी उनके पलँग के पास आई और आकर खड़ी हो गई। उसके कपड़े मैले, मुख उतरा हुआ, आँखोंमें जल भरा हुआ, सिरके बाल खुले

हुए, देह आभूषणरहित और उसकी रूप ज्योति मेघावृत सूर्य्य की तरह थी।

रमणीको देखकर सिराजुद्दौला विस्मित हुआ और पूछा, "तुम कौन हो? अकेली यहां क्यों आई हो? चारों ओर प्रहरी घूम रहे हैं, तुम यहां किस प्रकार चली आई? तुम्हारा क्या उद्देश्य है? और यह क्या! तुम रोती क्यों हो?"

रमणीने धीरे धीरे कहा, "वत्स! मैंने तो कोई प्रहरी नहीं देखा।"

सिराजने आश्चर्यान्वित होकर कहा, "क्यों! वह सब कहां गये?"

रमणीने गद्गद् कण्ठसे कहा, "वत्स! जब तक भाग्य अच्छा रहता है, तबतक सभी रहते हैं, जब कुसमय आजाता है तब कोई किसी का नहीं रहता है। अपने स्त्री पुत्र पर्य्यन्त पराये होजाते हैं।"

यह सुनकर सिराजके हृदयका छिपा हुआ आत्माभिमान निकल पड़ा। उसने गर्वके साथ कहा, "मालूम होता है कि तुम मुझको पहिचानती नहीं, तभी ऐसा कह रही हो। मैं बङ्गाल बिहार और उड़ीसा का नवाब हूं। मेरा नाम सिराजुद्दौला है।"

रमणीने कुछ विषाद की हँसीसे हँसकर कहा, "वत्स! मैं तुमको पहिचानती हूं। मैं यह भी खूब जानती हूं, कि तुम बङ्गाल, बिहार और उड़ीसा के नवाब हो।"

रमणी और कुछ न कह सकी। हृदयमें शोक का वेग बढ़ गया। नेत्रोंसे झर झर आंसू टपकने लगे। वह अपने आंचल से मुख ढांप कर रोने लगी।

सिराज—तुम इतनी अधीर क्यों होती हो ?

रमणी शोकके वेग को रोक कर बोली, "वत्स ! मैं पुत्रवती हूँ। यदि पुत्रका कोई अकल्याण हो, तो क्या कोई रमणी कातर न होगी ?"

सिराज—तुम्हारा पुत्र कौन है ? उसका क्या अकल्याण हुआ है, जिसके कारण तुम इतनी विह्वल हो रही हो ?

रमणी—वत्स ! जो बङ्गाल विहार और उड़ीसा का नवाब है, वही मेरा पुत्र है।

सिराजुद्दौला यह सुन कर कांप उठा और कहा,—"तुम तो एक सामान्य रमणी मालूम होती हो। बङ्गाल, विहार और उड़ीसा का नवाब तो मैं हो हूँ ; मेरी माता तो अमीना वेगम है। परन्तु तुम जो अपने को मेरी मा कहकर परिचय देती हो, इसका क्या कारण है ? मेरी जननी होकर, तुम्हारी यह हीन अवस्था क्यों है ?"

रमणी की आँखोंसे फिर आंसूओं को धारा बह चली। उसने रुँधे हुए गले से कहा,—"वत्स ! पुत्रकी उन्नति अवनति के साथ ही जननी की अवस्था भी बदल जाती है। जब तुम बङ्गाल, विहार और उड़ीसाके नवाब थे, तब मेरी भी ऐसी अवस्था न थी। सभी मुझको नवाब-जननी कह कर पुकारते

थे,वसन भूषण भी मेरे पास यथेष्ट थे; परन्तु तुम्हारी अवस्था परिवर्त्तन होनेके साथ ही साथ मेरी भी यह दशा हो गई।"

इतनी देर बाद सिराजुद्दौलाने उस रमणी को पहिचाना और बड़े मानके साथ प्रणाम करके बोला, "जननी! क्या सत्य ही मुझको बङ्गाल, बिहार का सिंहासन छोड़ना होगा? क्या मैं इसकी रक्षा न कर सकूँगा? तो क्या अँगरेजों ही की जय होगी?"

रमणीने रोते रोते कहा, "हां वत्स! कलके युद्धमें मुसल्मानोंका गौरव सूर्य्य अस्त होगा। अँगरेजों का प्रभुत्व, क्षमता, ऐश्वर्य्य, सूर्य्योदय होते ही इस देशमें फैल जायगा। केवल बङ्गाल ही नहीं, समग्र ससागरा पृथ्वीके अधीश्वर अँगरेज ही होंगे; क्योंकि आजकल वही जाति सबसे अधिक धार्मिक और प्रजावत्सल है। भारतवर्षके सब राजा महाराजा और नवाब उनके आधीन होंगे। वत्स! तुम ही बङ्गालके शेष नवाब हो। तुम राज्य ही नहीं खोओगे, तुमको अपने प्राण भी देने होंगे।"

इतना कह कर रमणी अन्तर्धान हो गई।

। यह देखते ही सिराजुद्दौला चिल्ला उठा, "मां! कहां जाती हो?" और इतना कहते ही उसकी निद्रा भंग होगई। उसने आंखें मलकर देखा, तो एक चोर उसके पलँग के पास से सोने का हुक्का चुराये लिये जाता है। यह देखकर सिराजुद्दौला ने उच्च स्वर से कहा, "प्रहरी! प्रहरी!" किन्तु किसी ने कुछ

उत्तर नहीं दिया। तब वह आप ही चोर को पकड़नेके लिये उसके पीछे दौड़ा। पर मण्डपके द्वार तक उसने आकर देखा कि कोई पहरेपर नहीं है। तस्कर भागगया। यह हाल देखकर वह बोला, "हायरे! मरनेके पहिले ही सिराजुद्दौला के दुर्दण्ड प्रताप का अन्त होगया!"

शेष रात्रि में, सिराजुद्दौलाको नींद नहीं आई। दारुण दुश्चिन्ता में और असह्य यातना में रात काटी।

प्रातःकाल को नवाब-शिविर में रण-वाद्य बजने लगा। उसका शब्द सुनकर सैनिक लोग तय्यारी करने लगे।

छै बजगये। नवाब-सेना तय्यार होकर पलासीके मैदान में आ पहुँची। व्यूह अर्ध-चन्द्राकार रचा गया। फ्रेंच सेनापति सिनफ्रे ५० सैनिक और चार तोपें लेकर बड़ी पुष्करिणी के पास आकर खड़ा हुआ। उसके पीछे मीरमदन सेनापति अपने पाँच हजार अश्वारोही और सात हज़ार पैदल लेकर पहुँच गया। मीरमदन के पीछे मोहनलाल था, जिसके पास बारह हज़ार सेना थी। इसके पास ही, दक्षिण भागमें, दुर्लभ राम और यार लतीफ़ पाँच पाँच हज़ार सेना लिये हुए जँगली भूमि से पलासी की आमबाड़ी तक अर्ध-गोलाकार खड़े हुए थे। इन सबके सामने मिट्टीके बुर्ज बने हुए थे, जिनके पास बड़ी बड़ी तोपें लगी हुई थीं।

अट्ठाईसवाँ परिच्छेद।

नवाब-सेना युद्धके लिये प्रस्तुत है। सेनापति आदेश पाते ही युद्ध में प्रवृत्त होंगे।

इसी समय क्लाइव एक बार शत्रु-सेना देखने के लिये शिकार-मञ्च पर चढ़े। जो कुछ देखा, उससे उनका हृदय काँप उठा। मनमें कहा, युद्ध उपस्थित होने पर, नवाब की इस विपुल वाहिनी के सामने सेना समेत यम-घर जाना होगा।

तथापि क्लाइव और विलम्ब न करके, निडर होकर व्यूह-रचना करने लगे। सेना को आमबाड़ी से निकालकर चार भागोंमें विभक्त किया। मेजर किलपैट्रिक, मेजर कूट, मेजर ग्राण्ट और कैप्टिन गफ़ इन चार अँगरेज़ों को चारों दलों का सेनापति बनाया। बीच में गोरी पल्टन रही और दोनों ओर देशी सेना श्रेणीबद्ध होकर खड़ी हुई। सामने छै तोपें रहीं।

आठ बजे, घोर युद्ध आरम्भ हुआ। पहिले फ्रेञ्च सेनापति सिनफ्रे ने तोप दागी। और सब तोपें लोहे के गोले उगलने लगीं। गोले अँगरेज़ी सेना में आकर गिरने लगे। पहिली बाढ़ में एक गोरा और एक देशी सिपाही मरा।

अँगरेज़ों की ओर से भी तोपें चलने लगीं। दोनों ओर से

खूब ही गोला-वर्षण हुआ। अँगरेज़ों की सेना बहुत थोड़ी थी। आधे घण्टे के युद्ध में, दस गोरे और बीस देशी सिपाही मारे गये। रण-विशारद क्लाइव ने देखा कि इस प्रकार युद्ध होगा, तब तो सन्ध्या तक हमारी सेना में एक भी सैनिक न बचेगा!

ऐसा सोचकर विचक्षण क्लाइव ने सेना की रक्षा करने के लिये सेना को आमबाड़ीमें छिपा दिया। गोलन्दाज़ोंने मिट्टी की प्राचीरमें छेद करके उसी में से गोले चलाने आरम्भ किये। इससे सेना का बचाव तो हो गया, परन्तु नवाब की सेना धीरे धीरे आगे को बढ़ने लगी। यह देखकर वीरवर क्लाइव कुछ विचलित हुए। परन्तु शीघ्र ही उन्होंने अपने को सम्भाला और तत्क्षणात् एक सभा बिठायी। सभामें स्थिर हुआ कि दिनमें किसी प्रकार आत्मरक्षा करके, रात में नवाब की सेना पर धावा करना चाहिये।

यह उपाय तो स्थिर होगया, परन्तु सुचतुर क्लाइव को यह बात पसन्द न आई। उन्होंने कहा यह वीरत्व नहीं है। इधर नवाब-सेनाने जब देखा कि अँगरेजी सेना पीछे हट रही है, तो वह लोग बड़े उत्साह से आगे बढ़ने लगे। और श्रावण के बादलों की तरह अविरल गोला-वर्षण करने लगे। परन्तु वह गोले अँगरेज़ी सेना की कुछ क्षति न कर सके। जो गोले आते थे वह आमोंमें होकर निकल जाते थे और सेना नीचे वृक्षों में आराम से बैठी हुई थी।

मीरमदन अदम्य उत्साह से युद्ध कर रहा था और अंग रेज़ो सेना को पीछे को बढ़ रहा था। सहसा आकाश में एक बादल का टुकड़ा दिखाई पड़ा। साथ ही बड़े वेग से मूसलाधार वृष्टि होने लगी। नवाब-सेना खड़ी खड़ी भीगने लगी और साथ ही सब बारूद भी भीग गई।

युद्ध की प्रधान सम्बल बारूद है। वृष्टि के जलसे बारूद भीग जाने के कारण, मीरमदनकी तोपें चलाना बन्द होगया। उस समय मीरमदन ने अश्वारोही सेना को नङ्गी तलवार हाथ में लेकर अंगरेज़ों पर हमला करने का आदेश दिया। उन्हों ने समझा, अब अंगरेज़ी सेना की खैर नहीं है!

अश्वारोही सेना को उत्साहित करने के लिये रणोन्मत्त मीरमदन बड़े वेग से घोड़ा दौड़ाकर उनके आगे आगे चला। इसी समय अंगरेज़ों की सेना से सहसा एक गोला आकर उसके ऊपर पड़ा। गोला लगते ही वह अवसन्न होकर गिरपड़ा, और अपनी सेना से कहा कि, "मुझे शीघ्र नवाब के पास ले चलो।"

आदेश पाते ही अनुचर वर्ग उसको नवाबके पास ले गये। मीरमदन ने बड़े कष्टसे दो चार शब्द कहे,—"नवाब बहादुर; सेनाकी देखभाल आप अपने आप ही कीजिये। सेना में और कोई ऐसा नहीं है जो अंगरेज़ोंसे लड़े।" यह कहते कहते उसके प्राण निकल गये।

मीरमदन के मरने से सिराजुद्दौलाके सिर पर मानों

बज्रपात हुआ। उसको चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार दिखलाई देने लगा। उसको फिर मतिभ्रम हुआ। उसने सोचा कि आज लड़ाई किसी प्रकार बन्द होजाय तो अच्छा है, कल मैं अपना बन्दोबस्त कर लूँगा। यह सोचकर मोहनलाल के पास दूत भेजकर लड़ाई बन्द कर देनेका आदेश किया।

वीर मोहनलाल इधर अमित विक्रम से अँगरेज़ी सेनाकी ओर को बढ़ रहा था। उसी समय दूत ने जाकर नवाब का आदेश सुनाया,—"सेनापति! नवाब की अनुमति है कि आज युद्ध बन्द करदो, कल प्रातःकाल संग्राम होगा।"

मोहनलाल आशा कर रहा था कि मैं जय लाभ करूँगा। उसने कहा,—"यह समय लड़ाई बन्द करने का नहीं है। और थोड़ी देर युद्ध करते रहने से ही युद्ध शेष हो जायगा और नवाब विजयी होंगे। यदि इस समय हम युद्ध बन्द करेंगे, तो सम्भव है कि अँगरेज़ लोग अवसर पाकर हम पर आक्रमण करें। इस समय मैं किसी प्रकार शिविर को नहीं जासकता हूँ, मैं लड़ूँगा।"

यह बातें दूत के मुखसे सुनकर सिराजुद्दौला ने फिर मोहनलाल के पास दूत भेजा। उस समय मोहनलाल प्रायः आम की बाड़ी के पास था। परन्तु अँगरेज़ी सेना तब भी सन्तुष्ट चित्त से आमबाड़ी में बैठी हुई थी। उसी समय दूत ने जाकर कहा,—"नवाब की अनुमति है कि शिविर

को लौट जाओ और सेना को विश्राम दो। कल फिर से संग्राम होगा।"

बारम्बार आदेश पहुँचने पर मोहनलाल क्रोध के मारे काँपने लगा। परन्तु क्या करता, मालिकका आदेश ही ऐसा था। प्रबल उत्साह के समय में उसको बाधा पाकर बड़ा दुःख हुआ। दुःख और रोषने उसे नितान्त ही निरुत्साह कर दिया। परन्तु वह तो भृत्य था। भीतर का भाव भीतर ही रखकर, सेना को शिविर की ओर ले चला।

वीरवर क्लाइव ने यह अवसर हाथ से न जाने दिया। आमबाड़ी से बाहर निकल आये और सेना परिचालन आप ही करने लगे। उनकी सेना सिंह विक्रम के साथ मोहन लाल वाली सेना पर जा पड़ी और सावन की झड़ी की तरह गोला गोली बरसाने लगी।

मोहनलाल अँगरेजी सेना को आक्रमण करते देखकर फिर खड़ा होगया और तोपों के मुख उस ओर को फेरने लगा। सेना को श्रेणीबद्ध करने का उद्योग करने लगा। परन्तु उसके यह सब प्रयास वृथा हुए। बहुत कुछ यत्न करने पर भी, वह सेना को श्रेणीबद्ध न कर सका। अँगरेजी सेना के गोलों से सेनाका संहार होने लगा। प्रति मुहूर्त में घोड़े बैल सिपाही सैकड़ों मरने लगे। अँगरेजी हथियारों के सामने नवाबी हथियार क्या ठहरते। अन्तमें नवाब की सेना भाग निकली।

मोहनलाल ने जब देखा कि अब युद्ध करना वृथा है, तो सेनाको छोड़कर नवाबके शिविर को चला।

नवाबके पटमण्डपमें पहुँच कर देखा कि वह शून्य पड़ा है। नवाब नहीं हैं। अनुसन्धान से मालूम पड़ा, कि पराजय हो जाने के भय से राजधानी को चले गये हैं। यह सुनते ही मोहनलाल अवसन्न हो गया और शीघ्र ही नवाब से मिलने को मुर्शिदाबाद की ओर को चल दिया। पलासीका रणक्षेत्र वीरवर लार्ड क्लाइव के हाथ रहा।

उन्तीसवाँ परिच्छेद।

मुर्शिदाबाद आकर सिराजुद्दौला ने अपने आत्मीय स्वजनों को बुलाकर मुसल्मान गौरव की बात कही और स्वाधीनता रक्षा के लिये फिर से युद्ध करने की आकांक्षा दिखाई। परन्तु क्लाइव का हाल सुन कर किसी को ऐसी हिम्मत न हुई, कि नवाब से हामी भरता कि मैं तुम्हारे साथ होकर युद्ध करूँगा।

अन्तमें मुर्शिदाबाद से भागना ही निश्चय हुआ। उस समय थोड़े से महामूल्य रत्न, प्राणाधिक प्रेयसी लुतफुन्निसा, एक पुराना प्रहरी और दो एक दासियोंको लेकर सिराजुद्दौला नाव पर सवार होकर भागा। राज्य, राजसिंहासन, राज भवन बहुमूल्य विलास-सामग्री सभी पड़े रहे। अब केवल यही आशा थी कि फ्रेंचसेनापति मान्स्योरलो साहब से मिलकर एक बेर फिर मुसल्मानों की स्वाधीनता रक्षा करें।

इसी आशा पर राजधानी छोड़कर पटनाकी ओर को चल दिया। जिसके अत्याचारों के कारण समग्र बँगाल, बिहार

श्रौर उड़ीसा कांपता था, आज वही अपराधियों की तरह बन्दी होनेके भयसे भागा जा रहा है।

दो पहर का समय है। कोई घरसे बाहर निकलने को हिम्मत नहीं करता है। परन्तु ऐसे समय में बंगाल, बिहार श्रौर उड़ीसा का नवाब सूर्य की तीव्र किरणें माथे पर लिये नावपर चला जा रहाहै। सूर्यकी गरमीसे देह जली जाती है। किन्तु इस कष्टसे भी वह विचलित नहीं हुआ। क्योंकि यदि अपना कष्ट कहेगा,तो पत्नी लुत्फुन्निसाको दुःख होगा। इसी भय से असीम सहिष्णुता का आश्रय लेकर स्थिर हो रहा है, परन्तु दारुण कष्टसे वह मृतप्राय हो गया है।

वह कुछ नहीं कहता है, परन्तु पतिप्राणा लुत्फुन्निसा स्वामी की अवस्था जानती है। उसने एक लम्बी सास खींच कर कहा,"हे भगवन्! क्या तुम्हारी यही इच्छा थी! यदि अन्तमें इतना ही कष्ट देना अभीष्ट था तो बङ्गाल, बिहार श्रौर उड़ीसाका सिंहासन ही क्यों दिया? जिसने जन्मभर में सुखके सिवाय दुःख का कभी मुख भी न देखा था,उसको आज ऐसी दुर्गति क्यों? यह कह कर वह फूट फूट कर रोने लगी। उसकी आंखोंसे शोकाश्रु आज पहिली ही बार निकले थे।

मनका दुःख मन ही में रखकर, पतिप्राणा लुत्फुन्निसाने अपने दुपट्टे से सिराज के सिर पर छाया कर ली, श्रौर रूमाल से पसीना पोंछा। अपना उसको कुछ भी ध्यान नहीं था। पास में स्नेह की पुतली पांच वर्षकी कन्या बैठी थी, उसकी श्रोर

भी कुछ ध्यान न था। सतीका ध्यान था, केवल पतिकी ओर। सतीके सिवाय पतिका मर्म और कौन जाने ?

इसी तरह बिना अन्न पानीके दो दिन कट गये, सब लोग भूख प्यास से अधीर हो उठे। साथमें अर्थ की कमी नहीं थी, परन्तु राज्यभ्रष्ट सिराज का इतना साहस न होता था, कि किनारे पर उतर कर कुछ खाद्य वस्तु क्रय करें।

शेषमें नौका राजमहल पहुंची। वहां एक मसजिद के फ़क़ीरका आश्रय लिया। परन्तु वह फ़क़ीर सुन चुका था कि, जो कोई सिराज को पकड़ेगा उसको भरपूर इनाम मिलेगा। फ़क़ीरने देखते ही नवावको पहिचान लिया और आश्रय देने के बहाने उसको अपनी मसजिद में ठहराकर, मीरकासिम से कहला भेजा कि नवाब को मैंने पकड़ रक्खा है।

सिराजुद्दौला को क्या मालूम था, कि चारों ओर उसके पकड़ने को लोग फिर रहे हैं। वह निश्चिन्त होकर मसजिद में ठहर गया था, इतने ही में मीरकासिम और मीर दाऊदने आकर उसको क़ैद कर लिया और सेनाके साथ मुर्शिदाबाद को भेज दिया। मुर्शिदाबादमें मीरजाफर सिंहासन पर बैठाया जा चुका था। उसके आदेशसे सिराजुद्दौला वन्दीरूप से रक्खा गया। मीरजाफ़रने आज्ञा दे दी, कि सिराजुद्दौला सामान्य वन्दियोंकी तरह न रक्खा जाय, पूरी खातिरसे रहे। परन्तु मुहम्मदबेग नामक एक व्यक्ति ने, जिसके साथ सिराजने बड़ा असद्व्यवहार किया था, अपना पुराना वैर निकालनेका

भारतीय वीरता

लेखक—

श्रीरजनीकान्त

हिन्दी पुस्तक एजेन्सीमाला—२०

भारतीय वीरता

लेखक

रजनीकान्त गुप्त

अनुवादक

वैद्यनाथ सहाय

प्रकाशक

हिन्दी पुस्तक एजेन्सी

१२६, हरिसन रोड,

कलकत्ता।

प्रथमवार]　　श्रावण १९८०　　[मूल्य १॥)

प्रकाशक—

बैजनाथ केडिया

प्रोप्राइटर

हिन्दी पुस्तक एजेन्सी

१२६, हरिसन रोड, कलकत्ता

जगदीशनारायण तिवारी द्वारा

मुद्रित—

"वणिक् प्रेस"

१, सरकार लेन, कलकत्ता

निवेदन

प्रायः हजार वर्षोंसे भारत विदेशियों द्वारा दासताकी कठिन बेड़ीमें जकड़ा हुआ है। इसका मूल कारण यही है कि हमने अपनी सभ्यता, प्रतिष्ठा, गौरव, धैर्य और बाहुबल खो दिया है। आज हम पराधीनताके वायु-मण्डलमें सांस लेते लेते इस अन्धकारमें पड़े हैं कि आत्मसम्मानका गौरव लेशमात्र भी नहीं रहा। हम विदेशी सभ्यता, विदेशी भाषा, विदेशी रहन-सहन और विदेशी वीरताको बड़े गौरवकी दृष्टिसे देखते हैं। परन्तु अपनी जन्मभूमिकी कीर्त्ति-कथा, अपने देशके उत्थान और पतनका मर्मभेदी हाल, अपने यहांके प्राचीन गौरवकी कथायें सुनने और जाननेकी चेष्टा नहीं करते। भारतीय गौरवकी वृद्धि हो इसीलिये मैं **श्रीयुत रजनीकान्त गुप्त** कृत 'आर्यकीर्ति' नामक बङ्गला पुस्तकके आधारपर यह "**भारतीय वीरता**" बड़ी सरल और ओजपूर्ण भाषामें लिखाकर इसकी सभी कथायें आपकी भेंट कर रहा हूं। बगला भाषामें इस पुस्तकका बड़ा आदर हुआ है। इसकी प्रायः १६, १७ आवृत्तियां हो चुकी हैं। आशा है कि हिन्दी-भाषा-भाषी भी इसका समुचित आदर करेंगे। इस पुस्तकको चित्र इत्यादि देकर जहां तक हो सका सुन्दर बनानेकी चेष्टा की गयी है। खासकर बालक और बालिका-पाठशालाओंके लिये तो यह एक बहुतही उपयोगी पुस्तक है।

विनीत—

—प्रकाशक

चित्र-सूची

विषय-सूची

संo विषय

महाराणा प्रतापसिंह।

BANIK PRESS CALCUTTA

भारतीय वीरता

"महाराणा प्रतापसिंहके जीवनकी कुछ बातें"

आज विक्रमाब्द १६३२ को श्रावणी सप्तमी तिथि है। आज मेवाड़के राजपूत गण "स्वर्गादपि गरीयसी" जन्मभूमिके लिये प्राण देनेको तैयार हैं। सम्राट् अकबरकी असंख्य सेना राजा मानसिंहके साथ मेवाड़पर अधिकार प्राप्त करनेके लिये आ गयी है। मुगल सूर्य्यवंशमें कलंककी कालिमा लगाना चाहते हैं। मेवाड़के श्रेष्ठ वीर प्रतापसिंह आज इस वंशको अकलंकित रखनेके लिये प्रस्तुत हैं। सच्चे क्षत्रिय वीरने आज सच्चे क्षत्रियत्वके साथ गौरवरक्षाका संकल्प किया है। चिरस्मरणीय हल्दीघाटपर आशाभरोसाके एकान्त भाजन बाईस हजार वीर राजपूत एकत्र हो गये हैं। प्रतापसिंह इन्हीं बाईस हजार राजपूतोंके सेनापति बनकर पराक्रमी मुगलोंके गतिरोधकी चेष्टा करते हैं।

हल्दीघाट एक पर्व्वतीय स्थान है। उसके उत्तर, पश्चिम तथा दक्षिण, प्रायः सभी ओर बड़े बड़े पर्व्वत उन्नत भावसे खड़े हैं। यह स्थान पर्व्वत, वन तथा छोटी छोटी नदियोंसे घिरा हुआ है। प्रतापसिंहने इन्हीं पर्व्वतोंके आश्रयमें रहकर मुगलोंका सामना करना ठीक समझा। हल्दीघाटके युद्धका दिन राजपूतों-के लिये एक बड़े ही उत्सवका दिन है। राजपूतोंने इस महो-त्सवसे मत्त होकर अपने प्राणोंको कुछ भी नहीं समझा। वे महोत्सवके महानन्दको अनुभव करते हुए चिरस्थायिनी निद्रा-देवीके अङ्कशायी हुए। इस महोत्सवमें वीर-श्रेष्ठ राणा प्रताप-सिंह सबसे आगे थे। वह पहले राजा मानसिंहकी ओर दौड़े परन्तु वह असंख्य मुगल सेनाओंके बीचमें था। प्रताप उस सैन्यको हटा नहीं सके। उन्होंने गम्भीर स्वरसे मानसिंहको "कापुरुष, राजपूत कुलाङ्गार" कहकर अपमानित किया। इसके पश्चात् प्रताप निर्भय होकर युद्ध करने लगे। उन्होंने तीन बार मुगल सेनाओंके बीचमें प्रवेश किया। तीनों बार उनका जीवन संकटसे भरा था। राजपूत वीरोंने अपने प्राणपर खेलकर तीनों बार उन्हें आसन्न मृत्युसे बचाया। राणा प्रतापकी रक्षाके लिये वे लोग अपने प्राण तुच्छ समझते थे। यद्यपि राणा प्रतापको ७ जगह गहरी चोटें लगी थीं तथापि वे निराश नहीं हुए, उन्नत भावसे शत्रु-सैन्यमें प्रवेश कर गये। राजपूतोंने फिर भी उनकी रक्षाकी चेष्टा की। उनके अनेकों वीर चिरकालके लिये वीर शय्यापर सो गये। मेवाड़के गौरवस्वरूप प्रायः सभी राजपूत वीर हाथमें करवाल

धारण किये हुए मेवाड़की रक्षाके निमित्त चिरकालके लिये निद्राभिभूत हो गये। राणा प्रतापसिंहके मस्तकपर मेवाड़का राजछत्र शोभा पा रहा था। इसी छत्रको लक्ष्यकरके मुगल सेना चारों ओरसे आक्रमण कर रही थी। इसी छत्रके कारण प्रतापका जीवन तीन बार सङ्कटापन्न हुआ परन्तु उन्होंने इस राज-लक्षणको नहीं छोड़ा। इस समय प्रतापका उद्धार असाध्य प्रतीत होने लगा। इस समय एक क्षत्रिय वीरने असीम साहस, असामान्य वीरता तथा ऐसी राजभक्ति दिखलाई कि जिसकी समता संसारके इतिहासोंमें कम दिखाई पड़ती है। सादरीके झाला सरदार अनेक शस्त्राघातोंकी अवहेला करते हुए अपनी सेनाके साथ महाराणाके निकट क्षणभरमें उपस्थित हो गये। उन्होंने राजछत्रको अपने मस्तकपर धारण कर लिया। इसी छत्रको देखकर मुगल सेना मानसिंहको ही प्रताप समझकर वेगसे उनकी ओर झपटी। इस तरह मुगल सेना मानसिंहपर टूट पड़ी और प्रतापके प्राणकी रक्षा हुई। किन्तु मानसिंह लौट-कर नहीं आये। वे अपने स्वामीके लिये असीम साहसके साथ युद्ध करके अपनी सेनाके साथ सदाके लिये रणभूमिमें सो गये। उस समय मुगल सेना भी राजपूतोंकी वीरता तथा उत्साहकी प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकी। मुगल सेना टिड्डीकी नाईं चारों ओर छा गयी। राजपूतोंको जयलाभ नहीं हुआ। चौदह हजार राजपूतोंके रक्तसे हल्दीघाट रंग गया। प्रताप जयलाभकी आशा छोड़कर रणस्थलसे चले गये।

इसी प्रकार हल्दीघाटके युद्धकी समाप्ति हुई। चौदह हजार वीर राजपूतोंने मेवाडकी रक्षाके लिये प्रसन्नताके साथ प्राण-विसर्जन किया। हल्दीघाट अत्यन्त पवित्र युद्धभूमि है। कवियोंकी रसमयी कवितासे इसका पवित्र नाम चिरस्मरणीय रहेगा और इतिहास-लेखकोंके पक्षपातरहित वर्णनसे इसका नाम चिरकालतक सुवर्णवर्णाङ्कित रहेगा। प्रतापसिंह अनन्त कालतक वीरेन्द्र समाजमें पूजित रहेंगे तथा उनकी आत्मा अमर-लोकमें स्थान पावेगी। प्रतापसिंहने अकेले चेतक नामक नीले तथा तेजस्वी घोड़ेपर सवार होकर रणस्थलको छोड़ा। यह घोड़ा राजस्थानके इतिहासमें प्रतापहीकी तरह प्रसिद्ध है। जिस समय दो मुगल सरदारोंने प्रतापका पीछा किया उस समय चेतकने बड़ी चतुरता तथा तीव्रताके साथ एक झरने-को पार करके अपने स्वामीके प्राणकी रक्षा की। प्रतापकी नाईं चेतक भी युद्धस्थलमें घायल हुआ था। घायल अश्व घायल स्वामीको लेकर जा रहा था कि अकस्मात् प्रतापको पीछेसे किसी दूसरे घोड़ेके पैरकी आहट मालूम पड़ी। पीछे फिरकर देखा कि उनका सहोदर भाई शक्त आ रहा था। प्रतापने क्षत्रिय-कुलकलंक सहोदरको देखकर क्रोधसे घोड़ेको रोक लिया। परन्तु शक्तने किसी प्रकारका विरुद्धाचरण नहीं किया। उन्होंने हल्दीघाटमें अपने ज्येष्ठ भ्राताके अलौकिक साहसको देखा था, उन्हें स्वदेशियोंकी स्वदेश-हितैषिताका परिचय भली भांति मिल चुका था। इस अपूर्व दृश्यको देखकर उन्हें अत्यन्त आत्म-

ग्लानि हुई थी। वे क्षत्रियोंके रक्तको अब अधिक कलंकित नहीं कर सके। उनके दोनों नेत्रोंसे अश्रुधारा बह चली और वे अपने भाईके पैरोंपर गिर पड़े। प्रताप उनके पिछले दोषोंको भूल गये। बहुत दिनोंकी शत्रुता जाती रही। प्रतापने स्नेहके साथ शक्तको आलिंगन किया। इस समय भाई भाईने मिलकर मेवाड़के उद्धारकी दृढ़ प्रतिज्ञा की। यहींपर चेतकने अपना प्राण विसर्जन किया। प्रतापने अपने प्रियतम घोड़ेके स्मरणार्थ वहां एक मन्दिर निर्माण करा दिया जो "चेतकका चबूतरा" नामसे प्रसिद्ध है।

१५७६ ई० के जुलाई मासमें यह पवित्र हल्दीघाट मेवाड़के गौरवस्वरूप क्षत्रिय वीरोंके रक्तसे रँग गया। इधर मुगल सेना विजयिनी होकर रणक्षेत्रसे चली गयी। कमलमीरका दुर्ग और उदयपुर शत्रुओंके हाथ लगे। राणा प्रताप अपने परिवारके साथ एक पर्व्वतसे दूसरे पर्व्वत, एक जंगलसे दूसरे जंगल तथा एक गुफासे दूसरी गुफामें छिपकर मुगल सेनासे अपनी प्राणरक्षा करने लगे। कई वर्ष बीत गये परन्तु प्रतापकी विपत्तिकी समाप्ति नहीं हुई।

प्रत्येक वर्ष नये नये कष्ट प्रतापके सम्मुख उपस्थित होने लगे। परन्तु प्रताप अचल रहे, उन्होंने मुगलोंकी अधीनता स्वीकार नहीं की। शनैः शनैः मेवाड़का आकाश और भी अन्धकारमय दीख पड़ने लगा। पराक्रमी शत्रुओंने धीरे धीरे कई स्थानोंमें अपना अधिकार जमा लिया। राणा प्रताप तौभी अचल रहे और बप्पारावके रक्तको कलंकित नहीं किया। इस समय

प्रतापकी ऐसी दुरवस्था हो गयी थी कि भीलोंने उन्हें निरापद स्थानमें ले जाकर उन्हें भोजन दे उनके प्राणकी रक्षा की।

प्रतापके असाधारण उत्साह तथा कष्टको सुनकर शत्रुका भी हृदय पिघल जाता है। दिल्लीके एक प्रधान कर्मचारीने उनकी देश-हितैषितापर मोहित होकर उन्हें निम्नलिखित भावकी एक कविता भेजी थी।

"सांसारिक वस्तुयें नश्वर हैं। भूमि-सम्पत्ति नष्ट हो जायगी परन्तु बड़ोंका धर्म कभी भी नहीं लोप होगा। प्रतापने सम्पत्ति और भूमिको त्याग दिया परन्तु कभी भी सिर नीचा नहीं किया। भारतके राजाओंमें केवल उन्होंने ही अपने वंशकी मर्य्यादाकी रक्षा की।" ऐसे प्रताप जिनकी प्रशंसा विधर्मी तथा विपक्षी भी सदा किया करते थे, आज जंगल जंगल मारे मारे फिर रहे हैं। प्राणप्रिय स्त्री तथा संतानका कष्ट कभी कभी उन्हें पागल बना देता था। एक दिन उन्होंने पांच बार भोजनकी सामग्री इकट्ठी की परन्तु सुविधा नहीं होनेके कारण उन्हें पांचों बार उन सामग्रियोंका परित्यागकर पर्व्वतकी ओर भाग जाना पड़ा।

एक समय उनकी स्त्री तथा पतोहूने घासके बीजकी कुछ रोटियां बनायीं। उन लोगोंने आधा भाग खाकर आधा भाग दूसरी शामके लिये रख दिया था। संयोगवश एक वनबिलार बची हुई रोटी को ले गया। रोटीके ले जानेसे राणाप्रतापकी एक पुत्री कातर भावसे रो उठी। प्रताप वहांसे कुछ ही दूरपर पड़े पड़े अपनी अवस्थापर विचार कर रहे थे कि बालिकाके कातर

स्वरसे चौंक उठे। उन्होंने देखा कि रोटी एक वनबिलार ले जा रहा है और इसीसे बालिका कातर होकर रो रही है। जिस प्रतापने प्रसन्नताके साथ अपने प्रिय सहस्रों वीरोंके रक्त-स्रोतको प्रोच्छलित धारायें हल्दीघाटमें देखी थीं, जिस प्रतापने सहस्रों वीरोंको आत्मोत्सर्ग करते हुए बड़ी प्रसन्नताके साथ देखा था, जिस प्रतापने रणस्थलके भीषण आघातोंको आनन्दके साथ सहन किया था; आज वही प्रताप बालिकाके कातर स्वरको सुनकर स्थिर नहीं रह सके। स्नेहसे पालित बालिकाके कातर स्वरको सुनकर उन्हें बड़ा ही कष्ट हुआ। उन्हें मालूम हुआ जैसे सैकड़ों कालभुजङ्गोंने एक बार ही काट खाया हो। प्रताप और यातना नहीं सह सके। उन्होंने अकबरके यहां अपना अभिप्राय कहला भेजा।

प्रतापने अधीनता स्वीकार की, यह बात सुनकर अकबर बहुत ही प्रसन्न हुआ और नगरमें उत्सव मनानेकी आज्ञा दे दी गयी। प्रतापने जिस पत्रको अकबरके पास भेजा था उसे बीकानेरके राजाके छोटे भाई पृथ्वीराजने देखा। उनका हृदय स्वजाति-प्रियता तथा स्वजाति-हितप्रियतासे लबालब भरा हुआ था। उनकी प्रतापमें बहुत श्रद्धा और भक्ति थी।

प्रताप दिल्लीश्वरकी अधीनता स्वीकार करेंगे, यह सुनकर उन्हें बहुत ही कष्ट हुआ। पृथ्वीराज अपनेको अब रोक नहीं सके और निम्नलिखित भावकी कई कवितायें उनके पास भेजीं—

"हिन्दू जातिकी आशा भरोसा हिन्दुओंपर ही निर्भर है।

पर हमलोगोंके सरदारोंमें वह वीरत्व नहीं, हमलोगोंकी स्त्रियों-में वह सतीत्व नहीं। यदि प्रताप नहीं होते, तो अकबर सभी-को एकसा कर देता। हमारे जातीय बाजारमें अकबर एक व्यव-सायी है। उसने सभीको खरीद लिया परन्तु राणा उदयसिंहके पुत्रोंको नहीं खरीद सका। सभी नवरोजाके बाजारमें अपमानित हुए। परन्तु हमीरके वंशजोंको आजतक यह अपमान नहीं सहन करना पड़ा। संसार कहता है कि राणा प्रतापका अवलंबन पुरुषत्व और तलवार है। वे इन्हींके सहारे क्षत्रिय-गौरवकी रक्षा कर रहे हैं। बाजारका व्यवसायी बहुत दिनतक जीवित नहीं रहेगा। एक दिन इस लोकसे अवश्य ही चला जायगा। उस समय क्षत्रियत्वका बीज इस भूमिपर बोनेके लिये सभी राणा प्रतापके निकट जायंगे। इस बीजकी रक्षाके निमित्त सभी राणा प्रतापका मुख देख रहे हैं।"

पृथ्वीराजका यह उत्साहवर्द्धक वाक्य सहस्रों राजपूतोंके बराबर बलकारक था। इसने प्रतापके मृत शरीरमें जीवनशक्ति संचालित की, तथा फिर उन्हें स्वदेशगौरवका स्मरण दिलाकर महान कार्यके लिये उत्तेजित किया। प्रतापने दिल्लीश्वरके निकट अधीनता स्वीकार करनेका संकल्प छोड़ दिया। इस समय ऐसी घोर वृष्टि हो रही थी कि राणा पर्वतकी कन्दराओंमें नहीं रह सके, मेवाड़को छोड़कर मरुभूमि होते हुए सिन्धु नदीके तट-पर जानेकी इच्छा की। इस संकल्पकी सिद्धिकी इच्छासे वे अपने परिवारवर्ग तथा मेवाड़के कई विश्वस्त राजपूतोंको साथ लेकर

[रु]प्रान्तमें पहुंचे। इसी समय प्रतापका मन्त्री अपने पूर्वजों-
[क]ा समस्त धन लेकर उनके सम्मुख उपस्थित हुआ। यह धन
[इ]तना था कि उससे पचीस हजार व्यक्तियोंका भरणपोषण
[ब]ारह वर्षतक भली भांति हो सकता था। इस कृतज्ञताके दृष्टान्त-
से प्रतापका हृदय और भी साहससे भर गया। वे फिर
भी अपने अभीष्ट साधनके लिये पूर्ण उत्साहके साथ उद्यत हो
गये। शीघ्र ही उनके सेवकगण भी आ उपस्थित हुए। प्रताप
उन लोगोंको लेकर अर्वलीकी चोटीपर पहुंचे। मुगल सेनापति
शाहवाजखां अपनी सेनाके साथ देवी नामक स्थानमें ठहरा
था। प्रतापने तीव्रताके साथ उसपर आक्रमण किया। इस युद्ध-
में प्रतापको जयलाभ हुआ। शाहवाजखां मारा गया। धीरे
धीरे कमलमीरका दुर्ग तथा उदयपुर राजपूतोंके हाथमें आ गया।
धीरे धीरे चित्तौर, अजमेर और मङ्गलगढ़को छोड़कर सारा
मेवाड़ प्रतापके अधीन हो गया। यह विजय-सम्वाद अकबरके
कानतक पहुंचा। दश वर्षके कठिन परिश्रमके पश्चात् बहुत धन
व्यय करके पराक्रमी मुगल सेनाओंने जिन स्थानोंपर अपना
अधिकार जमाया था वह एक ही युद्धमें प्रतापके हाथ लग गया।
इसके पश्चात् मुगल सैन्यको मेवाड़में आनेकी हिम्मत नहीं पड़ी।
इस अवस्थामें विजयी होनेपर भी प्रतापका शेष जीवन शान्तिसे
नहीं व्यतीत हुआ। पर्वतके शिखरपर खड़े होकर उन्होंने देखा तो
उनकी दृष्टि चित्तौरके दुर्गकी चहारदिवारीपर पड़ी। उसे देख-
कर वे यातनासे अधीर हो गये। जिस चित्तौरको बप्पारावने

स्थापित किया था, जिस चित्तौरकी स्वाधीनताको रक्षाके लिये राजपूत-कुल-गौरव समरसिंहने युद्ध-वेष धारणकर पृथ्वीराजके साथ दृषद्वती नदीके तटपर देहत्याग किया था, जिस चित्तौरकी रक्षाके लिये जयमल और पुत्तने पवित्र युद्धस्थलमें प्रसन्न चित्त और शान्तहृदय होकर आत्मोत्सर्ग किया था, आज वही चित्तौर अन्धकारमय दीख पड़ता है। प्रतापके हृदयमें इसी तरहकी चिन्ता, इसी तरहकी कल्पना तथा ऐसी ही विचार-तरंगें उठा करती थीं।

इन्हीं चिन्ताओंके कारण प्रताप तरुणावस्थामें ही वृद्धसे मालूम होने लगे। इस दुर्बलताके कारण असाध्य रोगने उन्हें आ पकड़ा। प्रताप और उनके सरदारगण ऐसी दुरवस्थामें वृष्टिसे रक्षित रहनेके लिये वहींपर एक कुटी बनाकर रहने लगे। इसी कुटीमें प्रतापका शेष जीवन व्यतीत हुआ। प्रतापको अपने पुत्र अमरसिंहसे कुछ भी आशा नहीं थी। वे जानते थे कि कुमार एक व्यसनी व्यक्ति है, उससे राज्य-रक्षाका कष्ट सहन नहीं हो सकता। वे अपने पुत्रकी विलासप्रियतासे बड़े ही दुःखी थे। इसी कारण, अन्तिम समयमें भी वे शान्ति नहीं पा सके। इसी मनोवेदनाके कारण प्रताप अन्तिम समयमें पागलसे हो रहे थे। उनकी यह दशा देखकर एक सरदारने पूछा, महाराज, आपके प्राण शान्तिसे नहीं निकलते। प्रतापने उत्तर दिया:— |

"स्वदेश स्वाधीन बना रहेगा ऐसी प्रतिज्ञा किसी वीर व्यक्ति-

से सुननेके लिये मेरे प्राण अभीतक ठहरे हुए हैं।" कुटीकी ओर लक्ष्य करके तथा अपने पुत्रकी विलासप्रियताका स्मरण करके उन्होंने कहा कि इस कुटीकी जगहपर बहुमूल्य विलास-प्रासाद बनेगा और हम सबोंने मेवाड़की अधिकार-रक्षाके लिये जो आत्मोत्सर्ग किया है वह इस कुटीके साथ विलुप्त हो जायगा।

सरदारोंने उनके ये वाक्य सुनकर शपथ खायी और कहा-"जबतक मेवाड़ स्वतन्त्र नहीं होगा तबतक यहां कोई प्रासाद नहीं बनेगा। यह सुनकर प्रतापको कुछ शान्ति मिली, बुझते हुए दीपक-की भाँति उनका मुख-मण्डल उज्ज्वल हो गया। मेवाड़की स्वाधीनताकी रक्षा की जायगी, यह बात सुनकर उन्होंने शान्ति-से प्राण-त्याग किया। इस तरह स्वदेश-प्रिय प्रताप परलोकको गये। उपर्युक्त गुणोंके कारण ही प्रताप आजतक प्रत्येक राज-पूतके हृदयमें विराजते हैं। प्रतापसिंहने स्वाधीनताकी रक्षाके लिये तथा स्वदेशोद्धारके लिये प्रबल शत्रुसे लड़कर जो कार्य्य किया यह राजस्थानके इतिहासमें चिरकालतक स्वर्णाक्षरोंमें लिखा रहेगा। कई शताब्दियां व्यतीत हो गईं पर आजतक यह वृत्तान्त संसारमें प्रख्यात है। इस गौरव-कहानीको सुनकर आज भी एक सच्चे राजपूतका हृदय तेजस्वितासे भर जाता है, ना-ड़ियोंमें रक्तका संचार होने लगता है तथा आंसुओंकी धारा बहने लगती है। सारांश कि प्रतापसिंहका कार्य्य आज-पर्य्यन्त राजस्थानके इतिहासमें अद्वितीय गौरव और अद्वितीय महत्व-का समझा जाता है। किसी व्यक्तिने भी राजवंशमें उत्पन्न

होकर, इस तरह सौभाग्य और सम्पत्तिका अधिकारी होकर, स्वदेशके लिये इतना कष्ट नहीं सहा। कोई भी व्यक्ति स्वदेश-हितैषितासे उन्मत्त होकर उसकी स्वाधीनताकी रक्षाके लिये जंगल जङ्गल और पर्व्वत पर्व्वत नहीं मारा फिरा। भारत महासागर तथा हिमालय पर्व्वतके नष्ट हो जाने तक भी उनकी कीर्त्ति इस संसारमें बनी रहेगी।

राजस्थानमें मेवाड़ भूमि वस्तुतः वीरप्रसविनी है। मेवाड़के राणा कुम्भ यथार्थमें बड़े वीर पुरुष थे। शत्रुके राज्यमें किसी प्रकारसे विजय पताका उड़ाना ही सच्चे वीरका लक्षण नहीं है। देश, काल और पात्रका विचार न कर जहां तहां तलवार निकालना भी सच्चे वीरका स्वभाव नहीं है। ऐसे वीर जब किसी बलिष्ठ व्यक्तिको देखते हैं, उस समय एक बलिष्ठ समाजके नेता बनकर गुप्त रीतिसे उस व्यक्तिका नाश करते हैं। कुसमयमें अचानक अत्याचार द्वारा उसे डराते हैं। वे न्याय-उपदेश नहीं सुनते तथा नर-रक्तसे चारों दिशाओंको रँग देते हैं। उस समय मैं उन्हें सच्चा वीर कहनेके बदले नीच तथा दुष्ट कहूंगा। सच्चे वीर इस प्रकारकी नीचता द्वारा अपना उत्थान नहीं चाहते। उनका हृदय सदा उच्च भावोंसे पूर्ण रहता है। जिस प्रकार वे युद्ध-स्थलमें अपनी वीरताका परिचय देते हैं उसी प्रकार अन्य स्थानोंमें अपनी कोमलताका भी परिचय देकर सबके प्रीति-भाजन होते हैं। वे किसी प्रकार अपनी साधनासे विचलित नहीं होते तथा किसी प्रकार उनका

महत्व नीचताके कीचड़में नहीं फंसता। घोरसे घोर विपत्तिमें भी वे न्याय तथा कर्त्तव्यके पथसे विचलित नहीं होते। सच्चे वीर नियमपूर्वक अपनी धर्मरक्षाके लिये सदा प्रस्तुत रहते हैं। मेवाड़के राजपूत इसी प्रकारके वीरपुरुष थे। इन लोगोंने जिस प्रकारकी वीरताका परिचय दिया है उस प्रकारकी वीरता दुर्दान्त पाठान, विजयाभिलाषी मुगल तथा अंग्रेज सेनापति भी नहीं दिखला सके।

यदि शाहबुद्दीन गोरी धूर्त्तता न करता तो दृषद्वती नदीके तटपर क्षत्रियोंके रक्तसागरमें भारतका सौभाग्य-सूर्य्य इतनी शीघ्रतासे अस्त नहीं होता। यदि अकबर बादशाह गुप्त रीतिसे जयमलकी हत्या न कराता, तो चित्तौड़ राज्य मुगलोंके हाथों न जाता और न चित्तौड़की सहस्रों ललनाएं अग्निकुण्डमें प्राण ही त्यागतीं। यदि मीरजाफर तथा जगतसेठ लार्ड क्लाइवके सहायक न होते तो पलासीके युद्धके बाद बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा ब्रिटिश कंपनीके अधिकारभुक्त होना कठिन था। भारतवर्षमें अनेक वीर अपने वीरत्वको कलंकित कर गये हैं परन्तु राजपूतोंकी वीरतामें किसी प्रकारके कलंककी कालिमा नहीं लगी है। कृतज्ञता, आत्मगौरव तथा विश्वस्तता राजपूतोंके मुख्य धर्म हैं।

किसी राजपूतसे पूछिये कि संसारमें सबसे घोर पाप क्या है? वह शीघ्र ही उत्तर देगा कि अकृतज्ञता और अविश्वास ही सबसे घोर पाप है। राजपूतोंका कथन है कि अकृतज्ञ और

अविश्वासी मनुष्य यमराजके यहां असह्य क्लेश भोगता है। मैं यहां मेवाड़के उस पुरुषका पवित्र चरित्र वर्णन करता हूं जिससे ज्ञात होगा कि वीरत्वकी रुद्र मूर्त्ति और माधुर्यकी कमनीय कान्ति एक स्थानमें किस भांति मिलती है। राणा कुम्भका चरित्र इन्हीं उच्च गुणोंसे परिपूर्ण है। राणा कुम्भने १४१९ ई०में मेवाड़के राज्यसिंहासनको सुशोभित किया था। उक्त वीर मेवाड़के इतिहासमें साहस, पराक्रम तथा शासन-दक्षताके लिये प्रसिद्ध है।

राणा कुम्भने अपने पचास वर्षके शासन-कालमें अनेक शुभ कार्य्य किये हैं। परन्तु वे अधिक कालतक शान्तिसुख नहीं भोग सके। देशकी स्वाधीनताके रक्षणार्थ उन्हें बलिष्ठ शत्रुसे युद्ध करना पड़ा। खिलिजीके वंशजोंको शक्तिके ह्रास होते ही कई मुसलमान सूबेदार दिल्लीश्वरकी अधीनता त्यागकर स्वाधीन हो गये। इन लोगोंमें मालवा और गुजरातके सूबेदार मुखिया गिने जा सकते हैं। राणा कुम्भके सिंहासनारूढ़ होनेके समय ये दोनों राजा ही पराक्रमशाली थे। १४४० ई०में इन दोनों राजाओंने बहुत बड़ी सेना लेकर मेवाड़पर आक्रमण किया। राणा कुम्भ एक लाख सेना तथा १४०० हाथियोंका एक दल लेकर अपने देशकी रक्षाके लिये प्रस्तुत हुए। मेवाड़ तथा मालवा राज्यके बीचकी भूमिमें युद्ध हुआ।

इस युद्धमें राणा कुम्भकी जीत हुई। इससे वीर-प्रसविनी मेवाड़की स्वाधीनता अटल रही। मालवाके अधिपति कुम्भके

हाथों बन्दी हुए। इसी स्थानपर महापराक्रमशाली कुम्भके पवित्र चरित्रकी माधुर्यताका विकास पाया जाता है। कुम्भने पराजित शत्रुके प्रति असभ्य व्यवहार नहीं किया। वे वीर धर्मके अनुसार युद्धमें प्रवृत्त थे। विजयकी आशासे पूर्ण पराक्रमके साथ लड़ते रहे। विजयी होनेके पश्चात् भी उन्होंने वीर धर्मकी अवहेलना नहीं की। कुम्भने सच्चे वीरकी तरह पराजित तथा शरण्णापन्न शत्रुको सम्मानित किया। उन्होंने मालवाके राजाको कैदसे ही मुक्त नहीं किया वरन् उन्हें बहुत सा धन देकर मालवा भेज दिया। वीर पुरुषोंके चरित्र ऐसे ही महत्व और औदार्य्यपूर्ण होते हैं।

मेवाड़ने पन्द्रहवीं शताब्दीमें वीरत्वकी रक्षा की थी। राजपूतोंका यह असामान्य चरित्र संसारके समस्त वीर पुरुषोंके लिये शिक्षाप्रद है।

दोकिरका युद्ध

मेवाड़के अद्वितीय वीर राणा प्रतापसिंह अब इस संसारमें नहीं हैं। उनकी अनन्त कीर्तिकी कहानी आज भी राजस्थानमें चारों ओर सुनी जाती है। राजपूत लोग उनमें देवता-तुल्य श्रद्धा और भक्ति करते हैं। उनका बड़ा लड़का अमरसिंह उनकी जगह राज्य करता था। प्रतापसिंह जिस समय स्वाधीनताकी रक्षाके लिये जङ्गलों जङ्गलों मारे फिरते और अनेकों कष्ट सहते थे उस समय अमरसिंह भी उनके साथ था। आठ वर्षकी अवस्थासे ही अमरसिंह अपने पिताके साथ रहता था। इसीसे उसमें कष्ट सहने तथा परिश्रम करनेकी शक्ति आ गयी थी। पिताके साथ सदा कष्टमें ही रहनेके कारण वह बहुत उद्योगी हो गया था। स्वाधीनताके लिये पिताका स्वार्थत्याग देखकर वह भी स्वाधीनता-प्रिय हो गया था।

अमरसिंहको देखकर प्रतापसिंहको एकबार सन्देह हुआ कि वह राज्य-रक्षाका क्लेश नहीं सहन कर सकेगा, अतः उन्होंने कहा था,—"इस कुटीकी जगह बहुमूल्य प्रासाद बनेगा और हमलोगोंने जिस स्वाधीनताके लिये इतना कष्ट सहन किया है वह इसी कुटीके साथ लुप्त हो जायगी।" पिताके मरते समय-

की बात अमरसिंहके दिलमें गड़ गयी थी। अमरसिंह मेवाड़के सिंहासनपर बैठकर सच्चे राजधर्मका पालन करने लगे थे। प्रतापसिंहकी मृत्युके आठ वर्ष बाद मेवाड़का प्रधान वैरी अकबर मर गया। इन दिनों अकबर ऐसे ऐसे झंझटोंमें फसा रहा कि उसे मेवाड़पर आक्रमण करनेका अवसर ही नहीं मिला। अतः अमरसिंहको अपने पिताके वैरीके साथ नहीं लड़ना पड़ा। उस समय मेवाड़में चारों ओर शान्तिदेवीका राज्य था। अमरसिंह निर्विघ्न राज धर्मका पालन करता था। उसने राज्यशासनके नियम बनाये। राज्यकर निश्चय किया। उसने एक अट्टालिका बनवायी जो 'अमर महल'के नामसे प्रसिद्ध है। आज भी 'अमरमहल' राजस्थानके गौरवका कारण समझा जाता है।

अमरसिंह बहुत दिनों तक शान्तिसे नहीं रह सका, मुगलोंमें भी मेवाड़के जीतनेकी इच्छा थी। अकबरकी मृत्युके बाद उसका पुत्र जहांगीर दिल्लीके सिंहासनपर बैठा। चार वर्ष तक तो वह बलवाइयोंके दबानेमें लगा रहा परन्तु इसके बाद उसे राज्य बढ़ानेकी चिन्ता हुई। आर्य्यावर्त्तके प्राय सभी देश उसके अधिकारमें थे। छोटे २ राजा जो थे उन लोगोंने भी इसकी अधीनता स्वीकार कर ली थी। केवल मेवाड़ने ही इसकी अधीनता स्वीकार नहीं की। प्रात स्मरणीय प्रतापसिंहके पुत्र अमरसिंहने मुसलमानोंकी अधीनता स्वीकार कर वीर धर्मका अपमान करना उचित नहीं समझा। जहांगीर सबसे पहले इसी राज्यपर अधिकार प्राप्त करनेके लिये प्रस्तुत हुआ।

अनेकों युद्ध करके, असंख्यों रुपये खर्च करके एवं हजारों वीरोंको कटवाकर उसका पिता मेवाड़पर अपना अधिकार नहीं कर सका था। आज उसी राज्यको अधीन बनानेके लिये जहांगीर असंख्य सैनिकोंके साथ युद्ध-स्थलको चला।

इसी तरह मुगल सेना मेवाड़ नगरके सदर दरवाजेपर पहुंची। प्रतापसिंहके नहीं रहनेसे आज मेवाड़ अन्धकारमय मालूम पड़ता है। इसी अन्धकारमें कहीं कहीं आलोककी प्रभा नजर आती है। कुछ स्वाधीनता भक्त राजपूतोंने वीरताकी महिमाका परिचय देना उचित समझा। वे लोग प्राण देकर भी स्वाधीनताकी रक्षाके लिये तैयार हो गये। प्रतापसिंहके महामन्त्रको स्मरणकर इन लोगोंने स्वाधीनताकी रक्षाके लिये मुसलमानोंका सामना किया।

मेवाड़के इतिहासमें १६०८ ई० चिरस्मरणीय रहेगी। इसी समय मेवाड़के राजपूतोंने मेवाड़की स्वाधीनताकी रक्षाके लिये अपने प्राण विसर्जन किये। अमरसिंह सम्राट्की अधीनता स्वीकार करनेको तैयार था परन्तु मेवाड़के वीर राजपूतोंने अपनी महाप्राणताका परिचय देकर उसे दिल्ली सम्राट्के विरुद्ध खड़ा होनेके लिये विवश किया। साहली चन्दावत वीर प्रतापके पवित्र वाक्योंका स्मरण कर अन्यान्य वीरोंको भी युद्धके लिये उत्तेजित करने लगे। उनकी तेजस्विता देखकर अमरसिंह अपने अपने पहले संकल्पपर क्षोभ प्रकट करता हुआ युद्धके लिये अग्रसर हुआ। १६०८ ई० में मुगलोंके साथ देविर

नामक स्थानमें राजपूतोंकी लड़ाई हुई। मुगल सेना ज्योंही भीतर घुसी त्योंही साहसी राजपूत उससे भिड़ गये।

बहुत देरतक लड़ाई होती रही अन्तमें मुसलमान लोग हार गये। देविर नामक स्थानमें राजपूतोंको जय हुई और मेवाड़की स्वाधीनता बनी रही।

साहसी कन्वकी सहायतासे अमरसिंह इस युद्धमें विजयी हुआ था। तबसे इस वीर पुरुषके वंशज कन्वावत कहे जाने लगे। साहसी कन्वने एक समय अपनी वीरतासे वीर भूमिके गौरवकी रक्षा की थी। बलके मदमें मतवाले मुसलमान इसी वीरके पराक्रमसे पराजित हुए और उन्हें विवश होकर सन्धि करनी पड़ी।

वीर पुरुषकी सच्ची वीरता

मुगल-सम्राट् अकबरकी मृत्युके पश्चात् उसका पुत्र कुमार सलीम अपना नाम जहांगीर रखकर दिल्लीके रत्नसिंहासनपर बैठा। उसने सारे भारतवर्षपर अधिकार प्राप्त करनेकी चेष्टा की थी। उसका पिता जिस शक्तिसे गौरवान्वित था वह भी वैसा ही शक्तिशाली होनेके लिये यत्न करने लगा। पराक्रमी राजपूतोंके राज्यपर अकबरकी आंखें गड़ गयी थीं। मेवाड़के प्रातःस्मरणीय प्रतापसिंह मुगल सेनाओंसे देशके गौरव एवं इसकी स्वाधीनताकी रक्षा बहुत दिनोंतक कर चुके थे। जहांगीर प्रतापसिंहकी वीरता एवं राजपूतोंकी तेजस्विताके विषयमें भली भांति जानता था। इस बार वह पुण्यभूमि मेवाडकी पराधीनताकी बेड़ीसे जकड़नेके लिये अग्रसर हुआ। इस समय प्रतापसिंह स्वर्गमें राज्य करते थे। वीर भूमिमें अब प्रतापकी वह वीरता नहीं थी। यह सुयोग पाकर दिल्लीके सम्राट्ने चित्तौरके प्राचीन दुर्गको हस्तगत कर लिया। चित्तौराधिपति आत्मरक्षाके निमित्त पार्वत्य प्रदेशके निर्जन जङ्गलमें चले गए। राज्यकी अन्तिम सीमापर अन्तल नामक एक दुर्ग था।

सम्राट्ने इस दुर्गपर भी अपना अधिकार जमा लिया।

इतना होनेपर भी राजपूत वीर हतोत्साह नहीं हुए। जिस स्वाधीनताके गौरव, स्थिर प्रतिज्ञताकी महिमा एवं वीरत्वकी गरिमासे राजपूत लोग एक समय प्रसिद्ध थे वही गौरव, वही महिमा और वही गरिमा आज भी राजपूतोंके नस नसमें पैठी हुई है। चित्तौरके अधिपतिने प्राचीन स्वाधीनताकी रक्षाके निमित्त दृढ़ प्रतिज्ञा की। राजपूतानाके राजपूत वीर अपने नष्ट गौरवके उद्धारके निमित्त प्राणपणसे तैयार हो गये। इसी समय राजपूतानाके एक राजपूत वीरने अपनी महाप्राणताका परिचय दिया और तेजस्विताके साथ प्राण त्याग करके सदाके लिये कीर्त्तिस्तम्भ स्थापित कर दिया।

मेवाड़के राजपूतगण दुर्गम पार्वत्य प्रदेशमें एकत्रित हुए, राणाने पराक्रमी शत्रुको परास्त करनेके निमित्त उन्हीं लोगोंसे सम्मति ली। इस समय सब लोगोंने अपनी वीरता दिखलानेके निमित्त दृढ़ प्रतिज्ञा की। उनकी पवित्र भूमि शत्रुओंके अधिकारमें है, उनके दुर्गपर शत्रुकी पताका उड़ रही है। शत्रुके भयसे वे पार्वत्य प्रदेशके आश्रयमें हैं। यह उनके लिये सह्य नहीं था वे इस समय मिलकर शत्रुसे बदला लेनेकी चेष्टामें लगे। वीर भूमिके साहसी एवं रणकुशल चन्दावत* और शक्तावत† राजपूत भी एकत्रित हुए।

---

* प्राचीन कालमें चित्तौरके एक राजाके ज्येष्ठ पुत्रका नाम था चन्दा। इसीसे उसको सेनाके वीर चन्दावत कहलाते थे।

† राणा उदयसिंहके पुत्रका नाम था शक्त। उन्हींके दलके वीर शक्तावत कहलाते थे।

इस समय वे लोग अपने पूर्वपुरुषोंकी तेजस्विताले उत्तेजित होकर अपने स्वामीकी आज्ञा पालन करनेके निमित्त प्राणपण से तैयार थे। चन्दावत वीरोंने सेनाके अग्रभागमें रहनेकी इच्छा प्रकट की। शक्तावत वीर भी आगे रहनेके लिये लालायित थे। दोनोंने सेनाके अग्रभागमें रहनेकी प्रतिज्ञा की। दोनों दलके वीर युद्धसे इस बातकी मीमांसा करनेको तैयार हुए परन्तु राणाने अपने कौशलसे दोनोंको रोक दिया। उन्होंने गम्भीर स्वरमें कहा :—"जो शत्रुके अधिकृत दुर्गमें पहले प्रवेश करेगा उसीको सेनाके अग्रभागमें रहनेका सौभाग्य प्राप्त होगा।" चन्दावत और शक्तावत वीर राणाका यह आदेश सुनकर गौरव एवं सम्मान पानेके निमित्त अलौकिक उत्साहके साथ शत्रुके दुर्गमें प्रवेश करनेकी चेष्टा करने लगे।

मेवाड़के अन्तर्गत समतल भूमिमें एक दुर्ग था। यह दुर्ग राज्यकी एक सीमापर राजधानीसे अठारह मीलकी दूरीपर था। यह दुर्ग बहुत ऊंचा था। इस दुर्गकी चहारदिवारीके चारों ओर एक स्रोतस्विनी नदी बहती थी। चहारदिवारी बहुत ऊंची और दृढ़ थी। इसका शिखर नभमण्डलमें प्रसारित होकर इसकी विशालताका परिचय देता था। दुर्गमें जानेकी केवल एक ही राह थी। यह मार्ग लोहेके सिंह दरवाजेसे बन्द था। रात्रिकी शान्ति भी भङ्ग न हुई थी कि चन्दावत और शक्तावत वीर दुर्गकी ओर चल पड़े। चारणगण संगीत द्वारा दोनों दलोंकी प्रशंसा करके वीरोंको उत्तेजित करने लगे। प्रत्येक दल

के वीर समरसङ्गीतसे उत्साहित होकर भिन्न भिन्न मार्गसे अग्रसर हुए। सवेरे ही शक्तावत वीर दुर्गके द्वारपर पहुंचे। इस समय शत्रुपक्षवाले निरस्त्र थे। आक्रमणकी बात सुनते ही क्षणभरमें वे लोग अस्त्र शस्त्रसे सुसज्जित होकर दुर्गकी चहारदिवारीपर खड़े हो गए। राजपूतोंने प्रबल वेगसे उनपर आक्रमण किया और मुगल सैनिक दृढ़तासे उनकी गति रोकने लगे।

इधर चन्दावतगण नदी पार करके दुर्गकी ओर आ रहे थे, दुर्गकी चहारदिवारीपर चढ़नेके लिये वे लोग अपने साथ काठकी सीढ़ी भी लाये थे, शक्तावत दलके नेताने यह देखा। उनके पास कोई सीढ़ी नहीं थी अतः वे दुर्गके द्वारको तोड़कर चन्दावत वीरोंसे पहले शत्रुके प्रदेशमें जानेको तैयार हुए। इधर गोलियोंके आघातसे चन्दावतके सेनानायक गिर पड़े। मुगलसेना दोनों दलोंको समान भावसे रोकने लगी। शक्तावत सैनिकोंके तेजस्वी नायकको वे परास्त नहीं कर सके। वे जिस हाथी पर थे उसी हाथीसे दुर्ग द्वार तोड़नेकी चेष्टा करने लगे। इस द्वारमें चोखे चोखे लोहेके कांटे लगे हुए थे अतः हाथी उसपर अपना बल प्रकाश नहीं कर सका। यह देखकर उन्होंने हाथीसे उतर वक्षस्थलको द्वारसे भिड़ा दिया और महावतको हाथीसे धक्का देनेकी आज्ञा दी। महावतने स्वामीकी आज्ञाका पालन किया। तेजस्वी वीरकी पीठपर हाथीका आघात लगतेही द्वार टूट गया। वीर पुरुष अपनी प्रधानताकी रक्षाके निमित्त धीर भावके साथ लोहेके कांटोंको वक्षस्थलसे आलिङ्गितकर सदाके लिये स्वर्गमें

चला गया। वीर श्रेष्ठके इस वीरत्वकी कीर्त्तिसे पवित्र भूमि और भी पवित्रतर हुई।

शक्तावतगण अपने स्वामीकी इस अलौकिक तेजस्विताको भी अभीष्ट सम्मान प्राप्त नहीं कर सके। वे लोग सेनानायकके मृत शरीरके ऊपरसे होकर दुर्गके द्वारपर पहुँचे और युद्ध करने लगे। इधर चन्दावत वीरोंका सेनानायक मारा गया सही परन्तु उनमेंसे एक मनुष्य नायक बनकर सैनिकोंको लड़नेके लिये उत्तेजित करने लगा। उसने अपने नायकके शरीरको अपनी पीठपर बाँध लिया और बर्छा घुमाता हुआ मार्ग साफ करते हुए दुर्गद्वार पर पहुंचा। अन्तमें मृत स्वामीका शरीर दुर्गके भीतर फेंककर बड़ी ज़ोर शोरसे बोला—"चन्दावत सबसे पहले दुर्गके भीतर घुसे अतः वे ही युद्धमें आगे रहेंगे।"

वीर पुरुषकी देशभक्ति

शेरशाहके पराक्रमसे १५४२ ई० के पश्चात् सम्राट् हुमायू-को राजच्युत हो भग जाना पडा। जो मणिमुक्ता सुशोभित सिंहासनपर बैठते थे आज वे भिक्षुककी भाति इधर उधर मारे फिरते हैं। अपने लिये, अपने प्राणाधिक पुत्रके लिये तथा प्रेम प्रतिमा प्रणयिनीके लिये आज उन्हें दूसरेके ऊपर निर्भर करना पडता है। समस्त भारतवर्षके अद्वितीय अधीश्वर अकबरका पिता एक दिन इस दुरवस्थामें था। जिन्होंने अपनी क्षमताके बल काबुलके पार्वत्य प्रदेश, आर्य्यावर्त्तकी पवित्र भूमि एव दक्षिणके प्रशस्त क्षेत्रमें अपनी विजयपताका उडाई थी उनका जन्म वि स्तीर्ण मरुभूमिके एक साधारण जनपदके सामान्य गृहमें हुआ था। वे दूसरेके आश्रयमें कालक्षेप कर रहे थे।

शेरशाह दिल्लीके सिंहासनपर बैठा। दिल्लीकी अर्द्ध चन्द्र चिह्नित पताका आज मुगल वशका गौरव न पतला कर शूर वशको गौरवान्वित कर रही है। अमीर उमराव इस समय शूर व शके आदेश पालनमें व्यस्त हैं। शेरशाहने अपने पराक्रमसे हुमायूंको भारतवर्षसे निकाल दिया सही पर वह समस्त भारत-

चर्पपर आधिपत्य नहीं जमा सका। दिल्लीके सिंहासनपर बैठकर
वह राज्यको बढ़ानेकी चेष्टामें लगा।
वीर-भूमि राजपूतानापर उसकी आंख गड़ी थी। अस्सी
हजार सेना लेकर शेरशाहने माड़वारपर आक्रमण किया।
माड़वार प्रकृतिकी कमनीय शोभासे अलंकृत नहीं है। मनो-
हर वृक्षलता एवं शस्य समाकीर्ण श्यामल भूमि उसकी शोभा-
को नहीं बढ़ाती। विस्तीर्ण बालूका समुद्र माड़वारकी भीषण-
ताका परिचय देता है। मालूम होता है कि माड़वारकी प्राकृ-
तिक मनोहारिणी शोभा भयंकरतामें परिणत हो गई [illegible] निमित्त
समय तक पराक्रमी राठौर वीरोंने अपूर्व वीरताके [illegible]पूत-कुल-गौरव
मरुस्थलकी स्वाधीनताकी रक्षा की थी। शेरशाह [illegible]स समय सोलह
नष्ट करना चाहता है यह बात माड़वार निवासि[illegible]चित्तौरकी तीन
हो गई। गरीयसी जन्मभूमिकी स्वाधीनताकी [illegible]। ये ललनायें
राठौर वीर तैयारी करने लगे। देखते देखते [illegible] कोमल करोंमें
इकट्ठी हो गई। मरुस्थलके अधिपति महाराज [illegible] तत्पर हुईं।
हजार साहसी वीरोंको लेकर दिल्ली सम्राटकी [illegible]ी वीरांगना एवं
चेष्टायें लगे। [illegible]। इस पुरुष सिं-
वीर-भूमिके वीरत्वका गौरव स्थिर रहा। [illegible] चित्तौड़की रक्षा
राठौर वीरोंके पराक्रमसे अस्सी हजार मुसलमा[illegible]ड़े हैं उन्हें फौन
गई। हुमायूंके विजेताको मरुस्थलके अधिप[illegible]धीनताकी बेड़ीसे
नीचा करना पड़ा। राठौरोंके शस्त्राघातसे [illegible]भूमि इस समय
शाह भागनेका उपाय सोचने लगा। परन्तु मा[illegible] बालक अपनी

सामने उसकी यह चेष्टा भी निष्फल हुई। चतुर मुसलमान राजाने यहांपर धूर्त्तताका अवलम्बन किया। मुसलमानोंकी धूर्त्ततासे ही भारतका सर्वनाश हुआ। शाहबुद्दीन गोरीकी धूर्त्ततासे पृथ्वीराज दृषद्वती नदीके तटपर सदाके लिये सो गए। अलाउद्दीनको धूर्त्ततासे ईश्वरकी सृष्टिकी एक अपूर्व रमणी पद्मिनीकी देह भस्म हो गई। इस समय शेरशाहकी धूर्त्ततासे राठौर वंशका सर्वनाश हुआ चाहता है। शेरशाहने अपने नामसे एक पत्र लिखा।

सिंहासनपर कुशलतासे यह चिट्ठी मालवाके प्रधान प्रधान सरदारों-फिरते हैं। अपनी गई थी। इस पत्रमें उन लोगोंने लिखा था प्रतिमा प्रणयिनालव राजासे कुच हैं। युद्धके समय हमलोग पड़ता है। सालके साथ आपका साथ देंगे। धूर्त्त मुसलमानों-पिता एक दिन ह पत्र मालव राजाको हस्तगत हुआ। पत्र पा-काबुलके पार्वत्य स्तम्भित हो गए और उन्होंने अपने सरदारों-प्रशस्त क्षेत्रमें अ क समझा। धूर्त्तकी धूर्त्तता फलवती हुई। स्तीर्ण मरुभूमियोंसे अलग होनेकी चेष्टा करने लगे। इस कार्य्यो-था। वे दूसरेके सरदार कुम्भके हृदयपर बड़ा भारी आघात

शेरशाह दिमालवदेवको बहुत समझाया, सनातनधर्मका चिह्नित पताका उन्होंने अपनी विश्वस्तता प्रमाणित की, वंशकी गौरवान्वितताकी बात कह कर उन्होंने क्षत्रियोंको चि-च'शके आदेश पाती चाहा परन्तु मालवदेवने एक न सुनी। हुमायूंको भारतघोर अन्धकारसे आच्छन्न था कुम्भ उसे प्र-

काशित नहीं कर सका। कुम्भ चुप हो रहा। उसके भ्रू युगल सिकुड़ गए। ज्योतिर्मय नेत्रोंसे अग्निकी चिनगारियां निकलने लगीं। तेजस्वी वीर कुछ काल तक चिन्ता करता रहा पश्चात् शीघ्र ही " हर हर " कहता हुआ विपक्षियोंपर टूट पड़ा।

घोर युद्ध होने लगा। कुम्भ केवल दस हजार वीरोंको लेकर शेरशाहके अस्सी हज़ार सैनिकोंके साथ लड़ रहा था तोभी उसके हृदयमें भयका सञ्चार नहीं होता था। उसका उज्ज्वल मुखमण्डल और भी उज्ज्वल हो गया। पराक्रमी शत्रुने उसके ... निमित्त पवित्र चरित्रको कलंकित किया था, शत्रुओंने वा... त-कुल-गौरव मानित किया था, आज वीर कुम्भ शत्रुओंके रक्तसे समय सोलह फो धोनेके लिये तैयार है, समर-भूमिमें प्राण... वीरकी तीन अपनी उज्ज्वल कीर्त्तिको और भी अधिक उज्ज्वल ये ललनायें है। युद्धमें कुम्भने अलौकिक तेजस्विता दिखला... कोमल करोंमें असंख्य वीर समरभूमिमें गिरने लगे। उनके तत्पर हुईं। प्राण-रक्षाके लिये व्याकुल हो उठे। शेरशाह ... वीरांगना एवं उसको दिशायें अन्धकारमय दीखने लगीं।

पराक्रम देखकर उसका हृदय भयसे कांपने लगा। इस पुरुष सिं- एक दूसरी वृहत सेना उसकी सहायताके लिये चित्तौड़की रक्षा जब शत्रु-सैन्यको विध्वन्स करते करते थक गए... हैं उन्हें कौन एक दूसरी सेनाने उसपर आक्रमण किया। ... वीनताको बेड़ीसे

पराक्रमी राठौर वीर यद्यपि इस सेना... भूमि इस समय भी उन लोगोंने युद्ध-स्थलसे विमुख होकर बालक अपनो

परिचय नहीं दिया। उन लोगोंने अपनी विश्वस्तता दिखलाने-को प्रतिज्ञा की थी। अतः तुच्छ प्राणकी ममतासे प्रतिज्ञाच्युत होना उन लोगोंने उचित नहीं समझा। मरुस्थलके पुण्यक्षेत्रमें शत्रुओंके भैरव कोलाहलके बीच इस तेजस्वी वीरकी प्रतिज्ञा पूर्ण हुई।

कुम्भ वीरताके साथ लड़ते लड़ते अक्षय कीर्ति छोड़कर अनन्त धामको चला गया। उसके राठौर वीरोंने समरमें शत्रु-ओंका नाश करते करते अमरत्व प्राप्त किया। इन आर्य्यों की महिमासे आर्य्यावर्त्तकी मरुस्थली सदा पवित्र सिंहासनपर
फिरते हैं। अपने।
प्रतिमा प्रणयिनियोंकी वीरता देखकर शेरशाह चकित हो गया।
पड़ता है। समतुवैरताको लक्ष्य करके शेरशाहने कहा—"एक
पिता एक दिन इन्हें हमने भारतका साम्राज्य नष्ट किया।"
काबुलके पार्वत्य
प्रशस्त क्षेत्रमें अप
स्तीर्ण मरुभूमिके
था। वे दूसरेके

शेरशाह दिव
चिह्नित पताका अ
वंशको गौरवान्वि
वंशके आदेश पाते
हुमायूंको भारतव

वीर बालक और वीर रमणी

जिस समय पराक्रमी मुगल सम्राट् अकबरने १५६८
[चि]त्तौरपर आक्रमण किया उस समय स्वाधीनताप्रिय
[प्र]सन्नताके साथ अपनी जन्मभूमिकी रक्षाके निमित्त
[मृत्यु]की गोदमें सदाके लिये सो गये। राजपूत-कुल-गौरव
[ज]ब समय शत्रुओंके हाथ मारा गया उस समय सोलह
[की] विजयपताका उड़ायी। उसी समय चित्तौरकी तीन
[वीरांगनाओं]ने स्वदेशके लिये आत्मोत्सर्ग किया। ये ललनायें
[श]रीरपर कठिन वस्त्र धारणकर और कोमल करोंमें
[ले]कर मुगल सेनाकी गति रोकनेमें तत्पर हुई।
[अत्याचा]रों से पीडित राजस्थानकी सच्ची वीरांगना एवं
[स्वा]धीनता थीं।

[ज]यमल अब इस संसारमें नहीं है। इस पुरुष सिं-
[ह]-भूमि वीरोंसे रहित हो गयी। चित्तौड़की रक्षा
...! कट्टर मुगल दरवाजेपर खड़े हैं उन्हें कौन
[स्वा]धीनताकी लीला-भूमि आज पराधीनताकी बेड़ीसे
[रही] है उसे कौन तोड़ेगा? वीर-भूमि इस समय
हो रही है ऐसे अवसरपर एक वीर बालक अपनी

पूज्य मातृ भूमिके लिये प्राण देनेको तैयार हुआ। जयमल सदाके लिये चित्तौड़ छोड़कर चला गया था, पुत्तने उसके शून्य स्थानकी पूर्ति की।

पुत्त इस समय केवल सोलह वर्षका था। अभी यद्यपि बालक था तथापि साहस पराक्रम और क्षमतामें बड़े २ वीरोंसे बढ़कर था। पुत्तने मातासे विदा मांगी। कर्मदेवीने स्नेहसे पालित पुत्र को बड़ी प्रसन्नताके साथ युद्धमें जानेकी आज्ञा दी। पुत्त प्रियत माके निकट गया। कलावतीने भी प्रफुल्लचित्तसे अपने स्वामी को विदा किया। उनकी बहन कर्णवतीने भी जन्मभूमिकी रक्षाके निमित्त अपने भाईको उत्तेजित किया। एक सोलह वर्ष-का बालक सच्चे वीरकी तरह सबसे विदा लेकर जन्म भूमिकी रक्षाके लिये युद्ध स्थलमें पहुंचा। मुगल सेना दो भागोंमें विभक्त थी। एक अकबरके सेनापतित्वमें थी और दूसरी किसी औरके। दूसरी सेना और पुत्तमें घमासान लड़ाई छिड़ गई। सम्राट् अक बर पुत्तपर शस्त्र-प्रहार करनेके लिये दूसरी ओरसे बढ़ा। दो पहर बढ़े होंगे, अकबरकी सेना पुत्तकी ओर बढ़ रही थी अक स्मात् उसकी गति रुक गई। सामने एक पर्वत था जिसपर हरे हरे पत्तोंसे लदे दो चार वृक्ष थे। इन्हीं वृक्षोंके निचले भागसे गोलियां आ रही थीं जिससे मुगल सेना व्याकुल हो उठी थी। सहस्रों गोलियोंको आते एवं अपने असंख्य सैनिकों-को पृथ्वीपर रक्त शय्यामें शयन करते देखकर मुगल सेना चकित हो गई थी। अब अकबरने उन वृक्षोंके नीचे तीन वीर

स्त्रियोंको देखा तो उसके आश्चर्यकी सीमा न रही। इनमें एककी उम्र अधिक थी पर शेष दो स्त्रियोंकी अभी उभड़ती हुई जवानी थी। तीनों स्त्रियां कवच पहनकर घोड़ेपर सवार थीं। तीनों स्त्रियां शस्त्र चलानेमें सुदक्ष जान पड़ती थीं। स्त्रियोंको ऐसी वीरता देखकर अकबर चकित हो गया। अकबरने जब देखा कि केवल तीन स्त्रियोंके पराक्रमसे मेरी असंख्य सेना मारी गई तब उसने अपना सिर नीचा कर लिया।

जब पुत्तके साथ अकबरकी पहली सेना लड़ रही थी और अकबर स्वयं दूसरी सेना लेकर उसे परास्त करनेके लिये जा रहा था तब पुत्तको माता, स्त्री एवं बहनसे न रहा गया। वे अपने स्नेहके एकमात्र पात्र पुत्तकी यह दशा न देख सकीं और अकबरकी सेनाकी गति रोकने लगीं। जन्मभूमिकी रक्षाके निमित्त अपना बलिदान आवश्यक समझकर ये तीनों स्त्रियां युद्ध-स्थलमें आ गईं। इन तीनोंके नाम थे कर्मदेवी, कमलावती और कर्णवती। वे अपने तुच्छ शरीरकी ममताको छोड़कर स्वदेशकी स्वाधीनताकी रक्षाके निमित्त युद्ध करनेमें तत्पर हुई थीं।

एक ओर सोलह वर्षका पुत्र और दूसरी ओर उसकी वृद्धा माता एवं अपूर्ण वयस्क प्रियतमा और बहन थीं। चित्तौरकी शक्तिरूपी ये तीनों देवियाँ तीनों अग्नियोंके समान दिल्ली सम्राट्की सेनारूपी ईन्धनको जलाकर भस्म करनेपर उतारू थीं। इस अपूर्व दृश्यकी अनन्त महिमाको आज कौन समझता है? इस

निर्जीव, जातीय-जीवनशून्य एवं वीरत्वरहित भारतमें आज कौन इस वीर बालक और इन वीर नारियोंकी पूजा करेगा ?

दो पहरको लड़ाई प्रारम्भ हुई थी। सन्ध्यातक लड़ाई होती रही। किसीने विश्राम नहीं किया। असंख्य मुगल सैनिक मारे गये। इन स्त्रियोंने अकबरको सेनाको आगे बढ़ने नहीं दिया। अकबर सच्चा वीर पुरुष था। वह इन तीन स्त्रियोंकी वीरतापर मुग्ध हो गया। उसने वीरताको सम्मानित करना चाहा और आज्ञा दी कि जो इन तीन स्त्रियोंको जीवितावस्थामें पकड़ लावेगा उसे बहुत सा धन दौलत दिया जायगा।

उस समय अकबरके सैनिक पागलसे हो रहे थे, किसीने भी उसकी बातोंपर ध्यान न दिया। मुगल सेना लड़ती ही रह गई और तीनों स्त्रियां उन्हें रोकनेपर उद्यत रहीं। कर्णवतीको कई गोलिया लगी थीं अन्तमें वह म्लान पुष्पकी भांति पृथ्वीपर गिर पड़ी। पुत्रीको यह दशा देखकर कर्मदेवी कातर न हुई। वह दूने उत्साहके साथ शत्रुओंसे लड़ने लगी। सहसा एक गोली आकर कमलावतीके बायें हाथमें लगी। कमलावतीने इस भीषण आघातको सहन कर लिया। वह एक हाथसे ही वार करने लगी।

उन्मत्त मुगल सेना गोलियोंकी वृष्टि करती ही गई और कुछ देरके बाद कमलावती भी पृथ्वीपर गिर पड़ी। कमलावती-को गिरे अधिक देर न हुई थी कि कर्णवती परलोक सिधारी। उधर पुत्त मुगलोंको परास्त करके पर्वतके निकट आया। उसने

अपनी आराध्या जननी, प्रियतमा एवं बहनको पृथ्वीपर गिरे देखा। पुत्र यह देखकर क्रुद्ध हुआ और मुगल सैनिकोंको नष्ट करने लगा। इधर कमलावती और कर्मदेवीके प्राण कंठगत हो रहे थे। पुत्रने इन दोनोंको उठा लिया। सती कमलावती अपने पतिके बाहुपर मस्तक रखकर सदाके लिये स्वर्गको गई।

कर्मदेवीने अपने पुत्रको जन्मभूमिकी रक्षाके निमित्त आदेश देकर प्राण विसर्जन किया। पुत्र थोड़ी देर तक सोचकर "हर हर" करता हुआ शत्रुओंकी सेनामें घुस गया। सोलह वर्षका बालक असंख्य सैनिकोंको नष्ट करके जन्मभूमिकी गोदमें सदाके लिये सो गया। पुत्र और उसकी स्त्रीके शरीर एक चितापर जलाये गये। कर्मदेवी और कर्णवती एक चितापर सुलायी गयीं। वे तो परलोकको गयीं परन्तु उनकी अनन्त और अक्षय कीर्ति सदा बनी रहेगी।

आत्म-त्याग

इस ग्रन्थमें राजपूतोंकी वीरता एवं राजपूत रमणियोंकी तेजस्विताका दृष्टान्त भली भांति दिखलाया गया है। इस तरह-के उदाहरण संसारके इतिहासमें बहुत कम मिलते हैं। यदि इतिहासके पन्नोंको उलट जायं और भली भांति अवलोकन करके ढूंढ़ें कि संसारकी कौन सी जाति बहुत दिनोंतक अत्याचार सहन करके भी अपने जातीय गौरव तथा सभ्यताकी रक्षा कर सकी है तो मुझे निष्पक्ष भावसे कहना पड़ेगा कि राजपूत वीर ही इस अलौकिक गुणसे विभूषित थे। बारम्बार युद्धमें परास्त होनेसे उनका सर्वस्व नष्ट हो गया था, तलवारोंके आघातसे उन-का शरीर पीड़ित हो रहा था, विपक्षी विजय प्राप्त करनेके पश्चात् उनपर घोर अत्याचार कर रहे थे तथापि वे अपने धर्मपर अटल रहे। संसारके इतिहासमें केवल राजपूत वीरोंने ही विप-क्षियोंका घोर अत्याचार सहन करके उनकी अधीनता स्वीकार नहीं की और जातीय गौरवको सदाके लिये बनाये रक्खा। जब रोमनिवासियोंने ब्रिटेनपर अधिकार जमाया तब ब्रिटेन-निवासी उनके साथ मिल गये और इसका परिणाम यह हुआ कि उनके गौरवरूपी रोपित वृक्षके सम्मान एवं मर्य्यादारूपी फल नष्ट हो गये। राजपूतोंने इस तरहकी कायरता कभी भी

नहीं दिखलायी। कई बार उनकी भूसम्पत्ति नष्ट हो गई परन्तु उनके पवित्र धर्म्म एवं चरित्रमें कभी भी धब्बा नहीं लगा। कई बार राजपूतोंका राज्य दूसरोंके हाथमें चला गया, उन्हें जङ्गल जङ्गल मारा मारा फिरना पड़ा तोभी मातृभूमिके उद्धारके लिये उन लोगोंने धूर्त्तताका अवलम्बन नहीं किया। राजपूत वीर युद्धमें कभी भी पीछे नहीं देखे गये। स्वाधीनताकी रक्षा करनेमें वे कभी भी उदासीन नहीं दीख पड़े। राजपूत रमणियोंने विपक्षियोंके हाथमें पड़नेकी अपेक्षा युद्धमें प्राण त्यागना अच्छा समझा था। मेवाड़का एक वीर बालक युद्धस्थलमें सदाके लिये सो गया परन्तु उसने स्वाधीनताको जलाञ्जलि नहीं दी। मेवाड़की एक धायने स्नेहपालित बालकको निठुर घातककी तलवारसे मारे जाते देखा पर उसने शिशुरक्षाकी अपेक्षा वंशके गौरवकी रक्षाको कहीं श्रेष्ठ समझा। मेवाड़के अधिपतिने अपने अपराधी पुत्रके घातकको पुरस्कृत किया, उसे दण्ड देकर पवित्र वीरधर्म को कलंकित नहीं किया। मेवाड़के कुल-पुरोहितने प्रसन्नताके साथ राजवंशके गौरव रक्षणार्थ अपने हाथसे अपने प्राण विसर्जन किये। वीरता एवं साहसका ऐसा दृष्टान्त संसारके इतिहासमें अन्यत्र नहीं देखा जाता।

कुल-पुरोहितके अपूर्व आत्मत्यागकी कथा अनिर्वचनीय महत्त्वसे पूर्ण है। यदि संसारमें निस्स्वार्थता किसी रूपमें वर्त्तमान है तो इस आत्मत्यागी पुरोहितको मूर्त्तिमती निस्स्वार्थता कहने-में कुछ अत्युक्ति नहीं होगी। यदि उदारताके रहनेके लिये इस

संसारमें कोई स्थान है तो इस पुरोहितका हृदय। वस्तुतः मेवाड़ आत्मत्यागियोंकी लीलाभूमि है। पृथ्वीका कोई भी खण्ड इस विषयमें मेवाड़की समता नहीं कर सकता। अपने प्राण देकर दूसरेके प्राणकी रक्षा करना निस्सन्देह अलौकिक कार्य्य है। मेवाड़के पुरोहित ऐसा ही अलौकिक कार्य्य करके अपनी अक्षय-कीर्त्ति सदाके लिये छोड़ गये। इस "दानवीरकी" तुलना इस नश्वर जगतके क्षणस्थायी जीवोंके साथ नहीं की जा सकती।

सोलहवीं शताब्दीके अन्तमें एक समय दो क्षत्रिय युवक शिकारके लिये कहीं जा रहे थे। इन दोनोंकी आकृतिमें कुछ भी विषमता नहीं मालूम होती थी। दोनोंके ही शरीर सुगठित और डीलडौल एकसे थे।

दोनों युवा यौवनकी तेजस्वितासे परिपूर्ण थे। इस तेजस्विताकी तीव्र ज्योतिके साथ साथ मधुरताका अपूर्व प्रकाश दोनोंके मुखमण्डलको विकसित करता था। दोनों युवकोंमें बड़ी ही प्रीति थी। आपसके सद्भावके कारण दोनों ही बहुत दिनोंसे प्रेम-भावके अपूर्व सुखको अनुभव करते थे। परन्तु न मालूम क्यों मेवाड़की मृगयाभूमिमें हठात् उनके सद्भावमें कुछ अन्तर पड़ गया। दोनों युवक किसी कारण शीघ्र ही एक दूसरेके विरोधी हो गये। ये दोनों तेजस्वी क्षत्रिय वीर महाराणा उदयसिंहके पुत्र थे। एकका नाम प्रतापसिंह एवं दूसरेका नाम शक्तसिंह था। एक वीरने अपने देशकी स्वाधीनताके रक्षणार्थ अलौकिक पराक्रम दिखलाया जिससे वे चिरस्मरणीय रहेंगे।

दूसरेने अपनेको देशका विरोधी बतलाया। एकने जातीय गौरवको बनाये रक्खा दूसरेने जातीय कलंकको आश्रय दिया। आज भाई भाईमें विरोध हो गया। यदि दोनों तेजस्वी वीर मिलकर रहते तो मेवाड़के गौरवसूर्यकी ज्योति और भी प्रकाशित रहती तथा राजपूत वीरको इतना कष्ट नहीं होता। शोक! दोनों भाई आपसमें लड़कर आज स्वयं कमजोर बन गये।

महाराणा उदयसिंहके ज्येष्ठ पुत्र थे प्रताप। अतः मेवाड़की गद्दी उन्हें ही मिली। उदयसिंहके द्वितीय पुत्र शक्तसिंह अपने बड़े भाईकी आज्ञामें रहकर अपना समय बिताते थे। शक्त बड़े ही तेजस्वी एवं कठोर हृदयके मनुष्य थे। एक समयकी बात है कि एक तलवारकी धारकी परीक्षा करनेके लिये बहुतसा सूत एकत्रित किया गया। तलवारके आघातसे इस मोटे सूतको दो टुकड़े करनेकी बात थी। शक्त वहीं बैठे थे उन्होंने गम्भीर भावसे कहा-"जो तलवार मांस और हड्डियोंको छेदन करेगी सूत काटकर उसकी परीक्षा करनी उचित नहीं है।" उपर्युक्त बातें कहकर शक्तने गम्भीर भावसे तलवारके प्रहार द्वारा अपनी अंगुली काट डाली। कटी हुई अंगुलीसे रक्तस्राव होने लगा। इस समय शक्तकी अवस्था केवल पांच वर्षकी थी। पांच वर्षके बालकने ऐसा अपूर्व साहस एवं ऐसी अलौकिक तेजस्विता दिखलायी। उम्रके साथ साथ उसका साहस और उसकी तेजस्विता भी धीरे धीरे बढ़ती गई। बड़े भाईके प्रति इसके हृदयमें जो द्वेषांकुर उत्पन्न हुआ वह भी धीरे धीरे बढ़ता ही गया।

प्रतापसिंह भी छोटे भाईसे क्रुद्ध थे। किसी प्रकार भी इनके द्वेष एवं क्रोधकी मात्रा कम नहीं हुई। फलतः पूर्वकी नाईं उन्हें सद्भाव तथा एकताके सूत्रमें आबद्ध होनेका सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ कि एक दूसरेके प्राण लेनेकी चेष्टामें लगे। एक समय प्रतापसिंह शस्त्र क्रीडा-भूमिमें चक्रकी नाईं घोड़ेको चला रहे थे। उनके हाथमें एक तीव्र बर्छा शोभा पा रहा था। वे इसी क्रीड़ा-भूमिमें अश्वचालन शक्तिका परिचय दे रहे थे। इसी समय शक्त वहां पहुंचा। प्रतापने गम्भीर स्वरसे कहा—"आज इसी क्रीड़ा-भूमिमें द्वन्द्वयुद्ध करके हमलोग अपने विवादकी मीमांसा कर लें, आज देखा जाय कि तीव्र बर्छा चलानेकी शक्ति किसमें अधिक है।"

शक्त भी नहीं हटा, द्वन्द्वयुद्धकी तैयारी हो गयी। शक्तने गम्भीर स्वरमें बड़े भाईसे कहा-"क्या आप आरम्भ करेंगे?"

शीघ्र ही दोनों वीर बर्छा लेकर युद्ध करने लगे। दोनों तेजस्वी वीरोंका जीवन आज संशयमें है। इसी समय दोनों भाइयोंके बीच एक मधुरमूर्त्ति आविर्भूत हुई। दोनोंहीने इस मूर्त्तिको पूज्य दृष्टिसे देखा। साहसी आगन्तुक धीर भावसे युद्धोद्यत दोनों भाइयोंके बीचमें खड़ा हो गया। यह आगंतुक एवं तेजस्वी पुरुष पवित्र मेवाड़वंशकी मंगल-कामनासे पूर्ण देवस्वरूप उस कुलका पुरोहित था। आज ये महात्मा दोनों भाइयोंके प्राण बचाने तथा उनके विवादका निपटारा करनेके लिये खड़े हुए।

पुरोहित महाशयने धीरतायुक्त भावसे कहा-"यह क्रीड़ा-भूमि युद्धस्थल नहीं है। भाईसे लड़ना सच्चे वीरका काम नहीं

है। आप लोग युद्ध छोड़ दें। आप लोगोंके ये तीव्र बर्छे शत्रुओंके मुखमें जायं। आप लोगोंके तेजस्वी अस्त्र शत्रुओंकी रक्त-तरंगसे तरंगित हों। आप लोग अपने वंशकी मर्य्यादा नष्ट न करें। ऐसा न हो कि भाईके रक्तसे भाईका शस्त्र अपवित्र हो।" पुरोहितकी इन बातोंका कुछ भी फल नहीं हुआ। दोनों वीर एक दूसरेके खूनके प्यासे थे। पहलेकी ही नाईं दोनों तीव्र बर्छी चलाते रहे। पवित्र कुलका शुभाभिलाषी देवस्वभाव पुरोहितने यह देखा। पुरोहित और कुछ भी न बोल सका। उसी क्षण उसने तलवार निकालकर अपनी छातीमें घुसेड़ दी। मेवाड़की भलाईके लिये युद्धमें प्रवृत्त दोनों भाइयोंकी प्राणरक्षाके निमित्त कुलदेव पुरोहितने आज अपने प्राण विसर्जन किये।

प्रताप और शक्त यह देखकर चकित हो गये। पुरोहितका शव उन दोनोंके बीचमें पड़ा रहा। पुरोहितके पवित्र रक्तने उन लोगोंके शरीरको स्पर्श किया। इससे प्रतापसिंहको मार्मिक वेदना हुई। अब उन्होंने छोटे भाईपर शस्त्र चलाना बन्द कर दिया। प्रतापने तीव्र स्वरसे शक्तको अपने राज्यसे चले जानेकी आज्ञा दी। शक्तने बड़ेकी आज्ञा तो मान ली पर वह सम्राट् अकबरसे जा मिला। प्रतिहिंसाकी अग्निसे उसका हृदय धधकने लगा।

दोनों भाइयोंमें हल्दीघाटके युद्धके पश्चात् फिर भी मेल हुआ। शक्तने बड़े भाईका पराक्रम युद्ध-स्थलमें देखा। स्वदेशकी स्वाधीनताके रक्षणार्थ प्रतापका आत्म-त्याग देखकर शक्त मुग्ध हो गया। वह अपने भाईके पैरोंपर गिर पड़ा तबसे दोनों भाई प्रेमपूर्वक रहने लगे।

राजसिंहका राजधर्म

औरंगजेब दिल्लीके मयूरसिंहासनपर बैठा। अपने विश्वासघातके बल वह निष्कंटक राज्य करने लगा। उसका वृद्ध पिता कारागारमें था। उसके सहोदर भाइयोंने राज्यकी आशा छोड़ घातकके हाथ प्राण गंवाये। निठुर सम्राट् दया तथा धर्मको जलांजलि देकर, अपने आत्मीय स्वजनोंका रक्तपात करके, विश्वस्त व्यक्तियोंको शोचनीय अवस्थामें छोड़कर स्वयं राज्य-सुख भोग रहा था। उस समय दो हिन्दू वीर धर्मान्ध सम्राट्के अत्याचारके विरुद्ध खड़े हुए। दक्षिणमें महाराष्ट्रपति शिवाजीने अपूर्व तेजस्विताके साथ हिन्दुओंके गौरवकी रक्षा की। आर्य्यावर्त्तमें मेवाड़के अधिपति राजसिंहने अलौकिक दृढ़ता दिखलाकर सच्चे क्षत्रियत्वका परिचय दिया।

औरंगजेब विशाल साम्राज्यका अधिकारी बनकर हिन्दुओंसे द्वेष करने लगा। धर्मान्धताके साथ साथ उसकी भोगस्पृहा बढ़ने लगी। उसने रूप नगरके अधिपति विक्रमशालकी कन्यासे विवाह करना चाहा। राजपूत रमणीको लानेके लिये शीघ्र ही दो हजार अश्वारोही भेजे गये। वह तेजस्विनी राजपूत कुमारी सहमत नहीं हुई। विधर्मी मुसलमान सम्राट्की महिषी बनकर उसने अपने वंशको कलंकित करना उचित नहीं समझा। वह घृणा एवं वैराग्यके साथ मुगल सम्राट्के इस परामर्शके

विरोध करनेपर उद्यत हुई। उसके हृदयमें राजसिंहके अपूर्व-गुण विराजमान थे। रूपनगरकी इस राजकुमारीने अलौकिक गुणसम्पन्न पुरुषसिंहसे विवाह करनेकी इच्छा की थी। मुगल-सम्राट्‌का यह अनुचित प्रस्ताव सुनकर वह स्थिर न रह सकी। क्रोध एवं अभिमानसे उन्मत्त होकर तेजस्विनी राज-कुमारीने राजसिंहको कहला भेजा :—

"राजहंसिनी सारसकी सहचरी होगी? जिस राजपूत-कुमारीके शरीरमें पवित्र रक्त प्रवाहित हो रहा है वह बन्दर-मुंहेको स्वामी कहकर ग्रहण करेगी? यदि मेरे सम्मानकी रक्षा न होगी, यदि चिर पवित्र आर्य-गौरव अकलंकित न रहेगा, यदि मुगल सम्राट्‌का कठोर हाथ मेरी मर्य्यादा नष्ट करनेके लिये उद्यत होगा तो प्रातःस्मरणीया पद्मिनी प्रभृति पतिव्रतायें जिस पथका अवलम्बनकर अनन्त सुखकी अधिकारिणी हुई मैं भी प्रसन्नताके साथ उसी पथका अवलम्बन करूंगी।" रूप-नगरके पूजनीय कुलपरोहितने जाकर राजकुमारीकी सभी बातें राजसिंहसे कहीं। राजसिंह मर्यादा एवं सम्मानकी रक्षा करनेमें उदासीन नहीं हुए। वे एक दल साहसी राजपूत वीरों-को लेकर आरावलीपर्वतकी तराई पार करके रूपनगरमें पहुंचे। उनके पराक्रमसे मुगल सेना पराजित हुई। तेजस्वी क्षत्रिय वीर तेजस्विनी रमणीका उद्धार करके उसे अपनी राजधानीमें लाये, प्रबल प्रतापी विपक्षी होनेपर भी राजपूतोंके धर्म एवं सम्मानकी हानि नहीं हुई।

इधर औरंगजेबने अपना दुष्कर्म नहीं छोड़ा। हिन्दुओंको नीचा दिखलानेके लिये सम्राट्ने 'जिजिया" कर लगाना चाहा। यह कर केवल हिन्दुओंको ही देना पड़ता था। उसकी आज्ञासे अम्बरके राजा जयसिंह पराक्रमी शिवाजीका प्रताप नष्ट करनेके लिये दक्षिणकी ओर चले। मारवाड़के अधिपति यशवन्तसिंह राजकीय कार्यके लिये काबुल भेजे गये। ये दोनोंही वीर मुगल-राज्यके अवलम्बन थे। इन्हींकी विश्वस्तता एवं युद्धकुशलताके कारण सम्राट्की कई बार सङ्कटोंसे रक्षा भी हुई थी। इन लोगोंकी इच्छा 'जिजिया' लगानेकी नहीं थी। मुगल सम्राट्ने इन्हें विघ्नस्वरूप समझकर गुप्त रीतिसे इन्हें विष दे देनेकी आज्ञा भेजी। इस आज्ञानुसार कार्य किया गया। दो राजपूत वीर विश्वासघातीपर विश्वास करनेके कारण विदेशमें सदाके लिये इहलोक त्यागकर परलोकको सिधारे। यशवन्तसिंहकी स्त्री अपने बच्चेको लेकर काबुलसे स्वदेश आ रही थीं कि मुगल सम्राट्ने उन्हें रोक रखनेकी आज्ञा भेजी। उनके रक्षक पराक्रमी दुर्गादासने इस आज्ञाका विरोध किया। ढाई सौ साहसी राजपूत वीरोंने पाँच हजार मुगल सैनिकोंको रोक रक्खा। इसी समय यशवन्तसिंहकी स्त्री निरापद स्थानमें लायी गयीं। इधर राजसिंह भी स्थिर नहीं थे।

इन्होंने अग्रसर होकर अजीतसिंह और उनकी माताकी रक्षा की। इनकी आज्ञासे उन लोगोंके निवासस्थानकी मुगलोंसे रक्षा करनेके निमित्त राजपूत वीर नियुक्त किये गये। राणा

राजसिंह स्वयं प्रधान रक्षक थे। क्षत्रिय श्रेष्ठ राजसिंहने क्रूरप्रकृति औरंगजेबकी कठोर आज्ञाकी परवा न करके अनाथ बालक एवं उसकी अनाथ जननीकी रक्षा की।

औरंगजेबको 'जिजिया' कर लगानेपर उताक देखकर राजसिंह बड़े ही दुःखी हुए। भारतवर्षकी चिरप्रसिद्ध हिन्दू जाति अपमानित की जायगी, मुसलमानोंके हाथसे आर्य्यगण पीड़ित किये जायंगे, धर्मान्ध सम्राट् अपने धर्मावलम्बियोंको छोड़कर केवल हिन्दुओंको अर्थदण्ड देगा—ये बातें उनके हृदयमें चुभ गईं। धर्मनिष्ठ राजपूत वीर निर्भीकताके साथ इस प्रस्तावका विरोध करनेके लिये तैयार हुआ। उसकी नाड़ियोंमें रक्त धारायें वेगसे बहने लगीं, हृदयमें अपूर्व तेजस्विताका विकास हुआ, क्रोध, क्षोभ और अपमान उसके मानसक्षेत्रमें उत्पन्न होकर युद्ध करने लगे। उन्होंने अपनेको हिन्दू जातिका नेता समझकर हिन्दुओंकी ओरसे औरंगजेबको पत्र लिखा :—

"सर्व शक्तिमान ईश्वरकी महिमा प्रशंसनीय है। सूर्य्य और चन्द्रमाकी भांति गौरवान्वित आपकी वदान्यता प्रशंसित हो। मैं आपका शुभाभिलाषी हूं। यद्यपि मैं आपसे अलग रहता हूं तोभी मैं सच्चा राजभक्त हूं। मैं सदा आपके राज्यकी रक्षाकी चिन्तामें रहता हूं। आज मैं एक साधारण बातका अनुरोध करता हूं और आशा है कि आप इस ओर अवश्य ध्यान देंगे।

"मुझे मालूम है कि इस शुभाकांक्षीसे युद्ध करनेमें आपने बहुतसे धनका अपव्यय किया है।

"आप अपने शून्य भाण्डारको भरनेके लिये एक नया कर लगाना चाहते हैं।

"आपके पूर्वपुरुष महम्मद जलालुद्दीन अकबरने सम-दर्शिता एवं दृढ़ताके साथ बावन वर्षतक इस देशपर शासन किया। उनके राज्यमें सभी जातिके लोग सुखसे थे, हिन्दू मुस-लमान एवं ईसाई सबके प्रति वे उदारता दिखलाते थे। इसी समदर्शिताके कारण प्रजा सदा उनका कृतज्ञ रहती थी।

"स्वर्गीय नूरुद्दीन जहांगीरने यथानियम बाईस वर्षतक प्रजापालन किया। मित्र राजाओंपर विश्वास रखनेके ही कारण वे सदा सब कालमें कृतकार्य हो सके।

"महिमान्वित शाहजहाने बत्तीस वर्षतक राज्य-भार चलाया। दया एवं धर्मके कारण वे अक्षय सुख्यातिके अधिकारी हुए।

"आपके पूर्वपुरुषोंने सर्वसाधारणकी भलाईके लिये इस प्रकार काम किया था। वे लोग इस प्रकारकी उदार नीतिका अवलम्बनकर जहां जाते थे वहीं उन्हें विजयलक्ष्मी प्राप्त होती थी। उन लोगोंने अनेक देशों एवं अनेक दुर्गोंको अपने अधिकार-में कर लिया था। परन्तु आपके राज्य-कालमें आपके ही साम्राज्य-के अनेक जनपद स्वतन्त्र हो गये। इस समय अविचार एवं अत्याचारके स्रोत तीव्र वेगसे प्रवाहित हो रहे हैं अतः भविष्यमें और भी कितने स्थान आपके हाथसे निकल जायंगे। आपकी प्रजा पददलित हो रही है और आपके साम्राज्यभरमें दुःख दारि-द्रय वर्तमान है। जिस जगहके राजा लोग अर्थशून्य हो रहे

है वहांके गरीबोंका क्या कहना ? सैनिकगण राजाके विरुद्ध हो गये हैं। व्यापारी लोग अनेक प्रकारके झगड़ोंमें फंस गये हैं, साधारण लोग रात्रिमें निराहारके कारण क्रोध और निराशासे उन्मत्त हो अपना सिर पीटते हैं।

"जो राजा इस तरहकी दरिद्र प्रजापर गुरुतर कर लगाकर उन्हें पीड़ित करनेमें अपन बलका प्रयास करेगा उसके महत्व-की रक्षा कैसे होगी ? इस दुर्दशाके समयमें चारों ओरसे यह आवाज आ रही है कि हिन्दुस्तानका सम्राट् हिन्दू-धर्मका विरोधी है, वह ब्राह्मण, योगी, वैरागी एव सन्यासियोंपर कर लगा-कर उन्हें पीड़ित करना चाहता है। सुप्रसिद्ध तैमूरवंशके गौरव-का ध्वंस करनेवाला यह सम्राट् निर्जनवासी निरपराध तप-स्वियोंपर बल प्रयोग करना चाहता है। यदि आप किसी ईश्वरीय ग्रन्थपर विश्वास करें तो आपको मालूम हो जायगा कि ईश्वर समस्त मानवजातिका ईश्वर है केवल मुसलमानोंका ही नहीं। हिन्दू मुसलमान उस जगदीश्वरके निकट सब समान हैं। वर्णभेद तो मनुष्यकल्पित है। सबके आदि कारण वे ही हैं। धर्ममन्दिर वा देवालयमें उसीकी पूजा होती है। दूसरेके धर्मका अपमान करना सर्वशक्तिमान ईश्वरकी आज्ञा-के विरुद्ध कार्य्य करना है। यदि मैं किसी चित्रको विकृत करूं तो चित्रकार अवश्य रुष्ट होगा। इसीसे स्वर्गीय शक्तिके विरुद्ध कार्य्य करना उचित नहीं है।

"आप जो हिन्दुओंपर कर लगाना चाहते हैं वह न्यायानुकूल

नहीं है। साधु एवं नीतिज्ञ लोग इसका अनुमोदन नहीं करेंगे। यह हिन्दुस्तानके नियमके एकदम विरुद्ध है। परन्तु आप यदि अपनी धर्मान्धताके कारण यह कर लगानेपर उतारू हैं तो पहले यह कर प्रधान हिन्दू राजसिंहसे लेवें। पिपीलिका एवं मक्षिका सदृश पीड़ित प्रजापर अत्याचार करना सच्चा वीरत्व नहीं है। आपके शुभाभिलाषी अमात्यगण आपको सदुपदेश नहीं देते इससे मुझे बहुत विस्मय होता है।"

राना राजसिंहका पत्र इसी तरह सौजन्य, अभिमान एवं साहसपूर्ण था। क्षत्रिय राजाने इस प्रकार नम्रता, तेजस्विता एवं स्पष्टवादिताके साथ सम्राटको अपकर्मसे अलग रहनेका अनुरोध किया। राजनीतिकी उच्चता, भावकी गम्भीरता, एवं सच्ची वीरतासे पूर्ण यह पत्र किसी सभ्य देशके राजनीतिज्ञ द्वारा पूर्ण सम्मानित होता। इस पत्रके अक्षर अक्षरसे हिन्दूराजाके राजधर्मका परिचय मिलता था।

उक्त पत्रको पाकर एवं यशवन्तसिंहकी स्त्रीकी मुक्तिकी बात सुनकर मुगल सम्राट् क्रोधसे जल भुन गया। क्रोधके आवेशमें उसने राना राजसिंहके विरुद्ध युद्ध करनेकी व्यवस्था की। इस कामके लिये उसने बंगाल, काबुल और दक्षिणसे अपने पुत्रोंको बुलाया। एक एकका एक एक सेनाका भार दिया गया। औरंगजेब इस प्रकार बहुत सी सेना लेकर मेवाड़की ओर चला इधर राजसिंह भी अपने वंशके गौरवकी रक्षासे विमुख नहीं हुए। इन्होंने अपने सैनिक दलको तीन भागोंमें विभक्त

करके एक भागका अध्यक्ष अपने ज्येष्ठ पुत्र जयसिंहको बनाया। भीमसिंह दूसरे भागके अधिनायक बनाये गये। राणा स्वयं प्रधान सेनाका भार लेकर सम्राट्की गति रोकनेके लिये अग्रसर हुए। पार्वत्य प्रदेशके आदिम निवासियोंने भी आर्य्यावर्त्तके हिन्दुओंकी सहायता की।

मेवाड़के अधिपति साहसी सेनाके साथ आरावली पर्वत-पर मुगलोंके विरुद्ध खड़े रहे। राजकुमार जयसिंहके पराक्रमसे विपक्षिओंका खाद्य पदार्थ लानेवाला मार्ग बन्द हो गया। औरङ्गजेब दुर्गम पार्वत्य प्रदेशमें अनाहारके कारण बहुत कष्ट पाने लगा। उसके शिविरमें दारुण दुर्भिक्षका आविर्भाव हुआ। उसकी प्रियतमा महिषी रक्षकगणके बीच पर्वतके पार्श्वमें थी। वह राजसिंहके निकट लायी गयी। राजसिंहने उसका यथोचित आदर एवं सम्मान किया और उपयुक्त रक्षकके साथ उसे औरङ्गजेबके पास भेज दिया।

इधर उनकी आज्ञासे खाद्य पदार्थ लानेवाला मार्ग छोड़ दिया गया। वे पराक्रमी शत्रुके अनाहारके कष्टको देख नहीं सके। राजपूत वीरोंका हृदय इसी तरहके उच्चतर गुणोंसे अलंकृत था। इन्हीं उच्च गुणोंके कारण आर्य्य-गौरवकी रक्षा करनेवाले प्रातःस्मरणीय राजपूत वीर आदरणीय हैं।।

दुर्बुद्धि मुगल सम्राट्ने उक्त गुण और राजधर्मका सम्मान नहीं किया। क्षत्रिय वीर इससे तनिक भी नहीं डरा। साहसके साथ उसने शत्रुका सामना किया। बहुत चेष्टा करनेपर

भी औरङ्गजेब उनकी गतिको नहीं रोक सका। वह युद्धमें पराजित हो हर भाग गया। सम्वत् १७३७ के फाल्गुन मासमें यह युद्ध हुआ था।

सम्वत् १७३७ में पुण्यपुंजमय राजपूत-भूमिमें राजसिंह विजयी हुए। १७३७ की वसंत ऋतुमें मेवाडाधिपतिने शत्रुके सामने अपने असीम साहस और शूरत्वका परिचय दिया।

राजसिंहने विजयी होनेपर भी पलायित सेनाके अनिष्ट-साधनकी चेष्टा न की। भीमसिंह गुजरातपर आक्रमण करके सूरतकी ओर बढ़े। बहुतसे लोग भागकर वहीं छिपे थे। राजसिंह उन्हें कष्ट देना नहीं चाहते थे। दया धर्म एवं सौजन्यको ही वे श्रेष्ठ गुण समझते थे। उन्होंने भीमसिंहको सूरतकी ओर जानेसे रोका।

राजसिंहने इस प्रकार उदारताके साथ राजधर्मकी रक्षा की। साहस, वीरता एवं अधिकृत राज्य-रक्षणके लिये वे प्रसिद्ध हैं। वे राजधर्मकी मर्य्यादा पालन करनेमें अग्रगण्य, दौरात्म्य दमनमें अद्वितीय थे।

परोपकारको ही वे श्रेष्ठ धर्म समझते थे। उनका प्रतिष्ठित राजसमुद्र* आज भी राजपूतानाकी शिल्प-कीर्तिकी शोभाको बढ़ा रहा है।

---

* यह एक राजपूतानेका बड़ा तालाब है जिसे राजसिंहने खुदवाया था।

रायमल

मेवाड़के राणा रायमलका चरित्र देवभावसे परिपूर्ण है। इसी भावसे मेवाड़का इतिहास आज भी उज्ज्वल मालूम पड़ता है। यदि स्वार्थ-त्याग महान उद्देश है, वंशकी पवित्रताकी रक्षा करनेके निमित्त यदि दृढ़ प्रतिज्ञ होनेकी आवश्यकता है, सच्ची वीरताके लिये यदि तेजस्विताकी आवश्यकता है तो मेवाड़के रायमलने निश्चय ही महान् उद्देशका पालन किया और दृढ़ प्रतिज्ञ होकर तेजस्विताके साथ साथ वीरताकी रक्षा की। डिमास्थिनिजको यदि अद्वितीय वक्ता न कहें तो कुछ हानि नहीं, सम्भव है कि वाल्मीकिको लोग अद्वितीय कवि न मानें, हाउआर्डको अद्वितीय हितैषी न समझकर लोग भले ही सम्मानित न करें पर यह बात निर्विवाद है कि रायमल तेजस्वियोंमें अद्वितीय थे। रायमलकी भांति कोई भी राजा अपने राज्यसे पापको हटाकर पुण्यका विस्तार नहीं कर सका और न इस तरह अपनी महत्ताका ही परिचय दे सका। आजतक संसारके इतिहासमें कहीं भी ऐसा दृष्टान्त देखनेमें नहीं आता। रोमके ब्रूटसने अपने अपराधी पुत्रको घातकके हाथमें समर्पित करके स्वार्थ-त्याग और न्यायका ज्वलन्त उदाहरण संसारके सम्मुख उपस्थित किया। मेवाड़के रायमलने अपने अपराधी पुत्रके घातकको पुरस्कृत करके और भी उच्च भावका परिचय दिया।

चार सौ वर्षसे अधिक हुए कि वीरभूमि राजपूतानाकी एक सुन्दरी जो पूर्ण युवती भी नहीं हुई थी अश्वारूढ़ होकर कहीं जा रही थी। अश्वारोहिणी युद्धवेषमें थी। इसी वेषमें बालिका निर्भय होकर बड़ी तेजीसे घोड़ेको चला रही थी। बालिकाकी इस भीषण और मधुर मूर्त्तिसे अपूर्व शोभा विकसित होती थी। दूरसे ही एक क्षत्रिय युवकने इस मनोमोहिनी मूर्त्तिको देखा। यह युवक भी युद्धवेषमें घोड़ेपर सवार था। भीषणता और मधुरताका अपूर्व सम्मेलन देखनेमें आया। अश्वारोही युवक अश्वारोहिणीके अनुपम सौन्दर्य और अपूर्व कौशलको देखकर चकित हो गया। इस युवकके हृदयमें आशा एवं निराशाकी भावतरंगें उठने लगीं। वह अधीर हो गया। पाठकगण यह उपन्यासकी भूमिका नहीं है। कविकी कल्पना नहीं है। यह इतिहासकी सच्ची घटना है। यह युवक कौन है? यह मेवाडके क्षत्रियकुल भूषण महाराज रायमलका छोटा लड़का जयमल है। यह विद्युत वेगसे घोड़ेको चलानेवाली बालिका कौन है? यह टोडाके अधिपति सुरतनुरायकी कन्या है। बप्पारावका एक वंशधर आज इस युद्ध वेषधारी सुन्दरीके रूपसागरमें निमग्न हो रहा है।

महाराजा रायमलके पुत्रने ताराबाईसे विवाह करनेकी इच्छा प्रकट की परन्तु सुरतनुने शीघ्र उसकी आशा पूरी नहीं की। वीरभूमि राजपूताना बंगाल नहीं है। उस समयके राजपूत लोग आजकलकी भांति अपनी कन्याओंके लिये वर नहीं ढूंढते फिरते थे। आजकल तो लोग बी० ए० एम० ए०

उपाधिधारी अकर्मण्य एवं विलासी युवकको ही पाकर आह्लादित हो जाते हैं। लिल्ला नाम एक कट्टर मुसलमानने सुरतनुको राज्यसे निकालकर टोडापर अधिकार जमा लिया था। सुरतनु निकाला जाकर अपनी कन्याके साथ मेवाड राज्यके अन्तर्गत वेदनोरमें रहने लगे। उनकी प्रतिज्ञा थी कि जो टोडापर अधिकार प्राप्त कर सकेगा वही ताराबाईका पाणिग्रहण करेगा। वास्तवमें यह प्रतिज्ञा क्षत्रियोंके उपयुक्त थी। जो लोग वसुन्धराको वीरभोग्या कहते हैं उनके मुखसे यह प्रतिज्ञा अवश्य ही शोभा देगी। सुरतनुकी कन्याको प्राप्त करनेकी अभिलाषासे जयमल टोडापर अधिकार प्राप्त करनेके निमित्त बढ़ा। पाठानोंके साथ उसे घोर संग्राम करना पड़ा परन्तु वह उन्हें परास्त नहीं कर सका। युद्धमें पराजित होकर वह लौट आया। परास्त होनेपर भी राजपूत कुलाङ्गार लज्जित नहीं हुआ। उसके हृदयमें ताराकी मनोमोहिनी मूर्त्ति छा गयी थी। परास्त होनेपर भी वेदनोर जाकर उसने बलसे उस युवतीको प्राप्त करनेकी इच्छा प्रकट की। राव सुरतनु यह अपमान सहन नहीं कर सके। उनका हृदय उत्तेजित हो गया। यह उत्तेजना योंही समाप्त नहीं हुई। आपने जयमलकी हत्या करके अपने सम्मानकी रक्षा की। राजपूतकी तलवार एक कलंकी राजपूतके रक्तसे रंगी गयी।

धीरे धीरे यह समाचार मेवाड़ पहुंचा। मेवाड़में घर घर इस समाचारपर आन्दोलन होने लगा। यह भयानक समाचार

महाराजा रायमलको कौन सुनावेगा बप्पारावकी संतानके रक्तसे राव सुरतनुका हाथ कलंकित हुआ है। आज उनकी रक्षा कौन करेगा? सब लोगोंके मनमें होने लगा कि अब सुरतनुकी रक्षा नहीं है। रायमलके दोनों बड़े लड़के अपने अपराधोंके कारण जंगलमें भेज दिये गये थे। जयमल ही केवल अपने पिताका हृदयरंजन था। आज उस हृदयरंजन पुत्रको खोकर रायमल अधीर हो जायगे। उन्हें कौन सान्त्वना देगा? मेवाडके राजपूत लोग यह विचारकर बड़े ही दुःखी हुए। यह बात अधिक समय तक गुप्त नहीं रह सकी। शीघ्र ही महाराज रायमलको सभी बातें मालूम हो गयीं। रायमलने धीर भावसे सभी बातें सुनीं। सहसा उनकी दोनों आंखें लाल हो गयीं। प्राणाधिक पुत्रकी शोचनीय अवस्था सुनकर आप तनिक भी अधीर नहीं हुए। आप गम्भीर स्वरमें बोले, जो कुलांगार पुत्र अपने पिताका सम्मान नष्ट करना चाहता है उसके लिये यह दण्ड उचित ही है। सुरतनुने कुलांगार पुत्रको दण्ड देकर क्षत्रियोचित कार्य किया।" महाराजा रायमलने यह कहकर क्षत्रियोचित काय्य करनेके निमित्त सुरतनुको वेदनोरका राज्य दे दिया।

सच्चे वीरोंके चरित्र इसी तरह उच्च भावोंसे परिपूर्ण रहते हैं। आजकल इस विशाल भारतमें कितने इस प्रकारके मनुष्य हैं? क्या कवि लोग भारतके प्राचीन गौरवके गीत गाकर चिरनिद्रित भारतको न जगायंगे?

बालककी वीरता

तेरहवीं शताब्दीमें खिलजी सम्राट् अलाउद्दीनने जिस समय चित्तौरपर आक्रमण करके उसे घेर लिया, चित्तौरके नाबालिग राजा लक्ष्मणसिंहके चचा जिस समय अपने बालक भतीजाकी सहायताके लिये तत्पर हुए, उस समय एक वीर बालकने अपनी असाधारण वीरताका परिचय दिया। आत्मसम्मान एवं आत्ममर्य्यादाकी रक्षाके लिये तथा पूजनीया मातृभूमिके गौरव-की वृद्धिके लिये इस बालकने रणक्षेत्रमें जाकर अपने शत्रुओंको परास्त किया। इस वीर बालककी वीर कहानी, एवं कवियोंकी रसमयी कविता निष्पक्ष इतिहास-लेखकोंके वर्णनमें पायी जा-यगी। निठुर पठान अलाउद्दीन वीर-भूमिके द्वारपर खड़ा हुआ है। वह भीम वेषधारी राक्षस भीमसिंहकी स्त्रीकी मर्य्यादा नष्ट करनेके लिये हाथ बढ़ा रहा है। आज राजपूत वीर उन्मत्तसे हो रहे हैं। वे वंशकी मर्य्यादाकी रक्षाके प्रतिज्ञापाशमें बंधे हुए हैं। पठान राजा पद्मिनीदेवीके रूप एवं लावण्यकी बात सुन-कर मुग्ध है। उस वीर रमणीके अलौकिक गुणकी कथा सुनकर वह और भी उत्तेजित हो रहा है। इस उत्तेजना और मोहके कारण आज वह चित्तौरपर आक्रमण करनेके लिये तैयार हुआ है। *उज्ज्वल राजपूत वंशमें आज वह कलंककी कालिमा लगानेके* लिये उद्यत है। परन्तु उसकी वह आशा पूरी नहीं हुई। वह

चित्तौरपर अधिकार प्राप्त नहीं कर सका। अन्तमें उसने एक क्षणके लिये पद्मिनीके देखनेकी इच्छा प्रगट की। राजपूत वीर दर्पण द्वारा उसका प्रतिबिम्ब दिखलानेके लिये सहमत हुए। अलाउद्दीनने भी यह बात मान ली। वह चित्तौरके राज्य-प्रासाद-में गया। वहां उसने पद्मरागमणिके सदृश पद्मिनीकी कान्तिको देखा। थोड़ी देरतक वह उस प्रतिबिम्बको एकटक देखता रह गया। कुछ कालतक उसका हृदय लावण्यमयी ललनाके लावण्यसागरमें गोते लगाने लगा। केवल उसे देखनेसे ही अलाउद्दीनकी आशा पूरी नहीं हुई। वह अपने हृदयसे पद्मिनी-की *मनोमोहिनी मूर्त्तिको हटा नहीं सका। वह कृत्रिम बन्धुता* दिखलाकर भीमसिंहको दुर्गके बाहर ले गया। सरल-हृदय राज-पूत वीरने पाठानकी धूर्त्तता नहीं समझी। वे बन्धुभावसे उसके साथ साथ गये। अलाउद्दीनने सुयोग पाकर भीमसिंहको कैद कर लिया। उन्हें वह अपने शिविरमें ले गया और बोला-"जब-तक पद्मिनी मेरे हाथ नहीं लगेगी तबतक मैं तुझे नहीं छोड़ूंगा।"

भीमसिंह शत्रुके हाथमें पड़े हुए हैं और पाठान राजा उनके वंशकी पवित्रता नष्ट करना चाहता है। आज चित्तौर असहाय सा दीख पड़ता है। नहीं, नहीं, जबतक एक भी राजपूत बच्चे-के शरीरमें प्राण है तबतक मेवाड़ असहाय नहीं कहा जा सकता। शीघ्र ही सभी राजपूत वीर प्रसन्नताके साथ भीमसिंहके उद्धारकी चेष्टा करने लगे। वीर राजपूतकी स्त्री पाठानके हाथ

पड़ेगी, सौन्दर्य्यसे मुग्ध होकर एक पाठान सतीके धर्म एवं मर्य्यादाको नष्ट करेगा, पवित्र कुसुम पाठानोंके हस्तस्पर्शसे कलंकित होगा, राजपूत वीर प्राण रहते ऐसा अनर्थ नहीं देख सकते ।

ऐसी अवस्थामें बादल नामका एक वीर बालक वंशकी मर्य्यादाके रक्षणार्थ अग्रसर हुआ। बारह वर्षके वीरने अविचलित साहसके साथ प्राण देकर भी बलिष्ठ शत्रुके हाथसे भीमसिंहके छुड़ानेकी प्रतिज्ञा की। इस महान् कार्य्यमें उसके चचा गोराने भी उसे पूर्ण सहायता दी ।

जिस समय अलाउद्दीन भीमसिंहको बन्दी बनाकर अपनी विश्वास-घातकतापर प्रसन्न हो रहा था उसी समय उसे सम्वाद मिला कि चित्तौर-लक्ष्मी पद्मिनी अपनी दासियोंके साथ उससे मिलना चाहती है। खिलजी बादशाह यह बात सुनकर आनन्दके मारे अधीर हो गया और अधीरावस्थामें कल्पनाकी सहायतासे अनेकों सुख स्वप्न देखने लगा। एक एक करके सात सौ पालकियां शिविरमें लायी गयीं। इन पालकियोंके भीतर परिचारिकाके भेषमें चित्तौरके साहसी राजपूत वीर थे। सुअवसर पाकर ये राजपूत वीर पालकीसे निकलकर युद्ध करनेके लिये तैयार हो गये। निकट ही पाठानोंकी सेना थी, अतः घमासान लड़ाई छिड़ गयी। साहसी बादलके अधीन राजपूतोंने खूब वीरता दिखायी। बारह वर्षके बालकके अलौकिक पराक्रमसे पाठान सेना शीघ्रताके साथ नष्ट होने लगी। पाठान

वीर इस बालकके अद्भुत पराक्रमको देखकर विस्मित रह गये। गोरा अपने भतीजाके सहायक थे। पवित्र रणक्षेत्रमें उन्होंने अपना प्राण विसर्जन किया। बादलने अपने चचाको समरमें प्राण त्यागते देखा पर जरा भी नहीं घबड़ाया। वह दूने उत्साहके साथ घोड़ा चलाने लगा। उसकी अतुलनीय वीरतासे शत्रु-सैन्य नष्ट होने लगी। एक ओर दिल्लीके सम्राट्की असंख्य सुशिक्षित सेना और दूसरी ओर एक बारह वर्षका बालक कुछ वीर सहायकोंके साथ युद्ध-भेषमें खड़ा है। माताकी गोदमें चले जाने योग्य बालक आज श्रेष्ठ वीरभूमिकी सम्मान रक्षाके निमित्त अस्त्र शस्त्रसे सुसज्जित होकर और दुर्भेद्य कवचको धारण कर अश्व पुण्डपर भीम पराक्रमके साथ शत्रुके सामने अड़ा खड़ा है।

जिसका कमल सदृश सुगठित शरीर लोगोंके नेत्रोंको तृप्त करता था आज वही कठोर प्रकृति शत्रुके कठोर शस्त्राघातसे घायल दीख पड़ता है। तेरहवीं शताब्दीमें मेवाड़के युद्ध स्थलमें इसी तरहका भीषण दृश्य देखा गया। घमासान लड़ाई छिड़ गयी। वीर बालकने इस युद्धमें अपनी असामान्य वीरताका परिचय दिया। बालककी अपूर्व वीरतासे मुग्ध हो विजय-लक्ष्मी उसके पक्षमें आ गयी। भीमसिंह शत्रुके अधिकारसे मुक्त हुए। निठुर अलाउद्दीनने पद्मिनीके पानेकी आशाको जलाञ्जलि दे दी। बादल बहुत घायल हो गया था। उसका शरीर खूनसे लथपथ और तरबतर हो रहा था। इसी दशामें वह

अपनी माताके पास गया। माताने अपार आनन्दके साथ बालकका मुख चूमकर गोदमें बैठा लिया। वीर बालक अपने जीवनकी पवित्र प्रतिज्ञाको पालन करनेके पश्चात् घर आया और उसने अपनी चाचीके निकट जाकर अपने चचाके अद्भुत वीरत्व एवं उनके अपूर्व पराक्रमकी बातें उनसे कहीं। गोराकी धर्मपत्नीने स्वामीकी वीरताकी बातें प्रसन्नतापूर्वक सुनीं और हंसते हंसते अनल-कुण्डमें अपनेको आहुति कर दी। भारतके बालकोंने किसी समय ऐसी वीरता एवं महत्ताका परिचय दिया था। वीर बालककी यह कीर्ति भारतके गौरवको बहुत दिनोंतक बनाये रखेगी।

वीर धात्री

राजपूत-कुल-गौरव पराक्रमी संग्रामसिंह अब इस संसार-में नहीं हैं। जो असामान्य साहस और वीरत्वका अधिकारी थे, जिसने मुसलमानोंसे युद्ध करके अपने गौरवकी रक्षा की थी आज उसके पार्थिव शरीरका नाम निशान मिट गया। शत्रु-के जालमें पड़कर वह पुरुषसिंह सदाके लिये अमरलोकको चला गया। उसका नन्हा सा बच्चा शत्रुओंके हाथमें है। आने-वाली विपत्तिका उसे कुछ भी ज्ञान नहीं है अतः वह ६ वर्षका बालक आनन्दसे रहता और सुखकी नींद सोता है। इधर उसके शत्रु उसके प्राण लेनेकी चेष्टामें लगे हैं परन्तु सरलहृदय बालकको इसका कुछ भी ज्ञान नहीं है। दासी पुत्र वनवीर * राज्यलोभसे बालककी हत्या करना चाहता है। आज इस घोर विपत्तिसे संग्रामसिंहकी एकमात्र संतान उदयसिंहका संसार-में कोई रक्षक दिखाई नहीं पड़ता। बप्पारावके पवित्र वंशको निर्मूल करनेके लिये यह षड्यन्त्र रचा गया है, आज उस वंश-का उद्धार करनेवाला कोई नहीं है। ईश्वरकी महिमा! एक

---

* संग्रामसिंहके भाई पृथ्वीराजका लड़का था बनबीर। यह दासीके गर्भसे पैदा हुआ था। उदयसिंह ६ वर्षका था, राज्यका काम बनबीर ही करता था। राज्य शासन सदा अपने हाथमें रखनेकी इच्छासे बनबीरने उदयसिंहकी हत्या करनेकी ठानी।

असहाय अबला इस घोर विपत्तिसे उदयसिंहकी रक्षा करनेके लिये उद्यत हुई। पन्ना उदयसिंहकी धाई थी। वह वनवीरके अधिकारमें रहकर उदयसिंहकी रक्षाके लिये प्राण हथेलीपर रखकर तैयार हो गई। उसने अपने मनमें ठान लिया कि जिस तरह हो सके मैं इस असहाय बालक बप्पारावके एकमात्र वंशधरकी रक्षा करूंगी। यह बात उसके मनमें क्यों आई इसका कारण केवल वही निस्स्वार्थ मनुष्यप्रेम हो सकता है जिससे प्रेरित होकर एक मनुष्य दूसरे अपरचित मनुष्यकी रक्षाके लिये सन्नद्ध होता है।

किस तरह पन्नाने पितृहीन बालककी ऐसी घोर विपत्तिसे रक्षा की यह सुनकर रोमांच हो आता है। उदयसिंह सो रहा था कि अचानक एक विश्वासी नौकरने आकर धात्रीसे कहा कि वनवीर उदयसिंहकी हत्या करनेके लिये आ रहा है। धात्रीने बालकको एक टोकरीमें रखकर ऊपरसे कुछ फल रख दिया और नौकरसे कहा कि इसे अमुक स्थानपर ले जाकर पहुंचा दे। जब नौकर टोकरी लेकर वहांसे चला गया तो थोड़ी ही देरके बाद वनवीर हाथमें नङ्गी तलवार लिये उस घरमें आया और धाईसे पूछने लगा कि उदयसिंह कहां है। धाईने उसे अपने सोते हुए बालकको उंगलीके इशारेसे बतला दिया। दुष्ट वनवीरने उसे उदयसिंह समझकर टुकड़े २ कर दिया और वहांसे लौट गया। बेचारी धाई कलेजेपर पत्थर धरे यह सब देखती रही और मुंहसे उफतक नहीं किया। दूसरे दिन उसी बालक-

की आवश्यक व्यवस्था किया होनेपर धात्री चुपकेसे उसी नौकर-के पास उदयसिंहके सकुशल सुरक्षित स्थानमें पहुंच जानेका समाचार पूछने गई।

इस तरह पन्नाने निस्संकोच भावसे अपने हृदयरंजन पुत्र-को घातकके हाथमें समर्पित करके संग्रामसिंहके पुत्रकी रक्षा की। इस वीर रमणीने चित्तौरके निमित्त, बप्पारावके वंशकी रक्षाके निमित्त, अपने जीवनके एकमात्र अवलंबन, स्नेहका एक-मात्र भाजन, आंखोंका तारा अपने पुत्रको मृत्युके मुखमें ढकेल-कर स्वार्थत्यागका कैसा उज्वल उदाहरण संसारमें उपस्थित किया। आजकलकी स्त्रियां अपनी सन्तानके लिये कर्त्तव्या-कर्त्तव्यका कुछ भी विचार नहीं करती हैं। वे इस महान् स्वार्थ-त्यागका भाव कैसे समझ सकती हैं? भारतवासी आजकल भीरु हो गये हैं। सच्चा तेज और पराक्रम उनमें अब नहीं रह गया है। भला स्वार्थत्यागकी बातोंको वे कैसे समझ सकते हैं? जो लोग सच्चे तेजस्वी हैं वे ही इस धात्रीके हृदयके उच्च भावों-को समझ सकते हैं और समझ सकेंगे। शोक है कि आज भारतमें ऐसे तेजस्वी नज़र नहीं आते।

वीर बाला

चौदहवीं शताब्दी बीत गयी। पन्द्रहवीं शताब्दीने अपना प्रभाव जमाकर यह सिद्ध कर दिया कि संसार परिवर्त्तनशील है। पराधीन तथा परपीड़ित भारतवर्ष तेमूरलंगके आक्रमणसे महा श्मशान बन गया। दिल्लीका राजा मुहम्मदशाह जीवित दशामें ही मुर्देकी तरह श्मशानके एक कोनेमें पड़ा था। उसकी क्षमता एवं उसके प्रताप एक दम नष्ट हो गये। निठुर आक्रमणकारियोंके अत्याचारसे दिल्ली श्रीभ्रष्ट हो गयी थी। शोक दुःख और दरिद्रताके हृदयविदारक दृश्यसे दर्शकके भी होश उड जाते थे। भारतवर्षको इस दुरवस्थामें भी राजस्थानने अपनी पुरानी वीरताके गौरवको बनाये रक्खा। राजस्थानकी एक वीर नारीने अपने असाधारण चरित्र और अलौकिक तेजस्विताका परिचय देकर अपने स्वामीके साथ प्राण-विसर्जन किये। वीर भूमिकी इस तेजस्विनी नारीका नाम था कर्मदेवी।

राजस्थानमें यशलमीर नामक एक प्रदेश है। यह प्रदेश मरु-भूमिके बीचमें है। इसके चारों ओरके बालूके समुद्र पथिकोंके हृदयमें भय उत्पन्न करते हैं। भयङ्कर मरु-भूमिमें अवस्थित होने पर भी यशलमीर हरे हरे वृक्षोंसे आच्छादित है। पन्द्रहवीं शताब्दीके

प्राचीनमें यशलमीरके अन्तर्गत पूगल नामक स्थानमें अनददेव राज्य करते थे। उनके पुत्रका नाम था साधू। भट्टि जातिमें साधू सबसे श्रेष्ठ वीर था। उसके साहस, पराक्रम एवं वीरत्वके आगे सभी सिर झुकाते थे।

इस विशाल मरुभूमिसे सिन्धु नद तक उसका प्रताप फैला हुआ था। उसके भयसे कोई भी पार्श्ववर्ती राजा अपनेको प्रधान नहीं कहता था। असीम साहस और प्रबल प्रतापके बल पूगल कुमारने मरु-भूमिमें खूब प्रभाव जमा लिया था। एक समय साधू किसी जनपदपर अधिकार प्राप्त करनेके पश्चात् लौट रहा था। उसके साथ एक बड़ी सेनाके अतिरिक्त असंख्य ऊंट और घोड़े भी थे। वह इनको साथ लिये अरन्ति नगरमें पहुंचा। यह नगर महिल वंशके मानिकरावकी राजधानी थी। १४४० गावोंपर मानिकरावका आधिपत्य था। उन्होंने आदर के साथ पूगल कुमारको निमन्त्रण दिया।

साधूने प्रसन्नताके साथ उनका आतिथ्य स्वीकार किया। इस समय उनके वीरत्वकी महिमा और भी फैल रही थी। मानिकरावकी कन्या कर्मदेवी साधूके गुणोंपर मुग्ध हो गई। एक राठौर वंशीय राजकुमार अरण्यकमलके साथ कर्मदेवीके विवाहकी बात थी। राजकुमारीने पूगल राजकुमारके गुणोंके विषयमें पहलेसे ही सुना था। वह अरण्यकमलको छोड़ उन्हींसे विवाह करनेके लिये तैयार हो गयी। साधूने भी इस प्रस्तावको स्वीकार कर लिया। वह अरण्यकमलसे तनिक भी न डरा।

अपने साहस और पराक्रमके भरोसे उसने लावण्यवती कामि-नीके पानेकी इच्छा की। विवाहका दिन ठीक हो गया।

निश्चित समयपर मानिकरावने अपनी राजधानी अरन्ति नगरमें ही अपनी कन्याको साधूके हाथमें समर्पण किया। जिस तरह बड़े वृक्षके सहारे लता बढ़ती है उसी तरह कर्मदेवीके गौरवकी वृद्धि होने लगी। इस विवाहसे अरण्यकमलके कलेजे-में गहरी चोट लगी। उसके हताश हृदयमें आशाका संचार हुआ। कल्पनाके सहारे धीरे धीरे वह सुख अनुभव करने लगा। वह सुख शीघ्र ही लुप्त हो गया। अरण्यकमलके हृदयमें प्रति-हिंसाकी अग्नि धधकने लगी। कल्पनाके बल वह अपने नेत्रोंके सामने विकट दृश्य देखने लगा। उसने प्रतिज्ञा की कि बिना इसका बदला लिये मैं न छोड़ूंगा।

जब तक मेरे शरीरमें रक्तका एक बूंद भी है तब तक मैं साधूको जीवित नहीं देख सकता। कर्मदेवीको नहीं पानेसे अर-ण्यकमल हताश तो हुआ पर और भी दृढ़तासे अपने काममें लग गया। इस तरह साधूका जीवनमार्ग कंटकोंसे आच्छादित था।

अरन्तिराजने दहेजमें दामादको मणि, मुक्ता, सोना चाँदी आदि दिये। एक सोनेका बैल और तेरह कुमारियां दी गईं। उन्होंने दामादको चार हजार महिल सैन्य साथ ले जानेको कहा। परन्तु साधू इसपर सहमत नहीं हुआ। वह केवल अपने सात सौ सैनिकोंको साथ लेकर अपने बाहुबलके भरोसे नव-विवाहिता वधूको ले जानेको तेयार हुआ। अरन्तिराजाके

विशेष अनुरोध करनेपर उसने केवल पांच सौ भट्टिल सैनिकों-को अपने साथ ले लिया।

कर्मदेवीका भाई मेघराज इस सेनाके नायकके पदपर प्रतिष्ठित किया गया। सब लोगोंने अवन्ति नगरसे यात्रा की। सब लोग आनन्दसे आह्लादित हो पूगल नगरकी ओर बढ़े जा रहे थे। राहमें चन्दन नामक स्थानपर साधु विश्राम करनेके लिये ठहरा ही था कि एक बड़ी सेना उसकी ओर आती दीख पड़ी। बातकी बातमें वह सेना साधूके निकट पहुंच गयी। साहसी साधूने देखा कि सेना बहुत करीब आ गयी। अरण्यकमल हाथमें तलवार लिये सैनिकोंके अग्रभागमें खड़ा होकर उन्हें चला रहा था। शीघ्रही साधू भी धीरताके साथ लड़नेको तैयार हो गया।

उसने अपने सैनिकोंको विजय-लक्ष्मी प्राप्त करने या आत्म-विसर्जन करनेकी आज्ञा दी। उसके विरुद्ध चार हजार राठौर वीर थे। तेजस्वी अरण्यकमल जो उनके खूनका प्यासा था हाथमें तलवार लिये प्रतीक्षा कर रहा था तोभी साधू घबराया नहीं। धीरता त्यागकर उसने भीरुताका परिचय नहीं दिया। वह वीर युवक सम्मान रक्षाके लिये तैयार हो गया। देखते देखते चार हजार भट्टी वीर सेनापर टूट पड़े। राठौर संख्यामें अधिक थे अत उन लोगोंने एक ही बार भट्टी सेनापर आक्रमण करना उचित नहीं समझा। इस तरहके आक्रमणको वे लोग घृणाकी दृष्टिसे देखते थे। साधू और अरण्यकमल युद्ध करके साहस

और वीरताका परिचय देनेको तैयार हुए। १४०७ ई० में एक लावण्यवती कुमारीके लिये चन्दन नामक स्थानमें यह लड़ाई हुई थी। अन्तमें साधू घोड़ेपर सवार होकर सेनामें घुसा। वह दो बार घाड़ेको चलाता हुआ पराक्रमी राठौर सैनिकोंमें मिल गया। दोनों बार उसके शस्त्राघातसे बहुसंख्यक राठौर वीर मारे गए। कुसमयमें यह लड़ाई छिड़ी थी तोभी कर्मदेवी डरी नहीं। उसके प्राणाधिक पतिका जीवन सकटमें था, पर कर्मदेवी कातर नहीं हुई। वह साहसके साथ अपने स्वामीको उत्साहित करने लगी। प्रियतमके अद्भुत समर-कौशल एवं साहसको देखकर मनही मन वह उन्हें धन्यवाद देने लगी। साधूके पराक्रमसे छः सौ राठौर वीर युद्धमें मारे गए।

साधूकी सेनाके भी आधे वीर समर-भूमिमें कट मरे। कर्मदेवीने पहलेकी ही तरह दृढ़ताके साथ स्वामीसे कहा, "मैं आपका युद्ध-कौशल देखना चाहती हूं। यदि आप समर-भूमिमें सो जायंगे तो मैं भी आपके ही पार्श्वमें रहकर आपकी अनुगामिनी बनूंगी। पत्नीके ये वाक्य सुनकर साधू बहुत प्रसन्न हुआ और तेजस्विताकी सम्मान-रक्षाके निमित्त तैयार होकर उसने अरण्यकमलको युद्धके लिये ललकारा। अरण्यकमल भी इस युद्धको शीघ्र समाप्त करनेके लिये उत्सुक था। दोनों वीर सामना सामनी खड़े हो गए। थोड़ी देर तक दोनोंमे नम्रतापूर्वक बातें होती रहीं।

इस पवित्र युद्धमें अधर्म या धूर्तताका प्रयोग नहीं किया गया

था। दोनों क्षत्रिय वीर कुछ देर तक प्रीतिपूर्वक बातें करके अपनी अपनी प्रधानता एवं मर्यादाकी रक्षाके लिये हाथमें तलवार लेकर लड़नेको तैयार हो गए। साधूने अरण्यकमलके कन्धे-पर तलवार चलायी, अरण्यकमलने भी साधूके सिरको लक्ष्य करके बड़ी तेजीसे तलवार चलायी। कर्मदेवीने देखा कि दोनों वीर बेहोश होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। कुछ देरके पश्चात् अरण्य-कमलको होश हुआ पर साधू ज्योंका त्यों पड़ा रह गया। कर्म-देवीकी आशापर पानी फिर गया। जिस कल्पनाकी तरंगमें गोते लगाती हुई यह बाला अपने पिता-माताको छोड़ पूगल आ रही थी वह सुख सदाके लिये जाता रहा। बालिकाका प्राणाधिक रत्न आज मरुभूमिमें खो गया। इतनेपर भी कर्मदेवी कातर न हुई। उसने धीरताके साथ हाथमें तलवार ली और अपने ही हाथसे अपनी एक बांह काटकर कहा, "इस बांहको प्रियतमके पिताको सौंपकर कहना कि आपकी पतोहू इसी रंगकी थी।" फिर उसने आज्ञा दी कि यह मेरी दूसरी बांह भी काट डाली जाय। शीघ्र ही आज्ञाका पालन किया गया, वीर नारीने कहा कि यह बांह मणिमुक्ताओंके साथ महिल कविको उपहार स्वरूप दे दी जावे। अनन्तर चिता सजायी गयी और उसी चितापर यह साध्वी स्त्री अपने पतिके साथ जलकर स्वर्गको गयी।

कर्मदेवीकी कटी हुई बांह यथासमय पूगल पहुंची। वृद्ध पूगल-राजकी आज्ञासे वह बांह जला दी गई। राजाने वहां एक पुष्करिणी खुदवायी जो आज भी कर्मदेवीका सरोवर कहा जाता है। अरण्यकमलके घाव अच्छे नहीं हुए। छः महीनेके बाद वह भी मर गया।

वीरांगना

पराक्रमी शाहबुद्दीन गोरीने जिस समय भारतवर्षपर चढ़ायी की, उस समय आर्योंने अपनी जन्म-भूमिकी रक्षाकी पूर्ण चेष्टा की थी। जब दिल्लीश्वर पृथ्वीराज स्वदेशकी स्वाधीनताकी रक्षाके लिये अफगानोंको भारतवर्षसे निकालनेकी तैयारीमें लीन थे, उस समय मेवाड़के अधिपति समरसिंहने अपने प्रियतम पुत्र और सादसी सैनिकोंको लेकर उनका साथ दिया। दिल्ली और मेवाडके वीर दृषद्वती नदीपर इकट्ठे हुए। आर्य्य लोग इसी पवित्र स्थानपर वेदोंका गान करते थे तथा योगासन लगाकर ईश्वरका ध्यान करते थे। आज उसी पवित्र नदीके तटपर अपनी स्वाधीनताकी रक्षाके लिये आर्य्य वीर इकट्ठे हुए। उन्हें इस काममें सफलता नहीं हुई।

अफगानोंकी धूर्त्तताके आगे हिन्दुओंको हार माननी पड़ी। दृषद्वती नदीके तटपर क्षत्रियोंके रक्त-सागरमें भारतका सौभाग्य-सूर्य्य डूब गया। पृथ्वीराज मारे गये। तदनन्तर तीन दिनों तक लड़ाई होती रही और अन्तमें समरसिंह भी हार गये। अफगानोंने दिल्ली एवं कान्यकुब्जमें विजय-पताका उड़ायी। अनन्तर वे लोग पुण्य-भूमि राजपूतानामें पहुंचे। समरसिंह अब इस संसारमें नहीं हैं। मेवाड़निवासियोंको अब चारों ओर अन्धेरा मालूम हो रहा है। पराक्रमी शत्रुको देखकर वीर-

भूमि आज शोक-सागरमें गोते लगा रही है। समस्त राजपूताना नर-रक्तसे रंग गया है। जिधर देखिये उधर ही विपक्षी लूट रहे हैं। तेजस्विता एवं स्वाधीनता-प्रिय राजपूतानाको आज आक्रमणकारियोंने, श्मशानसा बना दिया है। इस शोचनीयावस्थामें एक ईश्वरीय शक्तिका आविर्भाव हुआ जिससे यह स्रोत उल्टे बहने लगा। वीर-भूमिमें अचानक एक ऐसी शक्ति आयी कि मेवाड़की गौरवरक्षाके निमित्त असंख्य वीर पागलसे होकर समर-भूमिमें एकत्रित होने लगे। मेवाड़की एक वीरांगना शत्रुओंको नष्ट करनेके निमित्त वीर भेष धारणकर अग्रसर हुई।

यह युवती कौन है? महाराज समरसिंहकी स्त्री कर्मदेवी। मेवाड़का एक मात्र उत्तराधिकारी, समरसिंहका पुत्र कर्ण इस समय बालक था। यह भोला भाला बालक विपक्षियोंके हाथमें पड़कर कष्ट पावेगा, यह कर्मदेवी सहन न कर सकी। कर्मदेवी शत्रुओंको आज अपने देशसे निकाल देना चाहती है। समरसिंह तो युद्धमें मारे गए पर आज उनकी विधवा रमणी पतिकी धर्म-रक्षाके लिये कटिबद्ध है। कर्मदेवीने घोर भेष धारण किया। शरीरको कवचसे आवृतकर उसने तीक्ष्ण तलवार हाथमें ले ली। बहुतसे राजपूत वीर भी इस वीरांगनाकी अधीनतामें युद्ध करनेको तैयार हो गए। शाहबुद्दीनका प्रियपात्र कुतुबुद्दीन राजस्थानमें घुसा। आबूके निकट वीरांगनाने उसपर धावा किया। युद्धमें वीरांगनाने खूब वीरता दिखलायी। उसके आक्रमणसे विपक्षी सेना नष्ट होने लगी। विपक्षियोंका बल घटने

लगा। कुतुबुद्दीन युद्ध-क्षेत्रमें लावण्यवती युवतीकी भीषण-मूर्त्तिको देखकर चकित हो गया।

उसने विजयकी आशा छोड़ दी। कर्मदेवीने अलौकिक साहस तथा पराक्रमके साथ लड़कर शत्रुको हरा दिया। विजय प्राप्त करनेपर उसका गौरव और भी बढ़ गया। कर्मदेवीने मेवाड़की गौरव-रक्षा की। दिल्लीके प्रथम मुसलमान राजाको एक स्त्री द्वारा घायल एवं पराजित होकर युद्ध-स्थलसे भाग जाना पड़ा। किसी समय मेवाड़ने इस तरह अपनी स्वाधीनता-की रक्षा की थी। मेवाड़की एक स्त्रीने पराक्रमी शत्रुको पराजितकर अपनी कीर्त्तिको बनाये रक्खा। उस वीर रमणीकी कीर्त्ति-कहानी इतिहासमें स्वर्णांकित रहेगी। मेवाड़ वास्तवमें वीरत्वकी लीला-भूमि है। सहृदय ऐतिहासिकोंने सच कहा है—"सैकड़ों दोषोंके रहनेपर भी मेवाड़ मैं तुम्हारी प्रशंसा करूंगा।"

अलका आत्म-त्याग

समय स्रोतके साथ साथ १८ वीं शताब्दी चली गयी और उन्नीसवीं शताब्दी अपना प्रभाव फैलाने लगी। मुगलोंका प्रबल प्रताप और विस्तीर्ण गौरव लुप्त हो गया। दिल्ली इस समय श्मशानसा हो रहा है। उसके एक कोनेमें अकबर शाहजहां जैसे पराक्रमी राजाओंके वंशज छिपे हुए हैं। ब्रिटिश राजपुरुष भारतके भिन्न भिन्न स्थानोंपर अधिकार जमाकर यहांके अन्यान्य राजाओंके हृदयमें भय उत्पन्न कर रहे हैं। महाराष्ट्रीय वीर सिन्धिया और होल्कर दक्षिणसे आकर आर्य्यावर्तमें अपना अधिकार फैलाना चाहते हैं। इस परिवर्त्तनके समयमें मेवाड़के अधिपति थे भीमसिंह। भीमसिंह अपने पूर्वपुरुषोंकी तरह पराक्रमी नहीं थे। भीमसिंह यद्यपि वैसे तेजस्वी नहीं थे तथापि बप्पारावके वंशज होनेके कारण सिंहासनपर बैठे थे।

महाराष्ट्रीय राजा लोग सेना लेकर राजस्थानमें घुसे। उनके आक्रमणसे इतिहास प्रसिद्ध पवित्र जनपद शोक और दुःखसे व्याकुल हो गया। उस समय यहांके निवासियोंको प्रतापसिंह पत्त पुत्त, जयमल तथा बादलका स्मरण होने लगा। इस शोचनीयावस्थामें राजस्थानकी वाटिकामें एक ऐसा पवित्र कुसुम विकसित हुआ जिसने अपनी पवित्रतासे सारे उद्यानको पवित्र कर दिया। सोलह वर्षकी एक क्षत्रिय बालिका कृष्णकुमारीने

पिताके राज्यकी रक्षाके निमित्त संकल्प किया और वह गौरव-भ्रष्ट एवं दूसरोंसे पीड़ित राजस्थानके उद्धारकी चेष्टामें लगी।

कृष्णकुमारी राजा भीमसिंहकी कन्या थी। सुन्दरतामें उसकी बराबरी करनेवाली रमणी उस समय कोई भी न थी। लोग उसे "राजस्थानका कुसुम" कहकर सम्मानित करते थे। वह जैसी सुन्दरी थी वैसी ही देशभक्त भी थी। जब कृष्ण सोलह वर्षकी हुई उसी समय भीमसिंहने मारवाड़के राजाके साथ उसका विवाह करना स्थिर किया परन्तु शीघ्र ही मारवाड़का राजा मर गया। अतः भीमसिंहने जयपुरके अधिपति जगतसिंहको कन्यारत्न समर्पण करना चाहा। मारवाड़के दूसरे राजा मानसिंहने इससे क्रुद्ध होकर ससैन्य मारवाड़पर आक्रमण किया और कृष्णकुमारीसे विवाह करनेकी इच्छा प्रगट की। इधर सिन्धिया महाराजने भी भीमसिंहको लिखा कि कृष्णकुमारीका विवाह जयपुरके राजाके साथ न करके मारवाड़के राजाके साथ करो। सिन्धिया महाराजको जयपुरके अधिपतिसे शत्रुता थी इसीसे उन्होंने मारवाड़के राजाकी इच्छा पूर्ण करनेकी बात लिखी। भीमसिंह सहमत नहीं हुए। सिन्धिया महाराज अपनी सेनाको रोक नहीं सके। भीमसिंहने एक शिवमन्दिरमें सिन्धिया महाराजसे भेंट की। उन्हें विवश होकर सिन्धिया महाराजके अनुरोधका पालन करना पड़ा। जयपुर राज्यका दूत लौटा दिया गया। जगतसिंह इस अपमानको सहन नहीं कर सके। शीघ्र ही उनकी बड़ी सेना मेवाड़में पहुंच

गई। इधर मारवाड़के राजा मानसिंह भी युद्धके लिये तैयार हो गये। एक अर्द्ध विकसित पुष्पके लिये आज पवित्र वीरभूमिमें रक्तकी धारा बहने लगी।

इस युद्धमें पहले तो मानसिंहका विजय लक्ष्मी नहीं प्राप्त हुई। उनके पक्षके कुछ लोग विपक्षीकी सहायता करने लगे। भीमसिंह एक लाख बीस हजार सैनिकोंको साथ लेकर विपक्षीसे भिड़े थे। लड़ाई प्रारम्भ होते ही अधिकांश मारवाड़ी विपक्षियोंसे जा मिले। इस विश्वासघातसे दुःखी होकर मानसिंह आत्म-घात करनेके लिये तैयार हो गए। परन्तु उनके कई सरदारोंने उनके हाथकी तलवार छीन ली और उन्हें युद्धक्षेत्रसे हटाकर राजधानीमें लाये। शत्रुओंने उनका पीछा किया और अन्तमें उनकी राजधानीपर आक्रमण किया। पराक्रमी राठौर अलौकिक साहसके साथ अपनी जन्म-भूमिकी रक्षा करने लगे। अन्तमें उनकी राजधानी शत्रुओंके हाथमें पड़कर लूट ली गई। मानसिंह किलेमें छिप रहे। यह किला अभेद्य था। इस विपत्तिके समयमें भी इस किलेके गौरवकी भली भांति रक्षा हो सकी। मारवाड़की राजधानी शत्रुओंके हाथमें गयी सही परन्तु यह किला सुरक्षित रहा।

इस विपत्तिके समय मनुष्य नामधारी एक पशु-स्वभावका जीव घटनास्थलपर उपस्थित था। इसका नाम था अमीर खां। यह पठान था। यह बड़ा ही दुष्ट था। अमीर खां पहलेसे ही मानसिंहके विपक्षियोंकी ओर था। विपक्षियोंने इस दुराचारी

नराधमको अपना मित्र समझा था। अन्तमें इसी पाखंडी मित्रके विश्वास-घातसे उनके प्राण गये। जब उनकी सेना नष्ट हो गयी तब अमीर खां प्रसन्नताके साथ मानसिंहके दलमें जा मिला।

इस तरह इस विश्वास-घातकके पापकार्य्यका एक अंश सम्पादित हुआ। अनन्तर उसने इससे भी एक भयंकर कार्य्य किया। राजस्थानके अनन्त सौन्दर्य्यमय पुष्पके लिये अब भी जयपुर और मारवाड़के राजा लड़ रहे थे। उनके आक्रमणसे मेवाड़की पवित्र भूमिमें घोर अशान्ति फैल रही थी। वही दुष्ट पाठान इस समय उदयपुरके राजाका मित्र बनकर उन्हें परामर्श देने लगा। उसीके कुपरामर्शसे उदयपुरके राजा अपनी कन्याकी हत्या करनेकी इच्छा करने लगे। राज्यमें शान्ति-स्थापन करनेके लिये उन्हें यही उपाय सूझा। इसी कुमन्त्रके बल उन्होंने मेवाड़की गौरव-रक्षाका संकल्प किया। शीघ्र ही संकल्प-सिद्धिका प्रबन्ध होने लगा।

राजाके एक वनिष्ठ आत्मीय थे महाराज दलीपसिंह। उदयपुरकी सम्मान-रक्षाके निमित्त यह पाप-कर्म करनेका अनुरोध पहले उनसे ही किया गया। प्रस्ताव सुनते ही दलीपसिंह अधीर हो गये। उन्होंने तीव्र स्वरमें कहा, "ऐसा प्रस्ताव करने वाली जिह्वाको धिक्कार है। इस तरह राज्यकी रक्षा करने वाली राजभक्तिको भी धिक्कार है।" अनन्तर राजाका भाई हाथमें तलवार लिये लावण्यवती राजकुमारीके शयनगृहमें गया।

कृष्णकुमारी सोयी थी। उसके कमल सदृश सुन्दर शरीरसे अपूर्व शोभाका विकास होता था। यह शोभा देखकर योवन दास चकित हो गया।

क्रोध, क्षोभ और वैराग्यसे वह अधीर हो गया। वह विवश था, उसके हाथकी तलवार गिर पड़ी। बात खुल गयी। कृष्ण-कुमारी और उसकी माताको सब रहस्य मालूम हो गया। माता शोकविह्वल होकर रोने लगी। परन्तु कृष्णकुमारी तनिक भी न घबड़ायी। उसने भयंकर षड्यन्त्रकी बात सुनकर भी धीरता-की सीमाका उल्लंघन नहीं किया। उसने प्रसन्नताके साथ माताको सान्त्वना देते हुए कहा, "माता! क्षणस्थायी शरीरके लिये क्यों कातर होती हो? क्या मैं तुम्हारी कन्या नहीं हूं? तब मैं क्यों मृत्युसे डरने लगी? इस समय मृत्यु मुझे अत्यन्त सुहावनी मालूम होती है। क्षत्रिय नारियां आत्मसम्मानकी रक्षाके निमित्त प्राण-त्याग करनेको ही इस संसारमें आती हैं।"

तेजस्विनी राजकुमारीने राज्यकी रक्षाके निमित्त इस तरह प्राण त्यागनेका निश्चय किया। राजाकी आज्ञासे एक भृत्य विष का प्याला लिये कृष्णकुमारीके निकट गया। कृष्णकुमारीने पिताकी आज्ञासे प्रसन्नतापूर्वक उसे पी लिया। तदनन्तर दूसरा प्याला लाया गया। इसे भी शीघ्र ही पानकर उस देवीने पितृभ-क्तिका अपूर्व दृष्टान्त दिखलाया। इस तरह दो बार विष पीने-पर भी जब कृष्णके प्राण नहीं गए तब अन्तमें हलाहल विषका प्याला उसके सामने लाया गया। इस बार कृष्णकुमारीने बड़ी

प्रसन्नताके साथ ईश्वरको स्मरण करते हुए इसको पी लिया। इस बार उसे गाढ़ी नींद आयी। इस नींदसे वह फिर न उठी। पितृभक्तिपरायण स्वदेश हितैषिणी सोलह वर्षकी कुमारी प्रसन्नताके साथ स्वर्गको गयी परन्तु उसकी गौरवयुक्त कीर्त्ति सदा बनी रहेगी।

दुर्गावती

मध्य भारतमें इलाहाबादके दक्षिण पश्चिम सौ कोसकी दूरी-
पर गढ़मण्डल नामक एक राज्य था। ३५८ ई० में यदुपति
नामका एक राजपूत यहां राज्य करता था। उसने मंडल,
सोहागपुर, छत्तिसगढ़, सम्बलपुर इत्यादि जनपदका अपने
राज्यमें मिला लिया था। सोहागपुर बुन्देलखडके अन्तगत है।
इसका अधिकांश जंगल ही है। यह स्थान छोटे छोटे वृक्षों एवं
हरियालियोंसे भरे रहनेके कारण बहुत सुन्दर मालूम पड़ता है।
छत्तिसगढ़ पहले रत्नपुरके नामसे प्रसिद्ध था। इसका कुछ
अंश जंगल है और कुछ पर्वतमालाओंसे आच्छादित है।
गढ़मंडल प्राकृतिक सुन्दरताओंसे विभूषित है।

उस राज्यका प्रत्येक ग्राम सुन्दर जलाशय एवं वाटिकाओंसे
सुशोभित है। स्वच्छ जलकी नदियां धीरे धीरे प्रवाहित होकर
रजतमालाकी भांति वन भूमिकी शोभाको बढ़ाए देती है। कहीं
कहीं सुन्दर लताएं वनपुष्पोंसे सुशोभित होकर अपनी सुन्दर
ताका परिचय दे रही हैं। कहीं कहीं अटल पर्वत अपनी स्वाभा-
विक गम्भीरता धारण किये विराट रूपसे खड़े हैं। गढ़मडलकी
राजधानी गढ़नगर जम्बलपुरसे पांच मीलकी दूरीपर नर्मदाके
दक्षिण तटपर अवस्थित है। यह नगर चारों ओर पर्वतोंसे घिरा
है अतः शत्रु सहजमें ही इसपर आक्रमण नहीं कर सकते।

भारतीय वीरता —

रानी दुर्गावती

BAN K PRESS CALCUTTA

जिस समय दिल्लीके सिंहासनपर मुसलमानोंका अधिकार हुआ, भिन्न २ स्थानोंपर जिस समय वे अपना अधिकार जमाने लगे, एक राज्यके बाद दूसरे राज्यमें जिस समय उनकी विजयपताका उड़ने लगी उस समय भी गढ़मंडलने अपनी स्वाधीनताकी रक्षा की। मुसलमान सैनिक इस राज्यका अधिकार प्राप्त नहीं कर सके। सोलहवीं शताब्दीमें इस राज्यकी लम्बाई तीन मील एवं चौड़ाई एक मील थी।

सोलहवीं शताब्दीका एक अंश बीत गया। सम्राट् अकबर दिल्लीके सिंहासनपर बैठा। भारतके उत्तर दक्षिण पूरब पश्चिम सभी भागोंपर धीरे धीरे मुसलमानोंका अधिकार हो गया। छोटे छोटे राज्योंने अपनी स्वाधीनता नष्ट कर दी।

मुगलोंके इस दिग्विजय कालमें भी प्रातःस्मरणीय प्रताप-सिंहका पराक्रम स्थिर रहा। इस समय गढ़मण्डलकी रानी अपनी क्षमताके बल शत्रुसे अपने सम्मानकी रक्षा कर सकी।

१५३० ई० में यदुरायका एक वंशज जिसका नाम दलपत-शाह था गढ़मंडलके सिंहासनपर बैठा। उस समय भी गढ़ नगर ही इसकी राजधानी थी। दलपतशाहने सिंहगढ़ नामक पार्वत्य दुर्गमें अपनी राजधानी बनवायी। इस समय महरा राज्यपर क्षत्रियोंका अधिकार था। किसी समय इनका अधि-कार सिंहगढ़से कान्यकुब्ज पर्यन्त फैला हुआ था। दुर्गावती महरा राज्यके एक क्षत्रिय राजा की कन्या थी। दुर्गावती बड़ी ही सुन्दरी और तेजस्विनी थी।

उस समय भारतवर्षमें उसके सदृश रूपवती दूसरी कोई स्त्री नहीं थी। दलपतशाहने इस सुन्दरीसे विवाह करनेका प्रस्ताव किया। दुर्गावतीके पिताने उस वंशको नीचा बतलाकर इस प्रस्तावको अस्वीकार किया। दलपत शाम्य और तेजस्वी पुरुष न था। उसको वीरताकी महिमाको समस्त गढ़-राज्य जानता था। अपूर्व सुन्दरीके साथ इस तेजस्वीका संयोग होनेसे दोनोंकी ख्याति और भी बढ़ती। दुर्गावती पहलेसे ही गुणकी पक्षपातिनी थी अत इस तेजस्वी पुरुषको देखकर इसकी भी इच्छा उनसे विवाह करनेकी हुई। दलपतशाहने भी उस क्षत्रिय नारीकी इच्छा पूर्ण करनेका संकल्प किया। दलपतने अपने सैनिकोंको लेकर महरा राज्यपर आक्रमण कर दिया और उन्हें परास्तकर दुर्गावतीको ले अपनी राजधानीको लौट गया। वीर पुरुषको उसकी वीरताका उचित पुरस्कार मिला। भलेके साथ भलेका संयोग हुआ। दोनों तेजस्वी इस तरहसे रहने लगे मानों दो पुष्प एक ही सूत्रमें गुथे हों। गढ़मंडल इन दोनों पुष्पों की सुन्दरतासे सुशोभित हो रहा था। तेजस्विनी दुर्गावती तेजस्वी दलपतके आश्रयमें रहकर सुखसे समय बिताने लगी।

विवाहके चार वर्ष पश्चात् वीर नारायण नामक पुत्रको छोड़ कर दलपतशाह परलोक सिधारे।

इस समय वीर नारायण केवल तीन वर्षका था। विधवा दुर्गावती अपने पुत्रके नामपर स्वयं राजकाज चलाती थी। अधर नामक एक बुद्धिमान मनुष्य इसका मन्त्री था। दुर्गावती

राज्यके सभी कामोंमें मन्त्रीसे परामर्श लेती थी। उसके उचित शासनसे गढ़मंडलकी संपत्तिकी दिन दिन वृद्धि होने लगी। उसने जब्बलपुरके निकट एक बड़ा जलाशय खुदवाया। देखा-देखी उसकी दासीने भी उसीके निकट दूसरा जलाशय खुदवाया। इसकी कथा यों है। जिस समय बड़ा जलाशय खोदा जाता था उस समय दासीने दुर्गावतीसे प्रार्थना की कि मजदूरोंको आज्ञा दे दी जाय कि उस जलाशयके निकट अमुक स्थानसे वे प्रति दिन एक एक कुदाल मिट्टी कोड़ दें। दासीकी प्रार्थना स्वीकार की गयी और उसीके अनुसार कार्य होने लगा। इसका परिणाम यह हुआ कि उस बड़े जलाशयके पास ही एक छोटा सुन्दर जलाशय तैयार हो गया। प्रधान मन्त्री अधरने भी जब्बलपुरसे तीन मीलकी दूरीपर एक बड़ा जलाशय खुदवाया। मंडलगढ़में दुर्गावतीकी एक हाथीशाला थी। इसमें चौदह सौ हाथियोंके रहनेकी व्यवस्था थी। दुर्गावतीके राज्यमें उसकी आज्ञासे सर्वसाधारणकी भलाईके लिये नित्य नये नये काम किये जाते थे। प्रजा बहुत संतुष्ट थी। वह इन्हें माता वा देवी समझती थी। दुर्गावतीने उसका पालन पन्द्रह वर्षतक अपने पुत्रके ऐसा किया। उसके सुन्दर शासनका गौरव चारों दिशाओंमें फैल गया गढ़मंडलका इतिहास इस नारीकी अक्षय कीर्त्तिसे भर गया।

सम्राट् अकबरने छोटे छोटे राजाओं तथा जमींदारोंको अपने वशमें करनेके निमित्त सेनाकी नियुक्ति की। आसफ़ खां

नामक एक उद्धत स्वभावका सेनापति नर्मदाके तटके प्रदेशोंपर शासन करनेके लिये भेजा गया। आसफ़ खां गढ़मण्डलकी सम्पत्तिके विषयमें सुन चुका था अतः यह उसे हस्तगत करनेकी चेष्टामें लगा। अकबर शाहको अपना अधिकार बढ़ानेकी बहुत इच्छा थी। अतः उसने सेनापतिको गढ़राज्यपर अधिकार प्राप्त करनेके लिये खूब उत्साहित किया। मन्त्री अधर दिल्ली गया और उसने इस आक्रमणके रोकनेकी चेष्टा की पर फल कुछ भी न हुआ। आसफ खांने १५६४ ई०में छ हज़ार अश्वारोही, बारह हज़ार पैदल सिपाही एवं कई तोपें लेकर गढ़मण्डलकी यात्रा की।

शीघ्र ही इस आक्रमणका समाचार गढ़राज्यमें फैल गया। राज्यके वृद्ध, युवक तथा बालक सभी इस समाचारको सुनकर डर गये। परन्तु तेजस्विनी दुर्गावती तनिक भी न डरी। वह साहसके साथ युद्धकी तैयारी करने लगी। थोड़ी ही देरमें गढ़राज्यके असंख्य सैनिक इकट्ठे हो गये। दुर्गावतीके पुत्र वीर नारायणकी उम्र इस समय अठारह वर्षकी थी। यह अठारह वर्षका युवक अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित हो निर्भय होकर युद्धयात्रियोंमें मिल गया।

दुर्गावती वीरोंको इकट्ठा कर रही थी। वह स्वयं युद्धवेषमें था। उसके सिरपर राजमुकुट और हाथमें बर्छा तथा तलवार थी। वह घोड़ेपर सवार थी, उसके कोमल हृदयमें स्वदेशहितैषिता एवं स्वातन्त्र्यप्रियता भरी हुई थी। दुर्गावती

घोड़ेपर सवार होकर अपने सैनिकोंको उत्साहित कर रही थी। वीर नारीके वाक्यसे उत्साहित होकर गढ़मण्डलकी सेना भयङ्कर शब्दसे चारों दिशाओंको कंपाने लगी। तेजस्विनी दुर्गावतीने विधर्मी शत्रुको अपने देशसे निकालनेकी ठानी। इस कार्यके लिये वह अपने सैनिकोंको उत्साहित करने लगी।

दुर्गावती जिस समय आठ हजार अश्वारोही, डेढ़ हजार हाथी एवं बहुसंख्यक पैदल सैनिकोंको लेकर सिंहगढ़के निकट शत्रुओंके सामने उपस्थित हुई उस समय विपक्षी उसकी भयंकरी मूर्त्तिको देखकर चकित हो गये। उनके हृदयमें भयका संचार हुआ जिससे कार्य-सिद्धिमें बाधा होने लगी। दुर्गावतीने दो बार आसफ़ खांपर आक्रमण किया और दोनों बार उसे जयलाभ हुआ। शत्रुपक्षके छः सौ घुड़सवार मारे गये। सेना युद्ध-स्थलका परित्यागकर भाग चली। दूसरी बार दुर्गावतीने शत्रुओंका पीछा किया। आसफ खांकी सेना तितर बितर हो गयी। एक भारतीय वीर रमणीके अलौकिक पराक्रमसे दिल्ली सम्राट्की सेनाको हार माननी पड़ी। जिन वीर पुरुषोंने भारतके कई स्थानोंमें विजयपताका उड़ायी थी उन्हें आज एक भारतीय नारीके पराक्रमके आगे सिर झुकाना पड़ा। दुर्गावती अलौकिक साहसके बल विपक्षियोंके पीछे पीछे गयी। उसने तनिक भी विश्राम नहीं किया। सारे दिन वह शत्रुके पीछे दौड़ती रह गयी। यह देखकर मुगल सेनापति चकित हो गया। इस भयंकरी महाशक्तिके तेजसे उसके साहस और उत्साह भग गये।

उसे सब दिशाएं अन्धकारमय मालूम होने लगीं। गढ़राज्यके युद्धक्षेत्रमें इस वीरांगनाने अपूर्व पराक्रम दिखलाया। उस कामिनीकी कोमल देहने इस तरह अपनी कठोरताका परिचय दिया। शत्रुओंके पीछे दौड़ते दौड़ते सारा दिन बीत गया। सूर्यास्त होनेपर दुर्गावतीने अपने सैनिकोंको विश्राम करनेकी आज्ञा दी।

उनका यह विश्राम ही दुर्गावतीके लिये बहुत हानिकारक हुआ। गढ़मण्डलके सैनिकोंने सारी रात विश्राम करनेकी इच्छा प्रगट की इससे दुर्गावती बहुत चिन्तित हुई। थोड़ी देर विश्राम करके रात्रिमें ही शत्रुओंपर आक्रमण करनेकी उसकी इच्छा थी। उसकी इच्छाके अनुसार कार्य किया जाता तो वीर नारी अवश्य ही आसफ खांको परास्त करती। परन्तु दुर्गावतीकी यह इच्छा पूरी नहीं हुई। सभी सैनिक विश्राम करनेके लिये उत्सुक थे अत. उन लोगोंने रात्रिमें आक्रमण करनेका निषेध किया। दुर्गावतीने उन लोगोंकी प्रार्थना स्वीकार की। उधर आसफ खां चुप नहीं था। युद्धमें दो बार पराजित होनेसे उसके हृदयपर बड़ा भारी आघात पहुंचा था। गढ़मण्डलके सैनिकोंको विश्रामकी बात सुनकर वह बहुत प्रसन्न हुआ और तोपोंके साथ उनपर चढ़ आया। पौ फटते ही आसफ खाँ निर्दिष्ट स्थानपर पहुंच गया। दुर्गावतीकी सेना गढ़मण्डलसे बारह कोसकी दूरीपर थी। आसफ खांने रातमें ही उस स्थान-पर लड़ाई की। उस समयतक आसफ खांको तोपें नहीं

पहुंची थीं। पहले दिन तो आसफ खां हार गया और उसे बहुत हानि हुई। दूसरे दिन तोपोंके पहुंचनेपर आक्रमणकारियोंने फिर भी आक्रमण किया। दुर्गावती सैनिकोंके अग्रभागमें हाथीपर सवार होकर आक्रमणकारियोंको रोक रही थी। उसके सैनिक भी पूर्ण साहसके साथ युद्ध कर रहे थे। परन्तु लगातार गोलावृष्टि होती रही जिससे वे स्थिर नहीं रह सके। गोलोंके आघातसे वे कातरसे हो गये। कुमार वीर नारायणने इस समय अलौकिक पराक्रम दिखलाया। अठारह वर्षके युवकका अलौकिक पराक्रम देखकर मुगल सेना चकित हो गयी। परन्तु असंख्य सैनिकोंके आक्रमणसे घायल होकर यह गिरने लगा। दुर्गावतीने इस अवस्थामें भी प्राणाधिक पुत्र-को युद्ध-स्थल छोड़नेकी आज्ञा न दी। उसने पुत्रको दूसरे स्थान-से लड़नेकी आज्ञा दी। अबकी बार युद्धमें वह बालक प्रबल पराक्रम और अलौकिक रण-कौशल दिखलाने लगा। विपक्षियों-ने असमयमें अचानक दुर्गावतीपर चढ़ाई की थी पर तोभी वह कातर न हुई। स्नेहका एकमात्र अवलम्बन पुत्र शस्त्रा-घातसे व्याकुल हो उठा पर तोभी वह वीर नारी अधीर नहीं हुई। दुर्गावती धीरताके साथ युद्ध करने लगी। पास ही एक छोटी पहाड़ी नदी थी। रातमें वह नदी सूखी हुई थी पर इस समय इसमें जल भरा हुआ था। दुर्गावतीने समझ लिया कि उसके सैनिक नदी पार जाकर नहीं लड़ सकेंगे। शत्रुओंके तोपोंके सामने रहकर ही उन्हें अपनी रक्षा करनी पड़ेगी। गोलोंके

आघातसे उनके अधिकांश सैनिक पृथ्वीपर लोट गये। सैनिकोंके मृत शरीर देखकर युद्ध-स्थल डरावना मालूम पड़ता था। चारों ओरसे मुगल सैनिकोंने उसे घेर लिया। तेजस्विनी दुर्गावती तनिक भी न घबड़ाई। वह केवल तीन सौ सैनिकोंके साथ मुगलोंसे लड़ रही थी। शत्रुओंके एक तीक्ष्ण बाणसे अचानक उसकी एक आंख फूट गयी। दुर्गावतीने जोरसे खींचकर इस बाणको बाहर निकालना चाहा था पर सफलमनोरथ न हो सकी। बाण निकल न सका, आंखमें ही घुसा रहा। इसपर भी दुर्गावती घबड़ाई नहीं, बड़ी कुशलतासे अपनी सेनाकी रक्षा करती रही। अनन्तर एक बाण आकर उसके गलेमें लग गया। इस तरह बारम्बारके शस्त्राघातसे दुर्गावती बहुत निर्बल हो गयी, उसे चारों ओर अन्धकारमय मालूम होने लगा। उस समय उसने युद्धकी आशा छोड़ दी। जिस उद्देश्यको लक्ष्य करके यह वीर नारी युद्ध स्थलमें आई थी, जिस उद्देश्यकी सिद्धिके लिये प्राणाधिक पुत्रकी शोचनीयावस्था देखकर भी यह वीरांगना दृढ़तासे लड़ती रही, उस उद्देश्यकी सिद्धिका कोई भी उपाय नहीं दीख पड़ा। इस अवस्थामें भी युद्ध-स्थलसे भागकर उस रमणीने भीरुताका परिचय नहीं दिया, वीरधर्मको विस्मृत कर वह शत्रुके अधीन नहीं हुई। महावतने बारम्बार हाथीको नदी पार ले जानेकी आज्ञा मांगी परन्तु दुर्गावती राजी नहीं हुई। वीरांगनाने वीरधर्मकी रक्षाके निमित्त समर-स्थलमें ही प्राण त्यागना उचित समझा। जिस समय

आहत अगोंसे रक्तकी धारा बह रही थी, शरीरका तेज नष्ट होता चला जाता था उस समय इस रमणीने बडी तेजीसे महावतकी तलवार छीन ली और उसे अपनी देहमें घुसा दिया। क्षणभरमें उसका लावण्यमय शरीर पृथ्वीपर लोट गया। छः सैनिक दुर्गावतीके सामने खड़े थे। दुर्गावतीकी यह दशा देखकर वे लोग भी प्राणकी आशा छोड स्वदेशकी स्वाधीनताकी रक्षाके निमित्त बडी कुशलताके साथ लडने लगे। थोडी देर युद्ध करनेके पश्चात् वे लोग भी मारे गये।

दुर्गावतीने जिस स्थानपर शरीर-त्याग किया था, यदि कोई पथिक आज भी उस राहसे जाता है तो उस स्थानको आदरकी दृष्टिसे देखता है। वहांपर दो गोलाकार पत्थर हैं। लोगोंका विश्वास है कि दुर्गावतीके युद्धके डंके पत्थर हो गये हैं। उन डंकोंका इस ऐतिहासिक घटनासे सम्बन्ध है अतः वे देखने योग्य हैं। आज भी उन डंकोंको देखकर ऐतिहासिकोंके मनमें अपूर्व भावका सञ्चार होता है।

युद्धके समय दुर्गावतीके मनुष्योंने चोरोंसे आहत वीर नारायणको चोरगढमें लाकर छिपा रक्खा था। अन्तमें आसफ खाने इस दुर्गपर भी आक्रमण किया। इस आक्रमणमें ही वीर नारायण मारा गया। दुर्गस्थ महिलाओंने जब विधर्मियोंसे अपनी रक्षाका कोई उपाय न देखा तब उन लोगोंने अपने निवासस्थानमें आग लगा दी और वे स्वयम् उसमें जल मरीं। आसफखाने दुर्ग तो जीत लिया पर कामिनियोंका धर्म रक्षित रहा।

रमणियोंने अग्निमें कूद कूदकर अपनी पवित्रताकी रक्षा की।

मुगलोंने गढ़नगर लूटकर बहुतसा धन ले लिया। दुर्गावतीके खजानेमें एक कलश मिला जिसमें एक सौ स्वर्ण मुद्राएं थीं। आजकल भी भाट लोग दुर्गावतीकी वीरताकी कहानीके गीतको जहां तहा गाकर सुनाते हैं। समयके प्रभावसे गढ़राज्यका गौरव नष्ट हो गया पर दुर्गावतीका गौरव सदा बना रहेगा। जब तक संसारमें स्वाधीनताका सम्मान बना रहेगा तबतक यह वीर नारी वीरेन्द्र समाजमें पूजनीया समझी जायगी। जब तक भारतीय जननी और जन्म-भूमिको आदरकी दृष्टिसे देखेंगे तबतक दुर्गावतीकी कीर्त्ति लुप्त नहीं होगी।

भारतमें सरस्वतीकी अपूर्व पूजा

छठवीं शताब्दी बीत गयी। नये उत्साह एवं अपूर्व आनन्द-के साथ सातवीं शताब्दीने भारतवर्षमें प्रवेश किया। उस समय भारतवर्षकी दशा आजकलकी तरह शोचनीय नहीं थी। शोकका उच्छ्वास, निराशाका आर्त्तनाद एवं महामारीका उत्पात कुछ भी नहीं था। उस समय भारतवर्ष प्रसन्न, स्वाधीन और सम्पत्तिशाली था। उस समय आर्य्योंकी कीर्त्ति चारों ओर फैली हुई थी। इसी समय दर्शनशास्त्रकी सृष्टि हुई थी जिससे आर्य्योंकी सभ्यताका पता चलता है। उस समय कविता, ज्योतिष, गणित, चिकित्सा आदिमें भारतवर्ष सबसे बढ़ा चढ़ा था। महाराज हर्षवर्द्धन शिलादित्यके सुशासनसे भारतकी सम्पत्ति और भी दिन दिन बढ़ रही थी। महाराष्ट्रीय वीर द्वितीय पुलकेशीकी वीरतासे इसकी कीर्त्ति और भी उज्ज्वल हो गयी थी। उस समय नालन्दका गौरव चारों दिशाओंमें फैल रहा था।

इस स्थानपर भारतवासी सरस्वती माताकी पूजा करते थे। नालन्द गयाके समीपमें ही है। यह बौद्धोंका पवित्र तीर्थ-स्थान समझा जाता है। यह एक बड़ा आम्रकानन था, किसी धनाढ्य वणिकने इसे बुद्धदेवको दान कर दिया था। बुद्धदेव

इस आम्रकाननमें बहुत दिनोंतक रहे। धीरे धीरे वहां एक विद्यालय स्थापित किया गया। बौद्धोंकी दानशीलतासे दिन दिन इस विद्यामन्दिरकी उन्नति होने लगी। यहांतक कि यह विद्यालय सर्वप्रधान विद्यालय समझा जाने लगा। इस विद्यालयमें अठारह विषय पढ़ाये जाते थे। प्रत्येक विषयके दस हजार विद्यार्थी थे जो धर्मशास्त्र, न्याय, दर्शन, विज्ञान, गणित, साहित्य, चिकित्सा सम्बन्धी ग्रन्थोंकी आलोचना करते थे। यह विद्यालय चारों ओर मनोहर वृक्षोंसे सुशोभित था। छ चौमहले इमारतों में विद्यार्थियोंके रहनेकी व्यवस्था थी। भिन्न भिन्न विषयोंके उपदेश देनेके लिये सौ मकान बने थे। इन विद्वानोंके सम्मिलनके लिये बीचमें बड़े बड़े मकान भी थे। इन शिक्षकों तथा शिक्षार्थियोंके भोजन वस्त्र तथा औषधादिके व्यय महाराज शिलादित्य देते थे। यह विद्यालय नगरसे कुछ दूरपर था अतः जनरवसे अध्ययनमें कुछ भी हानि नहीं पहुंचती थी। सभी शिक्षक तथा शिक्षार्थीगण सांसारिक प्रलोभनोंसे रहित होकर सरस्वती माताकी उपासना करते थे।

नालन्द विद्यालयकी ख्याति बाहरी सुन्दरताके लिये नहीं बल्कि भीतरी सुन्दरताके लिये थी। इस विद्यालयके शिक्षकोंकी प्रशंसा शास्त्रज्ञान तथा दूरदर्शिताके लिये थी और शिक्षार्थियोंकी प्रशंसा शास्त्रचिन्ताके लिये। इस विद्यालयके प्रधानाध्यापकका नाम था शीलभद्र। यह जिस प्रकार वयमें वृद्ध थे उसी तरह शास्त्रज्ञानमें भी। सर्वसाधारणमें इनका बहुत मान था।

सब शास्त्रोंकी इनमें पूर्ण योग्यता थी। इस वृद्ध पुरुषकी असाधारण धर्मपरायणता, अलौकिक दूरदर्शिता एवं अपूर्व अभिज्ञतासे यह विद्यालय अलंकृत था। चीनका प्रसिद्ध यात्री हु एनसङ्ग इसी समय भारतवर्षमें आया था। उसे भारतवासियोंने यह लीला-भूमि देखनेके लिये निमन्त्रित किया था।

हु एनसंग नम्रतापूर्वक उनका निमन्त्रण स्वीकार कर नालन्द गया। विद्यालयमें प्रवेश करते समय दो सौ ज्ञानवृद्ध विद्यार्थियोंने प्रसिद्ध अतिथिका योग्य सम्मान किया। उसके पीछे पीछे असंख्य बौद्ध हो लिये। किसीके हाथमें छाता था तो किसीके हाथमें पताका थी। सभी बौद्ध इस अतिथिकी प्रशंसाके गीत गा रहे थे। इस तरह आदर और सम्मानके साथ हु एनसंग विद्यालयके प्रधानाध्यापकके पास लाया गया। शीलभद्र वेदी- पर बैठे थे। हु एन संगने बड़ी श्रद्धाके साथ उन्हें प्रणाम किया। हु एनसंगने शीलभद्रके शिष्य होनेकी इच्छा प्रगट की। जिस तत्त्वज्ञका चीन साम्राज्यमें बड़ा मान था, जिसने देशान्तरोंमें घूम कर भिन्न भिन्न तत्त्वोंका अनुशीलन किया था, जिसके ज्ञानके सामने जनता सिर झुकाती थी उसने एक अपरिचित भारतीयको अपना गुरु माना। विद्यालयके एक उत्तम स्थानमें उसके रहनेका प्रबन्ध किया गया। उसकी सेवाके लिये दस सेवक नियुक्त किये गये। महाराज शिलादित्यने उसके प्रतिदिनका खर्च देना स्वीकार किया। इस तरह शिक्षक और शिक्षार्थियोंने उसे आदरके साथ पाँच वर्षतक रक्खा। हु एन-

संगने वहां रहकर पाणिनी व्याकरण, त्रिपिटक तथा अन्यान्य ग्रन्थोंका अध्ययन किया। इस समय इस विद्यालयकी दशा बहुत शोचनीय है। समयके प्रभावसे आज इस विद्यालयका नाम निशान मिट गया है।

संयुक्ता

बारहवीं शताब्दी बीत गयी। दिल्ली चौहान वंशीय पृथ्वीराज-के अधिकारमें था। कान्यकुब्ज राठौर वंशीय वीर श्रेष्ठ जयचन्द्-के अधिकारमें था। उस समय पराक्रमी समरसिंहके सुशासनसे मेवाड़ गौरवान्वित था। आर्य्यावर्त्तका शासन आर्य्यलोग स्वाधीनतासे करते थे। उस समय आर्य्यों की कीर्त्ति चारों दिशाओंमें फैल रही थी। कान्यकुब्जकी लक्ष्मी संयुक्ताके गौरवकी कहानी आज भी प्रसिद्ध कवि चन्दके शब्दोंमें मानी जाती है।

संयुक्ता कान्यकुब्जके राजा जयचन्द्की कन्या थी। अपने समयमें आदर्श महिला समझी जाती थी। उसमें केवल अनुपम सौन्दर्य्यका ही समावेश न था बल्कि उदारता एवं तेज-स्विताका भी उसमें अभाव नहीं था। महाराज जयचन्द्की राज-धानीमें ही उस लक्ष्मीके स्वयम्वरकी तैयारी हो रही थी। भारत-के सभी दिशाओंसे क्षत्रिय राजकुमार इस रत्नके पानेकी इच्छासे कान्यकुब्जमें आये थे।

आपसके विरोधने ही भारतका सर्वनाश किया। आपसके विरोधसे ही मुसलमानोंको भारतवर्षमें अपनी विजयपताका उड़ानेका अवसर मिला। दिल्लीश्वर पृथ्वीराज और जयचंद्में

घोर विरोध था। इस विरोधसे ही दोनोंका पतन हुआ और दोनों राज्य मुहम्मदगोरीके अधिकारमें आये।

महाराज जयचन्दने संयुक्ताके विवाहके पहले राजसूय यज्ञ किया। कान्यकुब्जमें ही यह यज्ञ हो रहा था। यज्ञस्थलमें उनके विरोधी पृथ्वीराज और मेवाड़ाधिपति समरसिंह नहीं गये। उन दोनोंने जयचंदका निमन्त्रण अस्वीकार किया। अभिमानी जयचन्दने यज्ञस्थलमें उन दोनोंकी स्वर्ण मूर्त्ति बनवा रक्खी। ये दोनों मूर्त्तियां द्वाररक्षकके भेषमें सुसज्जित करके दरवाजेपर स्थापित की गयी थीं। राजसूय यज्ञ समाप्त होनेपर संयुक्ताके स्वयम्वरकी तैयारी होने लगी। भारतके बड़े बड़े राजाओंसे कान्यकुब्ज-महाराजकी स्वयम्वर सभा सुशोभित होने लगी। जब राजा लोग अपने अपने स्थानपर बैठ गये तब संयुक्ता सुन्दर वस्त्र एवम् आभूषणोंसे सुसज्जित होकर हाथमें माला लिये अपनी सखियोंके साथ सभामें आयी।

जो गुणानुरागी हैं वे बाहरी आभरणको कुछ भी नहीं समझते। संयुक्ता पृथ्वीराजकी अलौकिक वीरताके विषयमें सुन चुकी थी और उनपर आसक्त भी थी। वह जानती थी कि पृथ्वीराजके साथ मेरे पिताका घोर विरोध है तथापि अपने भीतरी भावोंको रोक नहीं सकती थी। उसने पृथ्वीराजके गलेमें ही जयमाल डालना निश्चय किया। सभामें बैठे हुए सुन्दर एवं सुसज्जित राजाओंकी ओर उसने देखातक नहीं। संयुक्ताने पृथ्वीराजकी मूर्त्तिके गलेमें जयमाल डाल दी।

स्वयम्वरमें आये हुए सभी राजा हताश होकर वहांसे चले गये। शीघ्र ही यह संवाद दिल्ली पहुँचा। संवाद सुनते ही पृथ्वीराज अपने सैनिकोंके साथ कान्यकुब्ज आये और संयुक्ताको पितृ भवनसे छीन ले गये। जयचन्दने अपनी कन्याकी रक्षाके निमित्त यथाशक्ति चेष्टा की। कान्यकुब्जसे दिल्लीकी राहमें पांच दिनोंतक लड़ाई होती रही अन्तमें पृथ्वीराजकी ही जय हुई। जयचन्द पराजित हो कान्यकुब्ज लौट आया।

पृथ्वीराज इस अलौकिक नारी-रत्नको पाकर बड़े ही प्रसन्न हुए। संयुक्ताके असामान्य गुणोंके सामने स्वर्गका सुख भी उन्हें तुच्छ मालूम पड़ता था। थोड़े दिनोंमें ही संयुक्ताने अपने पतिको अपने गुणोंसे मुग्ध कर लिया। जिस समय पृथ्वीराज अपना जीवन इस तरह सुखसे बिताते थे उसी समय शाहबुद्दीन गोरीने भारतवर्षपर चढ़ाई की। संयुक्ता इस शत्रुसे मातृभूमिको रक्षा करनेकी चेष्टामें लगी। सोते बैठते सदा वह इसी चिन्तामें रहती थी कि किस तरह विपक्षी सैनिकोंका नाशकर भारतवर्षकी रक्षा की जावे। उसने स्वामीको रणक्षेत्रमें जानेके लिये कहा। संयुक्ताने केवल अनुरोध ही नहीं किया बल्कि युद्धकी सामग्री पृथ्वीराजके हाथमें देकर कहा—"संसारमें कुछ भी चिरस्थायी नहीं है। आज हम लोग इस पार्थिव शरीरसे अनेकों सुख भोग रहे हैं पर यह एक दिन अवश्य ही नष्ट हो जायगा। इस क्षणभंगुर शरीरकी ममतामें पड़कर चिरस्थायिनी कीर्त्तिको नष्ट करना ठीक नहीं है। जिन लोगोंने महान् कार्य्य-

को सिद्धिमें अपने प्राण विसर्जन किये हैं वे सदा इस संसारमें वर्त्तमान रहेंगे। मुझे आशा है कि आपकी तलवार शत्रुको दो खंड कर देगी। आपका अश्व शत्रुओंके रक्तकी धारामें रंग जायगा पर युद्धकी भीषणताको देखकर कर्त्तव्यविमुख नहीं होगा। साहस, पराक्रम और यत्नके साथ लड़कर यदि आप स्वदेशकी रक्षाके निमित्त अपने प्राण विसर्जन करेंगे तो मैं भी आपके साथ ही परलोक जाऊंगी।"

वीर नारीके ये तेजस्वी वाक्य सुनकर पृथ्वीराजका हृदय उत्साहसे भर गया। शीघ्र ही अपने सैनिकोंको बुलवाकर पृथ्वीराजने युद्ध-स्थलको प्रस्थान किया। भारतके प्रायः सभी क्षत्रिय वीरोंने इस युद्ध में अपने प्राण विसर्जन किये। आर्य्यावर्त्तके वीरोंकी आवाजसे सभी दिशाएं कांप उठीं। पृथ्वीराजने इस बड़ी सेनाका नायक बनकर शहाबुद्दीन गोरीको लड़नेके लिये ललकारा। उत्तरीय भारतके तिरौरी नामक क्षेत्रमें (नारायणपुर नामक ग्राममें यह क्षेत्र था) यह लड़ाई हुई थी। क्षत्रियोंके पराक्रमको देखकर मुसलमान लोग इधर उधर भागने लगे।। शत्रुओंकी पताका शत्रुओंके शस्त्र पृथ्वीराजके हस्तगत हुए। शहाबुद्दीन गोरीने पराजित होकर भारतवर्ष छोड़ दिया। विजयी पृथ्वीराज दिल्ली लौट आये।

इस घटनाके दो वर्ष पश्चात् शाहबुद्दीन गोरीने फिर भारतवर्षपर चढ़ाई की। इस बार भी पृथ्वीराज युद्धकी तैयारी करने

लगे। एक युद्धसभा स्थापित हुई और चारों ओरसे सैनिक-गण आकर सेनाकी संख्या बढ़ाने लगे। एक एक करके सभी क्षत्रिय राजाओंने इस युद्धमें योग दिया। कुछ दिनोंके लिये फिर भी दिल्लीमें एक बड़ी सेना इकट्ठी हो गयी।

महापराक्रमी समरसिंह दिल्लीमें आये और उन्होंने युद्ध-सम्बन्धी बहुतसी बातें कहीं। पृथ्वीराजने इन बातोंको लिख लिया। उधर युद्धमें जानेवाले वीरोंने अपने अपने परिवारके लोगोंसे विदा मांगी। माता, बहन और स्त्रीने वीरोंको विदा करते समय कहा कि युद्धसे लौट आनेकी अपेक्षा वहीं प्राण दे देना अच्छा है। संयुक्ताने अपने स्वामीको वीर भेषसे सुसज्जित किया। अचानक उसके हृदयमें एक ऐसी आशङ्का हुई जिससे वह व्याकुल हो गई। संयुक्ता थोड़ी देरतक पृथ्वीराजकी ओर देखती रही और उसके नेत्रसे अश्रुधारा बह चली। उसने एक लम्बी सांस लेकर कहा, "मालूम होता है कि स्वर्गके अतिरिक्त अब दिल्लीमें आपसे मुलाकात नहीं होगी।"

पृथ्वीराज दृषद्वती नदीके तटपर पहुंचे। धूर्त मुसलमानों-ने पहलेसे ही अपना जाल फैला रक्खा था। सीधे सादे हिन्दु-ओंने उनकी धूर्त्तता न समझी। शाहबुद्दीन गोरी अपनी सेनाके साथ नदीके उस पार छिपा हुआ था। अवसर पाकर उसने चढ़ाई कर दी। क्षत्रिय वीरोंने उतावलीमें शस्त्र धारणकर उन-का सामना किया। जबतक एक भी क्षत्रिय वीरके शरीरमें रक्तका संचार था तबतक वह लड़ा। तीन दिनोंकी घमासान लड़ाई-

के बाद समरसिंह मारे गये। पृथ्वीराज असीम साहसके साथ लड़ते रहे पर अन्तमें कैदी हो शत्रुके हाथ मारे गये। क्षत्रियोंके शोणितसागरमें भारतका सौभाग्य-सूर्य डूब गया। संयुक्ताकी आशंका ठीक निकली।

शीघ्रही यह संवाद दिल्ली पहुँचा। संयुक्ताकी आज्ञासे चिता सजायी गयी और वह वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित होकर धधकती हुई चितामें घुस गयी। क्षणभरमें उसका लावण्यमयी शरीर जलकर भस्म हो गया।

जितने दिनोंतक पृथ्वीराज रणक्षेत्रमें थे उतने दिनोंतक संयुक्ता केवल जल पीकर ही रहती थी। चन्द कविने एक स्वतंत्र पुस्तक लिखी है जिसके एक अध्यायमें केवल संयुक्ताके पातिव्रत धर्मका वर्णन है। सतीशिरोमणि सावित्री सदृश संयुक्ताका पातिव्रत धर्म भी प्रशंसाके योग्य है।

आज तक भी दिल्लीमें प्राचीन कालके कुछ ऐसे भग्नावशेष हैं जिनसे सतीशिरोमणि संयुक्ताका सम्बन्ध है। जिस दुर्गमें संयुक्ता रहती थी उसकी चहारदिवारी अभी भी वर्त्तमान है। जिस प्रासादमें संयुक्ता अपने पतिके साथ रहती थी उसके स्तम्भ अब भी दिल्लीके भग्नावशेषकी शोभा बढ़ा रहे हैं। समयके प्रभावसे ये स्तम्भ चूर चूर हो जायंगे पर संयुक्ताकी कीर्त्ति सदा बनी रहेगी। सरलता, पातिव्रत्य एवं महाप्राणताके कारण उसका नाम इतिहासमें स्वर्णाङ्कित रहेगा।

राजबाई

भारतके पश्चिम भागमें गुजरातमें उदयन नामक एक प्रदेश था। उन्नीसवीं शताब्दीके मध्यमें राजबाई नामकी एक तेजस्विनी रमणी यहां राज्य करती थी। राजबाईमें राज्य-शासनोचित सभी गुण वर्तमान थे। वह जिस तरह तेजस्विनी थी उसी तरह दृढ़ता एवं शासनदक्षताके गुणोंसे भी विभूषित थी। इस नारीका हृदय यद्यपि कोमल था पर इसमें कष्ट सहनेकी अपूर्व शक्ति थी। अनन्त सम्पत्तिकी अधिकारिणी होनेपर भी इसमें विलास-प्रियताका समावेश नहीं था। वह अपनी संतानकी तरह प्रजाओं-का पालन करती थी। अबला होकर भी इसने अपने आत्मबल से संसारको चकित कर दिया। सर्वसाधारणके सामने कई बार इसने अपनी प्रधानताका परिचय दिया। आवश्यकता पड़ने-पर तलवार निकालनेमें भी इसने संकोच नहीं किया। इसी तरह-की बहुत सी बातें उस वीर रमणीके विषयमें सुनी जाती हैं। राजबाई राज्यशासनके सभी गुणोंसे युक्त थी। वह किसीकी बातमें पड़कर दूसरेका अनिष्ट नहीं करती थी। उसके सुशासन-से राज्य समृद्धिशाली होने लगा था। अंग्रेजोंने भी सुशासन-के कारण राजबाईकी प्रशंसा की थी।

धीरे धीरे राजबाई बूढ़ी हो चली। जब वह सत्तर वर्षकी हुई तब पुण्यसंचय करनेके लिये तीर्थाटन करनेको उद्यत हुई।

शीघ्रही तीर्थयात्राकी तैयारी को गयी। राज्यका सच्चा अधिकारी उस समय नाबालिग था। अपने एक आत्मीयपर राज्य रक्षाका भार छोड़ राजबाई तीर्थाटनको गयी। बहुत दिन बीत गये परन्तु राजबाई लौटकर नहीं आई। वर्त्तमान शासनकर्त्ताको राज्यका लोभ हुआ और उसने निश्चय किया कि राजबाईको उसका राज्य नहीं लौटाऊँगा।

बहुत दिनोंके बाद राजबाई अपने सेवकोंके साथ तीर्थाटनसे लौटी। राजाको आज्ञासे नगररक्षकोंने उस नगरमें घुसने नहीं दिया। नगरमें जानेवाले सभी द्वार बन्द थे। राजबाईने शहरमें आना चाहा। शासनकर्त्ताने कहा कि, आप बूढ़ी हुई, आपकी मृत्युका समय समीप है, संसार परित्यागकर आपको ईश्वरका भजन करना चाहिये। तेजस्विनी राजबाईको यह बात अच्छी नहीं लगी। उसने राजकोट जाकर ब्रिटिश रेजिडेन्टसे सभी बातें कहीं।

जब वीर रमणीने देखा कि अंग्रेजोंकी सहायतासे मेरी अभीष्ट सिद्धि नहीं होती तब वह स्वयं अपने राज्यके उद्धारकी चेष्टामें लगी। बूढ़ा होनेके कारण उसके चमड़े सिकुड़ गए थे और पहले सा तेज अब उसमें नहीं था परन्तु अब भी वह अपने संकल्पमें उसी तरह दृढ़ थी। राजबाई सेना एकत्रित करने लगी। धीरे धीरे एक हजार सैनिक उसके अधीन हो गये। राजबाईने युद्धवेष धारण किया। सत्तर वर्षकी बुढ़िया कठिन कवच पहन, हाथमें तीक्ष्ण तलवार ले अपने सैनिकोंके साथ उदयनकी ओर

चली। राजबाई युद्धभेषसे सुसज्जित होकर नगरके दरवाजेपर आयी। इस बार भी उन लोगोंने राजबाईकी आज्ञाका पालन नहीं किया बल्कि वे गोली चलाने लगे जिससे राजबाईकी सेनाका एक प्रधान नायक मारा गया। राजबाई तनिक भी न घबड़ाई। विपक्षी उसीको लक्ष्य करके गोलियोंकी वृष्टि करने लगे। गोलियोंके आघातसे एक दूसरा सेनानायक उसके पास ही पृथ्वी पर लोट गया। यह देख कर भी यह वीरांगना नहीं घबड़ायी। उसका साहस और भी बढ़ गया।

मालूम होता था कि उसके शरीरमें युवावस्थाका जोश फिरसे आ गया है। नये उत्साह और नये तेजके साथ वह लड़ती रही। घोड़ेपर चढ़ी हुई राजबाई तलवार निकालकर अपने सैनिकोंको उत्साहित कर रही थी। नगररक्षक इस वृद्धाका पराक्रम देखकर चकित हो गये। अब उन लोगोंकी शक्ति जाती रही और घबड़ाकर उन लोगोंने नगरका द्वार खोल दिया। राजबाई नगरमें घुस गई। अपनी तेजस्विताके बल एक क्षणमें ही उसने उदयन नगरपर फिर भी अधिकार प्राप्त कर लिया। वह शासनकर्त्ता भी भाग गया। राजबाई फिर भी उदयन नगरपर राज्य करने लगी।

भारतवर्षके सत्तर वर्षकी स्त्रियोंमें ऐसा पराक्रम था। जिस अवस्थामें मनुष्यकी शक्ति जाती रहती है उसी अवस्थामें एक वीर नारीने अलौकिक पराक्रम दिखलाकर नष्ट राज्यका उद्धार किया। तीस वर्षतक इस नारीने राज्य किया। अंग्रेज लोग कभी भी इसकी तेजस्विता और दृढ़ताका अपमान नहीं कर सके।

योंकी अद्वितीय सुन्दरतासे मालूम होता था कि यह एक दूसरा ही लोक है। सम्राट् अकबर स्त्रीका वेष धारणकर इस बाजारमें घूमने जाता था। यहां इसके नेत्र स्थिर नहीं रहते थे। वह स्त्रियोंकी सुन्दरता एवं उनके क्रय-विक्रयको देखकर बहुत प्रसन्न होता था। उसे यह विचारकर बड़ी प्रसन्नता होती थी कि मेरा महल सुन्दर सुन्दर स्त्रियोंसे सुशोभित है। वह बड़े आनन्दके साथ एक दूकानसे दूसरी दूकानपर जाता था और प्रत्येक दूकानपर एक न एक चीजका मूल्य पूछता था। बेंचनेवालीके जवाब देनेपर वह हंसता और स्वर्ण-मुद्रा निकाल कर उस चीजको खरीद लेता। स्त्री भी हंसकर स्वर्ण—मुद्रा ले लेती थी। खिले हुवे कमलके सदृश उन स्त्रियोंकी कान्तिसे यह बाजाररूपी सरोवर शोभायमान रहता था। अकबरशाह आनन्दके साथ इस कमलवनमें विचरण करता था। प्रत्येक मासके नवें दिन यह बाजार लगता था। इतिहासमें यह बाजार 'नवरोजा' के नामसे प्रसिद्ध है। अकबरने ही इस बाजारकी प्रतिष्ठा की थी। अकबरने आदर देनेके लिये इसका नाम 'आनन्द दिन' रक्खा था।

एक दिन एक रूपवती स्त्री यह बाजार देखने आयी। उसकी सुन्दरता एवं गम्भीरतापर मुग्ध होकर सभी स्त्रियां उसे एक टकसे देखने लगीं। इस युवतीकी सुन्दरतामें मानों विद्युतकी शक्ति भरी थी जिसने सारे बाजारको मुग्ध कर दिया। युवती धीरे धीरे सब चीजोंको देखती हुई एक दूकान-

से दूसरी दूकानपर गयी। अच्छी अच्छी चीजोंकी शिल्पचातुरी-को देखकर वह प्रसन्न तो अवश्य हुई पर स्त्रियोंकी निर्लज्जता देखकर वह मन ही मन बहुत दुःखी हुई। स्त्रियां हँस हँसकर बातें करती थीं और उस हँसीसे निर्लज्जता टपकती थी। अतः वह सलज्ज युवती उनकी हँसीसे प्रसन्न होनेके बदले मन ही मन खिन्न हुई। वह अद्वितीय सुन्दरी उन स्त्रियोंकी अधोगतिपर मन ही मन शोक प्रकाश करती हुई बाजारसे चले जानेको तैयार हुई। सम्राट् अकबर कुछ देर तक उस स्त्रीको देखते रहे। वे उसकी सुन्दरतापर मुग्ध हो गये। युवती बाजारसे बाहर निकली और धीरे धीरे राह चली जाती थी कि अचानक उसकी गति रुक गयी। उस युवतीने देखा कि सम्राट् अकबर सामने खड़ा है। सम्राट् अकबर उसके रूपपर मुग्ध था अतः उसने उसकी राह रोकनेमें सङ्कोच नहीं किया। यह देखकर वह स्त्री बहुत क्रुद्ध हुई। असमयमें भारतके सम्राट्को सामने देख-कर वह तनिक भी नहीं घबड़ायी। शीघ्र ही वह तलवार निका-लकर अपनी सम्मान रक्षाके निमित्त सम्राट्पर वार करनेके लिये तैयार हो गयी। युवतीने भारत-सम्राट्को तलवारका लक्ष्य बना कर गम्भीर स्वरमें कहा—"जो नराधम पवित्र क्षत्रियकुलको कलङ्कित करनेकी चेष्टा करेगा उसे इसी शस्त्रसे उचित शिक्षा दी जायगी।" सम्राट् अकबर उस लावण्यवती ललनाकी भयं-कर मूर्तिको देखकर चकित हो गया। वह कुछ भी बोल न सका। वीरांगनाकी वीरता और तेजस्विताने उसे बड़ी प्रस-

न्नता हुई। गुणग्राही सम्राट्ने उस नारीकी मर्य्यादाकी रक्षा की और उसे सम्मानके साथ विदा किया।

यह वीर नारी शक्तावतवंशके स्थापककी कन्या थी। एक बार सम्राट् अकबरको इसे सिर झुकाना पड़ा था। ऐसे बड़े सम्राट्ने जब कुमार्गपर पांव रक्खा तब उसे एक स्त्रीके सामने अपना मस्तक नीचा करना पड़ा। चिर प्रसिद्ध राजपूतानाकी महिलाओंने अपने वंशके गौरवकी रक्षाके लिये सम्राट्के सामने अपनी तेजस्विताका परिचय दिया।

ईश्वरकी महिमा! आज केवल उनके गौरवसे ही हम लोग अपनेको धन्य समझते हैं।

वीर बालाका आत्म-विसर्जन

मेवाड़के अधीन भाइन खोर नामक एक प्रसिद्ध जनपद है। इसका शासनकर्ता था मेवाडका एक सामन्त राजा। भाइन खोर दुर्गके एक ओर गगनस्पर्शी पर्वत शोभायमान है। पर्वतके निचले भागमें चम्बल नामकी एक नदी बहती है। दुर्गसे यह प्राकृतिक मनोहर दृश्य और भी सुन्दर मालूम पड़ता है। इसके पश्चिम ब्राह्मणी नदी पर्वतके ऊपर शब्द करती हुई बड़े वेगसे नीचे गिरती है। यह सुन्दर जनपद एक समय प्रमर वंशीय एक राजपूतके अधिकारमें था। इस राजपूतका विवाह वेदगु-निवासी मेवावतवंशीय एक क्षत्रियकी कन्यासे हुआ था। विवाहके पश्चात् दोनों स्त्री पुरुष बड़े प्रेमसे उसी दुर्गमें रहने लगे। पर्वतकी अपूर्व शोभा उन्हें बहुत भाती थी। निकटवर्ती नदीकी धारा देखकर दोनोंको एकसा आनन्द मिलता था। पवित्र प्रेमके सूत्रमें दोनों इस तरह बंधे थे कि उन्हें आपसमें कुछ भी अन्तर नहीं मालूम पड़ता था।

एक दिन दोनों उसी प्रासादमें बैठकर पचीसी खेल रहे थे। दोनों आनन्द-तरंगमें गोते लगाते और एक दूसरेको हरानेकी चेष्टामें लगे थे। कभी नायक हारता था तो कभी नायिका हार जाती थी। इसी तरह एक दूसरेको हराकर बहुत प्रसन्न होते थे।

एक बार स्त्री पुरुषको हराकर अपना क्रीड़ा-कौशल दिखलाती तो दूसरी बार पुरुष स्त्रीको हराकर उसके गर्वपर हँसता था। इसी तरह माइन स्रोरके दुर्गमें दोनों स्त्री-पुरुष आनन्दके साथ खेलते थे।

देखतेही देखते इस अनन्त सुखके भीतरसे तीव्र हलाहलकी उत्पत्ति हुई। आनन्दके लिये यह खेल प्रारम्भ किया गया था पर इसका परिणाम एकदम उल्टा हुआ। मजाकमें ही बात बढ़ गयी और स्रोर-राजाने क्रोधमें आकर अपने ससुरालवालोंको लक्ष्य-करके कुछ बातें कह दीं। तेजस्विनी राजकुमारी पितृकुलका अपमान नहीं सह सकी। क्रोधके मारे वह जल भुन गयी। यहांके आदर और धनको वह घृणाकी दृष्टिसे देखने लगी। उसने इस अपमानके निवारणकी दृढ़ प्रतिज्ञा की। दूसरे दिन एक दूत भेजकर उस स्त्रीने सब बातें अपने पिताको जना दीं।

वेड्गु राजदूतके मुखसे अपने वंशकी निन्दा सुनकर बड़े क्रुद्ध हुए और शमादसे युद्ध करनेकी तैयारी करने लगे। शीघ्रही सैनिकगण राजधानीमें एकत्रित होने लगे। वेड्गुराज इन सैनिकोंके साथ अरण्य पारकर माइन स्रोरके निकट पहुंचे। यहांपर सेना दो भागोंमें विभक्त की गयी। वेड्गुराज एक सेना लेकर दुर्गम गिरिपथसे जाने लगे।

वेड्गुराजका पुत्र दूसरी सेना लेकर ब्राह्मणी नदीके किनारे २ आगे बढ़ा। यह दूसरी सेना पहले माइन स्रोर पहुंची। वेड्गुराज का लड़का हाथमें तलवार लिये माइन स्रोरके स्वामीके सामने

आया। अमरराज भी कायर नहीं था। वह भी तलवार निकाल-कर द्वन्द युद्ध करने लगा। इस युद्धमें वेङ्गुराजका लड़का ही विजयी हुआ। पिताके आनेके पहले ही उसने अपने वंशके अपमान करनेवालेको मार डाला।

सब समाप्त हो गया। पतिके लहूलुहान मृत शरीरको देख-कर पत्नीका क्रोध जाता रहा। उसके हृदयमें पतिके लिये अपूर्व प्रेम और अनुरागका संचार हुआ। उसने पतिके साथ जानेकी दृढ़ प्रतिज्ञा की। वेङ्गुराजने उसे रोकना उचित नहीं समझा।

ब्राह्मणी और चम्बल नदियोंके संगमस्थलपर चिता सजा-यी गयी। राजपूत रमणी प्रसन्नताके साथ पतिके साथ सो गयी। वेङ्गुराजने अपने हाथसे वह चिता जला दी। देखते देखते वह अमर पत्नी अपने मृत स्वामीके साथ जलकर भस्म हो गयी। तेजस्विनी नारी इस कठोरतासे अपने अपमानका बदला चुकाकर स्वयं अपने पतिके साथ परलोकको गयी।

सिंहादिका स्त्री तेजस्विनी दुर्गावती।

BANIK PRESS CALCUTTA

पन्द्रहवीं शताब्दी बीत गयी। समयके परिवर्त्तनके साथ साथ सोलहवीं शताब्दी संसारमें अपना प्रभाव जमाने लगी। इस समय भारतवर्षमें मुसलमानोंका अधिकार पूर्ण रूपसे जम गया था। लोदी वंशीय राजाओंके बाद भारतवर्षके राजा हुए मुगल वंशीय मुसलमान। पंजाबसे दिल्ली पर्य्यन्त मुगलोंकी ही विजय-पताका फहराती थी। धीरे धीरे बंगाल, गुजरात और मध्य भारतमें भी इनका अधिकार हो गया। प्रथम मुगल सम्राट् बाबरके मरनेके बाद उसका लड़का हुमायूं गद्दीपर बैठा। कालचक्रके प्रभावसे भारतवर्षकी स्वाधीनता धीरे धीरे नष्ट हो गयी। इस दुःखके समयमें एक वीर नारीने अलौकिक तेजस्विता दिखलायी। इस वीर नारीने शत्रुके सामने अपने प्राण विसर्जन कर स्वाधीनताकी रक्षा की।

गुजरात हिन्दुओंके अधिकारसे चला गया और मुसलमानोंके हाथमें आया। जिस समय हुमायूं दिल्लीके सिंहासनपर बैठा उस समय गुजरातका शासनकर्त्ता था बहादुरशाह। १५२८ ई०में बहादुरशाहने अहमदनगरपर आक्रमण किया। इस समय अहमदनगरके अधिपति थे निजाम साहब। निजाम साहबने

पन्द्रहवीं शताब्दी बीत गयी। समयके परिवर्त्तनके साथ साथ सोलहवीं शताब्दी संसारमें अपना प्रभाव जमाने लगी। इस समय भारतवर्षमें मुसलमानोंका अधिकार पूर्ण रूपसे जम गया था। लोदी वंशीय राजाओंके बाद भारतवर्षके राजा हुए मुगल वंशीय मुसलमान। पंजाबसे दिल्ली पर्य्यन्त मुगलोंकी ही विजय पताका फहराती थी। धीरे धीरे बंगाल, गुजरात और मध्य भारतमें भी इनका अधिकार हो गया। प्रथम मुगल सम्राट् बाबरके मरनेके बाद उसका लड़का हुमायूं गद्दीपर बैठा। कालचक्रके प्रभावसे भारतवर्षकी स्वाधीनता धीरे धीरे नष्ट हो गयी। इस दुःखके समयमें एक वीर नारीने अलौकिक तेजस्विता दिखलायी। इस वीर नारीने शत्रुके सामने अपने प्राण विसर्जन कर स्वाधीनताकी रक्षा की।

गुजरात हिन्दुओंके अधिकारसे चला गया और मुसलमानोंके हाथमें आया। जिस समय हुमायूं दिल्लीके सिंहासनपर बैठा उस समय गुजरातका शासनकर्त्ता था बहादुरशाह। १५२८ ई०में बहादुरशाहने अहमदनगरपर आक्रमण किया। इस समय अहमदनगरके अधिपति थे निजाम साहब। निजाम साहबने

नामके लिये अधीनता स्वीकार कर ली पर अपना काम पहले-की ही तरह स्वतन्त्रतापूर्वक करते रहे । इसके तीन वर्ष बाद १५३१ ई०में निजाम साहबसे बहादुरशाहकी मुलाकात हुई । बहादुरशाहने निजाम साहबके सम्मानकी रक्षा की । बहादुर शाहने निजाम साहबको अपने सामने राजाकी उपाधिसे विभूषित किया । इस समय रायसनदुर्ग एक हिन्दू राजाके अधिकारमें था । इसके अधिपतिका नाम था सिलहादि । बहादुर-शाहने इस हिन्दूराजापर चढ़ाई की ।

सिलहादिने विवश होकर अपनेको मुसलमान राजाके हाथमें समर्पण कर दिया । कुछ देरतक लड़ाई करनेके बाद सिलहादिके भाई लक्ष्मणने भी मुसलमानोंकी अधीनता स्वीकार कर ली । लक्ष्मणको विश्वास हो गया था कि दुर्ग छोड़ देनेसे सिलहादि मुक्त कर दिया जायगा । मुसलमानोंने लक्ष्मणके सामने यह बात स्वीकार भी की थी । इसीपर विश्वास करके लक्ष्मणने लड़ाई छोड़ दी । तेजस्विताके साथ अपनी रक्षा करके उन्होंने क्षत्रियोचित धर्मका परिचय नहीं दिया । दुर्ग मुसलमानोंके अधिकारमें आया । वे भीतर घुसकर अत्याचार करने लगे । वे अपनी पहली प्रतिज्ञाका ख्याल न कर दुर्गनिवासियोंकी हत्या करने लगे । विश्वासघातियोंने ही भारतका सर्वनाश किया । विश्वासघातके ही कारण दिल्लीका राजसिंहासन हिन्दुओंके हाथसे चला गया । इस समय विश्वासघातसे ही रायसन दुर्ग-में हिन्दुओंकी रक्तधारा बहायी गयी । लक्ष्मण यह आकस्मिक

उपद्रव देखकर चकित हो गया और स्त्रियोंको वहांसे हटानेके लिये दुर्गमें घुसा। भीतर जानेपर उसने सिहुलादिकी स्त्री तेजस्विनी दुर्गावतीको देखा। लक्ष्मणको देखकर उसके नेत्र लाल हो गये वह क्रोधके आवेगमें बोली—"इस दुर्भेद्य दुर्गको तुमने शत्रुके हाथमें समर्पण कर दिया। शत्रुके साथ युद्ध नहीं करके तुमने अपनी कायरताका परिचय दिया है। तुच्छ शरीरकी ममतासे तू शत्रुके अधीन हो गया। तूने अपने वंशको कलंकित किया है। तुम्हारे जैसे नीच और कापुरुषको धिक्कार है!"

यह कहकर दुर्गावतीने अपने घरमें आग लगा दी। प्रसन्नतापूर्वक वह अन्यान्य नारियोंके साथ स्वर्गको चली गयी। इस घटनासे लक्ष्मणके कलेजेपर गहरी चोट लगी। इस तेजस्विनीकी करतूत देखकर वह बहुत लज्जित हुआ। वह अपनेको स्वयं घृणाकी दृष्टिसे देखने लगा। क्षणभरके बाद ही वह अपने अनुचरोंके साथ तलवार लेकर दुर्गरक्षकोंसे लड़नेको तैयार हुआ। सभी हिन्दू वीर उस दुर्भेद्य दुर्गमें मुसलमानों द्वारा मारे गये। मुसलमानोंने दुर्गपर अधिकार जमाया पर वे दुर्गका गौरव नष्ट नहीं कर सके। वीर नारी दुर्गावतीकी अनन्त कीर्त्ति राइसनके इतिहासमें स्वर्णाङ्कित रहेगी।

रमणीका शौर्य

रायमल १४७४ ई० में मेवाड़के सिंहासनपर बैठा असाधारण वीरत्व और अपने पवित्र चरित्रके कारण यह रा राजस्थानके इतिहासमें विशेष प्रसिद्ध समझा जाता है। इन तीन पुत्रोंके नाम थे संग्रामसिंह, पृथ्वीराज और जयमल अपनी उद्धत प्रकृतिके कारण पृथ्वीराज पिताकी आज्ञासे देश निकाल दिया गया। शेष दोनों लड़के पिताके पास ही रहते थे कुछ दिनोंके बाद सबसे छोटेकी भी मृत्यु हो गयी। यह क्षत्रि वंशका गौरव नष्ट करनेपर उद्यत था इसीसे एक क्षत्रिय वीर इसका सिर काट डाला।

सुरतनुकी तलवारसे जयमल मारा गया। अनुचित रीति यह राजस्थानकी सुन्दरी ताराबाईसे विवाह करना चाहता थ इसीसे उसे यह दण्ड मिला।

पराक्रमी रायमलने क्षात्रकुलकलंकी पुत्रके घातकव उचित पुरस्कार दिया। मेवाड़के राजकुमारका मारनेके पद सुरतनुको बेदनोर पुरस्कारस्वरूप मिला। धीरे धीरे यह बा चारों ओर फैल गयी। पृथ्वीराजको भी यह बात मालूम हो ग कि जिस चीजकी प्राप्तिके लिये उनका छोटा भाई मारा गया उसीकी प्राप्तिके लिये ये भी चेष्टा करने लगे। पृथ्वीराज बे नोर गये और सुरतनुके सामने उन्होंने प्रतिज्ञा की कि मैं टोड

पर अधिकार प्राप्त करके,आपको वहाका राजा बनाऊंगा । यदि मैं अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण नहीं कर सका, यदि मैं अपने पराक्रमसे पाठानोंको परास्त नहीं कर सका तो मैं अपनेको क्षत्रिय नहीं कहूगा ।

तेजस्विनी ताराबाईने तेजस्वी पृथ्वीराजके असाधारण साहस और पराक्रमकी बातें सुनीं । ताराबाईने इसी पराक्रमी युवकसे विवाह करनेका संकल्प किया । शीघ्र ही युद्धकी तैयारी की गयी । पितासे परामर्श करनेके पश्चात् ताराबाई भी युद्ध स्थलमें जानेको तैयार हो गयी ।

मुहर्रमका दिन था । मुसलमान लोग अपने धार्मिक कार्य्योंमें लगे थे । मुसलमानोंके शोक-संगीतसे चारों दिशाएं गूंज रही थीं । पृथ्वीराजने उसी दिन ताराबाईके साथ पांच सौ घुड़-सवारोंको लेकर टोडा राज्यपर धावा किया । टोडा पहुंचकर देखा कि मुसलमान लोग ताजियाके साथ साथ नगरमें घूम रहे । यह देखकर पृथ्वीराजने अपने सैनिकोंको अलग छोड़ दिया और कुछ विश्वस्त सहचरोंको ले ताराबाईके साथ उन मुसल-मानोंमें जा मिले । इस समय पाठान राजा लिल्लाके प्रासादके पास ताजिया पहुंच गया था । लिल्ला ताजियाके साथ जानेके लिये कपड़े पहन रहा था । ज्योंही वह इन तीन अपरिचित अश्वारोहियोंके विषयमें पूछना चाहता था त्योंही ताराबाई और पृथ्वीराजके बाण उसके वक्षस्थलमें जा घुसे जिससे वह बेहोश गिर पड़ा । फिर कभी उसे होश नहीं हुआ । इस

घटनासे पाठान लोग डर गये और चारों ओर हल्ला मच गया। तीव्रताके साथ तीनों अश्वारोही नगरके द्वारपर चले आये। इस जगह एक बड़ा हाथी उनकी राह रोककर खड़ा था। तेजस्विनी ताराबाई अपने कर्तव्यसे विमुख नहीं हुई। उसने अपनी तलवारसे हाथीको घायल कर दिया। हाथी यन्त्रणासे अधीर होकर भाग गया। वीर रमणीकी अलौकिक वीरतासे रास्ता साफ हो गया। अनन्तर वे लोग आगे बढ़े और अपने सैनिकोंमें जा मिले।

उधर अफगान लोग भी युद्ध करनेके लिये तैयार हो गये परन्तु वे लोग राजपूत सैनिकोंका मुकाबला नहीं कर सके। ताराबाईने इस युद्धमें अलौकिक वीरता दिखलायी। मालूम होता था कि उसमें बिजलीकी शक्ति आ गयी थी। वह बड़ी तेजीसे शत्रु-सैन्यमें घुसी और उन्हें नाश करने लगी। पाठान हार गये और उनके सैनिक युद्ध-स्थलसे भागने लगे। असंख्य विपक्षी सैनिक समर-भूमिमें लोट गये। टोडामें फिर भी राजपूतोंकी विजयपताका उड़ने लगी। वीर पुरुषकी प्रतिज्ञा पूरी हुई। पृथ्वीराजने सुरतनुको टोडाका अधिपति बनाया। सुरतनुने अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार ताराबाईको पृथ्वीराजके हाथमें समर्पण कर दिया। तेजस्विनी राजकुमारी तेजस्वी पुरुषकी सहधर्मिणी होकर राजस्थानके गौरवको बढ़ाने लगी।

पृथ्वीराज मेवाड़ गये और अपनी स्त्रीके साथ कमलमीरके प्रासादमें रहने लगे। इसके बाद उन्हें कई लड़ाइयां लड़नी पड़ीं। सभी लड़ाइयोंमें ताराबाईने उन्हें उत्साहित किया था। वीर

रमणी सदा अपनी तेजस्विताके बल वीर-भूमि मेवाड़के गौरवकी रक्षा करती रही ।

सम्पत्ति चञ्चला है। यह सदा एक जगह नहीं रहती। सिरोही राजा प्रभुरावके साथ पृथ्वीराजकी बहनका विवाह हुआ था। प्रभुराव अपनी स्त्रीके साथ अच्छा व्यवहार नहीं करता था। इससे पृथ्वीराज सिरोही गये और प्रभुरावको समझाया। प्रभुराव संकुचित हृदयका था अतः वह इसे अपना अपमान समझ बदला लेनेकी चेष्टामें लगा। लौटते समय उसने खाद्य पदार्थमें विष मिलाकर स्वयं अपने हाथसे पृथ्वीराजको खानेके लिये दिया। पृथ्वीराजको स्वप्नमें भी ऐसा विश्वास नहीं था। वह उस खाद्य पदार्थको अपने पास रख कमलमीरके प्रासादकी ओर चले। राहमें जब उन्हें भूख लगी तब उन्होंने हलाहल विषमिश्रित खाद्य पदार्थको खा लिया। धीरे धीरे उनकी शक्तिका ह्रास होता गया। जब वे देवीके मन्दिरके पास पहुँचे तब आगे नहीं चल सके। अब उन्हें मालूम हो गया कि भोजनमें हलाहल विष था। मृत्यु निकट समझ उन्होंने अपनी स्त्रीके पास बुलावा भेजा। ताराबाईके आनेके पहले ही उनके प्राण निकल गये। जब ताराबाईने देखा कि उसके पति इस संसारमें नहीं हैं तब वह भी पतिके साथ स्वर्गमें जानेको तैयार हो गयी। उसी पवित्र मन्दिरके निकट चिता सजायी गयी और ताराबाई अपने पतिके साथ साथ जलकर भस्म हो गई।

संतोषद्योत

जो लोग भारतवर्षके इतिहाससे परिचित हैं, भारतके प्राचीन गौरवकी कहानी जिन्हें मालूम है,वे अवश्य ही आर्य्यों की प्राचीन कीर्ति स्मरण करके प्रसन्न होते होंगे। आर्य्यों की कीर्ति केवल युद्धमें ही समाप्त नहीं हुई। तिरौरी एवं हल्दीघाट, नैथी तथा नवशेरा, रामनगर और चिलियानवाला नामक युद्ध-स्थलोंमें आर्य्यों ने जो वीरता दिखलायी उसका वर्णन इतिहासमें है। इसके अतिरिक्त उन आर्य्य पुरुषोंकी बुद्धि, ज्ञान, सत्यता एवं दान-शीलताकी बातें सुनकर सारा संसार उनको पूजनीय समझता है। भारतवर्षमें प्रताप जैसे आदर्श वीर, शंकराचार्य्य जैसे ज्ञानी बुद्ध जैसे धर्मनिष्ठ एवं शिलादित्य जैसे दानशील मनुष्योंकी संख्या कम नहीं थी। यहां भारतवर्षकी अपूर्व दानशीलताका कुछ वर्णन किया जायगा। सातवीं शताब्दीमें जिस समय महाराज हर्षवर्धन शिलादित्यने कान्यकुब्जके सिंहासनको सुशोभित करके पूर्व और पश्चिमके अनेक राज्योंमें अपनी विजयपताका उड़ायी थी, जिस समय महावीर द्वितीय पुलकेशीने अपने असाधारण पराक्रमसे महाराष्ट्रकी स्वाधीनता-की रक्षा की थी, चीनयात्री हुएनसंग जिस समय नालन्द महाविद्यालयमें आकर निवास करता था, उसी समय महाराज

शिलादित्य गंगा यमुनाके संगम-स्थल प्रयागमें एक महोत्सव करते थे।

यह महोत्सव स्थल प्रयागकी पांच छः मील भूमिमें होता था। इस पवित्र भूमिको लोग "संतोषक्षेत्र" कहते थे। इस क्षेत्रके चारों ओर चार हजार वर्ग फीट भूमि गुलाबके फूलकी वृक्षोंसे सुगन्धित रहती थी। इस घेरेके बीच बड़े बड़े मकान थे जिनमें सुनहले, रुपहले, सूत तथा रेशमके कपड़े तह बतह सजाए जाते थे। घेरेके चारों ओर सुन्दर सुन्दर खाद्य पदार्थ सजाए रहते थे जो देखनेमें दूकानकी तरह बहुत ही सुन्दर मालूम पड़ते थे। एक एक भोजनालयमें एक बार हजार मनुष्योंके भोजन करनेकी व्यवस्था थी। उत्सवके कई दिन पहले ही घोषणा द्वारा ब्राह्मण, निराश्रय, दु.खी, पितृहीन, मातृहीन, भाई-बन्धुशून्य व्यक्तियोंकी बुलाहट दान ग्रहण करनेके निमित्त होती थी। महाराज शिलादित्य अपने मन्त्री एवं अन्यान्य अधीन राजाओंके साथ वहां वर्त्तमान रहते थे। अधीन राजाओंमें वल्लभी राज्यके अधिपति ध्रुवपति एवं आसामके राजा भास्कर वर्म्मा प्रधान थे। इन दो राजाओंकी सेनाएं एवं महाराज शिलादित्यकी सेनाएं सन्तोषक्षेत्रके चारों ओर पहरा देती थीं। ध्रुवपतिकी सेनाके पश्चिम भागमें अभ्यागतोंके रहनेका स्थान था। वितरण करनेके समय या उसके पूर्व दुष्ट लोग उन बहुमूल्य वस्तुओंको न चुरा लें इसीसे चारों ओर पहरेका प्रबन्ध रहता था। यह स्थान गंगा यमुनाके संगम-स्थलसे

पश्चिमकी ओर था। ध्रुवपतिकी सेना संतोषक्षेत्रके पश्चिमसे अभ्यागतमण्डलीके बीचतक फैली हुई थी। भास्कर वर्म्माने अपने सैनिकोंको यमुनाके पश्चिम तटपर रक्खा था।

असीम आडम्बरके साथ उत्सव प्रारम्भ किया जाता था। महाराज शिलादित्य यद्यपि बौद्धधर्मावलम्बी थे तथापि वे हिन्दू धर्मका अपमान नहीं करते थे। वे ब्राह्मण तथा बौद्ध भिक्षुक दोनोंका आदर-सत्कार करते थे। बुद्धकी मूर्त्ति एवं हिन्दू देवमूर्त्तियोंका एक सा सम्मान करते थे। पहले दिन वे पवित्र मन्दिरमें बुद्धकी मूर्त्ति स्थापित करते थे। उसी दिन सर्वापेक्षा बहुमूल्य वस्तुएं वितरण की जाती थीं एवं सर्वापेक्षा सुस्वादु खाद्य पदार्थ अतिथियों तथा अभ्यागतोंको खिलाये जाते थे। द्वितीय दिन विष्णु एवं तृतीय दिन शिवकी मूर्त्ति स्थापित की जाती थी। चौथे दिनसे दान-कार्य प्रारम्भ होता था। बीस दिनों तक ब्राह्मण एवं बौद्ध भिक्षुकोंको, दस दिनोंतक हिन्दू पुजेरियोंको एवं दस दिनोंतक संन्यासियोंको दान दिया जाता था। तत्पश्चात् एक मासतक दरिद्र, निराश्रय, पितृहीन, मातृहीन एवं बन्धु-शून्य व्यक्तियोंको धन दिया जाता था। इसी तरह पचहत्तर दिनोंतक उत्सवका कार्य्य चलता था। अन्तमें महाराज शिलादित्य अपने बहुमूल्य कपड़े, मणिमुक्ता जटित आभरण, अत्युज्ज्वल मुक्ताहार एवं बहुमूल्य अलंकारोंको परित्यागकर बौद्ध भिक्षुकका भेष धारण करते थे। ये बहुमूल्य आभरण भी दरिद्रोंको दे दिये जाते थे। भिक्षुककी तरह

कपड़े पहनकर एवं हाथ जोड़कर महाराज शिलादित्य कहते थे–"आज सम्पत्ति-रक्षा सम्बन्धी मेरी समस्त चिन्ताएं दूर हो गयीं। इस संतोषक्षेत्रमें आज मैं सब कुछ दान करके संतुष्ट हुआ। फिर भविष्यमें मैं इसी तरह दान करनेके लिये सम्पत्ति एकत्रित करूंगा।" इसी तरह पुण्यभूमि प्रयागमें संतोषक्षेत्र-का उत्सव समाप्त होता था। महाराज राज्य-रक्षाके निमित्त हाथी, घोड़ा इत्यादि आवश्यक पदार्थोंको रखकर सब कुछ दान कर देते थे।

चीनका यात्री हुएनसंग पुण्यतीर्थ प्रयागका यह उत्सव देखकर बहुत ही प्रसन्न हुआ। इस तरहके उत्सवसे भारतके प्राचीन राजाओंको बड़ा संतोष होता था। वे इस कार्यसे अनन्त पुण्यके भागी बनते थे। इस तरह धर्मकार्यमें रत प्राचीन आर्य्य-गण राजनैतिक विषयकी भी पूर्ण अभिज्ञता रखते थे। वे सदा धर्म एवं राजनीतिके अनुसार काम करते थे। जिसमें ब्राह्मण एवं बौद्ध भिक्षुक असंतुष्ट न हों इस बातकी चिन्ता राजाको सदा बनी रहती थी। इस उत्सवमें ब्राह्मण तथा बौद्ध भिक्षुकों-को आदरके साथ दान दिया जाता था। राजाके आदरसे संतुष्ट ब्राह्मण एवं बौद्ध सदा राज्यकी कुशलकी कामना करते थे।

राजाके इस असाधारण कार्यसे सर्वसाधारण उन्हें देवतुल्य समझते थे। इस तरह सर्वसाधारणके हृदयपर राजाका आधिपत्य था। उनके राज्यके रहनेवाले चोर भी राजाका यह धार्मिक कार्य देखकर लज्जित होते और दुष्कर्म छोड़ देते थे।

संतोषक्षेत्रके उत्सवका राजनैतिक फल चाहे कुछ भी हो पर इसका धार्मिक प्रभाव बहुत ही अच्छा पड़ता था। यदि भारत दूसरोंके अधिकारमें न जाता, वैदेशिक सभ्यता एक प्रान्तसे दूसरे प्रान्तमें न फैलती, तो निश्चय है कि इसका जातीय भाव लुप्त न होता और वही अपूर्व दानशीलता चारों ओर देखनेमें आती। भारतके दुर्भाग्यसे यह दृश्य बहुत दिन पहले लुप्त हो गया।

सीताराम राय

जिस समय सम्राट् फर्रुखशेर दिल्लीके सिंहासनपर अधिष्ठित थे, महामति नानकके धर्म-सम्प्रदायके अनुयायी गुरुगोविन्द सिंहकी दीक्षासे दीक्षित सिक्ख-समाज धीरे धीरे सजीविताका परिचय दे रहा था, उसी समय महाबली शिवाजीकी शिक्षासे महाराष्ट्रीय वीर असीम साहस एवं असाधारण तेजस्विताके साथ अपनी प्रधानता स्थापित करनेकी चेष्टा कर रहे थे, उसी समय बंगालके यशोहर जिलामें सुरम्य जलाशयके तटपर स्थित एक दुर्गकी अट्टालिकापर स्थित एक वीरने अपनी तेजस्विताका परिचय दिया। इसी जिलामें मधुमति नदीके पश्चिम तटपर महम्मदपुरमें एक दुर्ग था। दुर्गके चारों ओर ऊँची चहारदिवारी थी। चहारदिवारीके चारों पार्श्वमें खाइयां थीं। इस दुर्गके भीतर एक विशाल प्रासादमें एक समय रात्रिमें एक सुगठित शरीरवाला पूर्णवयस्क युवक शतरंज खेल रहा था। युवककी गम्भीर मूर्त्तिसे वीरता टपक रही थी। चिन्ताशील युवक बडी चतुरतासे गोटियोंको चला रहा था। उसी समय समाचार मिला कि बादशाहकी सेना दुर्गकी ओर बढ़ी आ रही है और वह शीघ्र ही दुर्गको घेर लेगी। यह समाचार सुनकर युवकका चित्त कुछ उधरकी ओर आकर्षित हुआ, उसके भ्रू युगल सिकुड़ गये, ललाटकी रेखाएं तन गयीं। उसे कुछ चिन्ता तो अवश्य हुई

पर वह खेलता ही रह गया। प्रतिद्वन्द्वीको पराजित करनेके लिये वह और भी शीघ्रताके साथ गोटियोंको चलाने लगा। परन्तु प्रतिद्वन्द्वी पराजित नहीं हुआ। युवक वह बाजी हार गया। उस समय वह विरक्त होकर बोला—"आज जो कष्ट मुझे हुआ है, यवनका सिर काटनेपर भी वह कष्ट दूर नहीं होगा।"

वहींपर एक विशालकाय भीमपराक्रमी मनुष्य खड़ा था। युवककी यह बात सुनकर वह चुपचाप वहांसे चला गया।

रात बीती, प्रभात हुआ। बाल रविकी ज्योतिसे दुर्ग चमकृत होने लगा। जो युवक कल रात्रिमें शतरंज खेल रहा था आज सबेरे वही युवक मुख धो रहा है। इसी समय वही विशालकाय वीर पुरुष वहां आया और उसने अपना सिर नीचा करके युवकको प्रणाम किया। यह देखकर युवक विस्मित हुआ उसमयमें उसे सिर नवाकर प्रणाम करते देख युवकने गम्भीर स्वरसे कहा—"नेनाहाती! यह क्या!" नेनाहातीने हाथ जोड़कर नम्रतापूर्वक कहा-"महाराज विपक्षी सेना हारकर भाग गयी। यही उसके सेनापतिका मस्तक है।"

युवकका नेत्र ज्योतिर्मय हो गया, उसके प्रशान्त मुखमंडलसे गम्भीरताके चिह्न दीखने लगे। युवकने प्रसन्नताके साथ नेनाहातीकी प्रशंसा की और उसके पराक्रम एवं साहसके लिये यथोचित पुरस्कार देकर कहा,—"नवाबके साथ शीघ्रही घोर युद्ध करना पड़ेगा, भयकी कोई बात नहीं है, तुम सैन्य संख्या बढ़ानेकी चेष्टा करो।" पूर्ण यौवन प्राप्त इस तेजस्वी पुरुषका

नाम सीताराम राय एवं इस भीम पराक्रमी वीरका नाम मेना-हाती है। मेनाहाती सीताराम रायका सेनापति है। सीताराम राय उत्तरराढ़ी कायस्थ हैं और इनके कुलकी उपाधि विश्वास है। मधुमति नदीके पश्चिमी किनारे हरिहर नगर नामकी एक छोटी बस्ती है, सत्रहवीं शताब्दीके अन्तमें सीताराम रायका जन्म उसी ग्राममें हुआ था। सीताराम रायके पिताकी एक छोटी ज़मीन्दारी थी। उस समयके प्रथानुसार सीताराम राय शिक्षा प्राप्त करनेके लिये पाठशाला भेजे गये। पाठ-शालासे वह प्रायः अनुपस्थित रहा करते थे। पण्डित होनेकी अपेक्षा साहसी, तेजस्वी तथा वीर बनकर प्रसिद्धि प्राप्त करनेकी उन्हें अधिक इच्छा थी। महाराष्ट्रके उद्धारकर्त्ता शिवाजीने बालकपनहीमें अपनी तेजस्विताका परिचय देकर हिन्दू मुसलमान दोनोंको विस्मित कर दिया, पंजाबकेसरी रणजीतसिंहने तरुणावस्थामें ही अलौकिक शूरता दिखलाकर पंजाबको गौरवान्वित किया था। अठारहवीं शताब्दीके प्रारम्भ-में सीताराम रायने अपने साहस एवं वीरताके प्रभावसे बंगा-लियोंका मुखोज्ज्वल किया। सीताराम रायने अल्प वयसमें ही तीर चलानेकी सुदक्षता, लाठी चलानेके कौशल एवं अश्वा-रोहणकी अपूर्व शक्तिसे दर्शकोंको चकित कर दिया।

बन्दूक चलानेकी उनमें विशेष योग्यता थी और तलवार चलानेमें तो वे बंगालमें अद्वितीय समझे जाते थे। वे एक पल-में शत्रुके लाखों वीरोंको मार गिराते, बड़ी तेजीसे घोड़ेको कुदा-

रताके साथ चलाते, दृढ़ताके साथ तलवार एवं लाठी चलानेका असाधारण कौशल दिखलाते। उनकी उपर्युक्त प्रशंसाकी बातें सुनकर बंगालका नवाब और दिल्लीका सम्राट् उनसे भय खाता था। इस समय लोग बंगालियोंको भीरु कहकर धिक्कारते थे। विदेशियोंने इतिहासमें अकर्मण्य कहकर उनकी निन्दा की है। बंगाल किसी समय उन्नतिपर था परन्तु अनेक अवगुणोंके कारण उसका अधःपतन हुआ। उस समय बंगालियोंने मनस्वितासे च्युत होकर जैसी अकर्मण्यता दिखलायी वैसी अकर्मण्यता पहले नहीं देखी गयी थी। जिस समय दिल्लीका सिंहासन मुसलमानोंके हस्तगत हुआ, एक एक करके सभी देशपर वे लोग अधिकार प्राप्त करने लगे, उस समय भी बंगालियोंने कई स्थानोंपर अपनी स्वाधीनताकी रक्षा की थी। बंगालके विजयसिंहने दुस्तर सागर पार करके देशान्तर जाकर वहां अपना अधिकार जमाया था। बंगालके गंगावंशीय वीरोंने उड़ीसापर अधिकार प्राप्त करके इतिहासमें प्रसिद्धि पायी।

बंगालके पाल एवं सेन वंशीय राजाओंने दूसरे देशोंमें विजय पताका उड़ायी थी। बंगालके बारह मंडलेश्वरोंने अपने वीरत्वसे दिल्ली सम्राट्को चकित कर दिया था। बंगालके सीताराम रायकी क्षमता एवं तेजस्विता वीरेन्द्र समाजमें प्रसिद्ध है। जबतक इतिहासकी मर्य्यादा बनी रहेगी, देशहितैषिता सम्मानित की जायगी एवं पूर्वपुरुषोंकी स्मृति बनी रहेगी तबतक सभी कहेंगे कि बंगालने पहले कभी भी आत्म गौरवको जलाञ्जलि नहीं दी थी।

धीरे धीरे सीताराम रायकी सेनामें अनेक वीर पुरुष हो गये। साथ ही साथ उन्हें बहुत सी भूसम्पत्ति हाथ लग गयी। अनेक स्थानोंपर अधिकार प्राप्त करके वे स्वयं स्वाधीन राजा बन गये। महमूदपुर उनकी राजधानी हुई। "वीरभोग्या वसुन्धरा" इस कहावतको सीताराम रायने पूर्ण रूपसे चरितार्थ किया। वह दूसरेके कष्टसे दुखी होकर उसके निवारणकी चेष्टा करते थे। निर्धनोंके दुःख दूर करनेके लिये वे सदा प्रस्तुत रहते थे। इस समय यशोहर जिलामें बारह चकले थे। चकलेके अधिपति दिल्ली सम्राट्को कर नहीं देते थे। सम्राट् फर्रुखशेरने सोताराम रायकी प्रशंसा सुनी थी अतः उसने उन चकलोंके स्वामियोंको दण्ड देनेके लिये इनसे अनुरोध किया। बादशाहका अनुरोधपत्र पाते ही सीताराम रायने उन चकलोंको अपने अधिकारमें कर लिया। सम्राट् इनसे बहुत सन्तुष्ट हुआ। एक सामान्य व्यक्तिने अपने बाहुबलसे राजा बनकर अपनी तेजस्विताका परिचय दिया। उनका घर सम्पत्तिसे भर गया। उन्होंने परोपकार व्रतको नहीं छोड़ा। पहलेकी भांति दुखियोंके दुःख छुड़ाने, असहायोंकी सहायता करने तथा बिना पूंजीवालोंके लिये पूंजीकी व्यवस्था करनेमें वे लगे रहे। बंगालके नवाब मुर्शिदकुली खाने सीताराम रायसे कर लेनेकी इच्छा प्रकट की। सीताराम रायने नवाबकी आज्ञा न मानी बल्कि उसके सामने उन्होंने अपना सिर नीचा करना भी उचित न समझा। नवाबके पास उन्होंने लिख भेजा-"मैं नवाबकी प्रजा नहीं हूं अतः

मुझसे कर मांगना उनकी धृष्टता है। मैं तो यशोहरका स्वाधीन राजा हूं।" नवाब बहुत क्रुद्ध हुआ। सीताराम रायको दण्ड देनेके लिये उसने एक भारी सेना भेजी। मुसलमान सेनापति एवं सीताराम रायमें घोर युद्ध हुआ। सीताराम रायके वीरत्व तथा साहस और मेनाहातीके युद्ध-कौशलसे मुसलमान सेना पराजित होकर भाग गयी। बंगालके एक वीर पुरुषने आज स्वाधीनता एवं गौरवकी रक्षा करके सच्ची वीरता दिखलायी और नवाबको स्तम्भित कर दिया।

इसी समय दिल्लीके बादशाहने आबुतोराब नामक एक वीर पुरुषको सेनापति बनाकर सीताराम रायको दण्ड देनेके लिये भेजा। यह सेनापति रात्रिके समय महमूदपुर पहुंचा। इसी समय सीताराम राय शतरंज खेल रहे थे। शतरंजमें हारकर सीताराम रायने जो बात कही उसीको सार्थक करनेके लिये उसके सेनापतिने उसी रात्रिको शत्रुपर चढ़ाई करके सेनापतिका मस्तक दूसरे दिन सवेरे ही स्वामीके निकट ला रखा। इसी मस्तकको देखकर राजा सीताराम रायने कहा था कि नवाबके साथ घोर युद्ध होगा और उन्होंने सिपाहियोंकी संख्या बढ़ानेकी भी बात कही। कोई कोई कहते हैं कि सेनापति आबुतोरायको सीताराम रायने ही परास्त करके मार डाला।

आबुतोरायकी मृत्युकी बात सुनकर मुर्शिदकुली खां बहुत चिन्तित हुआ। नाटोरके राजा रघुनन्दन नवाबके दीवान थे। नवाबके अनुरोधसे रघुनन्दनके बड़े भाई रामजीवनने सीताराम

रायको दण्ड देनेकी प्रतिज्ञा की। उसके एक साहसी कर्मचारी दयाराम रायने इसका उपाय बतलाया। बङ्गाली बङ्गालीके विरुद्ध खड़ा हुआ। हिन्दू ही हिन्दूका सर्वनाश करनेपर उतारू हुआ और उसे सफलता भी हुई। इसने समरमें सम्मुख युद्ध न करके चतुरतासे सेनापति मेनाहातीको पकड़ना चाहा। चेष्टा सफल हुई। विपक्षियोंने मेनाहातीको पकड़कर सूलीपर चढ़ा दिया। स्वदेशवासियोंकी सहायतासे मेनाहाती शत्रु द्वारा पकड़ा जाकर मारा गया। प्रभु-भक्त सेनापतिकी मृत्युसे राजा सीताराम राय बड़े ही दुखी हुए। अब अधिक युद्ध न करके उन्होंने अपनेको शत्रुके हाथमें समर्पण कर दिया। कोई कोई कहते हैं कि नवाबकी सेनाने चारों ओरसे उन्हें घेर लिया। नवाबका सेनापति सीताराम रायको घेरकर दरबारमें ले जाता था, राहमें ही उन्होंने हाथके हीरेकी अंगूठीको चूसकर अपने प्राण त्याग दिये। यौवनपूर्ण पुरुषसिंह अपनी इच्छासे सदाके लिये सो गया।

राजा सीताराम रायने यशोहरमें कई जलाशय खुदवाये थे। उन्होंने अनेकों देवमन्दिर बनवाकर अपनी अचल देव-भक्तिका परिचय दिया था। महम्मदपुरका दुर्ग भी उनकी कीर्त्तिका एक प्रधान चिह्न है। राजा सीताराम रायका खुदवाया हुआ कृष्णसागर नामका जलाशय आज भी यशोहर जिलामें सर्वप्रधान समझा जाता है। इस समय भी राजा सीताराम रायकी कीर्त्तिका भग्नावशेष उनकी शक्तिका परिचय देता है। धीरे धीरे

सीताराम रायका निवासस्थान महमूदपुर प्रसिद्ध होता गया। उसी जगहपर आजकलका प्रसिद्ध नगर कलकत्ता है। बङ्गालके कर्त्ता धर्त्ता अङ्गरेज लोग जो किसी समय यहांपर व्यापारीके भेषमें आए थे आज उसी जगहपर निवास करते हैं।

बीरबल

अकबर १५५६ ई० में जिस समय दिल्लीके सिंहासनपर बैठा, भारतके सभी देश जिस समय एक एक करके मुगल सम्राट्की अधीनता स्वीकार करने लगे, मुगलोंकी विजयिनी शक्ति जिस समय धीरे धीरे चारों ओर फैलने लगी, उस समय यमुनातटवर्ती काली नगरका एक भाट मधुर संगीत सुनानेके लिये सम्राट्के निकट आया। भाटके मधुर कण्ठसे मनोहर संगीत सुनकर दिल्लीसम्राट् बड़े ही प्रसन्न हुए। धीरे धीरे दिल्लीमें इस भाटकी कवित्वशक्तिकी प्रशंसा होने लगी। सुन्दर कविता रचनेके कारण भाट दिल्लीनिवासियोंका प्रियपात्र बन गया। उसके सगीतनैपुण्य एवं उसकी मोहिनी कवित्वशक्तिसे दिल्लीनिवासी बड़े ही सन्तुष्ट हुए। सम्राट्ने इस प्रतिभाशाली सङ्गीतनायकका असम्मान नहीं किया। उन्होंने आगन्तुकको 'कविराय' की उपाधि देकर अपनी सभामें रख लिया।

कविराय इसी प्रकार सम्राट्का प्रियपात्र बनकर दिल्लीमें रहने लगा। १५७२ ई० में उसके भाग्यका सितारा और भी चमक गया। इस समय सम्राट्ने उसे राजाकी उपाधि दी। आजसे उसका पुराना नाम बदल दिया गया और लोग उसे बीरबल या बीरवर कहने लगे।

बीरबल ब्राह्मण जातिके थे। उनका निवासस्थान बुन्देल-

खण्डके अन्तर्गत किसी जनपदमें था। उनका पहला नाम महेश-दास था और कोई कोई उन्हें ब्राह्मणदास भी कहते थे।

उस समय कांगड़ाके अधिपति जयचन्द्र किसी अपराधसे दिल्लीमें कैद थे। सम्राट्ने बीरबलको उनका राज्य देनेकी इच्छा प्रकट की। जयचन्द्रके पुत्रने अकबरको अधीनता स्वीकार नहीं की। वे पितृराज्यकी रक्षाके निमित्त दृढ़ रहे परन्तु उनकी चेष्टा सफल नहीं हुई। अकबरकी आज्ञासे पञ्जाबके शासक हुसन-कुलीखाने कांगड़ापर आक्रमण करके उसपर अधिकार प्राप्त कर लिया। राजा बीरबल कांगड़ाका राज्य ग्रहण करनेपर सहमत नहीं हुए अतः उन्हें एक जागीर दे दी गयी। इसी समय राजा-ने उन्हें एक हजार सेनाका सेनापति बनाया।

भाट महेशदास इस समय राजाकी उपाधि प्राप्त करके एक सहस्र सेनाका नायक बन गया। एक समय जिसकी गणना चाटपदलमें की जाती थी, सङ्गीत ही जिसकी जीविका थी आज वही सहस्र सैनिकोंका स्वामी बनकर राजकीय कार्य्यमें अपनी क्षमताका परिचय दे रहा है। राजा बीरबल प्रायः सम्राट्के ही साथ रहते थे। जिस समय सम्राट्ने गुजरातपर धावा किया उस समय राजा बीरबल उनके साथ थे और सम्राट्को वहीं इनके समरनैपुण्यका परिचय मिला। जब कभी कोई कठिन समस्या उपस्थित होती तो राजा बीरबल ही उसे हल करते थे। बीरबल बड़े ही कर्त्तव्यपरायण थे। साहस, क्षमता एवं तेजस्विता-के कारण सब जगह उन्हें सफलता प्राप्त होती थी। उनकी

हो सङ्गतिसे अकबरका धार्मिक विचार बहुत कुछ पलट गया। हिन्दूधर्मकी कितनी ही बातोंमें अकबरकी विशेष श्रद्धा थी।

१५८६ ई० में अफगानोंने सम्राट्के विरुद्ध युद्ध करनेकी घोषणा की। इस कार्य्यके लिये काबुलके सेनापति जैनखांने सम्राट्से सहायता मांगी। राजा वीरबल सहायक सेनाके सेनापति बनाकर काबुल भेजे गये। युद्धमें अकबरके सैनिक परास्त हुए। अफगानोंने पार्वत्य प्रदेशके चारों ओरसे सम्राट्के सैनिकोंपर आक्रमण किया था। इससे सम्राट्के सैनिक तितर बितर हो गये। वीरबल और जैनखां बड़े कष्टसे पीछे हटे और वहीं उन लोगोंने शिविर स्थापित किया। अफगानोंने रात्रिमें इस शिविरपर आक्रमण किया। सम्राट्के अधिकांश सैनिक मारे गये और कुछ लोग पर्वतमें छिप गये। राजा वीरबलभी इसी समय मारे गये थे। वीरबलकी मृत्युकी बात सुनकर सम्राट् अकबर शोकातुर हो उठे। वीरबलका मृत शरीर नहीं मिला इससे उनका कष्ट और भी दूना हो गया। किंवदन्ती है कि अकबरकी सोचनीय अवस्था देखकर लोगोंने कह दिया कि वीरबल जीवित हैं और संन्यासी भेष में घूम रहे हैं। अकबरने इस बातपर विश्वास करके वीरबलके अनुसन्धानकी आज्ञा दी। अन्तमें यह बात झूठी ठहरी। एक बार फिर भी यह किंवदन्ती उठी कि वीरबल कलिञ्जर में रहते हैं। इस किंवदन्तीसे अकबरको विश्वास हो गया कि वीरबल जीवित हैं। अकबरने कालिञ्जरमें बड़ी सावधानीसे वीरबलका अनुसन्धान कराया। उपर्युक्त

बातोंसे पाठकोंको भलीभांति मालूम हो जायगा कि बीरबल सम्राट्के कैसे प्रेमपात्र थे।

बीरबलको एक पुत्र था जिसका नाम था लाल। पुत्रमें पिताके गुणोंका पूर्ण अभाव था। लालने सभी पैत्रिक सम्पत्ति नष्ट कर दी। अन्तमें उसने संन्यासी होकर सांसारिक सुखोंको त्याग दिया। राजा बीरबल फतेहपुर सिकरीमें रहते थे। आज भी उनका महल वहां वर्त्तमान है।

सोमनाथ

भारतवर्षके इतिहासमें सोमनाथका मन्दिर चिरप्रसिद्ध है। धर्मनिष्ठ हिन्दुओंके सामने यह मन्दिर सदासे पवित्र समझा जाता है। सोमनाथका मन्दिर प्रकृतिके अत्यन्त रमणीक स्थानमें स्थित है। सामने विशाल समुद्र भैरव रवके साथ किनारेकी भूमिको धोता है। जितनी दूरतक दृष्टि जायगी केवल नील वारिराशि नज़र आयगी। मालूम होता है कि नील वारिराशिके नीले फेन आकाशको छू रहे हैं। ऊपर अनन्त नीलाकाश, नीचे विस्तीर्ण नील समुद्र और बीचमें पवित्र मन्दिर शोभायमान है। हिन्दुओंके आराध्य देवता इसी प्रकारके पवित्र रमणीक स्थानमें प्रतिष्ठित किये जाते थे। प्रकृतिकी गम्भीरताके बीच स्थित शान्तिमय मन्दिरकी सुन्दरतासे उपासकोंके हृदय शान्ति-रससे परिपूर्ण हो जाते थे।

प्राचीन कालमें जिस उद्देश्यको लेकर शिवमन्दिर निर्मित किये जाते थे उसी उद्देश्यसे यह मन्दिर भी निर्मित किया गया था। मन्दिरकी परिधि ३३६ फीट, लम्बाई ११७ फीट एवं चौड़ाई ७४ फीट है। युरोपके मन्दिरोंसे यदि इस मन्दिरकी तुलना की जाय तो निस्सन्देह यह छोटा है। हिन्दू-उपासक जनताप्रिय नहीं थे। जन कोलाहलके बीच उपासना करनेकी अपेक्षा शांत स्थानमें उपासना करना उन्हें अच्छा लगता था।

इसीसे वे निर्जन स्थानमें देवमन्दिरोंको बनवाते थे। जो लोग युरोपके उपासनागृह देख चुके हैं वे सोमनाथका मन्दिर देखकर हिन्दुओंके इस भावको स्वयं समझ जायगे। मन्दिर पत्थरका बना हुआ है और यह चार भागोंमें विभक्त है। प्रत्येक खण्डमें सुन्दर कारीगरी किया हुआ एक मण्डप है। मण्डपका भग्नावशेष अब भी आक्रमणका-रियोंकी कठोरताका परिचय दे रहा है। मन्दिरके भिन्न भिन्न घरोंमें भिन्न भिन्न प्रकारकी मूर्त्तियां खुदी हुई हैं और उनके भिन्न भिन्न नाम भी हैं। एक घरमें श्रेणीबद्ध हस्तियोंके मस्तक खुदे हुए हैं। इस घरका नाम है गजगृह। एक घरमें बहुतसे रङ्ग बिरङ्गके घोड़े कई श्रेणीमें खड़े हैं, इस घरका नाम है अश्वशाला। एक मंडपमें कारीगरने बड़ी चतुरतासे मण्डली-बद्ध सुरसुन्दरियोंका नृत्याभिनय दिखलाया है, इस मण्डपका नाम है रासमण्डल। ये खुदी हुई मूर्त्तियां सुगठित एवं वृहदा-कारकी थीं परन्तु निष्ठुर आक्रमणकारियोंने उन्हें ध्वंस कर दिया। सुरसुन्दरियोंके विच्छिन्न हाथ पैर एवं मस्तक इधर उधर मारे फिरते हैं, जिससे ज्ञानशून्य मुसलमानोंके भीषण भावका परिचय मिलता है।

बीचवाले मण्डपकी अवस्था अब भी उतनी बुरी नहीं है। इस मण्डपकी गुम्बज आठ खम्भोंपर स्थापित है। कुछ लोगों-का मत है कि मन्दिर नष्ट करनेके पश्चात् पुजेरियोंको प्रार्थनासे उनकी जीविकाके लिये मुसलमानोंने यह मंडप बनवा दिया।

इसीसे इस अंशमें मुसलमानकृत शिल्पकार्य्यके चिह्न पाये जाते हैं। इस अंशमें शिल्पकार्य्यका वैचित्र्य नहीं मालूम पड़ता बल्कि इसकी अपेक्षा मन्दिरका भग्नावशेष अब भी शिल्पकारकी शक्तिका परिचय देता है। मन्दिरके एक अंशमें एक छोटा अन्धकारमय घर है। यह घर २३ फीट लम्बा और २० फीट चौड़ा है। पुरोहितके ध्यान-धारणके लिये यह निर्जन स्थान बनाया गया था। एक चतुष्कोण ऊंचे चबूतरेपर सोमनाथका मन्दिर प्रतिष्ठित है। यह चारों ओर ऊंची चहारदिवारियोंसे घिरा हुआ है। पवित्र मन्दिरमें बहुत सी पत्थरकी मूर्त्तियां स्थापित थीं। आक्रमणकारीका अत्याचार न सहन कर सकनेके कारण वे मूर्त्तियां आज धूलमें मिल गयीं। कितने लोग अपने मन्दिरकी शोभा बढ़ानेके लिये इन मूर्त्तियोंको भिन्न भिन्न स्थानमें ले गये।

इस समय सोमनाथके मन्दिरका भग्नावशेष देखकर दर्शकोंके हृदयमें अनेक प्रकारके विचार स्रोत प्रवाहित होते हैं। आर्य्यभूमिके सौभाग्यके समय जैसा इसका गौरव था, जैसी इसकी शोभा थी इस समय वे बातें नहीं हैं। पुण्यशीला अहिल्याबाईके प्रयत्नसे एक देवमन्दिर इस स्थानपर स्थापित किया गया है।

सोमनाथके पुजेरियोंकी सन्तानगण इसीके आश्रयमें रहती हैं। परन्तु वह पूर्व गौरव जो लुप्त हो गया फिर नहीं लौटा। हिन्दुओंने अपने देवताओंके गौरवकी रक्षाके निमित्त पांच

महीने तक लड़ाई की थी। अन्तमें जब सुलतान महमूद इन लोगोंको परास्त न कर सका तो अपने सैनिकोंको लौटा ले गया और पांच कोसपर शिविर स्थापित करके वहीं ठहर गया। हिन्दुओंने देखा कि मुसलमान लोग लौट गये, हमारे मन्दिरकी रक्षा हुई, अतः वे लोग प्रसन्नचित्त हो आनन्द मनाने लगे। यह सुयोग देखकर सुलतानने एक रात्रिको जाफर एवं मुजफ्फर दो सैनिकोंके अधीन दो सेनाएं मन्दिरपर आक्रमण करनेके लिये भेजीं।

अकस्मात् रात्रिके समय ये दोनों वीर मन्दिरके द्वारपर पहुंचे। शीघ्र ही राजपूत वीर भी शस्त्र लेकर लड़नेके लिये तैयार हो गये। रक्तकी धाराएं बह चलीं। क्षत्रिय वीर आराध्य देवकी रक्षाके निमित्त प्राण त्यागने लगे। अन्तमें सात सौ राजपूत वीर तलवार लेकर मन्दिरके द्वारपर खड़े हो गये परंतु उनकी चेष्टा फलवती नहीं हुई। भयानक रक्त-प्रवाहमें राजपूतोंके शरीरके साथ साथ उनका गौरवस्वरूप वह उपासनागृह भी नष्ट हो गया।

शिवाजीकी महानुभावता

इधर श्रेष्ठ शिवाजी राजगद्दीपर बैठे। उनके नामसे एक सम्वत् भी चलाया गया। उनके नामसे सिक्के भी चलने लगे। शैलमालाओंसे सुशोभित दक्षिणके देशपर आप शासन करते थे। जिस समय मुगलोंकी शक्ति उन्नतिकी चरम सीमातक पहुंच गयी थी उस समय इस वीरने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की। मुगलोंकी पताकाके साथ २ शिवाजीकी पताका भी उड़ उड़कर उनके गौरवका परिचय दे रही थी। शिवाजीने दूसरी जगह एक दुर्ग बनाकर अपने अधिकारकी रक्षा की। युद्ध-कुशल हम्वीर राव आपके सेनापति थे। प्रसिद्ध मवाली सेना दूने उत्साहके साथ शिवाजीके अधिकार बढ़ानेकी चेष्टा कर रही थी।

राजपद पानेपर भी शिवाजी संतानकी भांति अपनी प्रजाका पालन करते रहे। अपनी माता जीजाबाईको आप प्रत्यक्ष देवी समझते थे। आप अपनी प्रियतमा स्त्रीसे बहुत प्रेम रखते थे। राजपद प्राप्त करनेके पश्चात् उनकी माता और स्त्री दोनोंका ही स्वर्गवास हो गया। महाराज शिवाजी उनके वियोगसे दुखी हुए पर आपने प्रजापालनसे मुंह नहीं मोड़ा। उनके सुनियम, उदार व्यवहार तथा धर्मानुरागसे प्रजा सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करती थी। आपने भिन्न भिन्न देशोंपर अधिकार प्राप्त किया पर अपने शरणागत शत्रुओंके साथ दुर्व्यवहार नहीं किया। उनकी

सेना बड़े पराक्रमके साथ युद्ध करती थी परन्तु मार्गमें गौ, किसान, नारी तथा अन्य जातिके धर्ममन्दिरोंपर आक्रमण नहीं करती थी। भिन्न भिन्न किलाओंपर इन लोगोंने अधिकार प्राप्त किया किन्तु किलाके निवासियोंको किसी प्रकार भी कष्ट नहीं दिया। वीर श्रेष्ठ शिवाजीने इसी तरह वीरधर्मकी रक्षा करके अपने उदार भावका परिचय दिया। इसी तरहके महान् कार्योंसे आप संसारमें सम्मानित हुए। उनके सौतेले भाई व्यङ्कोजीने राज्य लोभसे उनके विरुद्ध सेना इकट्ठी की थी परन्तु शिवाजीने इसपर भी भ्रातृ-भावका विसर्जन नहीं किया। जिस समय व्यङ्कोजी अपने मन्त्रीके साथ महाराज शिवाजीसे मिलने गये उस समय शिवाजीने अपने सदुपदेशसे उनकी दुर्भावनाओंको दूर करनेकी चेष्टा की।

राजस्थानकी भांति दक्षिणमें भी एक वीर नारीका आविर्भाव हुआ। शिवाजीके समयमें ही इसने अपनी क्षमताका परिचय दिया। वीरप्रवर शिवाजीने उसकी वीरताका अपमान नहीं किया। शिवाजी राज्यभार अपने हाथमें लेनेके पश्चात् दक्षिणके भिन्न स्थानोंपर अधिकार प्राप्त करने लगे। इस समय बलारी राज्यपर मलबाई देसाइन नामकी एक विधवा स्त्री राज्य करती थी। जब शिवाजी बलारी दुर्गपर अधिकार जमाने लगे तो उस रमणीने आत्म-रक्षाके निमित्त शस्त्र ग्रहण किया। उसने शीघ्र ही दुर्गकी रक्षाका प्रबन्ध कर लिया। महाराष्ट्रपतिके आक्रमणको रोकनेके निमित्त भिन्न भिन्न स्थानोंमें सैनिकगण खड़े हो गये। ये सेनाएं

योग्य सेनापतियोंकी अध्यक्षतामें थीं। मलबाई स्वयं बड़ी तत्परतासे उनकी देखरेख करती थी। भारतका सर्वश्रेष्ठ वीर उसके राज्यपर आक्रमण कर रहा है तथा चुनी हुई असंख्य सेनायें उसे पराधीन बनाना चाहती हैं, इससे उसका चित्त जरा भी विचलित नहीं हुआ। वह जीवनकी कुछ भी परवा न करके हाथमें तलवार लिये शत्रुओंके सामने गयी। महाराष्ट्र सेना बड़े वेगसे उसकी सेनापर टूट पड़ी। वीरांगना निर्भय होकर अपनी रक्षा करने लगी। परन्तु सुशिक्षित महाराष्ट्रवीरोंके साथ वह अधिक समयतक युद्ध नहीं कर सकी। किलेके बाहर खड़ी होकर लड़ना उसे असम्भव प्रतीत होने लगा।

शीघ्र ही उसकी आज्ञासे वीरगण दुर्गमें घुस गये। इधर शिवाजीकी सेनाने भी दुर्गपर आक्रमण किया था। वे लोग दुर्गपर गोलेकी वृष्टि करने लगे। परन्तु मलबाई इससे जरा भी नहीं डरी। वह और भी अधिक साहसके साथ दुर्गकी रक्षा करने लगी। इस तरह सत्ताईस दिन बीत गये। सत्ताईस दिनोंतक शिवाजीकी सेना दुर्गको घेरे रही। इस बीच मलबाई कभी भी घबड़ाई नहीं। उसका साहस लुप्त नहीं हुआ और उसकी तेजस्विता जरा भी नहीं घटी। आत्म-रक्षाके भाव उसके हृदयमें बने रहे। वह इस निपुणताके साथ सेनाओंको चलाती तथा इस वीरताके साथ उन्हें आदेश देती थी कि सत्ताईस दिनोंतक शिवाजीकी सेना कुछ भी नहीं कर सकी। सत्ताईसवें दिन किलाका एक अंश टूट गया जिससे किलेकी रक्षाका कोई

उपाय नहीं रहा। शत्रुगण उसी टूटे हुए मार्गसे दुर्गमें घुस गये, वीरांगनाने अपनेको शिवाजीके हाथमें समर्पण किया।

शिवाजीकी आशा पूरी हुई। बल्लारी दुर्ग उनके अधिकारमें आया। विधवा नारी घोर युद्ध करनेके पश्चात् शिवाजीकी शरण में गयी। वीर पुरुषने इस वीर नारीके गौरवकी रक्षा की। आपने मलबाईका यथोचित सम्मान किया। शिवाजीने बल्लारी दुर्ग फिरसे मलबाईको समर्पण करके अपनी महानताका परिचय दिया। मलबाई पहलेकी भांति न्याय और स्वाधीनताके साथ शासन करने लगी।

ॐ महाराष्ट्रकी महाशक्ति ॐ

मुगल साम्राज्य जिस समय उन्नतिकी चरम सीमातक पहुंच गया था, औरङ्गजेबके कठोर शासनसे जिस समय भारतवर्षकी चारों दिशायें भयके मारे कांप रही थीं, स्वाधीनताके प्रधान उपासक, तेजस्विताके अद्वितीय अवलम्ब एवं साहसके एकमात्र आश्रय राजपूत वीर जिस समय मुगलोंके विरुद्ध सिर नहीं उठाते थे उस समय भारतके दक्षिण प्रान्तमें एक महाशक्ति धीरे धीरे सबको विस्मयान्वित करने लगी। धीरे धीरे भारतके सम्राट् भी इस शक्तिसे डरने लगे। इस शक्तिने तेजस्विता एवं उत्साहके सूत्रमें सारे भारतवर्षको गूंथ दिया। इस महाशक्तिके उपासक थे भवानीभक्त शिवाजी। शिवाजी वीरत्वके स्वरूप एवं स्वाधीनताके आश्रयक्षेत्र थे। जिस समय शिवाजीका आविर्भाव हुआ उस समय भारतका पूर्व गौरव समयस्रोतके साथ लुप्त हो गया था। जो लोग एक समय वीरत्व और कीर्त्तिके लिये प्रसिद्ध थे, वीरेन्द्र-समाजमें प्रसिद्ध होनेके कारण जो अनन्त कीर्त्तिके भागी थे आज उन्हींकी सन्तान स्वाधीनताको जलांजलि देकर पराधीनताकी बेड़ीमें जकड़ी हुई है। पृथ्वीराज एवं प्रतापसिंह जैसे वीरोंकी तेजस्विता अब लुप्त हो गई। अनैक्यके कारण बलवान राजपूत वीरोंने आपसमें लड़ते लड़ते अपने बलका क्षय कर दिया जिससे आज वे

मुसलमानोंके अधीन अपने अध:पतनका फल भोग रहे हैं। पराक्रमी शिवाजीने इस अनैक्यको दूर करके दक्षिणमें एक महाजातिकी प्रतिष्ठा की। इनके महामन्त्रसे मुगल साम्राज्य नष्ट हो गया और मुसलमानोंको अधीनता स्वीकार करनी पड़ी।

भारतवर्षके मानचित्रसे मालूम होगा कि इसके दक्षिण-पश्चिम भागमें पर्वतोंसे पूर्ण एक प्रदेश है। इस प्रदेशकी उत्तरी सीमापर सतपुरा पहाड़ उन्नत भावसे खड़ा है, पश्चिमी सीमा-पर तरङ्गलीला करता हुआ विस्तीर्ण समुद्र जड़जगतकी शक्ति-का परिचय दे रहा है, पूरबकी ओर वरदा नदी प्रवाहित हो रही है और दक्षिणकी ओर गोवा नामक नगर एवं एक विस्तीर्ण असमतल भूमि है। वह प्रदेश महाराष्ट्र नामसे परिचित है। इसका क्षेत्रफल एक लाख वर्गमील है। महाराष्ट्र प्रदेश प्रकृति-की मनोहर सुन्दरतासे विभूषित है। हरे वृक्षोंकी मनोहर पंक्ति-से इसके अधिकांश पार्वत्य भाग सुशोभित हैं। मालूम होता है कि प्रकृतिने अपनी सुन्दरताका भाण्डार यहीं सजा रक्खा है। जिन लोगोंने इस स्थानको देखा है वे ही प्रकृतिकी सुन्दरताका अनुभव कर सकते हैं। संसारके अनन्त सुन्दरतापूर्ण भूखण्डके इसी प्राकृतिक मनोहर प्रदेशमें शिवाजीका जन्म हुआ।

सम्राट् औरंगज़ेबके समयमें दक्षिणके अनेक स्थानोंपर मुसलमानोंका अधिकार था। दक्षिणके अन्यान्य मुसलमान राजाओंमें बीजापुरके मुसलमान अधिपति विशेष शक्तिशाली थे। महाराष्ट्रनिवासी एक राजपूत युवक जिनका नाम शाहजी

या बीजापुर-दरबारमें नौकरी करते थे। धीरे धीरे उनकी शक्ति बढ़ने लगी और अन्तमें उनकी गणना राज्यके प्रधान कर्मचारिओंमें होने लगी। उनके पराक्रमसे बीजापुरके राजाको अनेक स्थानोंमें विजय-लाभ हुआ। शाहजीका विवाह जीजाबाई नामक एक महाराष्ट्र रमणीसे हुआ था। जीजाबाईके गर्भसे दो लड़के हुए। पहलेका नाम शम्भूजी और दूसरेका नाम शिवाजी था।

१५२१ ई० के महीनेमें शिवाजीका जन्म शिउनारी नामक दुर्गमें हुआ था। यह दुर्ग पूनासे पचास मीलकी दूरीपर है। दुर्गकी अधिष्ठात्री देवीका नाम शिवाई है इसीसे जीजाबाईने पुत्रका नाम शिवाजी रक्खा। बालकपनमें कुछ समयतक शिवाजी अपनी माताके साथ शिउनारी दुर्गमें ही रहते थे। शिवाजीके जन्मके तीन वर्ष पश्चात् शाहजीने तुकाबाई नामक एक महाराष्ट्र रमणीसे विवाह किया। दूसरा विवाह करनेके कारण शाहजी एवं जीजाबाईमें विरोध हो गया। शाहजीने दादोजी कोड़देव नामक एक वृद्ध ब्राह्मणको अपना कारबार देखने तथा शिवाजी और उसकी माताकी देखभाल करनेके लिये नियुक्त किया था। दादोजी बड़े ही चतुर और कार्यदक्ष मनुष्य थे। उन्होंने जीजाबाईके रहने योग्य पूनामें एक मकान बनवाया। शिवाजी इसी मकानमें रहने लगे। दादोजी ही इस बालकके एकमात्र संरक्षक थे।

इस समय महाराष्ट्रनिवासी सरस्वतीदेवीके उपासक नहीं थे, पढ़नेकी अपेक्षा वीरोचित गुणोंको वे अधिक गौरवकी

दृष्टिसे देखते थे। शिवाजी स्वयम् अपना नाम भी नहीं लिख सकते थे। परन्तु शस्त्र चलानेमें वे विशेष दक्ष थे। स्वदेशवासी उन्हें सुनिपुण अश्वारोही कहते थे। उनका अश्वचालन कौशल देखकर दर्शकगण उनका गुणगान किये बिना नहीं रह सकते थे। दादोजीने शिवाजीको हिन्दूधर्म-सम्बन्धी तत्वोंको बतलाया था जिसका परिणाम यह हुआ कि शिवाजी एक निष्ठावान हिन्दू हो गये। वे बड़े प्रेमके साथ हिन्दूधर्मकी कथाओंको सुनते थे। रामायण, महाभारत एवं भागवतकी कथाओंसे उन्हें बड़ा आनन्द प्राप्त होता था। बालकपनसे ही कथा कहनेवालोंके प्रति उनकी विशेष श्रद्धा थी। हिन्दूधर्ममें इतनी भक्ति होनेके ही कारण उन्होंने हिन्दुओंके गौरवकी रक्षा करनेकी दृढ़ प्रतिज्ञा की। वे अपनी इस प्रतिज्ञासे कभी भी विचलित नहीं हुए। शत्रुओं द्वारा घोर विपत्तिमें डाले जानेपर भी वे इस प्रतिज्ञासे च्युत नहीं हुए। शिवाजी अन्तिम समयतक निर्भीकताके साथ इस प्रतिज्ञाका पालन करते रहे। रामायण और महाभारतकी गौरवपूर्ण कथाओंको सुनकर शिवाजीका हृदय स्वजातिप्रियता तथा स्वदेशहितैषितासे भर जाता था जिससे उनके हृदयमें तेजस्विताका सञ्चार होता एवं साहसकी वृद्धि होती थी। कठोर मुसलमान शासकोंके अत्याचारसे हिन्दूधर्म लुप्त हो गया था। शिवाजीने उसकी महती शक्तिका विकास करने तथा हिन्दूराज्य स्थापित करनेकी प्रतिज्ञा की। उनकी प्रतिज्ञा निष्फल नहीं हुई। जिस समय सम्राट् औरंगजेबके प्रतापसे सारा भारतवर्ष

काँप रहा था उस समय दक्षिणमें शिवाजीने एक हिन्दूराज स्थापित किया। इस स्वाधीन राज्यके स्वाधीनता-भक्त वीरोंके प्रबल पराक्रमसे चिरविजयी मुगलोंकी शक्तिका ध्वंस हुआ। बहुत दिनोंके पश्चात् एक बार फिर भी हिन्दुओंके गौरवका सूर्य्य उदय हुआ।

मवाल नामक पार्वत्य प्रदेशके निवासी मवालियोंपर शिवाजीका पूर्ण अधिकार था। ये लोग बड़े ही कार्य्यपटु, साहसी एवं अध्यवसायी थे। इन्हींपर निर्भर करके शिवाजीने कई स्थानोंपर विजयपताका उड़ायी। वे प्रायः कहा करते थे, "मैं मुसलमानोंको पराजित करके स्वाधीन राज्य स्थापित करूंगा।" वीर पुरुषके ये वाक्य निष्फल नहीं हुए। शिवाजी मुसलमानोंको परास्त करके स्वाधीन राजा कहलाये।

सोलह वर्षकी ही अवस्थामें शिवाजी ऐसे साहसी एवं तेजस्वी हुए कि अश्वारोही सैनिकोंके साथ सदा एक पर्वतसे दूसरे पर्वतपर घूमा करते थे। इसीसे वे अपने देशके सभी दुर्गम मार्गोसे अभिज्ञ हो गए थे। शिवाजीने अपने कौशलसे कई दुर्गोंपर अधिकार कर लिया। इन दुर्गोंपर अधिकार प्राप्त करनेके कारण बीजापुरके राजासे उनका विरोध हो गया। अफजलखां बीजापुरके अधिपतिकी सेनाका नायक बनकर शिवाजीके विरुद्ध उठ खड़ा हुआ। राहमें उसने हिन्दू तीर्थों तथा देवालयोंके तोड़नेमें संकोच नहीं किया। इस समय शिवाजी रायगढ़में ठहरे थे। अपने पवित्र तीर्थोंके अपमानकी बात सुन-

कर वे बड़े ही दुखी हुए और अफजलखाको दण्ड देनेके निमित्त सैन्य सज्जित करनेके लिये प्रतापगढ़की ओर चले। उनके संकल्पकी सिद्धिमें कोई कठिनाई नहीं हुई। ईश्वरकी कृपासे शिवाजी मुसलमानोंके सामने अपनी प्रधानता स्थापित कर सके।

जङ्गलके दुर्गम गिरिप्रदेशमें सेना ले जाना कठिन समझकर अफजलखाने गोपीनाथपन्त नामक एक ब्राह्मणको प्रतापगढ़ भेजा। दूत दुर्गके निचले भागके एक ग्राममें ठहरा और शिवाजी वहीं उससे मिलनेके लिये आये। गोपीनाथने धोखाके साथ शिवाजीसे कहा—"शाहजीको अफजलखांसे बड़ी मित्रता है। अफजलखां अपने मित्रके लड़केका अनिष्ट करना नहीं चाहता। वह आपसे शत्रुता न करके एक जागीर देनेको तैयार है।" शिवाजीने बड़ी नम्रतासे अफजलखाके भेजे हुए दूतसे कहा—"मैं बीजापुर राजाका एक सामान्य भृत्य हूं, थोड़ी सी जागीर पाकर मैं सतुष्ट हो जाऊंगा।" शिवाजीकी नम्रतासे दूत बहुत ही संतुष्ट हुआ। दूतको शिवाजीने एक उपयुक्त स्थानपर ठहरवाया और दूतके अन्य साथी दूसरी जगह ठहराये गये। आधी-रातमें वे गोपीनाथके पास पहुचे और अपना परिचय देकर बोले-"मैंने हिन्दुओंके सम्मानकी रक्षाके निमित्त प्रतिज्ञा की है। ब्राह्मण और गौओंकी रक्षा करना, पवित्र देवमन्दिरके अपमान करनेवालोंका ध्वंस करना एव हिन्दूधर्मके विरोधियोंकी शक्ति का ह्रास करना मेरा प्रधान कर्तव्य है। मैंने भवानीकी आज्ञासे यह पवित्र व्रत धारण किया है। आप ब्राह्मण हैं अतः आपको

मेरी सहायता करनी चाहिये। मुझे आशा है कि अपने देशके ब्राह्मणोंकी सहयोगितासे मैं यह काम सफलतापूर्वक कर सकूंगा।" उपर्युक्त बातें कहकर शिवाजीने गोपीनाथको एक गांव प्रदान करनेका वचन दिया।

गोपीनाथ इस नवयुवक हिन्दू वीरके साहस तथा उसकी देश-भक्ति और स्वदेश-प्रियतापर मुग्ध हो गये। वे शिवाजीके विरुद्ध कुछ भी नहीं कह सके। धीरताके साथ उन्होंने शिवाजीकी सहायता करनेकी प्रतिज्ञा की। गोपीनाथ शिवाजीके गुणोंपर मुग्ध होकर उन्हींके साथ रहने लगे।

तदनन्तर शिवाजीने कृष्णजी भास्कर नामक एक कर्मचारीके साथ बहुत सा द्रव्य देकर गोपीनाथको अफजलखांके पास भेजा। कृष्णजीने बीजापुरके सेनापतिके पास जाकर कहा कि "शिवाजी आपसे मित्रता करनेको तैयार हैं। बीजापुरके शासकके विरुद्ध कोई भी कार्य्य करनेकी उनकी इच्छा नहीं है।"

ये बातें सुनकर अफजलखां बहुत ही सन्तुष्ट हुआ। गोपीनाथके परामर्शसे वह शिवाजीसे मिलनेको तैयार हुआ। शिवाजीने प्रतापगढ़के नीचे एक स्थानपर उनसे मिलनेका निश्चय किया। शिवाजीने जंगलसे होकर अफजलखांके आनेके लिये वहां तक एक सुन्दर मार्ग बनवा दिया। शिवाजीने इन्हीं जंगलोंमें सड़कके इधर उधर मवाली सेनाओंको छिपाकर रख दिया था। उसका पता अफजलखांके सैनिकोंको किसी प्रकारसे चल नहीं सकता था। पन्द्रह सौ सैनिक अफजलखांके साथ

आये थे परन्तु गोपीनाथके परामर्शसे वह सेना दूर ही छोड़ दी गयी।

अफजलखां केवल अपने एक शस्त्रधारी अनुचरके साथ शिवाजीसे मिलनेके लिये निर्दिष्ट स्थानपर पहुंचे। दूसरे दिन शिवाजी उनसे मिलनेके लिये गये। अफजलखां साधारण भेषमें था और शिवाजी अपनी अभीष्ट सिद्धिके लिये पूर्ण रूपसे तैयार थे। इन्होंने लोहेका कवच धारण करके ऊपरसे साधारण वस्त्र पहन लिया था और हाथमें बाघनख पहनकर मुट्ठीमें उसे छिपा रक्खा था। इस प्रकार सुसज्जित होकर शिवाजी किलेसे नीचे उतरे और अफजलखांके पास जा नम्रतापूर्वक प्रणाम करके धीरे धीरे आगे बढ़े। अफजलखांकी भांति इनके साथ भी एक सशस्त्र अनुचर था। नियमानुसार शिष्टाचार समाप्त होनेपर एक दूसरेसे मिल रहे थे कि अकस्मात् अफजलखां घोखा विश्वासघातकता कहकर चिल्ला उठा। शीघ्र ही शिवाजीने अफजलखांके पेटमें बाघनख घुसेड़ दिया। अधीर होकर अफजलखांने शिवाजीपर तलवार चलायी परन्तु इसका कुछ भी फल नहीं हुआ। ये सब कार्य्य एक क्षणमें हुए। अफजलखां गिर पड़ा। उसका अनुचर यह देखकर स्थिर नहीं रह सका। वह बड़ी वीरताके साथ लड़ने लगा परन्तु शीघ्र ही वह भी मार डाला गया। पालकीवाले अफजलखांको पालकीमें डाल-कर भागने लगे परन्तु वे इस कार्य्यमें सफल नहीं हो सके। शिवाजीके कई सैनिक वहां आ गये और उन लोगोंने इनसे

अफजलखांका सिर काट लिया। इधर इशारा पाते ही मवाली सेना जंगलसे निकलकर अफजलखांके सैनिकोंपर टूट पड़ी। विपक्षी इनका सामना न कर सके और भाग निकले। शिवाजी विजयी हुए। शीघ्र ही बहुत सी सेनाएं एवं सम्पत्ति उनके अधिकारमें आ गई।

सरलहृदय मनुष्य शिवाजीको घोरतर विश्वासघातक एवं पाखण्डी कह कर धिक्कारेंगे, परन्तु जो लोग दुष्ट शत्रुको नष्ट करके स्वदेशकी स्वाधीनताकी रक्षाको अपना कर्तव्य समझते हैं वे अवश्य उनके इस कार्य्यकी प्रशंसा करेंगे। मुसलमानों-की धूर्त्ततासे भारतवर्षकी स्वाधीनता नष्ट हुई। जिस समय महा पराक्रमी पृथ्वीराज स्वदेशकी स्वाधीनताकी रक्षाके निमित्त बहुत सी सेना लेकर दृषद्वती नदीके तटपर पहुंचे उस समय शाहबुद्दीन गोरी उनकी असाधारण तेजस्विता एवं असंख्य सेना देखकर चकित हो गया। यदि शाहबुद्दीन गोरी धूर्त्तता करके रात्रिमें सोये हुए सैनिकोंपर आक्रमण न करता तो पृथ्वीराजका पतन न होता और भारतका सौभाग्यसूर्य्य न डूबता। इस प्रकार धूर्त्ततासे जिसने भारतवर्षपर अधिकार प्राप्त किया उसके साथ ऐसा ही व्यवहार करना ठीक भी था। शिवाजीका विश्वास था कि जबतक धूर्त्तोंके साथ धूर्त्तता न की जायगी तबतक सफलता होनी असम्भव है। शिवाजी बाल-कपनसे ही इस नीतिको मानते थे। शिवाजी यदि निरस्त्र होते तो अवश्य ही शत्रु उन्हें मार डालते। ऐसे स्थलपर शिवाजीने

बड़ी दक्षतासे काम किया। जो लोग स्वदेशहितैषी हैं और अत्याचारी शत्रुको ध्वंस करना जो लोग अपना कर्तव्य समझते हैं वे इस कार्यके लिये शिवाजीको कदापि निन्दा न करेंगे।

बीजापुरके सैनिकोंके पराहत होनेपर कोंकन नामक प्रदेशका अधिकांश शिवाजीके अधिकारमें आ गया। तदुपरान्त शिवाजी कोंकन प्रदेशके पन्हाला नामक दुर्ग पर अधिकार करनेकी चेष्टामें लगे। बीजापुरमें यह दुर्ग दुर्भेद्य समझा जाता था। इस दुर्गपर अधिकार करनेमें शिवाजीने अपने अपूर्व कौशलका परिचय दिया। उन्होंने अपने प्रधान प्रधान सेनानायकोंसे परामर्श करनेके पश्चात् उनको ही सलाहसे अधिकांश सेनानायकोंसे बनावटी विरोध कर लिया। कितने सेनानायक असंतुष्ट होकर आठ सौ सैनिकोंके साथ शिवाजीकी नौकरी छोड़ उस दुर्गके स्वामीके निकट पहुंचे। दुर्गाध्यक्षने इनकी चालको न समझी बल्कि प्रसन्न होकर उन्होंने इन सैनिकोंको दुर्गमें स्थान दिया। इधर शिवाजी भी अपने सैनिकोंके साथ दुर्गकी ओर चले। दुर्गकी चहारदिवारीके निकट कई बड़े बड़े वृक्ष थे। शिवाजीके पहलेके आये हुए सैनिकोंने दुर्गका द्वार खोल दिया और इसी वृक्षके सहारे अधिकांश वीर इस दुर्गमें घुस गये। इस प्रकार सहजमें ही दुर्ग अधिकृत हो गया।

इस समय शिवाजीकी ख्याति इतनी बढ़ गयी कि दूर दूरसे हिन्दू वीर आकर उनकी सेनामें भरती होने लगे। बलवृद्धिके साथ साथ और भी कितने कठिन कार्य उन्हें करने

पड़े। उनके अश्वारोही सैनिक मुसलमानोंके अधिकृत जनपदको लूटने लगे। इस कार्य्यमें इन लोगोंका उत्साह यहांतक बढ़ा कि ये लोग बीजापुरके निकटवर्त्ती ग्रामोंको भी लूटने लगे।

बीजापुरके राजा बड़े ही क्रुद्ध हुए और उन्होंने एक दूत शिवाजीके निकट भेजा। दूत शिवाजीके निकट पहुंचा। शिवाजीने गम्भीर स्वरसे कहा—"क्या तुम्हारे राजा मुझसे अधिक जबरदस्त हैं कि मैं तुम्हारी बात मानूं? यहींसे उलटे पाव फिरो।" दूत लौट गया। शिवाजीकी बातें सुनकर वे और भी क्रुद्ध हुए। शाहजीको कैद करके बीजापुरके राजाने उनसे कहा "यदि तुम्हारा पुत्र अधीनता स्वीकार नहीं करेगा तो तुम्हें इसी जेलमें घुट घुटकर प्राण देने पड़ेंगे।" पिताकी शोचनीय दशा सुनकर शिवाजी बड़े ही दुःखी हुए परन्तु अपने कर्तव्यपथसे नहीं हटे। उन्होंने दिल्ली सम्राट् शाहजहांके पास पत्र लिखा। दिल्ली सम्राट्की आज्ञासे बीजापुरके राजाने शाहजीको छोड़ दिया। मुक्त होकर शाहजी अपने पुत्रके पास रायगढ़में गये। शिवाजीने अपने पिताका उचित सम्मान किया। वे अपने पिताको गद्दीपर बैठाकर सामान्य भृत्यकी तरह खड़े रहे। इससे शिवाजीकी पितृभक्तिका कैसा अच्छा परिचय मिलता है।

शाहजीके मुक्त होनेपर शिवाजी और भी उत्साहके साथ आधिपत्य बढ़ानेकी चेष्टामें लगे। बीजापुरके राजाको परास्त करनेके लिये उन्होंने एक बड़ी सेना भेजी। शिवाजीकी बुद्धिमानीसे सेनापति अफजलखां मारा जा चुका था अतः दूसरा

सेनापति उनसे लड़नेके लिये भेजा गया। बीजापुरके सैनिकोंने पन्हाला दुर्गपर शिवाजीके सैनिकोंको घेर लिया। पर इस बार भी शिवाजीकी ही जय हुई। जिपसिओंका सेनापति अपने अनुचरोंके साथ मारा गया।

जिस समय औरङ्गजेब अपने पिताको सिंहासनच्युत करनेके लिये आगराकी ओर बढ़ा था उस समय उसने शिवाजीसे सहायता मांगी थी परन्तु इस अन्याय कार्य्यमें शिवाजीने उसकी सहायता देनी अनुचित समझी। शिवाजीने औरङ्गजेबके इस कार्य्यपर घृणा प्रकाश करते हुए दूतको लौटा दिया। औरङ्गजेबने जो पत्र भेजा था उसे अपमानित करके कुत्ते को पूंछमें बंधवा दिया था। ये बातें सुनकर औरङ्गजेब शिवाजीपर बहुत ही क्रुद्ध हुआ। औरङ्गजेब आजीवन शिवाजीके अनिष्ट साधनमें लगा रहा और उन्हें 'पहाड़ी चूहा' कहा करता था।

औरंगजेबने अपने वृद्ध पिताको सिंहासनच्युत करके कारागारमें बन्द कर दिया और स्वयं राजा बन बैठा। इधर बीजापुरके राजाने शिवाजीसे सन्धि कर ली। इस समय समस्त कोंकण प्रदेश शिवाजीके अधिकारमें था। उनकी सेनामें सात हजार अश्वारोही और पचास हजार पैदल सिपाही थे।

बीजापुरके राजासे सन्धि होनेके पश्चात् शिवाजी मुगल राज्यपर आक्रमण करनेकी तैयारी करने लगे। इस समय दक्षिणका शासनकर्ता था शाइस्ता खां। सम्राट् औरंगजेबने इसे शिवाजीको दमन करनेकी आज्ञा दी। उसके मामानु-

सार एक वृहत् सेना लेकर शाइस्ता खां पूना पहुंचा। मुगल सैनिकोंके आनेकी बात सुनकर शिवाजी रायगढ़ सिंह-गढ़में रहने लगे। शाइस्ता खां शिवाजीकी बुद्धिमत्ताके विषयमें भलीभांति जानता था। उसने बड़ी सावधानीसे अपने स्थानको सुरक्षित रक्खा। उसकी आज्ञा बिना कोई भी सशस्त्र महाराष्ट्रीय वीर पूनामें प्रवेश नहीं कर सकता था। मुगल शासनकर्त्ताके इतने सावधान रहनेका भी कुछ फल नहीं हुआ। चतुर शिवाजीने अपने साहस एवं कौशलसे उसका सत्यानाश कर दिया। एक दिन आधीरातमें जिस समय समस्त पृथ्वी अन्धकारसे आच्छादित थी, पूनाका मार्ग, प्रासाद एवं समस्त स्थान अन्धकारमें निमग्न था; कहीं भी मनुष्यके आनेकी आहट नहीं मालूम पड़ती थी उसी समय एक बारात रात्रिकी निस्तब्ध-ताको भंग करती हुई धीरे धीरे पूना की ओर आ रही थी। शिवाजी यह सुयोग देखकर पचीस अनुचरोंके साथ उस दलमें मिल गये। इसी दलके साथ शिवाजी शाइस्ता खाके निवास-गृहमें पहुंचे। शाइस्ता खाँ इस समय निद्रित था। इस आक-स्मिक् आक्रमणसे भयभीत होकर *स्त्रियोंने उसे जगा दिया।* घबड़ाकर वह भागा परन्तु तलवारके आघातसे उसकी अंगुली कट गयी। किसी तरह भागकर उसने अपने प्राण बचाये। उसका पुत्र एवं उसके अनुचरगण मारे गये। शिवाजी विजय प्राप्तकर प्रसन्नचित्त सिंहगढ़को लौट गये।

समस्त महाराष्ट्रमें शिवाजीकी यह कीर्त्ति फैल गयी। समस्त

महाराष्ट्रनिवासी उनकी वीरतापर मुग्ध होकर उनकी प्रशंसा करने लगे। बहुत दिन बीत गये परन्तु शिवाजीकी कीर्त्तिकी कहानी लुप्त नहीं हुई। महाराष्ट्रनिवासी आज भी बड़ी प्रसन्नतासे उनके साहस और वीरत्वके गीत गाते आते हैं।

दूसरे दिन बहुतसे मुगल घुड़सवार सिंहगढ़की ओर गये। शिवाजीने उन्हें दुर्गके निकट आने दिया। वे बड़े पराक्रमके साथ तलवार निकालकर दुर्गके सामने खड़े हो गये। शिवाजीने तोप छोड़नेकी व्यवस्था की। वे तोपके सामने ठहर न सके और भयभीत होकर भाग गये। शिवाजीके एक सेनापतिने उन्हें घेर लिया। इस प्रकार शिवाजीने दक्षिणमें अपनी प्रभुसत्ता स्थापित कर ली।

तदुपरान्त शिवाजीने औरङ्गजेबके अधिकृत सूरत नगरको लूट कर बहुत सा धन संग्रह कर लिया और रायगढ़ लौट आये। सूरत नगर लूटनेपर शिवाजीने सुना कि मेरे पिताका स्वर्ग-वास हो गया। इससे वे सिंहगढ़ लौट आये और क्रियाकर्ममें लगे। क्रिया कर्मकर वे साथ रायगढ़ गये और अमात्यगणोंके अधिकृत जनपदके शासनका बन्दोबस्त करने लगे। इस काममें कई महीने लगे। इसी समय शिवाजीने राजाकी उपाधि धारण करके अपने नामका सिक्का चलाया। वीर पुरुषकी प्रतिज्ञा पूरी हुई। प्रबल मुगलोंके रहते शिवाजीने एक स्वाधीन राज्य स्थापित कर दिया।

मक्का जानेवाले यात्री सूरतमें ही जहाजपर चढ़ते थे अत. सूरत मुसलमानोंका पवित्र स्थान समझा जाता था। इस नगरके लूटे जानेका संवाद एवं शिवाजीके उपाधि धारण करनेकी बात सुनकर औरंगजेब क्रोधके मारे लाल हो गया और उसने राजा जयसिंह तथा दिलेरखांको शिवाजीके विरुद्ध भेजा। शिवाजीने इन लोगोंसे युद्ध न किया बल्कि रघुनाथपन्त न्यायशास्त्रीको एकप्रस्ताव लेकर राजा जयसिंहके पास भेजा। जयसिंहसे कुछ बातचीत करके दूत शिवाजीके निकट लौट आया। शीघ्र ही शिवाजी कुछ अनुचर अपने साथ लेकर राजा जयसिंहके शिविरमें पहुंचे। जयसिंहने अपने प्रधान कर्मचारीको भेजा और कहा कि शिवाजीको दरबारमें ले आओ। जब शिवाजी शिविर द्वारपर आये तब जयसिंह स्वयं वहां गये और मिलकर उन्हें लिवा लाये और उन्हें अपने दक्षिण भागमें बैठाया। सन्धिका नियम ठीकठाक करके दिल्ली भेजा गया जिसे सम्राट्ने स्वीकार कर लिया। तदनन्तर शिवाजी मुगलोंके पक्षमें होकर बीजापुरके राजाके विरुद्ध लड़नेको तैयार हुए। दूसरे ही वर्ष शिवाजीने अपने पुत्र सम्भाजीको पांच सौ अश्वारोही और एक हजार मवाली सैनिकोंके साथ सम्राट्की सहायताके लिये दिल्ली भेजा। शिवाजी दिल्ली पहुंचे। सभी दिल्लीनिवासी इन्हें देखनेके लिये उत्सुक हो रहे थे।

शिवाजी जब सभामें पहुंचे तब औरंगजेबने उन्हें निम्न

श्रेणीके कर्मचारियोंके साथ बैठनेकी आज्ञा दी। इससे शिवाजी बड़े ही दुःखी हुए और वहासे उठकर चल दिये। शिवाजी दिल्लीके बाहर नहीं जा सके क्योंकि सम्राट्ने उनके डेरेपर पहरा बैठा दिया था। औरंगजेबने बड़ी चतुरतासे शिवाजीके सैनिकोंको यह कहकर कि यहा रहनेका प्रबन्ध नहीं है पहलेही लौटा दिया था। अतः शिवाजी अपने कुछ अनुचरोंके साथ बड़े संकटमें पड़े। एक दिन शिवाजीने फकीरोंको मिठाई बांटनी प्रारम्भ की अतः टोकरीकी टोकरी मिठाइयां उनके घरसे बाहर जाने लगीं। पहरेदारोंने समझा कि केवल मिठाइयोंकी टोकरियां बाहर निकाली जा रही हैं परन्तु एक टोकरीमें सम्भाजी और दूसरी टोकरीमें शिवाजी बैठकर चुपकेसे बाहर निकल गये। घोड़ा तैयार था अतः दोनों घोड़ेपर सवार होकर मथुरा पहुंचे। यहींपर सम्भाजीको एक मित्रके यहा रखकर शिवाजी स्वयं सन्यासीका भेष धारण करके दक्षिणकी ओर चले गये। तदनन्तर उनके मित्र भी सम्भाजीके साथ दक्षिणको गये।

इस समय औरंगजेबसे और बीजापुरके राजासे लड़ाई हो रही थी। इस भयसे कि कहीं शिवाजी बीजापुरके राजासे मिल न जायं औरंगजेबने उन्हें एक जागीर और राजाकी उपाधि प्रदान की। तदनन्तर शिवाजीने बीजापुर और गोलकुण्डाके राजाको हराकर उनसे कर लेना प्रारम्भ किया।

कुछ दिनोंतक शिवाजी युद्ध-कार्य्य छोड़कर राज्यके प्रबन्धमें लगे रहे। उन्होंने राज्यका समस्त भार ब्राह्मणोंके हाथमें

दे दिया। उन्होंने ऐसा प्रबन्ध किया कि जिसमें कोई किसीको न ठगे और कृषकोंके साथ दुष्टता न की जाय। उनके नियमानुसार फसलके पांच भागोंमें तीन भाग कृषकको मिलते और दो भाग सरकारको मिलते थे। राजकर्मचारी राजकर एकत्रित करते थे और राजकरसे उन्हें वेतन दिया जाता था। उनके पैदल सिपाही अधिकांश मवाली ही थे। तलवार, ढाल और बन्दूक इनके प्रधान शस्त्र थे। इनके अश्वारोही सैनिक दो भागोंमें विभक्त थे।

हिन्दूलोग शरद ऋतुको ही दिग्विजय यात्राका उपयुक्त समय समझते हैं। प्रतापशाली शिवाजी इसी समय भवानीकी पूजा करके दिग्विजयके निमित्त यात्रा करते थे। वे शत्रुके जनपदोंको लूटते तो थे पर कृषक, गौ एवं स्त्रियोंपर अत्याचार नहीं करते थे। इस प्रकार पराक्रमी मुगलोंके शासनकालमें ही महाराष्ट्र राज्य स्थापित हुआ। इस समय मरहठोंकी गणना एक प्रधान जातिमें होने लगी।

औरंगजेबने बाहरी सज्जनता दिखलाकर एक बार और भी शिवाजीको अपने पंजेमें लानेकी चेष्टा की। अबकी बार उसकी चेष्टा सफल न हुई। शिवाजी औरंगजेबकी धूर्त्तता-रूपी जालमें न फंस सके। वे पहलेकी तरह दक्षिणमें अपना अधिकार बढ़ाते ही रहे। अन्तमें बाध्य होकर औरंगजेबको शिवाजीके साथ खुल्लमखुल्ला लड़ाई करनी पड़ी। शिवाजी तनिक भी न डरे बल्कि आत्मसम्मानकी रक्षाके निमित्त

दृढ़ रहे। वे सच्चे वीरोंकी तरह अपने धर्मपर अटल रहे। शीघ्र ही मुगलोंके अधिकृत कई दुर्गोंपर उनकी विजयपताका फहराने लगी। शिवाजी एक बार फिर पन्द्रह हजार अश्वारोही सेना लेकर सूरतमें पहुंचे। नगर लूट लिया गया। कोई भी व्यक्ति निनके महाराष्ट्र वीरोंके विरुद्ध कुछ भी बोलनेका साहस न कर सका। शिवाजी बहुतसी सम्पत्ति लेकर शान्तिपूर्वक अपने राज्यमें लौट आये।

शिवाजी जिस समय सूरतसे लौटते थे उस समय दाउदखां नामक एक मुगल सेनापतिने पांच हजार अश्वारोही सैनिकोंके साथ इनका पीछा किया। शिवाजीने दाउदखांको पूर्णरूपसे पराजित किया। इधर उनके सेनापति प्रतापराव अनेक स्थानोंमें जाकर कर संग्रह कर रहे थे। शिवाजीके अधिकारसे चिन्तित होकर औरङ्गजेबने महाबतखांके अधीन चालीस हजार-की एक बृहत् सेना शिवाजीके विरुद्ध भेजी। शिवाजीने मरोपन्त और प्रतापराव नामक दो प्रधान सेनापतियोंको इस बृहत् सेनाके विरुद्ध भेजा। इन दो सेनापतियोंके आनेकी बात सुनकर महाबतखांने इस्लामखांको एक बड़ी सेना लेकर उनसे लड़नेके लिये भेजा। इस युद्धमें मुगल सेना पूर्ण रूपसे पराजित हुई। बाईस सेनानायक और असंख्य वीर मारे गये। प्रधान प्रधान सेनापति घायल हुए और कैद कर लिये गये। मुगलोंके साथ मरहट्ठोंकी यह सबसे बड़ी लड़ाई थी। इस युद्धमें भी शिवाजीकी ही विजय प्राप्त हुई।

इस विजयसे उनकी कीर्त्ति चारों ओर फैल गयी। सर्वसाधारण उन्हें पराक्रमी राजा कहकर सम्मानित करते थे। उनका प्रताप एवं उनकी वीरता और चतुरता देखकर लोग विस्मित होते थे। मुगल सम्राट् औरंगजेब भी इनके पराक्रमसे थरहरा गया। जो कैदी हो गये थे उनके साथ शिवाजीने कुव्यवहार नहीं किया। बन्दियोंको बड़े सम्मानके साथ कुछ दिनोंके पश्चात् विदा किया। पराजित शत्रुके प्रति सज्जनता दिखलाकर शिवाजीने योराचित महत्व और उदारताका परिचय दिया। इस क्षमा और उदारताके कारण उनका पवित्र चरित्र चिरस्थायी रहेगा। शिवाजी पहलेसे ही "राजा" की उपाधिसे विभूषित हो अपने नामका सिक्का चला रहे थे। अब वे वेदज्ञ ब्राह्मणोंसे व्यवस्था ले शास्त्रकी विधिके अनुसार अपने राज्याभिषेककी तैयारी करने लगे। इस समय गागाभट्ट नामक मीमांसक कर्मकांडी ब्राह्मण वाराणसीसे रायगढ़ आए थे। उन्हींको इस कार्य्यका भार सौंपा गया। महाराष्ट्रके इतिहासमें १५९६ शाकाके ज्येष्ठ मासकी शुक्ला त्रयोदशी सदा स्मरणीय रहेगी। इसी दिन शिवाजी रायगढ़में प्रधान भूपति कहकर सम्मानित किये गये। शास्त्रज्ञ गागाभट्टने उस दिन शास्त्रानुसार उनका राज्याभिषेक संस्कार कराया। आनन्दके कारण रायगढ़में इस समय अपूर्व दृश्य नजर आता था।

बहुत दिनोंके बाद हिन्दुओंकी जयध्वनिसे रायगढ़ गूँज उठा। शिवाजीने अपने राज्यमें फारसीकी जगह संस्कृत पढ़ानेका

आदेश दिया। राज्याभिषेकके समय कई राजदूत रायगढ़में आये थे। एक अंग्रेज राजदूत भी बम्बईसे यहां पहुंचा था। कम्पनीका प्रतिनिधि प्रकटकर शिवाजीके राज्याभिषेकके समय वह उपस्थित हुआ था। अभिषेक हो जानेपर शिवाजी यथानियम अपने राज्यका काम करने लगे। दक्षिणी भारतमें उनके राज्यका विस्तार नर्मदासे लेकर कृष्णानदीतक हो गया था। शिवाजीने युद्धमें विजय प्राप्त करने तथा मुगलोंके अधिकृत स्थानोंपर अपना अधिकार जमानेमें जैसी योग्यतादूरदर्शिता की थी वैसी ही उन्होंने अपनी योग्यताका परिचय राज्यप्रबन्धमें भी दिया। इसके बाद भी उन्हें कई युद्ध करने पड़े। इन सब युद्धोंमें भी उन्हें सफलता हुई। उनके सैनिकोंने मुगलोंके अधिकृत जनपदपर आक्रमण करनेमें कभी संकोच नहीं किया।

एक बार मुगल सेनापति दिलेरखाने बीजापुरके राजापर आक्रमण किया। बीजापुरके राजाने शिवाजीसे सहायता मांगी। शिवाजी सहमत हो गये। शिवाजीकी सेनासे दिलेरखां ऐसा परास्त हुआ कि उसे बीजापुरसे भाग जाना पड़ा। बीजापुरके राजाने कृतज्ञता प्रकाश करते हुए बहुतसा धन रत्न शिवाजीको अर्पण किया।

इस तरह अनेक जगहोंपर असामान्य साहस, अपूर्व क्षमता, अविचलित तेजस्विताका परिचय देनेसे शिवाजीकी उन्नति अपनी चरम सीमा तक पहुंच गई। प्रबंड ज्वरसे पीड़ित होकर वे रायगढ़ लौट आए। उसका प्रकोप बढ़ता ही गया। १६८०

ई० के पाँचवीं अप्रेलको ५३ वर्षकी अवस्थामें शिवाजीका स्वर्गवास हुआ।

इस प्रकार असाधारण वीर पुरुषकी असाधारण घटनापूर्ण जीवनलीला समाप्त हो गयी। इस वीर पुरुषका समस्त कार्य अलौकिक भावोंसे पूर्ण था। भारतके अद्वितीय सम्राट् भी उसको शक्तिको रोक न सके थे। उनके मवाली सैनिकोंकी समरपटुता देखकर बड़े बड़े वीर चक्करमें आ जाते थे। शिवाजीने अपने पितासे बिना कहे ही अज्ञात रूपसे इस कार्य्यको प्रारम्भ किया था। यद्यपि उनका उस समय कोई सहायक न था तथापि अपनी कार्यसिद्धिमें उन्हें सन्देह नहीं था। उन्होंने अपने अपूर्व अध्यवसाय एवम् अलौकिक साहससे इस कार्य्यमें सफलता प्राप्त की। शिवाजी हिन्दूजातिके खोये हुए गौरवके लौटाने वाले थे। बहुत दिनोंसे जो जाति विदेशियों और विधर्मियोंके अत्याचार और अन्यायसे पीड़ित थी, जो जाति स्वाधीनता विसर्जनकर पराधीनताकी बेड़ीसे जकड़ी हुई थी, शिवाजीने उसे उन्नतिके पथपर लाकर साहस और उत्साहका मन्त्र दिया और धीरे धीरे उसे स्वाधीनतामक बनाया। मुगल साम्राज्यकी उन्नतिके समय उनके परिश्रमसे एक स्वाधीन हिन्दूराज्य स्थापित हो गया। पराधीनताकी शोचनीयावस्थामें पीड़ित हिन्दुओंमें और कोई भी हिन्दू इस तरहकी वीरता न दिखला सका। अलौकिक क्षमता एवं अपूर्व साहसके ही बल शिवाजी सब कामोंमें सफल-मनोरथ हो सके। उनके पराक्रमके आगे सुशिक्षित मुगल

सैनिक भयभीत होकर भाग जाते थे। उनके शत्रु उनके सामने ठहर नहीं सकते थे। सम्राट् औरंगजेब उन्हें "पहाड़ी चूहा" कहा करता था और उनसे घृणा करता था पर अन्तमें उसे भी हार मानकर इनकी प्रधानता स्वीकार करनी पड़ी। शिवाजीका मृत्युसंवाद सुनकर औरंगजेबने कहा था कि "शिवाजी एक योग्य सेनापति था। जिस समय मैं भारतवर्षके हिन्दू राज्योंको नष्ट करता था उस समय उसने ही अकेले एक राज्य स्थापित किया। मैं उन्नीस वर्ष तक उसके विरुद्ध युद्ध करता रहा पर कुछ न कर सका।" औरंगजेबकी बातोंसे ही पाठकोंको शिवाजीकी शक्तिका परिचय मिल गया होगा।

शिवाजी अपने शत्रुका अपकार तो करते थे पर जब शत्रु उनका अधीनता स्वीकार कर लेता था तब उसके साथ पूर्ण सहानुभूति भी दिखलाते थे। वे अपने अधीनस्थ कर्मचारियोंके साथ भी असद्व्यवहार नहीं करते थे। गौ और ब्राह्मणकी रक्षामें वे सदा तत्पर रहते थे।

वे जिस तरह पितृभक्त और मातृसेवक थे उसी तरह गुरुभक्त एवं प्रजावत्सल भी थे। उनके गुरुका नाम था रामदास स्वामी। गुरुकी आज्ञासे वे राज्य भी छोड़ सकते थे। गुरुकी आज्ञासे ही उन्होंने वर्णाश्रम धर्मकी रक्षाकी प्रतिज्ञा की थी। महाराष्ट्र प्रदेशके अन्तर्गत देहू नामक स्थानमें तुकाराम नामक एक वैश्य जातिके साधु निवास करते थे। शिवाजीकी इनमें विशेष श्रद्धा थी। नाना प्रकारके विघ्नोंके रहते हुए भी शिवाजी

इनके निकट जाते थे। दादोजी कोंडदेवने मरते समय शिवाजीको राज्यपालन तथा अपने धर्मकी रक्षा करनेकी आज्ञा दी थी। शिवाजी जीवनपर्यन्त उनके उपदेशपर दृढ़ रहे।

शिवाजी स्त्रियोंके सम्मानकी यथोचित रक्षा करते थे। उनके एक सेनापतिने किसी जनपदपर अधिकार प्राप्त किया और वहां की एक रूपवती कामिनीको शिवाजीके निकट भेज दिया। शिवाजीने उसे माता कहकर संबोधन किया और सम्मानके साथ उसे घर पहुंचवा दिया। उनके इस व्यवहारसे महाराष्ट्र निवासी बड़े ही संतुष्ट हुए। अपूर्व शक्ति एवं अपरिमित सम्पत्तिके अधिकारी होनेपर भी उनमें विलास-प्रियता न थी। वे भोग और विलासको सदा अनादरकी दृष्टिसे देखते थे। वे बहुत सादा भोजन करते थे। दक्षिणमें शिवाजीके राज्यका घेरा चार सौ मील था। तञ्जोरपर भी उनका अधिकार था। नर्मदासे तञ्जोरतक एवं कोंकणसे मद्रासतक सभी राजाओंको किसी न किसी समय उनकी सहायता अवश्य लेनी पड़ी थी, जिसके बदले उन राजाओंने शिवाजीको कर देना स्वीकार किया था। सारे दक्षिणमें उनकी ही तूती बोलती थी। कोई भी उनकी शक्तिको रोक न सकता था। उनकी धारणा थी कि विश्वासघातकके साथ विश्वासघात न करनेसे अभीष्टसिद्धि न हो सकेगी। इसी धारणाके कारण कभी कभी उन्हें विश्वासघात करना पड़ता था।

महाराष्ट्रकी महाकीर्ति

क्षत्रियप्रवर शिवाजी अपने प्रयाससे मुगल सम्राट्के पराक्रमको नष्ट करना चाहते थे। उनका साहस बढ़ने लगा, उच्च अध्यवसायके कारण उनके बड़े साधनका विकास होने लगा। उन्होंने अतुल साहस, असामान्य पराक्रम, एवं अलौकिक अध्यवसायके साथ स्वर्गादपि गरीयसी पुण्य-भूमिकी स्वाधीनताकी रक्षाकी प्रतिज्ञा की थी। भारतवर्षरूपी महासागरमें एक प्रचण्ड तरङ्ग प्रवाहित होकर उत्तर, दक्षिण, पूरब, पश्चिम चारों दिशाओंको नष्ट करना चाहती थी। शिवाजी दक्षिणकी ओर अटल पर्वतकी नाईं खड़े होकर उस तरंगकी गतिको रोकने लगे। सतरहवीं शताब्दीके अन्तिम भागमें भारतका दक्षिण भाग इसी प्रकारके वीरत्वकी कीर्तिसे समुज्ज्वल था। पराधीनताकी शोचनीयावस्थामें स्वाधीनताकी स्वर्गीय मूर्ति भारतवर्षके एक प्रान्तमें धीरे धीरे आशा एवं उत्साहसे उनके हृदयको प्रकाशित करती थी। घोर दुर्दिनरूपी मेघमालाओंसे आच्छादित भारतवर्षके लिये इन वीरने सूर्यका काम किया।

शिवाजीके पराक्रमको नष्ट करनेके लिये औरङ्गजेबने अपने ज्येष्ठ पुत्र सुलतान मोअज्जम और सेनापति यशवन्त सिंहको दक्षिणकी ओर भेजा। इसके पहले ही जयसिंहने शिवाजीके पुरन्द और सिंहगढ़ नामक दुर्गों पर अधिकार कर लिया था।

मुगलोंका एक बड़ा राजपूत सैन्य सिंहगढ़में था। उदयभानु नामक एक राजपूत वीर इस सैन्यका अध्यक्ष था। इधर शिवाजी इस दुर्गपर अधिकार प्राप्त करके मुगलोंके सामने अपनी प्रधानता स्थापित करना चाहते थे। वीरश्रेष्ठ शिवाजी इस समय शत्रुकी क्षमता नष्ट करनेकी चिन्तामें थे।

सिंहगढ़ प्रकृतिके राज्यके सुन्दर स्थानमें अवस्थित था। वह बड़ी बड़ी पर्वतमालाओंसे घिरा हुआ था। एक ओर लम्बे लम्बे वृक्ष गगनमंडलमें सिर उठाये खड़े थे। सिंहगढ़ इन वृक्षोंके पूरबकी ओर था। उत्तर एवं दक्षिणकी ओर बड़े बड़े पर्वत थे। इन पर्वतोंको राह अच्छी नहीं थी। आधा मील ऊपर जाकर संकीर्ण दुर्गम पथसे किलेमें आनेका मार्ग था। पश्चिम भागमें इसी तरहके दुर्गम दुरारोह पर्वत विस्तृत थे। दुर्गका आकार त्रिभुजकी भांति था। इसके बीचकी लम्बाई एक कोस थी। इस प्रकारके भीषण प्राकृतिक प्राचीरसे दुर्गकी रक्षा होती थी। जिस समय स्वच्छ नीलाकाश सूर्य्य-लोकसे प्रकाशित होता था उस समय पूरबकी ओर दृष्टि करनेसे वृक्षलताओंसे सुशोभित श्यामलतट देखनेमें अत्यन्त ही सुन्दर मालूम पड़ता था। उत्तरमें पर्वतोंके पश्चात् एक विस्तीर्ण समतल क्षेत्र था। इस क्षेत्रके आगे शिवाजीकी बाल्यलीलाभूमि पूना नगरी नजर आती थी। दक्षिण एवं पश्चिम भागमें बड़ी बड़ी पर्वतमालाएं नीलाकाशको चीरती हुई खड़ी थीं। मालूम होता था कि इन पर्वतोंके शिखर आगे चलकर आकाशमें मिल गये हैं। यहींपर शिवाजीका

रायगढ़ नामक किला भी था। शिवाजीके सेनापति तानाजीने इस दुर्गके अधिकारका भार लिया था। पहले इस दुर्गका नाम कोन्तन था। शिवाजीने तानाजीके पराक्रमका परिचय देनेके लिये इसका नाम सिंहगढ़ रक्खा।

माघका महीना है। दुर्गम गिरि-प्रदेशमें शीतका प्रभाव चढ़ रहा है। साहसी तानाजी जाड़ेकी अन्धेरी रातमें एक हजार मवाला सैन्य लेकर सिंहगढ़पर अधिकार प्राप्त करनेके लिये चले। उनके सैनिक इस मार्गसे भली भांति परिचित थे अतः वे अन्धकारमें भी दुर्गकी ओर चले। तानाजीने अपनी सेनाको दो भागोंमें बांट दिया। एक भागको कुछ दूरपर रख दिया और उन्हें यह आज्ञा दी गयी कि संकेत करनेपर वे लोग आगे बढ़ें। दूसरी सेना दुर्गके निचले भागमें छिपाकर खड़ी की गयी। इनमेंसे एक साहसी वीर पुरुष पर्वतपर चढ़ गया और उसने एक रस्सा एक वृक्षकी डालीपर फेंका। शिवाजीका मवाला सैन्य इसी सीढ़ीका अवलम्बन करके ऊपर चढ़ गया। इस प्रकार तीन सौ सिपाही ज्योंही ऊपर पहुंचे कि एक शब्द हुआ। इस शब्दको सुनकर दुर्गस्थित सैनिक चकित हुए और जिस ओर मवाला सैन्य था उसी ओर देखने लगे। घटना जाननेके लिये ज्योंही एक सैनिक आगे बढ़ा कि मवाला वीरोंके छोड़े हुए तीरसे उसके प्राण निकल गये। इस समय दुर्ग-रक्षक-गण लड़नेके लिये आगे बढ़े। इस समय तानाजी अलौकिक साहसके साथ केवल तीन सौ सैनिकोंके बल रक्षकोंपर टूट पड़े।

मवाला गण यद्यपि थोड़े थे तथापि वे अलौकिक साहसके साथ लड़ते रहे। थोड़ी देरतक युद्ध होनेके पश्चात् तानाजी सच्चे वीरकी तरह वीर-शय्यापर सो गये। उस समय उनकी सेना रणक्षेत्रसे भागनेके लिये नीचेकी ओर दौड़ी। उस समय तानाजीके भाई सूर्य्याजीने गम्भीर स्वरसे युद्ध-स्थलमें खड़ा हो-कर कहा—"कौन ऐसा नराधम होगा जो अपने पिताके मृत-शरीरको युद्धस्थलमें छोड़कर भागनेकी चेष्टा करेगा? रस्सीकी सीढ़ी नष्ट हो गई है। शिवाजीके सैनिकोंको उन्हींका सा साहस दिखलाना चाहिये।" सूर्य्याजीके उत्साहपूर्ण वाक्य सैनिकोंके हृदयमें चुभ गए। क्षणभरमें वे लोग दूने उत्साहके साथ शत्रुदलमें घुस गए। इस समय दुर्गरक्षक इनका मुका-बिला नहीं कर सके। इस युद्धमें पांच सौ रक्षक मारे गये। दुरारोह पर्वतशिखरस्थित सिंहगढ़में शिवाजीकी विजयपताका उड़ाई गयी।

इस विजयकी बात शिवाजीके कानोंतक पहुंची। जिस समय शिवाजीने सुना कि दुर्गपर अधिकार प्राप्त करते समय तानाजी मारे गए उस समय शोकाश्रु बहाते हुए उन्होंने कहा, "सिंहका निवासगृह तो अधिकृत हुआ पर सिंह मारा गया।"

पर अधिकार प्राप्त करके शाइस्ताखांने एक विजयिनी सेना एक दूसरे स्थानपर अधिकार प्राप्त करनेके लिये भेजी। इस सूबेदार-ने शिवाजीके अधिकृत जनपदपर अधिकार प्राप्त करनेकी प्रतिज्ञा की थी और दृढ़ प्रतिज्ञाके साथ साथ इसकी तेजस्विताका भी विकास होने लगा। इसको आगे बढ़नेमें अनेक कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा। शिवाजीके महामंत्रके बलसे महाराष्ट्र वीर साहसी एवं शक्तिशाली हो गये थे। स्वाधीनता, गौरव, आत्म-सम्मान एवं स्वदेशहितैषितासे उनके हृदय लबालब भरे हुए थे। मुगल सूबेदार अधिक प्रयत्न करनेपर भी इस स्वाधीनता-प्रिय एवं पराक्रमी जातिकी स्वाधीनताको नष्ट नहीं कर सके। महरट्ठोंका एक क्षुद्र ग्राम था जिसका नाम था चाकन। इसकी रक्षाका भार फिरङ्गजी नामक एक युद्धवीरको सौंपा गया था। फिरंगजीने सत्रह वर्षतक मुगलोंसे इसकी रक्षा की थी। शाइस्ताखांने सोचा कि इतने छोटे दुर्गपर अधिकार प्राप्त करना कोई बड़ी बात नहीं है। आदेश देनेकी ही देर है, इसका रक्षक शीघ्र ही स्वयं आकर अधीनता स्वीकार करेगा। यद्यपि फिरं-गजी क्षुद्रजनपदके रक्षक थे पर उनकी तेजस्विता और क्षमता क्षुद्र नहीं थी। इस वीरने आत्म-समर्पण न किया, स्वाधीनता-का विसर्जन न किया। उनका साहस एवं पराक्रम बढ़ गया। वीर प्रवर फिरंगजी अलौकिक वीरताके साथ अपनी रक्षाके निमित्त पराक्रमी मुगलोंसे लड़नेके लिये तैयार हो गये। डेढ़ महीनेतक लड़ाई होती रही पर महाराष्ट्रीय वीरोंने मुगलोंकी

अधीनता स्वीकार न की। प्रति दिन नये उत्साह एवं नवीन पराक्रमके साथ फिरंगजी लड़ते थे। इसी प्रकार दस दिनोंतक और भी लड़ाई होती रही परन्तु चाकन मुगलोंके अधिकारमें नहीं आया। इस तरह एक महीना पचीस दिन युद्ध होनेके पश्चात् छब्बीसवें दिन दुर्गकी दीवालकी कुछ ईंटें टूटकर निकल गयीं। आक्रमणकारी मुसलमान सैनिक बड़ी प्रसन्नताके साथ उस मार्गसे नगरमें घुसने लगे। ऐसे संकटके समयमें फिरंगजी अपने सैनिकोंके आगे होकर शत्रुओंको रोकने लगे। उनकी क्षमता, उनके वीरत्व एवं पराक्रमके सामने मुसलमान लोगोंको आगे बढ़नेकी हिम्मत नहीं हुई। इस तरह अपनी क्षमता एवं तेजस्वितासे फिरंगजीने शत्रुओंको रोक रखा, वे आगे बढ़ नहीं सके। फिरंगजी सारे दिन अपनी सेनाके उसी टूटे स्थानपर खड़े होकर शत्रुओंका आघात सहते रहे। धीरे धीरे रात्रि आयी आकाशमें तारागण दीख पड़ने लगे। रात्रिमें मुगलसेना युद्धक्षेत्रसे चली गयी। दूसरे दिन सवेरे ही फिरंगजी शाइस्ताखाके सामने पहुंचे। शाइस्ताखांने फिरंगजीके असाधारण साहस एवं पराक्रमकी प्रशंसा करते हुए कहा कि यदि आप मुगल सम्राट्की नौकरी स्वीकार कर लें तो आपको यथोचित पुरस्कार दिया जायगा। तेजस्वी फिरंगजीने अपना सम्मान विक्रय करना उचित नहीं समझा। शाइस्ताखांने उनका वीरोचित सम्मान किया। फिरंगजी वीरत्वसे गौरवान्वित हो शिवाजीके निकट गये। शिवाजीने साहस एवं पराक्रम

दिखलानेके बदले उन्हें यथोचित पुरस्कार दिया। भारतवर्षके वीरोंने किसी समय इसी तरह स्वाधीनताकी रक्षा की थी, आत्म-गौरवको न भूलकर आर्य्यवीरोंने अपनी तेजस्विता एव महत्ताका परिचय दिया था।

सिक्ख सम्प्रदायकी उत्पत्ति

नानकका जीवन तथा उनका धर्म सिक्ख जातिके इतिहास-
की एक आवश्यक घटना है। नानक शाह या बाबा नानकका
जन्म १४६९ ई० में लाहौरसे दस मीलपर कालाकुचा नामक
ग्राममें हुआ था। उनके पिताका नाम था कालूबेदी था। वे क्षत्रिय
थे। नानकका जीवनचरित्र अनेक काल्पनिक घटनाओंसे परिपूर्ण
है। इस दृश्यमान जगतमें जिस समय उनके प्रतापरूपी सूर्यकी
किरण अपनी ख्याति फैलाने लगी उस समय जनता उनके
विषयमें अनेक काल्पनिक बातें कहने लगी। नानकने धर्ममें
जैसी दक्षता और क्षमताका परिचय दिया है इससे यदि
उनके विषयमें अनेक प्रकारकी किम्वदन्तियां प्रचारित
हों तो तनिक भी विस्मयकी बात नहीं है। सिक्खोंने
अपने गुरुकी महिमा बढ़ानेके लिये ये सब अलौकिक
बातें कहीं। इसीसे व घटनाएं विश्वासजनक नहीं
समझी जातीं। नानकने छोटी अवस्थामें ही गणित तथा फार-
सी भाषामें निपुणता प्राप्त कर ली। वे स्वभावसे ही सच्चरित्र
एवं चिन्ताशील मनुष्य थे। थोड़े ही दिनोंमें सांसारिक कार्य्य
तथा सांसारिक विषय-वासनासे उनका चित्त हट गया।
कालूबेदीने पुत्रको गृहस्थीके कार्य्यमें लानेकी पूरी चेष्टा की।
एक बार उन्होंने अपने पुत्रको चालीस रुपये देकर नमकका

भारतीय वीरता—

गुरु नानक

व्यवसाय प्रारम्भ करनेके लिये अनुरोध किया परन्तु उनकी चेष्टा फलवती नहीं हुई। नानकने पिताके दिये हुए द्रव्यसे खाद्य सामग्री खरीदकर भूखों तथा फकीरोंको खिला दी।

नानकने युवावस्थामें ही वेद और कुरानके तत्त्वोंको हृदयंगम कर लिया था। तत्पश्चात् अपनी तीक्ष्ण प्रतिभा तथा प्रगाढ़ शास्त्रज्ञानके बलपर वे अपने धर्मका प्रचार करने लगे। अलौकिक क्रियाओंपर उनका कुछ भी विश्वास नहीं था। जिससे चित्तमें शान्ति मिले और ईश्वरके तत्त्वका ज्ञान हो वही पवित्र धर्म है। उस समयके सभी धर्मशास्त्र तथा धर्मसम्प्रदाय कुसंस्कारोंसे परिपूर्ण थे यह देखकर नानक बड़े ही दुखी हुए। वे संन्यासीके वेषमें भारत भ्रमण करनेके लिये निकले। उन्होंने साधुओं तथा योगियोंसे भेंट की, फकीरोंके कार्य्यको देखा पर कहीं भी उन्हें सत्यता नहीं मिली। सब जगह कुसंस्कारकी भयंकर मूर्त्ति एवं कर्म-कांडकी शोचनीय दशा देखकर वे घर लौट आये।

स्वदेश आकर नानकने संन्यासी धर्म एवं संन्यासी वेषका परित्याग कर दिया। गुरुदासपुर जिलामें परावती नदीके तटपर नानक "करतारपुर" नामकी एक धर्मशाला स्थापित की। नानकने अपने जीवनका शेष भाग अपने परिवार-एवं शिष्यसम्प्रदायके साथ उसी धर्मशालामें बिताया। १५३६ ई०में बाबा नानक ७० वर्षकी अवस्थामें अपना नश्वर शरीर इसी धर्मशालामें छोड़कर परलोक पधारे। लोदी वंशके अभ्यु-

दय कालमें इनका जन्म हुआ था और मुगल वंशके अभ्युदय कालके पश्चात् वे स्वर्ग सिधारे। उनके जीवनके ६० वर्ष पांच मास और सात दिन धर्म चर्चामें बीते।

नानक द्वारा प्रवर्त्तित धर्मपद्धतिका आलोक पहले पहल पंजाबके दीर्घकाय सरल स्वभाव जाटोंपर पड़ा। धीरे धीरे मुसलमानोंने भी इस धर्मका अवलम्बन किया। नानकके एक विश्वासी मुसलमान शिष्यका नाम था मर्दाना। यह शिष्य छाया की भांति सदा उनके साथ रहता था। संस्कृत नाटकमें जिस प्रकार विदूषकगण प्रतिक्षण उदरकी चिन्तासे व्याकुल हो "हा हतोऽस्मि" कहते हैं उसी प्रकार मर्दाना बारम्बार क्षुधासे कातर हो उठता था। संगीतशास्त्रसे मर्दानाकी बड़ी प्रीति थी। वह सदा वीणा बजाकर ईश्वरका गुणगान करता था। जिस समय नानक नेत्र मूंदकर ईश्वरध्यानमें लीन हो जाते और वाह्य जगत से संसर्ग छोड़कर ईश्वरकी चिन्तामें निमग्न रहते उस समय मर्दाना वीणा बजाकर मधुर गीत गाता था।

नानक सदा इसी बातकी चेष्टामें रहते थे कि वाह्य क्रिया और जातिभेद नष्ट हो और आपसमें भ्रातृभावका सञ्चार हो। उनका विचार था कि जातिको अनेक सम्प्रदायोंमें विभक्त करनेकी आवश्यकता नहीं है। देवालयमें जाकर पूजा करना या ब्राह्मणोंको भोजन करना वे उचित नहीं समझते थे। इन्द्रियदमन और चित्तसंयमको ही वे सर्वश्रेष्ठ समझते थे। आत्मशुद्धिको ही वे मूल साधन समझते थे। विशुद्ध हृदयसे ईश्वरकी

उपासनाको ही वे धर्माचरण कहते थे। उनका सिद्धान्त था कि ईश्वर एक है अतः सच्चा विश्वास भी एक ही प्रकारका हो सकता है। ये जो भिन्न भिन्न धर्म देखे जाते हैं वे मनुष्यकल्पित हैं। वे पण्डित, मौलवी और दरवेशोंको एक समझते थे और अनेक देवताओंको छोड़कर ईश्वरमें चित्त स्थिर करनेके लिये उनसे अनुरोध करते थे। जिस ज्ञानवलसे ईश्वरका तत्त्व समझा जाय वे उसीकी प्राप्तिकी चेष्टा करते थे। ईश्वर एक, सर्व शक्तिमान और सबका स्वामी है। सदाचार तथा सत्कार्य्यसे ही मनुष्य सर्वशक्तिमान ईश्वरका प्रेमपात्र बन सकता है। नानकके विचारमें वैराग्य और सन्यासधर्म अनावश्यक था। वे कहते हैं कि ईश्वरके सामने साधु, योगी वा गृहस्थ सब एकसे हैं। नानककी धर्मसम्बन्धी बातें अब भी बहुत प्रसिद्ध समझी जाती हैं। यहांपर उनकी कुछ उक्तियोंका वर्णन किया जायगा।

एक दिन ब्राह्मण लोग स्नानके पश्चात् पूर्व और दक्षिणकी ओर तर्पण कर रहे थे। उसी समय नानक पश्चिमकी ओर जल देने लगे। सब लोगोंने इसका कारण पूछा तब नानकने जवाब दिया "यहांसे पश्चिमकी ओर करतारपुरमें मेरा एक क्षेत्र है उसीको मैं सिञ्चित करता हूं।" यह बात सुनकर सब लोगोंने हंस दिया और कहा, करतारपुर यहांसे सैकड़ों कोस है जल वहां कैसे पहुंचेगा? नानकने गम्भीर भावमें उत्तर दिया—"तब तुम कैसे आशा करते हो कि यह जल परलोकगत पितरोंके पास जाकर उन्हें तृप्त करेगा!"

१५२६ ई० में एक बार बाबरकी सामग्री ढोनेके लिये नानक पकड़े गए। उनकी वाक्‌चातुरी एव साधुतासे प्रसन्न होकर बाबरने उन्हें छोड तो दिया ही बल्कि उन्हें बहुत सी सम्पत्ति देकर सन्तुष्ट करना चाहा। नानकने सम्राट्‌के दिये हुए द्रव्यको स्वीकार नहीं किया और कहा—"मुझे किसी वस्तुका अभाव नहीं है और मेरे पास जो धन है उसका नाश नहीं हो सकता।" बाबरने इसका भावार्थ पूछा तब नानकने कहा 'ईश्वरका नामामृत पान करनेसे मेरी क्षुधा और पिपासा एकदम बुझ गई हैं और मैं उसी अमृतसे संतुष्ट हूं।" नानक एक बार मक्का गये और काबा नामक उपासनामन्दिरकी ओर पैर करके वे सोये थे। पवित्र मन्दिरका अपमान करनेके कारण लोगोंने इनकी बड़ी निन्दा की। नानकने वहांके मुसलमानोंसे कहा "ईश्वर सर्वव्यापी है जिधर पाव रक्खू उधर ही मौजूद है तो कहिये किधर पाव रखनेमें निस्तार है ? उन्होंने किसी समय कहा था—"राम, कृष्ण, महम्मद इत्यादि सभी कालके वशमें हैं परन्तु वह परमात्मा अमर है और वह किसीके अधीन नहीं है। तोभी लोग राम, महम्मद इत्यादिको ईश्वर कहकर पूजते हैं यह बड़ी लज्जाकी बात है। जिसका हृदय शुद्ध है वही सच्चा हिन्दू और जिसका जीवन पवित्र है वही मुसलमान है।' नानकका अपने धर्म तथा अपनी उपासनाका घमण्ड नहीं था। वे अपनेको सर्वशक्तिमान परमात्माका विनीत दास बतलाते थे जो इस संसारमें उसका संदेश सुनानेके लिये आये थे। यद्यपि उनके

विचार पांडित्यपूर्ण थे और उनके धर्मका असाधारण प्रभाव पड़ता था तोभी वे इसे अलौकिक नहीं कहते थे।

गुरु नानकने इसी प्रकार अपने धर्मका प्रचार करके अनेकों शिष्य बना लिया। ये शिष्यगण इनकी धर्मपद्धतिके अनुसार चलते थे अतः कुछ दिनोंमें यह सम्प्रदाय निष्कलंक समझा जाने लगा। शिष्य शब्दसे अपभ्रंश होकर सिक्ख बना है। किसीका मत है कि शिखासे "सिक्ख" बना है। जिन पंजाबियों-के मस्तकमें शिखा है वे ही सिक्ख कहलाते हैं। चाहे कुछ भी अर्थ क्यों न हो पर यह बात स्थिर है कि नानकके शिष्यगण सर्वसाधारण द्वारा "सिक्ख" कहे जाते हैं।

सिक्खोंकी जातीय उन्नति

देवर्षि नारदने एक बार युधिष्ठिरसे पूछा, "आप अपने पराक्रमसे दुर्बल शत्रुको पीडित तो नहीं करते ?" नारदके इस वाक्यमें एक राजनैतिक उपदेश भरा है। दुर्बल सम्प्रदायको कष्ट देनेसे वह कष्ट देनेवालेके विरुद्ध बल सग्रह करने लगता है और धीरे धीरे कुछ दिनोंमें उसके मुकाबला करने योग्य हो जाता है। इसीसे महर्षि नारदने उपदेश दिया कि दुर्बल शत्रुपर भी अत्याचार करना नीतिविरुद्ध है। यदि राजा अपनी अधीनस्थ प्रजापर अत्याचार करेगा तो वही प्रजा सबल होकर राजाको राजच्युत कर देगी। जिन जिन राजाओंने नारदके इस उपदेशको नहीं सुना उन्हें अपने राज्यसे हाथ धोना पड़ा।

इतिहासमें ऐसे उदाहरणका अभाव नहीं है। भारतवर्षका इतिहास देखा जाय तो भली भाँति मालूम हो जायगा कि इसी नीतिके अनुसार न चलनेके कारण मुसलमान राजाओंको प्रबल शत्रुओंका सामना करना पड़ा और अन्तमें उनका राज्य भी नष्ट हो गया। मुसलमान राजाओंके अत्याचारसे पीड़ित होकर दक्षिणके किसानोंने शस्त्र धारण किया और प्रातःस्मरणीय शिवाजीके अधीन वे अपनी शक्ति बढाने लगे। आर्य्यावर्त्तमें सिक्ख वीर धीरे धीरे अपनी सेना एकत्रित करके अत्याचारीके

भारतीय वीरता

गुरु गोविन्द सिंह

BANIK PRESS CALCUTTA

विरुद्ध खड़े हुए। सिक्खोंके उत्थानका विवरण विचित्र घटनाओं-से परिपूर्ण है। नानककी मृत्युके पश्चात् अमरदास प्रभृति कितने ही इस सम्प्रदायके नेता हुए। अबतक सिक्ख लोग धर्म-शास्त्रानुसार योगीकी भांति संयमके साथ अपना काम करते थे। धीरे धीरे मुसलमानोंके अत्याचारसे इनका हृदय दग्ध होने लगा। मुसलमान लोग पशुकी नाई उन्हें वध्यभूमिमें ले जाते और बिना उनकी बातें सुने असामान्य अत्याचारके साथ इन्हें मार डालते। मुगल सम्राट् जहांगीरकी आज्ञासे इनके गुरु अर्जुन कारागारमें ही घोर अत्याचारके साथ मार डाले गये। पश्चात् उनके पुत्र गुरुगोविन्द हुए और वे अत्याचारी मुसलमानोंके शत्रु बने रहे। जो सिक्ख पहले धार्मिक जीवन व्यतीत करते थे, अर्जुनकी मृत्युके पश्चात् उन लोगोंने शस्त्र धारण किया। उनके हृदयमें प्रतिहिंसाकी अग्नि धधक रही थी, इसीने उन्हें शस्त्रधारण करनेके लिये उत्तेजित किया।

हरगोविन्द सदा दो तलवार रखते थे। इसका कारण पूछनेपर वे कहते थे, "पहले तलवारसे पिताका बदला लूंगा और दूसरेसे शत्रुका राज्य नष्ट करूंगा।" हरगोविन्दने ही पहले पहल सिक्खोंको शस्त्र धारण करनेकी आज्ञा दी, परन्तु हरगोविन्दके समयमें उनके शस्त्रबलसे उनकी अभीष्टसिद्धि नहीं हुई। इस अभीष्टकी सिद्धिके लिये सिक्ख समाजमें एक दूसरे महात्माका प्रादुर्भाव हुआ। वे अपने स्वजातियोंकी असहनीय यन्त्रणाओंको देखकर बड़े ही दुःखी हुए और प्राण-

पणसे उसके उद्धारकी चेष्टा करने लगे। उनकी तेजस्विता, साहस और महाप्राणता सिक्ख दलमें प्रविष्ट हो गई जिससे उनमें जीवनीशक्तिका सञ्चार होने लगा। इस समय इस पीड़ित जातिमें जीवनके लक्षण दीखने लगे। इसी महापुरुषके महामन्त्रसे दीक्षित होकर सिक्ख वीर सजीव हो गये। इस महापुरुष और महामन्त्र दाताका नाम गोविन्दसिंह था।

गुरु गोविन्दसिंहने ही पहले पहल सिक्खोंको एकताके सूत्रमें बांधा। गुरु गोविन्दसिंहकी ही प्रतिभाके बलसे हिन्दू, मुसलमान ब्राह्मण तथा चाण्डाल एक भूमिपर खड़े होकर एक दूसरेके साथ भ्रातृ-भावसे मिले। गुरुगोविन्दसिंहने ही पहले पहल सिक्खोंमें जातीयताका भाव फैलाया। इतिहासमें वर्णन करने योग्य सिक्खोंकी तेजस्विता, स्थिर प्रतिज्ञता तथा युद्ध-कुशलताके मूल कारण गोविन्दसिंह ही थे। नानकके प्रतिष्ठित सम्प्रदायके अनुयायी गोविन्दसिंहके अतिरिक्त कोई भी मनुष्य भारतकी समस्त जातियोंको मिलाकर एक महाजाति बनानेमें समर्थ नहीं हो सका। सिक्खोंके जातीय उत्थानसे गोविन्द-सिंहके जीवनका घनिष्ठ सम्बन्ध है। १६६१ ई० में पटना नामक ग्राममें गोविन्दसिंहका जन्म हुआ था। उनके पिताका नाम तेगबहादुर था। तेग शब्दका अर्थ तलवार है अतः तेग बहादुर उसे कहते हैं जो तलवार चलानेमें कुशल हो। हरगो-विन्दकी भांति तेगबहादुर भी कष्टसहिष्णु एवं परिश्रमी थे। जिस समय सिक्खोंने तेगबहादुरको अपना गुरु माना उस

समय उन्होंने नम्रतापूर्वक कहा कि मैं हरगोविन्दकी तरह शस्त्र धारण नहीं कर सकता अतः मुझसे उस स्थानकी ठीक ठीक पूर्त्ति नहीं होगी। वे अपने कर्त्तव्यपर दृढ़ रहने लगे जिसका फल यह हुआ कि दिल्लीका सम्राट् उनसे रुष्ट हो गया। अन्तमें दिल्लीके सम्राट्ने तेगबहादुरके विरुद्ध सेना भेजी। वे पराजित होकर कैद कर लिये गये। निठुर औरंगजेबने उनके प्राणदण्ड-की आज्ञा दी। दिल्ली जाते समय तेगबहादुरने गोविन्दसिंह-को पिताकी दी हुई तलवार दी और उसे गुरुका पद देकर कहा-"पुत्र! मुसलमान लोग मुझे दिल्ली ले जाते हैं। यदि वे मुझे मार डालें तो अधीर न होना बल्कि मेरे स्थानमें उन उद्देश्योंका पालन करना। ऐसा उपाय करना जिसमें मेरे मृत शरीरको स्यार और कुत्ते नष्ट न करें। शत्रुसे बदला लेनेमें कसर न करना।"

गोविन्दने जन्मभर पिताकी इन आज्ञाओंका पालन करनेकी प्रतिज्ञा की। तेगबहादुर पुत्रकी यह प्रतिज्ञा सुनकर बड़ी प्रसन्नता के साथ दिल्ली गये। दिल्ली पहुंचनेपर सम्राट्ने किसी अलौकिक घटना द्वारा सिक्ख धर्मके माहात्म्य दिखलानेका अनुरोध किया। तेगबहादुरने गम्भीर स्वरसे कहा—"सर्वशक्तिमान् ईश्वरकी उपासना ही मनुष्यमात्रका प्रधान धर्म है।" जब उनके प्राण-दण्डकी आज्ञा हुई तब उन्होंने एक लिखा हुआ कागज गलेमें बांधकर अपना सिर घातककी ओर बढ़ा दिया। क्षणभरमें तेजस्वी सिक्ख गुरुका मस्तक शरीरसे अलग हो गिरा। इस

अपूर्व आत्मत्याग एवं निर्भीकताको देखकर दिल्लीका सम्राट् चकित हो गया। पश्चात् जब उसने लिखे कागजको पढ़ा तब उसके आश्चर्य की सीमा न रही। औरंगज़ेबने सविस्मय तथा *विह्वलचित्तके साथ देखा कि उसमें लिखा था:—*

"सिर दिया सार ना दिया"

"प्राण दे दिया परन्तु धर्मके गूढ़ तत्त्वको नहीं छोड़ा।" इसी तरह १६७४ ई०में तेगबहादुरकी मृत्यु हुई। इस प्रकार तेगबहादुरने धीरताके साथ अपना जीवन विसर्जन किया। इस असाधारण आत्मत्यागसे धर्मवीरका पवित्र जीवन सदा उज्ज्वल बना रहेगा। *विनश्वर संसारके विनश्वर जीवोंकी अविनश्वर* कीर्त्ति लोगोंको चिर कालतक उपदेश देती है।

पिताकी मृत्युकी बात सुनकर गोविन्दसिंह बड़े ही दुःखी हुए। उन्होंने अपने शिष्योंको एकत्रित करके कहा, "पुत्र! तुम लोगोंने सुना कि मेरे पिता दिल्लीमें मारे गये। अब मैं इस संसारमें अकेला हूं, परन्तु मैं जबतक जीवित रहूंगा पिताकी मृत्युका बदला लेनेकी चेष्टामें लगा रहूंगा। इस कार्यके सम्पादनमें मैं अपने प्राणको भी तुच्छ समझूंगा। पिताजीका मृत शरीर अभी तक दिल्लीमें है। तुम लोगोंमेंसे कौन उसे ला सकेगा?" गुरुकी ये बातें सुनकर एक शिष्यने तेगबहादुरके मृत शरीरको दिल्लीसे लानेकी प्रतिज्ञा की। गोविन्दसिंहसे विदा होकर वह शिष्य दिल्ली गया और तेगबहादुरका मृत शरीर

लेकर पंजाब लौट आया। सिक्खोंने तेगबहादुरके मस्तकका सत्कार किया।

जिस समय तेगबहादुरकी मृत्यु हुई उस समय गोविन्द-सिंहकी अवस्था केवल पन्द्रह वर्षकी थी। पिताका शोचनीय हत्याकाण्ड, स्वजाति एवं स्वदेशके अधःपतनसे गोविन्दसिंहके हृदयमें ऐसे गम्भीर भाव उत्पन्न हुए कि उन्होंने अत्याचारियोंके हाथसे स्वदेशका उद्धार करना ही अपने जीवनका लक्ष्य समझा। उन्होंने भारतवर्षकी सारी जातियोंको एकताके सूत्रमें बांधकर इस अत्याचारी शत्रुके विरुद्ध खड़ा किया। अल्पवयस्क होनेके कारण उनकी धीरता विचलित नहीं हुई,कोमल बुद्धि होनेके कारण उनकी दृढ़ता लुप्त नहीं हुई।

पिताकी अन्त्येष्टि क्रिया समाप्त करके वे यमुनाके निकट-वर्त्ती पार्वत्य प्रदेशमें चले गये। यहांपर शिकार खेलने, पारसी भाषा सीखने तथा जातीय गौरवकी कहानी सुननेमें वे समय बिताने लगे।

सत्रहवीं शताब्दीका अधिकांश व्यतीत हो चुका था। भारत-वर्षमें मुगल राज्यका पूर्ण विकास हो रहा था। यद्यपि अकबरकी उदारताके चिह्न भी लुप्त हो गये तथापि उसके सुव्यवहार बार-म्बार स्मरण हो आते हैं। शाहजादोंकी शोचनीय दशाका स्मरणकर सभी सहृदय लोगोंके नेत्रसे अश्रुधारा बहने लगती है। औरंगज़ेब अपनी पाशविक शक्तिसे भारतवर्षका शासन करनेके लिये तैयार था। पूर्वकी ओर राजसिंहने इस शक्तिके

रोकनेकी चेष्टा की। दक्षिणमें प्रातःस्मरणीय शिवाजीने हिन्दुओंकी गौरवरक्षाके निमित्त पौरुषकी महिमाका परिचय दिया।

उत्तरमें एक तरुण युवक इस शक्तिको मूलसे नष्ट करनेके लिये दुर्गम गिरिकन्दरामें योगासन लगाकर बैठा था। प्रशान्त एवं गम्भीर युवक संयमके साथ तपस्या कर रहा था। उसमें विलासिता तथा सांसारिक प्रलोभनोंकी रेखातक न थी। उसमें स्वार्थका लेशमात्र न था। वह भोग विलाससे अलग मातृ-भूमिके हितसाधनके संकल्पमें अचल एवं दृढ़ था। यह काल्पनिक चित्र नहीं है, उपन्यासकी मोहिनीमाया नहीं है, यह एक सच्चा ऐतिहासिक चित्र है। पाठक! आप लोगोंने मेजिनीके कर्त्तव्यकी बातें सुनी होंगी, गेरीबाल्डीकी वीरतापर विस्मित हुए होंगे, वाशिङ्गटनकी दृढ़ताके आगे मस्तक नवाया होगा। इन वीरोंने अपने आत्म-त्याग, दृढ़ता एवं वीरतासे सारे देशको मत्त कर दिया था। औरङ्गजेबके समयमें मुगल-साम्राज्य उन्नतिकी चरम सीमातक पहुंच गया था। औरंगजेबने अपने छल, बल तथा कौशलसे कितनोंको अपने अधीन कर लिया परन्तु उसकी कुटिलताका परिणाम ऐसा भीषण हुआ कि भारतवर्षके प्रत्येक भागमें उसके शत्रु तैयार हो गये। दक्षिणमें शिवाजीने अपनेको स्वतंत्र बना लिया परन्तु असमयमें उनकी मृत्यु हो जानेसे औरंगजेबको कुछ शान्ति मिली। मुगलोंके इसी प्रतापके समय सिक्ख गुरु गोविन्दसिंह एक नया राज्य स्थापित करनेके उद्योगमें लगे।

यमुनाके पार्वत्य प्रदेशमें गोविन्दसिंहने अज्ञात भावसे बीस वर्ष बिताये। इसी बीस वर्षमें इनके असंख्य शिष्य हो गये। गोविन्दसिंह एकबार अपने असंख्य शिष्योंको लेकर पंजाबमें आये और वहां अपने उद्देश्यकी सिद्धिके लिये उद्योग करने लगे। गुरु गोविन्दसिंहकी शिक्षासे उनके शिष्योंका अन्तःकरण शुद्ध हो गया था, उनकी विचार-शक्ति परिमार्जित हो गयी थी। अतः वे प्रगाढ़ प्रेमके साथ देशोद्धारकी चेष्टामें लगे। इस महान् उद्देश्यकी नींव एकता एवं स्वार्थत्यागपर दी गयी थी। वे अपने साधनमें अटल, सहिष्णुतामें अविचल तथा उद्देश्य-सिद्धिमें तत्पर थे। गुरु गोविन्दसिंहके महामन्त्रसे उनके शिष्योंमें सजीविता आ गयी। गुरु गोविन्दसिंहने प्रबल पराक्रमी राज्यमें रहकर भी उसी राज्यके ध्वंस करनेका संकल्प किया। गोविन्दसिंह साहसी, कर्त्तव्यपरायण तथा स्वजातिवत्सल थे। वे पृथ्वीपर पापाचार देखकर बड़े दुःखी हुए एवं मुसलमानोंके अत्याचारसे अपना जीवन संकटमें देखकर बड़े ही क्रुद्ध हुए। उनका विश्वास था कि मानवजाति अपने साधनके बलसे महान्से महान् कार्य कर सकती है। वे सदा ऋषि महर्षिकी शिक्षाओंको स्मरण करते और एक ऐसा उपाय ढूंढ़नेमें लगे रहते थे कि जिससे संसारके कुसंस्कार दूर हों। वे अपने शिष्योंको उत्तेजित करनेके लिये सदा ऋषि महर्षियोंकी कहानियां उनसे कहा करते थे। देवताओंने किस प्रकार कष्ट सहन करके दैत्योंको हराया। सिद्ध लोगोंने कितने

साधनके पश्चात् अपना सम्प्रदाय प्रतिष्ठित किया, गोरखनाथ एवं रामानन्दने अपने मतप्रचारके लिये कितना परिश्रम किया, महम्मद किस प्रकार घोर विपत्तियोंका सामना करता हुआ अपनेको ईश्वरप्रेरित बतलाकर लोगोंके हृदयपर आधिपत्य प्राप्त करनेमें समर्थ हो सका। विशेषकर उपर्युक्त विषयोंपर ही वे अपने शिष्योंसे बात-चीत करते थे। वे अपनेको ईश्वरका भृत्य बतलाते और कहते कि सरल एवं स्वच्छ हृदय ही ईश्वरके रहने योग्य उपयुक्त स्थान है।

गोविन्दसिंह इसी प्रकार अपने मतका प्रचार करते और उनके शिष्यगण इन उपदेशपूर्ण वाक्योंसे उत्तेजित हो उठते। गोविन्दसिंहने यत्नपूर्वक वैदिक तत्वों एवं वैदिक क्रियाओंका अनुशीलन किया। यद्यपि वे शास्त्राध्ययनमें अधिक समय बिताते थे तथापि उनकी शारीरिक तेजस्विता कम नहीं हुई। वे निकटवर्ती पर्वतमें जाकर अर्जुनके सदृश पराक्रम एवं तेजस्विता प्राप्त करनेके निमित्त तपस्या करने लगे। आत्म-संयमी गोविन्दसिंहका सिक्ख-समाजमें बहुत मान होने लगा।

गोविन्दसिंहने अपने उद्देश्यकी सिद्धिके निमित्त सांसारिक सुखको त्याग दिया। उन्होंने अपनी स्थायी सम्पत्ति भी छोड़ दी। उन्होंने अपने शिष्योंको भी सांसारिक भोग-विलाससे अलग रहनेके लिये कहा। एक बार सिन्ध देशके एक शिष्यने उन्हें ५००००) मूल्यके दो हाथके गहने दिये। पहले तो गोविन्दसिंहने उन गहनोंको स्वीकार नहीं किया परन्तु बहुत

आग्रह करनेपर उन्हें अपने हाथोंमें पहन लिया। कुछ दिनके पश्चात् एक दिन उन्होंने निकटवर्त्ती नदीमें एक हाथका गहना फेंक दिया। एक शिष्यने उनका एक हाथ शून्य देखकर इसके विषयमें पूछा। गुरु गोविन्दसिंहने कहा-"एक गहना जलमें गिर गया।" शिष्यने एक डुब्बीको बुला करके कहा-"यदि तुम गुरुजीका गहना ढूंढ़ दोगे तो ५००) रुपये पुरस्कार पावोगे"। डुब्बी सहमत हो गया। शिष्यने गुरुजीसे वह स्थान बतलानेकी प्रार्थना की जहां गहना गिरा था। गोविन्दसिंह नदीतटपर गये और बचा हुआ गहना भी फेंककर बोले-" वहीं गिरा है।" शिष्य गुरुजीकी सांसारिक सुखसे इतनी निवृत्ति देखकर बहुत ही विस्मित हुआ। गुरुजीके त्यागका ऐसा प्रभाव पड़ा कि कितने शिष्योंने भी सांसारिक सुख त्याग दिया।

गोविन्दसिंहने इस प्रकार नयी रीतिपर सिक्ख-समाजका संगठन किया। उन्होंने शिष्योंको एकत्रित करके कहा-"एक ईश्वरकी उपासना करनी होगी। सांसारिक वस्तुओंको ईश्वर मानकर उसकी शक्तिमें धब्बा लगाना नहीं होगा। सरलहृदय तथा एकान्तचित्त होकर ईश्वरकी आराधना की जाती है। सबको एकताके सूत्रमें आबद्ध रहना होगा यही इस समाजका नियम है। इस समाजमें वर्णकी प्रधानताका विचार न किया जायगा, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र सभी एकसे समझे जायंगे और जाति-भेदका विचार छोड़कर सबको एक साथ भोजन करना पड़ेगा। इस समाजका प्रधान उद्देश्य यही है कि तुर्कोंका नाश तथा

जातीयताका प्रचार करें।" ये वाक्य कहकर गोविन्दसिंहने एक क्षत्रिय, एक ब्राह्मण और तीन शूद्रोंके शरीरपर चोतीके शरबतको छींटा दी और उन्हें "खालसा" (पवित्र) की उपाधि दी। तत्पश्चात् उन्हें 'सिंह' की उपाधि देकर युद्धके लिये तत्पर होनेको कहा। गोविन्दसिंहने स्वयं भी यह उपाधि धारण की तबसे सब लोग उन्हें गोविन्दसिंह कहने लगे।

गोविन्दसिंहने इस प्रकार जाति भेद हटाकर सबको एक बना दिया और उन्होंने सबके हृदयमें एक नयी शक्ति संचारित की। उनके इस कार्य्यपर पहले तो लोगोंने असंतोष प्रकट किया परन्तु गोविन्दसिंहकी तेजस्विता एवं कार्य्यकुशलताके कारण उनका असंतोष शीघ्र ही दूर हो गया। गुरुकी अनिर्वचनीय तेजस्विताके कारण उनके शिष्यगण किसी बातमें कभी आपत्ति नहीं करते थे बल्कि उनके बताये हुए मार्गपर सदा अग्रसर रहते थे। वे एक ईश्वरकी उपासना करते थे तथा गुरु नानक और उनके अन्यान्य उत्तराधिकारियोंको सम्मानकी दृष्टिसे देखते थे। वे लोग राजपूतोंकी तरह अपनेको 'सिंह' कहते तथा उन्हींकी भांति केश एवं दाढ़ी मूंछ रखते और अस्त्र शस्त्र सुसज्जित हो सच्चे वीरकी नाई अपना जीवन बिताते थे। वे नीले रंगके वस्त्र पहनते थे। गुरुजीका खालसा, गुरुजीकी फतेह (विजय) उनके जातीय वाक्य थे।

गोविन्दसिंहने "गुरु मठ" नामकी एक शासन पद्धति स्थापित की। इसका अधिवेशन अमृतसरमें होता था। आवश्यकता

नाश करना, शत्रुओंके आक्रमणमें अटल रहना, सिक्ख समाजमें एकप्राणता तथा समवेदनाका प्रचार करना 'गुरुमठ' का अभिप्राय था।

गुरु गोविन्दसिंहने धीरे धीरे नवीन विषयोंका प्रचार करके सिक्खसमाजमें साधारणतन्त्रप्रणाली स्थापित कर दी। पहले तो सिक्ख लोग अलग रहकर धर्माचरणमें ही अपना समय बिताते थे परन्तु इस समय वे लोग साधारणतन्त्रमें मिलकर एकप्राण हो गये। गोविन्दसिंहके जीवनके एक साधनकी सिद्धि तो हुई पर दूसरा साधन असिद्ध ही रहा। उन्होंने मुसलमानोंको भी शिष्य बनाकर "सिंह" की उपाधि दी। पण्डित, मौलवी, ब्राह्मण, चाण्डाल सबको एक समाजमें संगठित किया पर सम्राट्की सेनाको ध्वंस नहीं कर सके। वे पिताके सामनेकी प्रतिज्ञा स्मरण करके शीघ्र ही अत्याचारी मुसलमानोंसे लड़नेके लिये तैयार हो गये। भारतवर्षके प्रत्येक भागमें मुगलोंका राज्य नहीं था। मुगल-साम्राज्यके स्थापनकर्त्ता बाबरशाहने बहुत दिनोंतक राज्य नहीं किया। उसका लड़का हुमायूँ पाठान वंशीय शेरशाहसे राजच्युत किया गया और सोलह वर्ष तक वह इस अवस्थामें रहा। यद्यपि अकबरने अपनी प्रगाढ राजनीतिज्ञता एवं युद्धकुशलताके बलपर पचास वर्ष राज्य किया तथापि उसके लड़के सलीमने उसके साथ कठोर व्यवहार किया और बंगालके विद्रोहमें सम्मिलित हो गया। जहांगीर क्रूर तथा इन्द्रियलोलुप था। उसके प्रधान प्रधान कर्मचारी भी उसके

विरुद्ध हो गये थे। एक बार उसके प्रधान कर्मचारी महावत खाने उसे बन्दी बना लिया। शाहजहांने अपने पुत्रोंको आपसमें लड़ते देखा और स्वयं निठुर औरंगजेब द्वारा कैद किया गया। औरंगजेबकी धर्मान्धता और कुटिलता भारतवर्षके इतिहासमें प्रसिद्ध है। उन्होंने अपने कठोर व्यवहार तथा अपनी विश्वास-घातकताके कारण सारे भारतको अपना शत्रु बना लिया। एक ओर राजसिंह और दुर्गादास स्वजाति अपमानसे उत्तेजित होकर युद्धके लिये तैयार हुए, दूसरी ओर मुगलोंके कठोर शासनसे पीड़ित निस्तेज मरहट्ठोंमें शिवाजीने तेजस्विताका सञ्चार किया। उधर गोविन्दसिंह अपनी प्रतिभाके बल जाटोंको एकत्रित करके यहां एक नया राज्य स्थापित करनेकी चेष्टा करने लगे। गोविन्दसिंहने इस उद्देश्यकी सिद्धिके लिये अपने शिष्योंको भिन्न भिन्न भागोंमें विभक्त कर दिया। उन्होंने अपने विश्वस्त शिष्योंमेंसे एक एकको प्रत्येक विभागका सेनापति बनाया। इसके अतिरिक्त गोविन्दसिंहने कुछ शिक्षित पाठान सेनाओंसे अपने दलकी वृद्धि की। शतद्रु और यमुनाके बीच पार्वत्य भागमें तीन दुर्ग निर्मित किये गये। पार्वत्य प्रदेशमें सेनाओंको शिक्षित बनाने तथा वहांसे युद्ध करनेकी बड़ी सुविधा थी। इसीसे गोविन्दसिंहने इन दुर्गोंकी व्यवस्था की। इस प्रकार गोविन्द-सिंहने शीघ्र मुगलोंके साथ लड़नेका प्रबन्ध किया। वे धर्म-प्रचारकों तथा धर्मोपदेशकोंको भेजकर शिष्योंकी संख्या बढ़ाने लगे। इस समय उनकी युद्ध-कुशल सेना निरापद स्थानमें थी।

पहले तो मुगलोंके साथ युद्धमें गोविन्दसिंह कई जगह विजयी हुए परन्तु अन्तमें उन्हें पराजित होना पड़ा। गोविन्दसिंहकी माता और उनके दो पुत्रोंको सरहिन्दके शासनकर्त्ताने पकड़ लिया। यह शासनकर्त्ता धर्मनिष्ठ मनुष्य था, अतः इसने उन लोगोंको प्राणदण्डकी सज़ा नहीं दी। उसके दीवानने उन लोगोंको बहुत कष्ट दिया और उन्हें अपना धर्म छोड़नेके लिये कहा पर वे राजी नहीं हुए। एक दिन गोविन्दसिंहके दोनों लड़के दरबारमें बैठे थे, नवाब उनकी आकृति एवं माधुरी मूर्त्तिको देखकर बहुत संतुष्ट हुआ और उसने पूछा—"बच्चे! यदि मैं तुम्हें स्वतंत्र बना दूं तो तुम लोग क्या करोगे?" दोनों बालकोंने गम्भीर-भावसे उत्तर दिया—"मैं सिक्ख सेना एकत्रित करके उन्हें शस्त्र दूंगा और युद्ध करूंगा।" नवाबने कहा—"यदि युद्धमें पराजित हो जाओ।" अबकी बार बालकोंने गम्भीर एवं वीरताव्यञ्जक शब्दोंमें कहा—"फिर भी सेना एकत्रित करके आप लोगोंसे लड़ूंगा यदि हो सका तो आप लोगोंके प्राण लूंगा अथवा स्वयं मारा जाऊंगा।" उनके ये वाक्य सुनकर नवाब बहुत उत्तेजित हुआ। उसने उन्हें दीवानको समर्पण कर दिया। दीवानने उनके प्राण ले लिये।

गोविन्दसिंहकी माताने इसी शोकसे शरीर त्याग किया। इस घटनाको सुनकर गोविन्दसिंह बड़े ही दुःखी हुए पर अपने कर्त्तव्य-पथसे विचलित नहीं हुए। उनके शिष्योंने जो युद्ध कुशलता दिखलाई उससे वे कुछ शान्त हुए और मुसल-

मानोंसे बदला लेनेकी चेष्टामें लगे। इस तेजस्वी सिक्ख गुरुकी तेजस्विताले और गज़ेब आश्चर्यित हुआ और उसने उन्हें दिल्ली बुलाया। गोविन्दसिंहने उसकी बात न मानी और घृणाके साथ कहा—"मैं उसका विश्वास नहीं कर सकता। इस समय बादशा लोग उसके पूर्वकृत अपराधोंका दण्ड देंगे।" तत्पश्चात् उन्होंने नानक, अर्जुन और तेगबहादुरकी शोचनीय दशाका वर्णन किया। मुगलोंने उनके पुत्रोंके साथ जो दुर्व्यवहार किया था उसका भी उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा—"इस समय मैं सांसारिक बन्धनोंसे अलग होकर स्थिरचित्तसे मृत्युकी प्रतीक्षा कर रहा हूं। ईश्वरके अतिरिक्त मुझे किसीका भी भय नहीं है।" इस तरह उत्तर पानेपर भी औरङ्गजेबने उनसे मिलनेके लिये आग्रह किया। इस बार गोविन्दसिंह सहमत हो गये परन्तु उनसे साक्षात् होनेके पहले ही मुगल सम्राट्का देहान्त हो गया। औरङ्गजेबके उत्तराधिकारी बहादुरशाहने गोविन्दसिंहके प्रति बड़ी ही सज्जनता दिखलायी। गोविन्दसिंह बहुत दिनोंतक इस संसारमें रहकर अपनी असाधारण कृतकार्यताका परिचय नहीं दे सके। औरङ्गजेबकी मृत्युके साथ साथ उनकी भी आयु समाप्त हो गयी। गोविन्दसिंह जिस समय दक्षिणमें थे उस समय उनके हाथसे एक पठान मारा गया। इसी पठानके पुत्रोंने एक दिन गुप्त रीतिसे गोविन्दसिंहके शिविरमें आकर उनकी हत्या की। गोदावरी नदीके तटपर "नादर" नामक स्थानमें यह शोचनीय घटना हुई।

गोविन्दसिंह सिक्ख-समाजके जीवनदाता थे। उन्हींके समयसे सिक्ख लोग पराक्रमी समझे जाते हैं। गुरु नानक धर्म-सम्प्रदायके प्रवर्तक थे और गोविन्दसिंहने उस धर्म-सम्प्रदायमें एकप्राणता एवं स्वाधीनताका प्रचार किया। उनका उद्देश्य महान्, साधन गम्भीर, वीरत्व असाधारण एवं मानसिक स्थिरता अतुलनीय थी। उन्होंने जातीय जीवनको समझा था। उनका दृढ़ विश्वास था कि यदि सब लोग एक सूत्रमें न बांधे जायंगे तो निर्जीव भारतका उद्धार नहीं होगा। इसीसे उन्होंने हिन्दू, मुसलमान, ब्राह्मण, शूद्र सबको एक श्रेणीमें रक्खा और घमण्डके साथ औरङ्गजेबको पास लिखा—"तुम हिन्दूको मुसलमान बनाते हो और मैं मुसलमानको हिन्दू बनाता हूं। तुम अपनेको निरापद समझते हो परन्तु स्मरण रखना कि मेरी शिक्षासे गौरिया बाजका पृथ्वीपर गिरावेगा।" तेजस्वी सिक्ख वीरका यह वाक्य निष्फल नहीं हुआ। वास्तवमें गौरियाने बाजका पृथ्वीपर गिराया।

तरुणावस्थाहीमें गोविन्दसिंहकी मृत्यु हुई थी। यदि कुछ दिन वे और जीवित रहते तो अनेकों महान् कार्य्य करते। यदि महम्मद भागकर मदीना न जाता तो संसारके इतिहाससे उसका नाम उठ जाता। यदि गोविन्दसिंह अपने महामन्त्रका उपदेश न करते तो सिक्खोंका नाम इतिहाससे उठ जाता। गोविन्दसिंहने छोटी उम्रमें थोड़े ही समयमें सिक्खसमाजमें जीवनीशक्ति एवं तेजस्विता प्रसारित की। इसीसे आजतक यह जाति जीवित

समझी जाती है और नवशेरा, रामनगर एवं चिलियानवालाके नाम अवतक इतिहासमें वर्त्तमान हैं। गोविन्दसिंहका नश्वर शरीर लुप्त हो गया परन्तु उनका यशरूपी शरीर अभीतक वर्त्तमान है। जनसमुदायसे सुशोभित नगर जब अरण्य रूपमें परिणत हो जायगा, शत्रुओंके न पहुचने योग्य राज-प्रासाद जब नष्ट हो जायगा, जलपूर्ण नदियां जब जलरहित हो जायंगी तबतक गोविदसिंहका पवित्र नाम इतिहासमें स्वर्णाङ्कित रहेगा।

भारतीय वीरता

महाराजा रणजीत सिंह

सिक्खोंकी स्वाधीनता

अठारहवीं शताब्दीमें मुगल-साम्राज्यकी अधोगतिका प्रारम्भ हुआ। अनेकों राजा दिल्लीके सिंहासनपर बैठाये गये, उतारे गये तथा मार डाले गये। कर्मचारिगण राजाकी आज्ञाकी अवहेलना करके अपने इच्छानुसार काम करने लगे। पराक्रमी नादिरशाहके आक्रमणके पश्चात् मुगल सम्राट्की शोभायमान लीलाभूमि (दीवानी खास और दीवानी आम) श्मशानरूपमें परिणत हो गयी। तदुपरान्त अहमदशाह दुर्रानी साहसी अफगानों-की एक सेना लेकर भारतवर्षमें आया। पानीपतके प्रसिद्ध मैदानमें मरहट्ठोंके साथ इनका युद्ध हुआ जिसमें मरहट्ठे हार गये। दिल्लीका सम्राट् राज्यच्युत होकर विहारमें चला गया। ऐसे भयानक विप्लवके समयमें सिक्खोंने अपनी तेजस्विताकी रक्षा की। गोविन्दसिंहने उन्हें जिस मन्त्रकी दीक्षा दी था उससे वे तनिक भी नहीं विचले। उनके सेनापति साहसी और शासनकर्त्ता सुदक्ष थे इसी से वे लोग अपने अधिकारकी रक्षा कर सके। जो लोग शस्त्र-विद्या में चतुर और घुड़सवारीमें निपुण नहीं होते थे खालसा लोगोंमें उनका मान नहीं था। अतः प्रत्येक खालसाको शस्त्रविद्या एवं घुड़सवारीमें निपुणता प्राप्त करनी पड़ती थी। धीरे धीरे खालसा लोगोंके कई दल हो गए।

प्रत्येक दलका एक सरदार होता था और राज्यके किसी भागमें वे लोग स्वाधीनताके साथ रहते थे। इस प्रकार समस्त सिक्ख-साम्राज्य छोटे छोटे राज्योंमें विभक्त हो गया। एक एक खण्ड "मिसिल" कहलाता था। प्रत्येक मिसिलके सरदार स्वाधीनता के साथ कार्य करने लगे। खालसा लोग कई भागोंमें विभक्त किये गए परन्तु उन लोगोंमें पहले सा भाव बना रहा। प्रति-वर्ष ये लोग अमृतसरके पवित्र मन्दिरमें आते और अपनी उन्नतिके साधनपर विचार करते थे।

अठारहवीं शताब्दीमें जिस समय अंग्रेज लोग दक्षिणमें फ्रांसीसियोंको प्रबलता लुप्त करना चाहते थे, एक बूढ़े मुसलमान सैनिकने जिस समय मैसूरके सिंहासनपर अधिकार जमाकर सबके हृदयमें विस्मयका सञ्चार किया, उसी समय सिक्खोंके खण्ड-राज्यमें एक प्रतिभाशाली एवं कार्य्य-कुशल व्यक्ति आविर्भूत हुआ। इस महापुरुषके आविर्भावसे सिक्ख-समाज और भी बलिष्ठ हो गया। इस महापुरुषका नाम था रणजीतसिंह। महाराणा रणजीतसिंह असाधारण क्षमता-पन्न मनुष्य थे। रणजीतसिंहके पिता महासिंह एक मिसिलके अधिपति थे। १७८० ई० की नवम्बरको रणजीतसिंहका जन्म हुआ। महासिंह बड़े ही साहसी एवं रणकुशल मनुष्य थे। रणजीतसिंह पूर्ण रूपसे पिताके साहस तथा युद्ध-कुशलताके अधिकारी हुए। बालकपनमें ही वसन्त रोगसे उनकी एक आंख नष्ट हो गई। इसीसे वे "काना

रणजीत" के नामसे प्रसिद्ध हैं। महासिंहकी मृत्युके समय रणजीतसिंहकी अवस्था केवल आठ वर्ष की थी।

यद्यपि रणजीतसिंहका शरीर सुन्दर नहीं था पर उनकी बुद्धि एवं उनका साहस और पराक्रम असाधारण था। वे अपने इन्हीं गुणोंके बलपर अपनी प्रधानता स्थापित कर सके। इस समय पंजाबमें दुर्रानी राजाओंका आधिपत्य था। उधर अंग्रेज लोग धीरे धीरे अपना अधिकार बढ़ाना चाहते थे। सिन्धिया और होलकर राजा धीरे धीरे बलसंग्रह करके अंग्रेजोंको दबाना चाहते थे। इसी समय रणजीतसिंहने अहमदशाह दुर्रानीके पौत्रकी सहायता करके पुरस्कारस्वरूप लाहौरका आधिपत्य प्राप्त कर लिया। धीरे धीरे सिक्ख-समाजमें रणजीतसिंहकी शक्ति बढ़ती गयी और सब सिक्ख उनके अधीन हो गये। पाठानोंने भारतवर्षमें हिन्दुओंका अनैक्य देखकर जिस चातुरीसे देववाञ्छनीय भूमिपर अधिकार प्राप्त किया वह इतिहासपाठकोंको भलीभांति मालूम है। महाराज रणजीतसिंहने पाठानोंको उचित शिक्षा देनेकी दृढ़ प्रतिज्ञा की। मुसलमानोंने शठताके साथ भारतवर्षपर अधिकार प्राप्त किया था इसीसे सब खंड-राज्यके अधिपतियोंने इसके उद्धारकी चेष्टा की। उनकी यह चेष्टा कुछ अंशमें सफल हुई। उन लोगोंने अफगानोंको भगाकर मुलतानपर अधिकार प्राप्त किया। पश्चात् भारतके नन्दनकानन काश्मीरपर उन लोगोंने विजयपताका उड़ायी। काश्मीरपर अधिकार प्राप्त करते समय महाराज रणजीतसिंहके पुत्र खड्गसिंह सैनिक

दलके अग्र भागमें थे। रणजीतसिंहके साहसी अश्वारोही एवं पैदल सिपाही दुर्गम पर्वतको पार करके काश्मीर पहुंचे। सिक्खोंके पराक्रमके सामने अफगान सेनापति जबरखांको हार माननी पड़ी। बहुत दिनोंके पश्चात् हिन्दुओंकी विजयपताकासे काश्मीर सुशोभित हुई। तदनन्तर रणजीतसिंह पेशावरपर अधिकार प्राप्त करनेकी चेष्टामें लगे। सन् १८१३ ई० का २३ मार्च भारतवर्षके लिये एक स्मरणीय दिन है। इसी दिन हिन्दू-लोग दृषद्वती नदीके तटपर पराजित हुए और भारतवर्षपर दूसरोंका आधिपत्य हुआ। तदनन्तर इसी तारीखको सिक्ख वीर विजयपताका स्थापन करनेके लिये अग्रसर हुए।

इसी दिन भारतवर्षके राजा लोग पठानोंके शोणितसे पृथ्वी-राज और समरसिंहकी आत्माको तृप्त करनेके लिये तैयार हुए। महाराज रणजीतसिंह निर्भय होकर असीम साहसके साथ पठानोंके राज्यमें घुस गये। अफगानिस्तानके प्रधान सरदार अजिमखांने बहुतसी सेनायें एकत्रित की थीं। वे सेनायें अफगानिस्तानके पार्वत्य प्रदेशमें पहुंचीं। १४ वीं मार्चको काबुल नदीके पार्श्ववर्ती नवशेराके निकट सैराई नामक स्थानमें इनकी रणजीतसिंहसे मुठभेड़ हुई। इस महासमरमें महावीर रणजीतसिंह अश्वारोहियोंके अग्रभागमें थे। लड़ाई छिड़ गयी। विशाल शरीरधारी अफगान वीर अटल पर्वतकी नाईं रण-जीतसिंहके आक्रमणको रोकने लगे। सारे दिन लड़ाई होती रही। किसीने विश्राम नहीं किया। दिन भर सिक्ख लोग अतुल

पराक्रमके साथ अफगानोंको नष्ट करनेकी चेष्टामें लगे रहे। धीरे धीरे रात्रि हो गयी। गम्भीर अन्धकारने गम्भीर भावसे युद्ध-स्थलको ढक लिया। अन्धकारमें रक्तकी नदी बह चली। ऐसी अवस्थामें भी रणजीतसिंह युद्धसे विमुख नहीं हुए। पहलेकी नाईं वे अपने अतुल पराक्रमके साथ शत्रुके नाशकी चेष्टामें लगे रहे। अन्तमें अफगान लोग पंजाब-केशरीके आघातोंको सहन नहीं कर सके। अन्धकारमें छिपकर वे लोग युद्ध-स्थलसे भाग गये। पञ्जाबकेशरीकी विजयपताका पाठानोंके अधिकृत जनपद्में मन्द वायुके वेगसे धीरे धीरे उड़कर उनके हृदयमें भय उत्पन्न करने लगी। उन्नीसवीं शताब्दीमें भारतवर्षके वीर पुरुषोंने इस तरहका पराक्रम दिखलाया। इस तरह सिक्खोंके पराक्रमके सामने पाठानोंको सिर नीचा करना पड़ा।

महाराज रणजीतसिंह दुर्जेय होकर पञ्जाबमें राज्य करने लगे। उनका राज्य उत्तरमें काश्मीर, पश्चिममें पेशावर, दक्षिणमें मुल्तान एवं पूरबमें शतद्रुतक फैला हुआ था। इनकी सेना अंग्रेज़ी प्रणालीपर शिक्षित बनायी गयी थी अतः सब जगह उनकी प्रशंसा होने लगी। रणजीतसिंहने अंग्रेजोंसे मित्रता कर ली थी अतः पराक्रमी होनेपर भी उन्होंने अंग्रेजोंके विरुद्ध शस्त्र-धारण करके मित्रताको कलंकित नहीं किया। रणजीतसिंहका जीवनलेखक लिखता है—"रणजीतसिंह यथार्थमें ही सिंह थे। वे सिंहकी नाईं इहलोक परित्यागकर परलोकको गये।" इस

सिंहके सदृश पराक्रमी पुरुषके जीवनकी कुल घटनाओंका यहां उल्लेख करना सम्भव नहीं है। रणजीतसिंहका साहस, उनकी क्षमता और बुद्धि दूसरोंकी शिक्षासे परिस्फुटित नहीं हुई थी। स्वयम् इन गुणोंका विकास हुआ था। वे अपनी स्वाभाविक प्रतिभा एवं दक्षताके कारण पूजनीय समझे जाते हैं। अपने सैनिकोंको युद्ध-कुशल और सुशिक्षित बनाना उनका प्रधान कर्त्तव्य था। वे अपने कर्त्तव्यपथपर सदा दृढ़ रहते थे। फ़रीद खाने अकेले व्याघ्रको मारकर "शेरशाह" नाम धारण किया और वह अपने पराक्रमसे दिल्लीका सिंहासन प्राप्त कर सका। असाजिल नामक एक वीर पुरुषने असीम साहस दिखलाकर अपना नाम "शेर अफ़गान" रखा और अतुल लावण्यवती नूरजहांके साथ विवाह किया। यद्यपि इतिहास लेखकोंने इन दो वीर पुरुषोंके साहसपर विस्मय प्रकट किया है तोभी मैं रणजीतसिंहकी क्षमताके साथ इनकी तुलना नहीं कर सकता। रणजीतसिंह इनकी अपेक्षा कहीं अधिक साहस एवं क्षमता दिखलानेमें समर्थ हो सके। संसारमें विरले ही किसी वीरने इनके सदृश अश्वारोहण, शस्त्रचालन तथा व्यूहभेदनशक्ति दिखलायी है।

रणजीतसिंह वीर-लीला-भूमि भारतके यथार्थ एवं आदर्श वीर पुरुष थे। अठारहवीं शताब्दीमें उनके ऐसा वीर पुरुष कोई नहीं हुआ। जिस समय चक्रवर्त्ती राजा पृथ्वीराजने तिरौरीके पवित्र युद्ध-स्थलमें पठानोंको हराकर भगा दिया और स्वयं

गरीयसी जन्मभूमिकी रक्षाके निमित्त पुण्यसलिला दृषद्वती नदीके तटपर सो गये उस समय विपक्षी भी उनकी वीरतापर विस्मित हुए। अतुल पराक्रमी प्रतापसिंहने जिस समय भारतके थर्म्मापली *पुण्यतीर्थ हल्दी घाटमें स्वदेशियोंकी प्रोच्छालित रक्त-धारा देखकर कहा, "इसी प्रकार शरीर त्यागनेके लिये राजपूत लोग जन्म-ग्रहण करते हैं" उस समय शत्रुओंने भी उनके आत्म-त्यागपर मुक्त कण्ठसे उनकी प्रशंसा की। जिस समय महा पराक्रमी शिवाजी पर्वत पर्वत घूमकर विजय-भेरीके गम्भीर स्वरसे चिर निद्रित भारतको जगा रहे थे उस समय दिल्ली सम्राट्ने भी उनकी देशभक्ति एवं वीरताकी प्रशंसा की। भारतभूमि किसी समय इन्हीं वीरोंकी महिमासे गौरवान्वित समझी जाती थी। चारों दिशाएं इन वीरोंकी कीर्त्तिसे गूंज रही थीं। शिवाजीकी मृत्युके साथ साथ यह कीर्त्ति-कहानी समाप्त नहीं हुई बल्कि उनके पराक्रमरूपी अग्निसे निकली हुई चिनगारियोंने मुसलमानोंको दग्ध कर दिया। शिवाजीके पश्चात् गुरु गोविन्दसिंहके महा मन्त्रसे सञ्जीवित रणजीतसिंहने नया राज्य स्थापित करके वीर महिमा प्रसारित की।

* यह स्थान मेवाड़में है। यहां एक भीषण युद्ध हुआ था। बीसके कुछ मनुष्य स्वदेशके गौरवकी रक्षाके निमित्त दाराशुकोकी बड़ी सेनासे यहींपर लड़े थे।

❦ सिक्ख राज्यका पतन ❦

पञ्जाबकेशरीकी मृत्युके साथ साथ सिक्खोंकी स्वाधीनता नष्ट हो गयी। गुरु गोविन्दसिंहके महामन्त्रसे दीक्षित एवं रणजीतसिंहके शासनसे परिचालित इस महाजातिके शोचनीय परिणामकी कुछ बातें यहां सक्षेपमें लिखी जायंगी। रणजीतसिंह-की मृत्युके पश्चात् दरबारियोंमें अनैक्य हो जानेके कारण राज्य-का काम ठीकसे नहीं चल सका। जहां तहां नर-हत्या होने लगी। एक एक करके कई राजा लाहौरकी गद्दीपर बैठाये गये और उतार दिये गये। अन्तमें महाराज रणजीतसिंहकी महिषी महारानी झिन्दन अपने पुत्र दलीपसिंहके नामपर राज्य करने लगी। इसी समय सिक्खोंको अंग्रेजोंसे लड़ना पड़ा।

अंग्रेजी सैनिकोंकी चतुरता एवं अपने सैनिकोंकी विश्वास-घातकताके कारण सिक्खोंको हार माननी पड़ी। आजतक भारतका सच्चा इतिहास नहीं लिखा गया है। विदेशी इतिहास-लेखकोंने भारतवर्षके इतिहासको कलंकित कर दिया है। विदे-शियोंमें भी दो एक इतिहासलेखकोंने पक्षपातरहित घटनाका उल्लेख किया है। यदि इस तरहके उदार इतिहासलेखक इति-हास लिखें तो वे निस्संकोच-भावसे कहेंगे कि यदि देशद्रोही राजा लालसिंह और सरदार तेजसिंह गुप्तरीतिसे कप्तान लारेन्स और कप्तान निकल्सनके साथ षड्यन्त्रमें सम्मिलित न होते तो

रणजीतसिंहके खालसा वीर पहली ही लड़ाईमें अंग्रेजोंसे पराजित नहीं होते।

इस युद्धके पश्चात् गवर्नर जनरल लार्ड हार्डिञ्जने लाहौर दरबारके साथ सन्धि कर ली। उस समय महाराज दलीपसिंह नाबालिग थे। सरकार उनका संरक्षक नियत हुई। जबतक दलीपसिंह बालिग न हो जायँ तबतक राज्यसम्बन्धी कार्य सम्पादन करनेके लिये लाहौर दरबारके कुछ चुने मनुष्योंकी एक समिति संगठित की गयी। ब्रिटिश रेजिडेन्ट इस समितिका अध्यक्ष बनाया गया। एक प्रकारसे ब्रिटिश गवर्नमेन्टने पंजाबको अपने अधिकारमें कर लिया। इस सन्धिके पश्चात् अंग्रेज लोग धीरे धीरे पंजाबमें अपना आधिपत्य बढ़ाने लगे। रणजीतसिंहकी पुण्य-भूमिके प्रति अंग्रेजोंकी भोगलालसामयी दृष्टि स्थिर होती गयी। दलीपकी माता बड़ी तेजस्विनी थी। उसका राज्य दूसरोंसे पददलित किया जाता है, समुद्र पारसे विदेशिगण आकर उसके राज्यमें हुकूमत कर रहे हैं, इन्हें वह सहन नहीं कर सकी। वह समझ गयी कि अंग्रेज लोग शीघ्र ही पंजाबको अपने राज्यमें मिला लेंगे। उसने देखा कि राज्यसम्बन्धी सभी काम अंग्रेज लोगोंने अपने हाथमें ले लिया है। यहांतक कि उसका प्राणप्रिय पुत्र भी उनके हाथकी कठपुतली बन गया था।

विदेशियोंके इस दुस्साहससे महारानीको मार्मिक कष्ट हुआ। कामिनीके कोमल हृदयपर इससे बड़ा आघात पहुंचा। ब्रिटिश

रेज़िडेन्ट हेनरी लारेन्सने इस तेजस्विनी स्त्रीको लाहौरसे हटाकर शेखपुर नामक निर्जन स्थानमें भेजवा दिया। अंग्रेज इतिहास लेखकोंने लिखा है कि झिन्दन गुप्तरीतिसे अंग्रेज़ोंके विरुद्ध षड्यन्त्र रच रही थी इसीसे उसे यह सजा मिली। दण्ड देनेके पूर्व अपराधोंका विचार किया जाना चाहिए था पर अंग्रेज़ोंने ऐसा नहीं किया। अंग्रेज रेजिडन्टने बिना कुछ विचारे केवल सन्देहपर दलीपसिंहकी माताको शेखपुर भेज दिया। महारानी झिन्दन बहुत दिनोंतक वहां भी नहीं रह सकी। दूसरे रेजिडन्टने उसे पञ्जाबसे बाहर निकाल दिया। अप्राप्तवयस्क दलीपसिंह रेजिडेन्टके अधिकारमें थे। अतः फ्रेडरिक (रेजिडेन्ट) की अभीष्टसिद्धिमें विलम्ब नहीं हुआ।

शीघ्र ही महारानी झिन्दनकी निष्काशनलिपि दलीपसिंहके नामयुक्त मोहरसे सुशोभित की गयी। एक कर्मचारी उसे लेकर दो ब्रिटिश सैनिकोंके साथ शेखपुर पहुंचा। महारानी झिन्दनने पुत्रके नाम युक्त निष्काशन-दण्ड लिपिके सामने सिर झुकाया। वह अटल भावसे भाग्यपर सतोष करती हुई सदाके लिये पंजाबसे चली गयी। वह इन पांचों नदियोंको अधिष्ठात्री देवियोंकी भांति समझती थी। आज उनका दर्शन भी दुर्लभ हो गया। पहले लोग उसे फिरोजपुर ले गये। फिर काशी ले गये। महारानी झिन्दन हिन्दुओंके आराध्य क्षेत्र काशीमें मेजर अर्ज्जम्याक ग्रेगर नामक एक अंग्रेज सैनिकको संरक्षकतामें रहने लगी। इस तरह रणजीतसिंहकी महिषी झिन्दनके निर्वासनका कार्य्य

समाप्त हुआ। पंजाबियोंने धीर जलधिकी भांति गम्भीर भावसे अपनी अधिष्ठात्री देवीके शोचनीय निर्वासनको देखा। उनके नेत्रोंसे आंसुओंके दो बूंद भी न गिरे। जिस अग्निसे उनका हृदय जल रहा था उसकी एक चिनगारीने भी निकलकर अपना प्रभाव नहीं दिखलाया। मानों पंजाबनिवासी जड़तासे ढक गये थे। परन्तु यह सच्ची निर्जीविता नहीं थी। दलीपसिंह बाल्यक्रीडाके आनन्दमें माताकी शोचनीय अवस्थाका अनुभव नहीं कर सके। भविष्य जीवन एवं सांसारिक तत्त्वोंसे अनभिज्ञ बालक प्रसन्नचित्त होकर रेजिडेन्टके आज्ञानुसार कार्य्य करता था। पंजाब बहुत दिनोंतक निश्चेष्ट नहीं रहा। यह अग्नि उसके हृदयमें प्रवेश कर गई। गुरु गोविन्दसिंहने पंजाबमें जो तेज प्रसारित किया था उसकी अलौकिक शक्तिसे यह जड़ता शीघ्र ही नष्ट हो गयी। महारानी झिन्दनके निर्वासनके कुछ ही दिन पश्चात् पंजाबनिवासी जातीय जीवनकी महिमासे उत्तेजित होकर सरकारके विरुद्ध युद्धके लिये तैयार हो गये।

महारानी झिन्दनके निर्वासनके अतिरिक्त अन्यान्य दो कारणोंसे सिक्खोंको विवश होकर अंग्रेजोंके विरुद्ध शस्त्र धारण करना पड़ा। पहला कारण तो यह है कि अंग्रेज लोग दलीपसिंहके विवाहका दिन निश्चय करना नहीं चाहते थे और दूसरा कारण यह है कि उन लोगोंने वृद्ध सरदार छत्रसिंहका अपमान किया था। सरदार छत्रसिंह हजाराके शासक थे। ये वृद्ध सरदार बड़े अनुभवी थे। इसीसे सिक्खसमाजमें इनका बड़ा

मान था। इनका लड़का शेरसिंह उदारप्रकृति एवं युवकुशल होनेके कारण सेनापतिके पदपर प्रतिष्ठित किया गया था। छत्रसिंहकी लड़कीसे महाराज दलीपसिंहके विवाहकी बात थी। मेजर एडवर्ड नामक एक अंग्रेज सैनिकने विवाहके सम्बन्धमें लाहौरके रेजिडेन्टके पास लिखा, "इस समय सर्वसाधारण समझते थे कि अंग्रेजों और सिक्खोंमें विरोध है यदि ऐसे अवसरपर हम लोग दलीपसिंहके विवाहमें सहायता देंगे तो लोग यही समझेंगे कि अंग्रेज लोग उनसे मेल करना चाहते हैं।" यह पत्र पाकर रेजिडेन्टने दरबारियोंसे सलाह ली। उनके भावसे मालूम हुआ कि वे उन लोगोंके सम्मानकी रक्षा करना चाहते थे। रेजिडेन्ट इस चतुरतासे कार्य्य करता था कि दरबारके सभासद उसके भीतरी भावको नहीं समझ सकें। पश्चात् रेजिडेन्टने सरकारके पास लिखा, "यह विवाह सम्पन्न हो जानेपर हम लोगोंके सिरपर राज्यका इतना झंझट नहीं रहेगा। कन्याका पिता दरबारका एक सभासद है। इसीसे मुझे इस विवाहमें आपत्ति नहीं है।" सरलहृदय मनुष्य इस पत्रको देखकर सुखी होंगे पर जो राजनीतिके तत्त्वोंको जानते हैं वे शीघ्र ही समझ जायेंगे कि दलीपसिंह और शेरसिंहमें आत्मीयता हो यह अंग्रेजोंकी राय नहीं थी। विना अंग्रेजोंकी रायके दलीपसिंहका विवाह होना असम्भव था। इसीसे कहा जा सकता है कि पंजाब सिक्खोंके हाथसे चला जायगा। जो आज रणजीतसिंहका राज्य कहा जाता है कल वही ब्रिटिश

भाव, ब्रिटिश आचार और ब्रिटिश नीतिकी क्रीड़ाभूमि बन जायगा।

उधर रेजिडेन्टकी आज्ञासे छत्रसिंहकी जागीर जप्त कर ली गयी। वृद्ध सरदारके अपमान एवं दुरवस्थाका हद्द हो गया। स्वदेशकी यह सोचनीय दशा तथा वृद्ध पिताका ऐसा अपमान देखकर महा पराक्रमी सेनापति शेरसिंहके हृदयपर बड़ा आघात पहुंचा। उन्होंने गोविन्दसिंहके मन्त्रसे अभिमन्त्रित रक्तको कलंकित नहीं किया। शीघ्र ही युद्धकी तैयारी करने लगे। इसीसे शेरसिंहके साथ अंग्रेजोंकी पहली लड़ाई रामनगरमें हुई। यहांपर अंग्रेज लोग हार गए। तदनन्तर शेरसिंह चिलियान-वाला गये। १८४९ ई० को ४३ वीं जनवरीको घोर युद्ध हुआ। इस दिन वीर श्रेष्ठ शेरसिंहने असीम साहसके साथ चिलियान-वालाके मैदानमें ब्रिटिश सेनापति गफको पराजित किया। इसी दिन ब्रिटिश पताका सिक्खोंके हस्तगत हुई। ब्रिटिश शस्त्र सिक्खोंके हाथमें आया, ब्रिटिश सैनिक सिक्खोंके पराक्रमसे भयभीत होकर भाग गये। इसी दिन सेनापति शेरसिंहने विजयी होकर अपनी तोपकी आवाजसे चारों दिशाओंको कम्पित कर दिया। जिन अंग्रेजोंने असामान्य युद्धवीर नेपोलियनके घमण्डको चूर चूर कर दिया था आज उन्हें एक भारतवर्षीय वीर पुरुषकी तेजस्विता, साहस एवं वीरताके सामने सिर नवाना पड़ा। ऐसे ही वीर पुरुषोंकी तेजस्विताके कारण भारतवर्षका इतिहास बहुत दिनोंतक प्रसिद्ध समझा जायगा। यदि कोई

ग्रीसके युद्धोंके साथ भारतवर्षकी तुलना करे, यदि कोई वीरेन्द्र समाजमें प्रसिद्ध ग्रीक सेनापतियोंका विवरण पढ़े और उसकी तुलना भारतवर्षके साथ करे तो उसे निस्संकोच भावसे कहना पड़ेगा कि हल्दीघाट भारतवर्षका थर्मापोली है और चिलियान-वाला भारतवर्षका मारायन है। मेवाड़के प्रतापसिंह भारतके लिउनिडस एवं वीरशिरोमणि शेरसिंह भारतके मिलटाइडिस थे। यदि कोई वीर वीरेन्द्र समाजमें पूजे जाने योग्य है, यदि कोई पराक्रमी महापुरुष अपने प्रगाढ़-देश प्रेमके कारण स्वर्गमें भी देवताओंके बीच अप्सराओंके वीणानिन्दित मधुर स्वरसे आदर किये जाने योग्य है तो निस्सन्देह यह कहना पड़ेगा कि लिउनिडस और मिलटाइडिस तथा प्रतापसिंह और शेरसिंह ही हैं। चिलियानवाला उन्नीसवीं शताब्दीका एक पवित्र युद्ध स्थल है। सिक्खोंके इस दूसरे युद्धकी पवित्र गौरव कहानी भारतवर्षके इतिहाससे कभी भी लुप्त नहीं होगी।

चिलियानवालाके पश्चात् गुजरातकी लड़ाईमें सिक्ख वीर पराजित हुए। यद्यपि सिक्ख वीर हार गये पर उनकी तेजस्विता नष्ट नहीं हुई। शस्त्रहीन सिक्ख गुरुने ब्रिटिश सेनापतिसे गम्भीर भावसे कहा—"राम जांक अत्याचारके कारण हमलोगोंने उनके विरुद्ध शस्त्र उठाया था। हमलोगोंने स्वदेशके लिये यथाशक्ति लड़ाई की। इस समय हम लोगोंकी अवस्था अच्छी नहीं है। हमारे सभी सैनिक सच्चे वीरकी भांति सदाके लिये वीर शय्यापर सो गये। इस समय हम लोगोंके पास अस्त्र

शस्त्र भी नहीं हैं। इन्हीं अभावोंके कारण हम लोग आपके हाथ-में पड़े हैं। हम लोगोंको इसकी तनिक भी चिन्ता नहीं है। शक्ति होनेपर हम लोग फिर भी वैसी ही वीरता दिखावेंगे।" पश्चात् सब वीरोंने अश्रु पूर्णनेत्र हो गम्भीर स्वरमें कहा, "आज ही वास्तवमें रणजीत सिंहकी मृत्यु हुई है। शोक है कि इन तेजस्वी वीरोंकी सम्मान-रक्षा नहीं की गयी। उन्नीसवीं शताब्दीके सभ्यताश्रोतमें वीरताका सम्मान एवं आदर डूब गया।

युद्धके पश्चात् लाहौरपर अधिकार प्राप्त करनेकी इच्छासे लार्ड डालहौसीने इलियट साहबको प्रतिनिधि स्वरूप लाहौर दरबारमें भेजा। सर फ्रेडरिकका कार्य समाप्त हो गया इससे हेनरी लारेन्स दोबारा रेजिडेन्ट बनाये गये। इलियट साहब और रेजिडेन्ट दोनोंने मिलकर अनुरोध किया कि दलीपसिंह अपना राज्य कंपनीको दे देवें। उसके दूसरे दिन २६ वीं मार्चको दरबारकी दूसरी बैठक हुई। आज दलीपसिंह पिताके राज्य-सिंहासनपर अन्तिम बार बैठे। निकट ही एक वृहत् श्रेणीबद्ध ब्रिटिश सैन्य सशस्त्र खड़ी थी। दीवान दीनानाथने इस कुविचारके निवारणकी पूर्ण चेष्टा की, सन्धिका नियम दिखलाया। अंग्रेजोंने सिक्खोंकी स्वाधीनताकी रक्षाकी प्रतिज्ञा की थी। ऐसे कितने कागज उन्होंने दिखलाये पर इसका कुछ भी फल नहीं हुआ। लार्ड डलहौसीकी घोषणा पढ़नेके पश्चात् उस दिनके दरबारकी समाप्ति हुई। इसी तरह रणजीतसिंहके दुर्गमें ब्रिटिश-पताका उड़ायी गयी।

लाख अस्सी हजारसे भी कम हो गया। यदि न्यायकी दृष्टिसे देखा जाय तो निस्सन्देह लार्ड डलहौसीने स्थायी सन्धिको तोड़कर पंजाबपर अधिकार प्राप्त किया। वीरश्रेष्ठ शेरसिंहने पिताके अपमानसे दुःखी होकर अंग्रेजोंके विरुद्ध शस्त्र धारण किया। लाहौर दरबारके सदस्य इस युद्धमें सम्मिलित नहीं थे। शासनसमितिके आठ सदस्योंमें छः तो अंग्रेजोंके पक्षमें थे, एक किसीकी ओर न था और एकके विषयमें सन्देह है। लार्ड डलहौसीने उनके विषयमें कहा, यदि दलीपसिंहको राजच्युत करनेमें ये लोग सहमत न होंगे और इस कागजपर हस्ताक्षर न करेंगे तो उनकी सारी सम्पत्ति जप्त कर ली जायगी।

इस प्रकार अत्याचारके भयसे सदस्योंने स्वदेशके स्वाधीनतानाशक पत्रपर हस्ताक्षर किया। इधर ब्रिटिश रेजिडेन्ट लाहौर दरबारका अध्यक्ष था। दलीपसिंह अप्राप्तवयस्क बालक था जिसके संरक्षक अंग्रेज लोग थे और उसकी माता काशीमें थी। शासन सम्बन्धी सभी काम अंग्रेजोंके इच्छानुसार होते थे। तब किस अपराधसे दलीपसिंह राज्यभ्रष्ट किया गया? किस अपराधसे उसकी पैत्रिक सम्पत्ति छीनी गयी? सहस्रों वर्ष बीते एक बार दिग्विजयी सिकन्दरने पंजाबके राजा पुरुको हराया पर शत्रुका साहस और पराक्रम देखकर वह बहुत संतुष्ट हुआ और राज्य लौटाकर उनसे मित्रता कर ली। उन्नीसवीं शताब्दीमें सभ्यदेश निवासी एक सुशिक्षित राजपुरुषने अपने अधीनस्थ एक निर्दोष एवं सरल स्वभाववाले बालकको

राजच्युतकर वीरधर्मको कलंकित किया। समयकी कैसी अपूर्व गति है। ज्ञान और धर्मकी कैसी अपूर्व उन्नति है।

राज्यच्युत होनेके समय दलीपसिंहकी अवस्था केवल ग्यारह वर्षकी थी। उस समय वे एक अंग्रेजके अधीन शिक्षा ग्रहण करते थे। १८५३ ई० में ईसाई धर्मके अनुसार उनको दीक्षा हुई थी। इसके एक वर्ष पश्चात् वे इङ्गलैण्ड गये। महारानी झिन्दनकी क्या दशा हुई? जिनके निष्काशनसे खाल्सा सैन्य उन्मत्त हो रही थी। उनकी अवस्थामें आज बहुत परिवर्तन हो गया। वह भी भग्नचित्त, अन्धी होकर वृद्धावस्थामें इङ्गलैण्ड पहुंची। १८६३ ई० में प्राणाधिक पुत्रके निकट अज्ञात स्थानमें राज्यभ्रष्ट रणजीतसिंहकी स्त्रीकी जीवन-लीला समाप्त हुई। सिक्ख-राज्यके अवस्थान्तरकी बात इसी तरह है। आदिगुरु नानकने सरलता एवं कर्त्तव्यपरायणताके बलधर्म सम्प्रदाय स्थापित किया, गोविन्दसिंहने अपने याग बलसे इसमें जीवनी शक्ति दी एवं रणजीतसिंहने राज्य स्थापित करके अपने पराक्रमसे सबको चकित कर दिया, वह राज्य आज दूसरेके हाथमें चला गया। पंजाबकेशरीकी पांचों नदियां आज अंग्रेजोंके अधिकारमें हैं। देववाञ्छनीय कोहनूर आज ब्रिटिश साम्राज्यके सर्वश्रेष्ठ रत्नोंमें गिना जाता है। समयकी प्रबल धाराने उस गौरव और उस महत्वको धो दिया। महाराज रणजीतसिंहने मुसल्मानोंको परास्त करके जो राज्य स्थापित किया था वह राज्य आज भी वर्तमान है। जिन नदियोंके तटपर इनकी विजयपताका

फहराती थी वे नदियां आज भी अविराम गतिसे प्रवाहित हो रही हैं पर अब वह दृश्य नहीं है। बहुत दिन हुए समयके अनन्त स्रोतके साथ वे दृश्य भी अदृश्य हो गये। परन्तु सहृदय मनुष्योंकी स्मृति-से एवं इतिहासके पन्नोंसे सिक्खोंकी वीरता एवं महाप्राणता-को कहानी लुप्त नहीं होगी। यदि भारत महासागरके अनन्त जलमें भारतवर्ष निमग्न हो जाय, हिमालय पर्वत गिर पड़े और भारतवर्ष चूर चूर हो जाय तो भी सिक्खोंकी अनन्त कीर्त्ति लुप्त नहीं होगी। पृथ्वीके सहृदय-समाजमें गुरु गोविन्दसिंह, रण-जीतसिंह एवं शेरसिंहका यशोगान होता रहेगा।

फूलासिंह

सन् १८०८ ई० में जिस समय सर चार्ल्स मेटकाफ अमृतसरमें रहते थे, अंग्रेजी सेना अकटर लोनीके अधीन एकत्रित होकर गवर्नर जनरल लार्ड मिन्टोकी आज्ञासे महाराणा रणजीतसिंहके साथ सन्धि करनेकी चेष्टा करती थी उस समय एक साहसी युवकने निर्भय होकर तलवार हाथमें ली और अपने कुछ अनुचरोंके साथ पंजाबकेशरीके निकट जाकर गम्भीर स्वरमें बोला—"विदेशी अंग्रेज हमारे राज्यपर अधिकार जमाना चाहते हैं। मैंने उन लोगोंपर आक्रमण किया पर सफलता नहीं हुई। उन लोगोंने मेरे अनुचरोंके साथ दुर्व्यवहार किया है। यदि आप इसी समय उन्हें उचित दण्ड नहीं देंगे तो इसी तलवारसे आपका सिर काट डालूंगा।"

रणजीतसिंह युवकके मुखसे अकस्मात् ऐसी बात सुनकर विस्मित हुए। आश्चर्यके साथ उन्होंने युवककी ओर देखा तो उसकी निर्भय मूर्त्ति एवं विस्फारित दृष्टिने उसके दृढ़ प्रतिज्ञ होनेका परिचय दिया। असमयमें इस अपूर्व दृश्यको देखकर पंजाबके अधीश्वर विचलित नहीं हुए। धीरताकी सीमाको उल्लंघन करके उन्होंने अपनी चपलता नहीं दिखलायी। स्नेहके साथ वे गम्भीर स्वरमें बोले,—"युवक! मैं तुम्हारे साहससे बहुतही प्रसन्न हूं। अंग्रेज़ दूत मेरा मित्र है यह कोई अनिष्ट नहीं करेगा, मेरा सिर तुम्हारे सामने है यदि इच्छा हो तो काट डालो।"

महाराजा रणजीतसिंहके मुखसे स्नेहभरी बातें सुनकर युवकका उत्तेजित हृदय कुछ शान्त हुआ। युवकने अब अपनी उद्धत प्रकृति छोड़ दी और उसने अपना सिर नीचा कर लिया। रणजीतसिंह उससे बहुत सन्तुष्ट हुए। पंजाबकेशरीने उसे एक घोड़ा और कुछ स्वर्ण मुद्रा देकर पुरस्कृत किया तथा उसके अनुचरोंको भी कुछ द्रव्य दिया। युवक धीर भावसे महाराजका दिया हुआ पुरस्कार लेकर चला गया।

इस तेजस्वी युवकका नाम फूलासिंह था। सिक्ख गुरु गोविन्दसिंहने 'अकाली' नामका एक सम्प्रदाय स्थापित किया था। इसी सम्प्रदायका नेता था फूलासिंह। अकाली सम्प्रदायके सभी अनुयायी नीले रंगका वस्त्र पहनते थे। इनमें अटल साहस, अजेय पराक्रम एवं आलस्यरहित कर्त्तव्यपालनकी शक्ति थी। शत्रु-सैन्य-को नष्ट करने तथा उनके दुर्गपर अधिकार जमानेमें इन लोगों-ने कैसा पराक्रम दिखलाया इसे इतिहास लेखक बड़ी प्रसन्नताके साथ वर्णन करेंगे। ये दुर्बल तथा गरीबोंके परम मित्र थे और अत्याचारी धनियोंके परम शत्रु थे। कर्त्तव्य-पालनके समय ये अपने प्राणको भी तुच्छ समझते थे। गुरुगोविन्दसिंहने इसी सम्प्रदायके बलपर औरंगजेबके विरुद्ध शस्त्र धारण किया। उन्नीसवीं शताब्दीमें इसी दलके नेता फूलासिंहने इतिहासमें वर्णन किये जाने योग्य वीरता, साहस एवं कर्त्तव्य-बुद्धि दिख-लायी। जिस दिन फूलासिंहने अपने महाराज रणजीतसिंहके सामने अपने असाधारण साहस एवं तेजस्विताका परिचय

दिया उसी दिनसे अकालियोंकी उद्देशसिद्धिका सञ्चार होने लगा और उसी दिनसे इस सम्प्रदायवाले उसे अपना नेता समझने लगे। धीरे धीरे उसके अधीनस्थ अकालियोंकी संख्या बढ़ने लगी, कुछ समयके ही पश्चात् चार सौ अकाली सदा उनकी आज्ञानुसार कार्य करनेके लिये तत्पर रहने लगे। इन्हीं लोगोंकी सहायतासे फूलासिंहने बहुत साधन एकत्रित कर लिये। निराश्रय एवं दुःखियोंकी रक्षा उसका प्रधान कर्त्तव्य था। वह सदा सब जगह अन्तःकरणसे इसी कर्त्तव्य पालनकी चेष्टामें रहता था। जहां कहीं कोई निर्धन निराश्रय तथा पीड़ित व्यक्ति निरन्तर दुःखाग्निसे दग्ध होता था, फूलासिंह वहीं आविर्भूत होता था। जहां कहीं कोई धनी मनुष्य विलास तरंगमें गोते लगाता हुआ धन वृद्धिका सुख-स्वप्न देखता था फूलासिंह उसके धन ग्रहणकी चेष्टामें लगा रहता था। यदि कोई निर्बल निस्सहाय एवं आश्रयहीन व्यक्ति अपनी झोपड़ीमें हृदयकी प्रचण्ड दुःखाग्निके कारण आंसू बहाता था तो फूलासिंह अवश्य ही वहां उपस्थित होकर उसे शान्ति देता था।

फूलासिंहसम्बन्धी सभी बातें पंजाबकेशरी रणजीतसिंहके कानोंतक पहुंचीं। रणजीतसिंहने उसे बुलाया और पहलेकी नाईं स्नेहपूर्वक उसे दूसरेकी सम्पत्ति ग्रहण करनेसे निषेध किया। फूलासिंहने अबकी बार उनकी आज्ञा नहीं मानी। रणजीतसिंहने उन्हें बहुत सा धन देकर तथा शान्तिमय जीवनकी चेष्टा दीखलाकर उन्हें राजी करना चाहा परन्तु उनकी

सारी चेष्टा निष्फल हुई। उनके परामर्श, पुरस्कार एवं वाक्य-चातुरीकी मोहनीशक्तिको परास्त होना पड़ा। फूलासिंहको वे अपने वशमें नहीं कर सके। फूलासिंह अचल पर्वतकी नाईं अपने साधनपर दृढ़ रहा। पहलेकी नाईं विपन्नोंका उद्धार करने, दरिद्रोंके दुःख छुड़ाने तथा उद्धतप्रकृति धनियोंके घमंडको नष्ट करनेमें लगा रहा। इस समय फूलासिंहके दलमें चार पांच हजार मनुष्य थे। ये लोग अपने नेताके आज्ञापालन करनेके लिये सदा तत्पर रहते थे। महाराणा रणजीतसिंह भली भांति समझते थे कि फूलासिंहको भय दिखलानेका कुछ भी फल नहीं होगा। वे जानते थे कि स्नेहयुक्त और भावसे अनेकों प्रलोभन दिये जाय तो फूलासिंह वशमें किया जा सकता है। पहले तो रणजीतसिंहने फूलासिंहके विरुद्ध एक सेना भेजी थी पर अन्तमें उन्हें इसी उपायका अवलम्बन करना पड़ा। इस समय उनकी इच्छा फलवती हुई। फूलासिंह पंजाबकेशरीका अनुगामी बन गया और कुछ ही कालमें धीरे धीरे उनका प्रीतिपात्र बन गया।

इस समय महाराणा रणजीतसिंहकी शक्ति बढ़ गयी। इस समय उन्होंने फूलासिंहके साहस एवं पराक्रमके आधारपर अनेक स्थानोंपर अधिकार जमा लिया। फूलासिंहके दलके एक मनुष्यके साहसके बल उन्होंने मुलतानपर अधिकार जमा लिया। फूलासिंहने स्वयं असाधारण साहस दिखलाकर भारतके नन्दन कानन काश्मीरको हस्तगत कर लिया। महाराज रण-

जीतसिंहने जिस समय पेशावरपर अधिकार प्राप्त करनेकी चेष्टा-से पञ्जाबके हिन्दू राजाओंकी हिन्दू-सेना एकत्रित की और नव-शेराके युद्ध स्थलमें वे अफगानोंके विरुद्ध खड़े हुए उस समय फूलासिंहने भली भांति अपने साहस एवं वीरताका परिचय दिया। पेशावर अफगानोंके अधिकारमें था। काबुलके प्रधान-मन्त्री महम्मद आज़िम खां पराक्रमी सेना लेकर पञ्जाबकेशरीके विरुद्ध खड़े हुए। अटक और पेशावरके बीच नवशेराके निकट करोई नामक स्थानमें पराक्रमी अफगान और युद्ध-कुशल सिक्ख वीर अपनी अपनी प्रधानता दिखलानेके लिये एक दूसरेसे भिड़ गये। इस युद्धमें सिक्ख वीर पहले तो कुछ विचलित हुए, थोड़ी देरके लिये यह मालूम हो गया कि अफगानोंकी जीत हुई, रणजीतसिंहके सेनापति अफगानोंके आक्रमणसे निरस्त्र होकर भाग चले। इस विपत्तिके समय रणजीतसिंहने अपने सैनिकोंको एकत्रित करके विपक्षियोंके गतिरोधकी जो चेष्टा की वह व्यर्थ हुई। घोड़ेपरसे अपने गुरुके पवित्र नामको उच्चारण करते हुए इन्होंने अपने सैनिकोंको आगे बढ़नेके लिये जो उत्साह दिया वह व्यर्थ हुआ। अन्तमें वे घोड़ेसे उतर, हाथमें तलवार निकालकर शत्रु सैन्यमें घुसे और अपने अनुचरोंको साथ देनेके लिये अनुरोध किया परन्तु उनकी चेष्टा निष्फल हुई। रणजीतसिंह हताश हो गये। अपने सैनिकोंको युद्धसे विमुख देख वे क्रोध और क्षोभसे उत्तेजित होकर शत्रु दलमें घुस गये। ऐसी अवस्थामें "गुरुजीकी विजय-लक्ष्मी प्राप्त हो"

ये शब्द रणजीतसिंहके कर्णगोचर हुए जिससे उनके मनमें आशा एवं आनन्दका सञ्चार हुआ। रणजीतसिंहने विस्मय-के साथ देखा कि फूलासिंह नीले वर्णकी पताका उड़ाता पांच सौ अकालियोंके साथ "गुरुजीको विजय-लक्ष्मी प्राप्त हो" शब्द करता अफगानोंके विरुद्ध अग्रसर हो रहा है। उन्होंने फूलासिंहको विपक्षियोंकी गोलीके आघातसे घोड़ेपरसे गिरता हुआ देखा। फूलासिंहका एक हाथ कट गया और लोग उन्हें युद्ध-क्षेत्रसे अलग ले गये, इसे भी महाराजने देखा।

फिर फूलासिंह हाथीपर सवार होकर असीम उत्साहके साथ अपनी सेनाको आगे बढ़ाने लगा। गोलियोंके आघातसे उसका शरीर क्षत विक्षत हो गया था तथापि वह दृढ़ रहा। उसके चौड़े ललाटमें भीतिव्यञ्जक रेखाएं नहीं देखी गयीं। दोनों आंखें निराशा एवं दुश्चिन्ताकी सूचना नहीं देती थीं। फूला-सिंह हाथीके ऊपरसे गम्भीर स्वरमें बोल रहा था—"गुरुजीको विजय लक्ष्मी प्राप्त हो।" उसकी सेना इन वाक्योंसे उत्साहित होकर आगे बढ़ी। फूलासिंहकी ऐसी तेजस्विता देखकर पञ्जाबकेशरी बहुत ही उत्साहित हुए और उन्हें आश्वासन मिला। कौन कहता है कि गुरु गोविन्दसिंह मर गये? कौन कहता है कि गुरु गोविन्दसिंहकी महत्ता उनके शरीरके साथ लुप्त हो गयी? उन्नीसवीं शताब्दीमें नवशेराके निकटस्थ युद्ध-क्षेत्रमें गुरु गोविन्दसिंह वर्त्तमान थे। उस समय उनके उत्साह-पूर्ण वाक्योंको स्मरणकर उनके अनुयायी मत्त हो रहे थे।

जीतसिंहने जिस समय पेशावरपर अधिकार प्राप्त करनेकी चेष्टा-से पञ्जाबके हिन्दू राजाओंकी हिन्दू-सेना एकत्रित की और नव-शेराके युद्ध-स्थलमें वे अफगानोंके विरुद्ध खड़े हुए उस समय फूलासिंहने भली भांति अपने साहस एवं वीरताका परिचय दिया। पेशावर अफगानोंके अधिकारमें था। काबुलके प्रधान-मन्त्री महम्मद आज़िम खां पराक्रमी सेना लेकर पञ्जाबदेशवालोंके विरुद्ध खड़े हुए। अटक और पेशावरके बीच नवशेराके निकट करोई नामक स्थानमें पराक्रमी अफगान और युद्ध-कुशल सिक्ख वीर अपनी अपनी प्रधानता दिखलानेके लिये एक दूसरेसे भिड़ गये। इस युद्धमें सिक्ख वीर पहले तो कुछ विचलित हुए, थोड़ी देरके लिये यह मालूम हो गया कि अफगानोंकी जीत हुई, रणजीतसिंहके सेनापति अफगानोंके आक्रमणसे निरस्त होकर भाग चले। इस विपत्तिके समय रणजीतसिंहने अपने सैनिकोंको एकत्रित करके विपक्षियोंके गतिरोधकी जो चेष्टा की वह व्यर्थ हुई। घोड़ेपरसे अपने गुरुकेपवित्र नामको उच्चारण करते हुए इन्होंने अपने सैनिकोंको आगे बढ़नेके लिये जो उत्साह दिया वह व्यर्थ हुआ। अन्तमें वे घोड़ेसे उतर, हाथमें तलवार निकालकर शत्रु-सैन्यमें घुसे और अपने अनुचरोंको साथ देनेके लिये अनुरोध किया परन्तु उनकी चेष्टा निष्फल हुई। रणजीतसिंह हताश हो गये। अपने सैनिकोंको युद्धसे विमुख देख वे क्रोध और क्षोभसे उत्तेजित होकर शत्रु-दलमें घुस गये। ऐसी अवस्थामें "गुरुजीकी विजय-लक्ष्मी प्राप्त हो"

शत्रुओंपर आक्रमण किया। अफगानसेना अबकी बार उनके शस्त्र-प्रहारको सहन नहीं कर रण-क्षेत्रसे भाग चला। नवशेराके निकटवर्ती युद्ध-क्षेत्रमें फूलासिंहके असामान्य पराक्रमसे पंजाब-केशरीको विजय लाभ हुआ।

पाठानोंने आश्चर्यके साथ फूलासिंहकी वीरताकी प्रशंसा की। जिस स्थानपर फूलासिंहकी मृत्यु हुई वहां एक स्तम्भ निर्मित करा दिया गया। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही इस स्थानको पवित्र समझते हैं एवं श्रद्धा और भक्तिकी दृष्टिसे देखते हैं। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही इस पवित्र स्थानपर आकर फूलासिंहके उद्देश्यकी प्रशंसा करते हैं। जबतक एक-चक्षु वृद्ध सिक्ख राजा जीवित थे तबतक नवशेराके युद्धकी बात स्मरण आनेपर उनके उज्ज्वल नेत्रोंसे अश्रु-धारा बहने लगती थी। वीरभक्त वीरकेशरीने वीरशिरोमणि फूलासिंहके लिये शोकाश्रु बहाकर अपने अनुरागका परिचय दिया और जनता-को दिखला दिया कि आदर्श वीरपुरुष सदा वीरेन्द्र समाजमें पूजित समझे जायंगे।

कुंवर सिंह

ईस्ट इण्डिया कम्पनीके अभ्युदय कालमें यदि बगालके नवाब द्वारा की गयी अन्धकूपकी हत्या सच्ची घटना है तो वास्तवमें यह एक भयकर एवं असन्तोषजनक कार्य है। गरमीका मौसिम था, सूर्य भगवानकी प्रचण्ड किरणोंसे सारा ससार सन्तप्त हो रहा था, ऐसे ही समयमें १२३ अंग्रेज एक छोटे मकानमें बन्द कर दिये गये। वायु तथा जलके अभावसे तड़प तड़पकर उनके प्राणपखेरू उड़ गये। इसके ठीक एक वर्ष पश्चात् एक ऐसी भयंकर घटना हुई कि जिसके भीषण परिणामसे सारा भारतवर्ष त्रस्त हो गया। यह घटना अन्धकूपकी हत्यासे कहीं बढ़कर थी। अन्धकूपकी हत्यासे भारतवर्षके एक अशमें निराशा, विषाद एव भयका सञ्चार हुआ था; परन्तु इस भयंकर घटनासे भारतवर्षरूपी नौका शोकसमुद्रमें डूबने लगी। अन्धकूपकी हत्याके समयतक अंग्रेज लोगोंका पैर भारतवर्षमें अच्छी भाति नहीं जमा था। उस समय वे लोग केवल व्यवसायीमात्र थे। परन्तु इस आन्दोलनके समय हिमालयसे लेकर कन्याकुमारी तक, सिन्धु नदसे लेकर ब्रह्मपुत्र पर्य्यन्त सारी भूमि अंग्रेजोंके प्रतापरूपी सूर्यकी किरणोंसे प्रकाशित हो रहा था। सिन्ध और पञ्जाबकी विशाल भूमिमें, बगाल और विहारके सुन्दर नगरोंमें एव समृद्धिशाली बम्बई और मद्रासमें अंग्रेजोंकी विजय पताका

फहरा रहो थी। उस समयके अंग्रेज नेताका प्रताप अशोक, विक्रमादित्य एवं नेपोलियनके प्रतापके सदृश था। १८५७ ई० में जिस समय भीषण विप्लव प्रारम्भ हो गया था, सिपाही लोग अधीर हो कर गवर्नमेन्टके विरुद्ध अपने असाधारण साहसका परिचय देना चाहते थे, बंगालसे अयोध्यातक एवं दिल्लीसे दक्षिणतक सारा प्रदेश नर-शोणितसे रंगा जा रहा था, मृत्युकी विकराल एव निराशा और विषादकी अन्धकारमयी मूर्त्तिसे सारा भारतवर्ष ढका हुआ था, ऐसे समयमें एक वृद्ध राजपूत वीरने अपनी मर्य्यादाके रक्षणार्थ अंग्रेजोंके विरुद्ध शस्त्र उठाया। उन्होंने आत्म-सम्मान एवं आत्ममर्य्यादाके रक्षणार्थ जीवनके अन्तिम समयमें ऐसी शूरता तथा तेजस्विता दिखलायी कि जिस से अंग्रेज लोग चकित हो गये। इस तेजस्वी वृद्ध राजपूत वीर का नाम कुंवरसिंह था।

आप आरा जिलान्तर्गत जगदीशपुरके रहनेवाले थे। यह एक बड़े जमीन्दार थे। यह महाराज डुमरावके सम्बन्धी थे। किसी किसीका मत है कि सिपाही विद्रोहके समय इनकी अवस्था अस्सी वर्षकी थी। कुछ लोग कहते हैं कि उस समय इन की अवस्था ६० वर्षकी थी। कुछ भी हो पर यह बात सभी मानते हैं कि सिपाही विद्रोहके समय कुंवरसिंह बूढे हो चले थे।

कुंवर सिंहकी बाल्यावस्थाका विवरण मालूम नहीं है। जिस देशमें जीवन-चरित्र लिखनेकी प्रथा नहीं है, बड़े बड़े लोगोंके जीवनकी घटना जिस देशमें प्रचारित नहीं की जाती,

जिस देशमें कुमारिल, शायणाचार्य्य, विजयसिंह एवं गोविन्दसिंह जैसे आदर्श पुरुषोंके चरित्र बड़े कठिनसे मिलते हैं तो भी ठीक ठीक सब घटनाओंका पता नहीं लगता उस देशमें कुंवरसिंहके बाल्यजीवनका पता लगाना सहज नहीं है। केवल इतनाही मालूम है कि बालकपनमें ही उन्होंने अपनी तेजस्विता एवं साहसका परिचय दिया था। बालकपनमें वे अपने शिक्षककी आज्ञाओंको भलीभांति पालन करते थे। संयमी गुरुके मुखसे एक दिन जब उन्होंने शम तथा दमकी प्रशंसा सुनी उसी दिनसे वे बड़े शान्ति एवं संयमके साथ रहने लगे। पढ़ने लिखनेके समय वे तेजस्विता, वीरता एवं साहसकी शिक्षाको सच्चे राजपूतकी नाई' बड़े ध्यानसे सुनते थे।

जिस प्रकार प्रतापसिंहने अपने साहसी अनुचरोंके साथ पर्वत पर्वत एव जंगल जंगल घूम कर अपनी दृढ़ताका परिचय दिया; गोविन्दसिंहने जिस प्रकार तरुणावस्थामें ही शस्त्र धारणकर अपनी भविष्य कीर्त्तिकी रक्षा की, फूलासिंहने जिस प्रकार असाधारण तेजस्विता दिखलाकर अक्षय कीर्त्ति पायी थी ठीक उसी तरह कुंवरसिंहने भी अपनी दृढ़ता एवं तेजस्विताका परिचय दिया। शस्त्र चलानेमें उन्हें बहुत ही आनन्द मिलता था। जिस जंगलमें शिक्षा पाकर शेरशाहने दिल्लीके सम्राट्को परास्त किया था उसी जंगलमें कुंवरसिंह भी प्रायः आखेटको जाते थे। सदा ऐसे ऐसे दुर्गम स्थानोंमें जाने तथा भीषण वन-जन्तुओंके मारनेसे कुंवरसिंह धीरे धीरे साहसी, तेजस्वी एवं दृढ़प्रतिज्ञ हो गये।

यह राजपूत वीर धीरे धीरे अपने पूर्वपुरुषोंके गुणोंसे विभूषित होनेके कारण बिहारमें प्रसिद्ध हो गये। डुमरावके महाराज पुराने जमानेसे बिहारके उज्जैन समुदायके नेता समझे जाते थे। कुछ दिनोंके पश्चात् इन क्षत्रियोंके दो दल हो गये। सिपाही-विद्रोहके समय एक क्षत्रिय दलके नेता बाबू कुंवर सिंह थे। दूसरा दल डुमरावके महाराजके अधीन था। कुंवरसिंहके अधीनस्थ क्षत्रिय वीरोंकी सेना प्रबल थी। इन वीरोंकी तेजस्विता एवं साहसके कारण शाहाबादका इतिहास विशेष पवित्र समझा जाता है। कुंवरसिंहने अपनी सेनाके सभी सिपाहियोंको निष्कर भूमि दी थी। कोई भी दीन दुखी उनके यहांसे निराश होकर नहीं लौटता था। उन्होंने कितनोंको बिना लगानकी भूमि दे दी जिसका परिणाम यह हुआ कि वे स्वयं ऋणग्रस्त हो गये। कुछ दिनोंके पश्चात् वे मुकद्दमेके फन्दे-में फंस गये। ये सब मुकद्दमे शाहाबादके कलक्टरके यहां थे। इस समय उन्हें बहुत कर्ज हो गया था। सरकारी माल-गुजारी भी उनके जिम्मे बाकी पड़ गयी थी। एक मनुष्यसे बीस लाख रुपये कर्ज लेकर उन्होंने मालगुजारी एवं कर्ज देनेका प्रबन्ध किया। रुपया मिलनेमें कुछ विलम्ब था, अतः थोड़ा सा रुपया उन्होंने किसी दूसरे मनुष्यसे लिया। जितने दिनोंमें उन्हें रुपये मिलनेकी आशा थी उतने दिनोंतक ठहरनेके लिये उन्होंने रेविन्यू बोर्डसे प्रार्थना की। उन्हें पूर्ण विश्वास था कि रेविन्यू-बोर्ड उनकी प्रार्थना अस्वीकार नहीं करेगा। इस प्रकार

उन्होंने सुप्रबन्ध करनेकी चेष्टा की। परन्तु उनकी आशा एवं चेष्टा निष्फल हुई। रेविन्यू-बोर्ड बिना कुछ सोचे विचारे उन्हें कष्ट देनेको तैयार हो गयी। पटनाके कमिश्नरने उन्हें निम्न-लिखित सूचना दी—"यदि आप एक मासमें रुपये न दे सके तो आपकी जमीन्दारी नीलाम कर दी जायगी। इस प्रकार यदि आपकी जमीन्दारी दूसरोंके हाथ लग जाय तो सरकारका इसमें कुछ भी दोष नहीं है।" इस समाचारसे कुंवर सिंह बड़े दुःखी हुए। एक मासमें वे कुल रुपये नहीं दे सके, अतः उन्हें बड़ी हानि हुई।

वे सरकारके सच्चे मित्र थे। उन्हें पूर्ण आशा थी कि सरकार उन्हें कुसमयमें सहायता देगी परन्तु उनकी आशा-पर पानी फिर गया। तेजस्वी राजपूत वीर दुखी तो अवश्य हुए परन्तु उनका तेज और भी बढ़ गया। उन्हें सरकारसे विरक्ति हो गयी। सरकारने जो उन्हें हानि पहुंचायी एवं अपमान किया ये सब बातें उनके हृदयमें चुभ गयीं। कुंवर सिंह निश्छल एवं स्वच्छ हृदयके मनुष्य थे। उन्होंने कभी भी बिना कारण किसीपर अत्याचार करके अपने उद्धत स्वभावका परिचय नहीं दिया। सच्चे क्षत्रियकी नाईं उन्होंने सदा क्षत्रियत्वकी रक्षा की। मालगुजारीके लिये वे किसी भी प्रजापर कड़ाई नहीं करते थे। प्रजाएं अपने जोसे उन्हें जो कुछ दे देती थे उसे प्रसन्नतापूर्वक ले लेते थे। प्रजा भी उनसे सन्तुष्ट रहती थी। यदि किसी प्रजाको अधिक लाभ हो जाता तो वह निश्चित मालगुजारीसे अधिक भी दे देती थी।

यदि उनकी जमीन्दारीके किसी व्यवसायीको अधिक लाभ हो जाता तो वह भी लाभका कुछ अंश कुंवर सिंहको दे देता था। परन्तु कभी भी उन्होंने किसी व्यवसायी एवं प्रजाको कष्ट देकर धन ग्रहण नहीं किया। कुंवर सिंहकी उपाधि "बाबू" थी। इसीसे लोग उन्हें बाबू कुंवर सिंह कहते थे। शाहाबाद जिलाके सभी मनुष्य श्रद्धा और भक्तिके साथ बाबू कुंवर सिंहका नाम लेते थे। रेविन्यू-बोर्डने उन्हें जो हानि पहुंचायी थी सो तो पाठकोंको भलीभांति मालूम है; परन्तु ऐसा अपमान एवं ऐसी हानि पहुंचानेपर भी वे सरकारके मित्र ही बने रहे। एक बार जिसे मित्र बना लिया उसे त्यागकर अपनी क्षुद्रताका परिचय देना वे नहीं चाहते थे। गम्भीर उत्तजनासे उत्तेजित होनेपर भी उन्होंने सरकारके विरुद्ध खड़े होकर अपनी अधीरताका परिचय नहीं दिया। उनका हृदय जैसा स्वच्छ था वैसे ही साधुता और कर्त्तव्यपरायणता भी उनमें कूट कूटकर भरी हुई थी। अंग्रेजोंने ऐसे उच्चप्रकृति एवं आदर्शवीरका आदर नहीं किया। सिपाही-विद्रोहके प्रारम्भमें वे सरकारके प्रीतिभाजन थे। पटनाके कमिश्नर टेलर साहबने १४ वीं जून सन् १८५७ के पत्रमें सरकारको लिखा था—"कितने लोग बाबू कुंवर सिंहको राजद्रोही कहते हैं, परन्तु मुझसे उनसे जैसी मित्रता है एवं सरकारके प्रति जैसी उनकी भक्ति देखी जाती है इससे मैं उन्हें राजविद्रोही कदापि नहीं कह सकता।" तत्पश्चात् ८ वीं जुलाई-को कमिश्नर साहबने फिर भी लिखा—"बाबू कुंवर सिंह

सब कुछ कर सकते हैं पर अभी समय नहीं आया है। उन्होंने कई बार मेरे पास चिट्ठियां भेजी हैं जिसके प्रत्येक अक्षरसे राजभक्ति टपकती है।" शाहाबादके मजिस्ट्रेटने भी इस सम्मतिका समर्थन करते हुए सरकारको एक पत्र लिखा—"मेरे पास बहुत सी चिट्ठियां आयी हैं जिसमें लिखा है कि बाबू कुंवर सिंह इस विद्रोहमें सम्मिलित हैं, परन्तु मुझे विश्वास नहीं होता।" कमिश्नरने जिसके विषयमें ऐसी संतोषजनक सम्मति दी है वह कभी भी सरकारके विरुद्ध नहीं हो सकता।

अपनी अटल राज-भक्तिके कारण वे सदा सरकारके प्रशंसा-पात्र बने रहे। यदि अंगरेज लोग अपनी सहृदयताका परिचय देकर इस वृद्ध राजपूत वीरको संतुष्ट रखते तो मालूम होता है कि सिपाही-विद्रोहकी काया पलट गयी होती। यदि इस तेजस्वी वीरके साथ दुर्व्यवहार नहीं किया जाता तो मालूम होता है कि अंग्रेज लोग घोर विपत्तिमें नहीं पड़ते। परन्तु कालक्रमसे अंग्रेजोंकी बुद्धि पलट गयी। अदूरदर्शी अंगरेजोंने परिणामके विषयमें कुछ भी नहीं सोचकर इस तेजस्वी राजपूत वीरके हृदयपर आघात पहुंचाया। इस आघातका परिणाम ऐसा भीषण हुआ कि शाहाबाद जिला नर-रक्तसे रंग गया। जिस समय सिपाहियोंने सरकारके विरुद्ध शस्त्र धारण किया, उस समय छोटे छोटे गांवोंमें भी आन्दोलन होने लगा; सभी नगरोंमें विद्रोह हो गये। उस समय सरकारी कर्मचारियोंने सबपर कड़ी दृष्टि की। ऐसा करना ठीक था पर साथ ही साथ धीरता एवं

परिणामदर्शितासे काम लेना चाहिये था। यदि ऐसा किया जाता तो विश्वासी मनुष्यको शीघ्र अविश्वासी कहकर विद्रोही नहीं बतलाया जाता, गवर्नमेन्टको भी विपत्तिमें पड़ना नहीं पड़ता, प्रजाको भी इतना कष्ट नहीं होता। ऐसे समयमें अंग्रेज लोग धीरता तथा परिणामदर्शिताका अवलम्बन नहीं कर सके। उन लोगोंने शीघ्र ही विश्वासी मनुष्यपर भी सन्देह किया।

जो लोग ऐसे समयमें सरकारकी सहायता सच्चे दिलसे करना चाहते थे इस अविश्वासके कारण वे भी शत्रु बन गये। शाहाबाद जिलाके बाबू कुंवर सिंह असाधारण प्रतिमा-शाली वीर थे। तेजस्विता तथा प्रवीणताके कारण सभी उन्हें श्रद्धा एवं भक्तिकी दृष्टिसे देखते थे। सिपाही-विद्रोहके समय बाबू कुंवर सिंहके शत्रुओंने इनके विरुद्ध कितनी बातें सरकारको लिखीं। पहले तो पटनाके कमिश्नरने विश्वास नहीं किया। उन्होंने कुंवर सिंहके विषयमें जो जो बातें सरकारको लिखीं वह उल्लिखित हैं। गयाके मजिस्ट्रेटने कुंवर सिंहके साथ सद्व्यवहार करनेकी सलाह दी। उन्होंने साफ साफ लिखा—"दो एक मनुष्योंकी फांसी देनेसे प्रजा अवश्य डरेगी; परन्तु जिस समय सारे भारतवर्षमें विद्रोहियोंकी संख्या प्रति दिन बढ़ती जा रही है ऐसे समयमें बहुत विचारकर काम करना चाहिये। विश्वासी मनुष्यपर भी अविश्वास करनेका परिणाम यह होगा कि वे भी विद्रोही हो जायंगे।" तत्पश्चात् उन्होंने कुंवरसिंहके विषयमें लिखा—"यदि कुंवर सिंह जैसे राज-

भक्त वीर जमींदारपर सन्देह किया जायगा तो इसका परिणाम बहुत विषमय होगा। यह तो गवर्नमेन्टके विरुद्ध होवेगा। साथ ही साथ और लोग भी उसके पक्षमें जा मिलेंगे।" परन्तु कमिश्नर साहबने इनकी एक न सुनी। इस सच्चे विश्वासी वृद्धकी राज-भक्ति तथा सहानुभूतिकी कुछ भी परवा नहीं की।

यद्यपि उन्होंने अपनी लेखनीसे कुंवर सिंहकी प्रशंसा की थी, एक बार उन्हें सच्चा तथा विश्वासी मित्र समझा था तथापि दूसरोंके बहकानेसे बिना कारण वे इस बार उनके विरुद्ध हो गये। कमिश्नर साहबने व्यर्थ ही उनपर सन्देह किया और उन्हें पटना बुलानेके लिये एक मुसलमान दूत भेजा।

कमिश्नरकी आज्ञासे दूत जगदीशपुर पहुंचा। कुंवर सिंह इस समय बीमार थे और शय्यापर पड़े रहते थे। इसी अवस्थामें दूतने पहुंचकर कमिश्नर साहबकी आज्ञा सुनायी। कुंवर सिंहने धैर्यके साथ दूतकी बातें सुनीं। पवित्र मित्रताके शोचनीय परिणामको उन्होंने भलीभांति अनुभव किया। उनके हृदयपर बड़ा भारी आघात पहुंचा तथापि उन्होंने दूतके सामने क्रोध दिखलाकर अधीरताका परिचय नहीं दिया। वे पहलेहीकी नाईं धीर बने रहे और कमिश्नरको लिख दिया कि अस्वस्थताके कारण उनकी आज्ञा नहीं पालन की जा सकती। आरोग्यलाभ करनेपर जब ब्राह्मण लोग दिन देंगे तब वे पटने जायंगे। इधर कमिश्नर साहबकी आज्ञासे कुंवर सिंहके विषयमें बड़ी सूक्ष्म रीतिसे जांच होने लगी। पूर्ण रीतिसे अनुसंधान

करनेपर भी कुंवर सिंहके विरुद्ध कुछ नहीं पता लग सका। यहांतक कि यह भी सिद्ध नहीं हो सका कि अमुक व्यक्तिको कुंवर सिंहने सरकारके विरुद्ध होनेकी सलाह दी थी। *अनुसन्धान करनेवाले निराश हो गये* परन्तु तेजस्वी वीर, बाबू कुंवर सिंहके मुखपर निराशाकी छाया भी नहीं दीख पड़ी। इसी समय उनके एक संबन्धीके घर विवाह था। कुंवर सिंह कुछ क्षत्रिय वीरोंके साथ बारातमें सम्मिलित होना चाहते थे, परन्तु अंग्रेज लोगोंको सन्देह हुआ अतः वे अकेले ही बारातमें गये। अंग्रेजोंके बारम्बारके दुर्व्यवहारसे इस तेजस्वी क्षत्रिय वीरका चित्त भी उन लोगोंकी ओरसे फिर गया। पहली बारके दुर्व्यवहारसे बाबू कुंवर सिंहकी केवल जमीन्दारी नष्ट हुई थी, परन्तु अबकी बार उन लोगोंके दुर्व्यवहारसे वृद्ध क्षत्रिय-की मानिहानि हुई। उन्होंने ब्रिटिश गवर्नमेन्टसे मित्रता की थी तथा वे उसे अपना भाई समझते थे।

कुंवर सिंहने अपनी उदारता, हृदयकी सरलता एवं साधुता द्वारा अबतक मित्रताकी रक्षा की थी परन्तु जब अंग्रेजों-ने उनकी मर्यादा नष्ट की तथा उन्हें अविश्वासी समझा तब उनसे नहीं रहा गया। एक सामान्य विधर्मी उनकी राज-भक्ति-के विरुद्ध प्रमाण संग्रह कर रहा था, तेजस्वी वृद्ध इस अपमान-को सह नहीं सके। इस कुविचार और अत्याचारके पश्चात् वे स्थिर नहीं रह सके। उन्होंने अपने वंशके गौरवकी रक्षाका संकल्प किया। वृद्धावस्थामें भी युवावस्थाकी तेजस्विताका

आविर्भाव हुआ। क्षोभ, क्रोध तथा अपमानसे उत्तेजित होकर क्षत्रिय वीरने सरकारके विरुद्ध शस्त्र धारण किया। इतना उत्तेजित होनेपर भी बाबू कुंवर सिंहने अन्यायसे अंग्रेजोंकी रक्तधारा बहाकर क्षत्रियोंकी वीरतामें कलंक नहीं लगाया। लार्ड डलहौसीकी परस्वत्वसंहारिणी एवं परराज्य ग्रहण करनेवाली नीतिका फल बड़ा ही विषमय हुआ। भारतवर्षका प्रधान प्रधान नगर एक एक करके सिपाही विद्रोहमें सम्मलित हो गये। सारा हिन्दुस्तान इस तरङ्गमें गोते लगाने लगा। पंजाबसे कन्याकुमारी एवं सिन्धसे ब्रह्मदेशतक भय, विषाद तथा विद्रोहकी मलिन मूर्त्ति दीखने लगी। इस भीषण विप्लवमें यदि कुंवर सिंह अंग्रेजोंके विरुद्ध नहीं होते तो निश्चय ही शाहाबाद नर शोणितसे रंगा नहीं जाता तथा इतने अधिक अंग्रेज सिपाहियों द्वारा मारे नहीं जाते। अंग्रेज अफसरोंकी भूलसे कुंवर सिंहका जो अपमान हुआ वह उसे विस्मरण नहीं कर सके। पश्चात् अंग्रेजोंके विरोधी सिपाहियों ने जब उनकी शरण ली और उन लोगोंने कुंवर सिंहके सामने प्रतिज्ञा की कि वे लोग अंग्रेजोंके रक्तसे अपना हाथ रंगेंगे उस समय कुंवर सिंह अंग्रेजोंसे अपमानित होनेके कारण विवेकशून्यसे हो रहे थे अत वे सहमत हो गये। २७ वीं जुलाईको दानापुरके सिपाही आरा आकर कुंवर सिंहसे मिल गये। इस समय कुंवर सिंहके छोटे भाई अमरसिंह भी अस्त्र शस्त्रसे सुसज्जित होकर लड़नेके लिये तैयार हो गये।

धीरे धीरे और भी कितनों एवं सिक्ख सिपाहियोंको दिया। परिणाम यह हुआ कि आराके चार सौ सिपाही और वृहत् सेना तैयार हो गयी। कुंवर सिंहने जहाज द्वारा लिया, कैदी लोग छोड़ दिये गये परन्तु कलक्टरीका न वे लोग भी नष्ट नहीं हुआ। कुंवर सिंहकी प्रबल धारणा पूर्ण राज्य हम लोगोंका हो जायगा और बिना कलक्टरीके कागज के प्रजाका स्वत्व निर्धारित नहीं हो सकेगा अतः उन्होंने कलक्टरीका कागज नष्ट करनेसे रोका। वृद्धावस्थामें भी इस तेजस्वी वीरको ऐसी उच्च आशा एवं ऐसा गम्भीर विश्वास, था। ऐसी ही उच्च आशा एवं गम्भीर विश्वाससे कुंवर सिंहने अंग्रेजोंके विरुद्ध शस्त्र धारण किया। आराके अंग्रेज लोग भी अपनी रक्षाकी चेष्टामें सफलमनोरथ हुए। उसी समय ईस्ट इण्डियन रेलवे कम्पनी सङ्गठित हुई थी। आरामें जितने रेलवे कर्मचारी थे उन सबोंके ऊपर एक इञ्जिनियर महाशय थे। उनका एक दो तल्ला मकान था जिसमें अग्रेज लोग विलियर्ड खेला करते थे। यही क्रीड़ा गृह अंग्रेजोंके लिये दुर्ग हो गया। सभी अग्रेज इस दुर्गके भीतर बाल बच्चोंके साथ घुस गये। पचास सिक्ख वीर अपने प्राण हथेलीपर रखकर इस दुर्गकी रक्षा करने लगे। कुंवर सिंहने इस दुर्गको नष्ट करनेके लिये प्राणपणसे चेष्टा की पर सफल नहीं हुए। अन्त-में उन्होंने इसकी चहारदीवारीके चारों ओर काष्ठ इत्यादि एकत्रित करके अग्नि जला दी परन्तु पवनदेव अंग्रेजोंके अनुकूल

आविर्भाव हुआ। क्षोभ, ... नहीं हो सका। जितने अग्रेज मरे सब क्षत्रिय वीरने सरका... थे, वायु अनुकूल होनेके कारण उनके जित होनेपर ...की कुछ हानि नहीं हुई। अंग्रेजोंने दुर्गके रक्तधारा · खाई खोदकर अपनी रक्षा की। कुंवर सिंहने लार्ड चलाकर दुर्गस्थ अंग्रेजोंको आहत करना चाहा, परन्तु अंग्रेजोंने कुछ गायोंको लाकर अपने दुर्गमें रख दिया। गो-हत्याके भयसे कुंवर सिंहके मनुष्योंने अंग्रेजोंपर गोली चलाना बन्द कर दिया। अंग्रेज लोग गायोंके पीछेसे गोलियोंकी वृष्टि करने लगे। यद्यपि अंग्रेजोंने अपनी बुद्धिसे कुछ कालतक अपनी प्राण-रक्षा की तथापि वे कुंवर सिंहको शीघ्र ही परास्त नहीं कर सके। उस समय कुंवरसिंहके प्रतापरूपी सूर्यसे दशों दिशाएं प्रकाशित हो रही थीं। शाहाबादको उन्होंने कुछ कालतक अपने अधिकारमें कर लिया। इनके प्रतापमें धब्बा लगाना तो दूरकी बात है अंग्रेज लोग दुर्गके बाहर निकलतक नहीं सके। दुर्गमें जो खाद्य वस्तुएं थीं धीरे धीरे वे समाप्त हो गयीं। खाद्य वस्तुओंके समाप्त होनेसे उन्हें महान कष्ट होने लगा। उस समय उन्हें संसार अन्धकारमय मालूम होता था। इस दुःखसे छुटकारा पानेके लिये उन लोगोंने ईश्वरसे प्रार्थना की। मानों ईश्वरने उनकी कातर प्रार्थना सुन ली, दूसरी जगहसे एक सेना उनकी सहायताके लिये आ पहुंची। दानापुरके सेनापतिको जब यह समाचार मिला कि कुंवर सिंहने आराके अंग्रेजोंको घेर लिया है तब उसने पटनाके कमिश्नर

टेलर साहबकी सम्मतिसे कुछ अंग्रेज एवं सिक्ख सिपाहियोंको उनके रक्षणार्थ आरा भेजा। उस सेनामें चार सौ सिपाही और पन्द्रह नायक थे। वे लोग कप्तान डानवरके अधीन जहाज द्वारा आराकी ओर चले। २९ वीं जुलाईको दो पहरके पश्चात् वे लोग जहाजसे उतरे। सभी सिपाही अनाहार रहनेके कारण कातर हो रहे थे, अतः वे लोग जहाजसे उतरते ही भोजन बनानेका प्रबन्ध करने लगे। आराकी राहमें कुछ दूरतक जल था अतः भोजनादिके पश्चात् वे लोग नौकाकी खोजमें लगे। ठीक समयपर उन लोगोंको नौका मिल गयी। नौका द्वारा पार होकर वे लोग स्थल मार्गसे आराकी ओर चले। इस समय दो पहर रात बीत गयी थी। थके सिपाहियोंने मि० डानवरसे उस रातको विश्राम करनेकी आज्ञा मांगी। डानवर साहबने उनकी प्रार्थना नहीं सुनी। आराके असहाय अंग्रेजोंके दुःखसे वे कातर हो रहे थे अतः उनके उद्धारके लिये उन्होंने उसी रात्रिको अपनी सेनाको अग्रसर होनेके लिये कहा। सिपाहीगण कप्तानकी आज्ञासे गम्भीर रात्रिकी शान्तिको भङ्ग करते हुए धीरे धीरे आगे बढ़े। सैनिकगण जब आराके निकट पहुंचे उसी समय पार्श्ववर्त्ती आम्रकानन जल उठा। निशीथ रात्रिमें अकस्मात् एक आम्रकाननमें प्रज्वलित अग्निको देखकर अंग्रेज लोग घबड़ाये। क्षणभरमें अंग्रेज सैनिकोंपर गोलियोंकी वृष्टि होने लगी। गोलियोंके आघातसे सभी वीर सदाके लिए वीरशय्यापर सो गये।

कप्तान डानवर भी मारा गया। कुछ बचे हुए सैनिक आगे न बढ़कर सोन नदकी ओर भागे। कुँवरसिंहने इस प्रकार अंग्रेजोंकी सेनाओंको मार भगाया। आराके घिरे हुए अंग्रेजोंने जब गम्भीर रात्रिमें बन्दूक की ध्वनि सुनी तब उन लोगोंने समझा कि अंग्रजी सेना उनके उद्धारके लिये आ पहुंची, परन्तु उनकी आशा निराशारूपमें पलट गयी। धीरे धीरे यह शब्द रात्रिके अन्धकारमें लीन हो गया और आराके घिरे हुए अंग्रेजोंका हृदयाकाश निराशा एवं विषादरूपी मेघोंसे आच्छादित हो गया। सवेरे एक विपक्षदूत वेश बदलकर दुर्गमें पहुंचा। घिरे हुए अंग्रेजोंने जब उन सेनाओंको दुरवस्था सुनी तब वे लोग निराश हो भाग्यको कोसने लगे। इस समय दुर्गस्थ अंग्रेज लोग बड़ी दुर्गतिमें थे, क्योंकि दुर्गमें जल भी नहीं था। पिपासाके कारण उनके प्राण कण्ठगत हो रहे थे। दुर्गस्थित सिक्ख वीरोंने जलाभावके कारण उन्हें व्याकुल देखकर एक कुआ दुर्गके भीतर खोद दिया। उसी कूपके जलसे अंग्रेजोंने अपनी प्यास बुझायी। इसी प्रकार अंग्रेज लोग एक संकीर्ण गृहमें एक सप्ताहतक बन्द रहकर अनेकों कष्ट सहते रहे। दूसरी अगस्तको सवेरे ही कुछ दूर बन्दूककी ध्वनि सुन पड़ी। इस समय दुर्गस्थ अंग्रेजोंके हृदयमें आशा एवं निराशा और हर्ष तथा विषादकी तरंग उठने लगीं। विन्सेण्ट आयर नामका एक सेनापति अपनी सेना लेकर कलकत्तासे प्रयाग जाता था। बक्सर पहुंचनेपर उसने आराकी घटनाके

उनका हृदय पवित्र वीर-धर्मरूपी अलंकारोंसे अलंकृत था। सेनापति आयर पहली अगस्तकी सन्ध्याको गउराजगंज नामकी एक छोटी बस्तीमें पहुँचा। रास्तेके दोनों ओरका धान्य-क्षेत्र जलमें डूब गया था। मार्गमें वहांसे थोड़ी ही दूरपर घने वृक्षोंकी श्रेणी थी। अंग्रेज सैनिकोंकी गति रोकनेके लिये कुँवर सिंहने वहींपर सेना एकत्रित की थी। आयर साहबने दूसरी अगस्तको सवेरे ही यात्रा प्रारम्भ करनी चाही, इस समय बाजेकी आवाज सुन पड़ी। बाजेके शब्दसे कप्तानने समझ लिया कि विपक्षी लोग निकट ही युद्धकी तैयारी कर रहे हैं। शीघ्र ही उन्हें कुँवर सिंहकी सेना दीख पड़ी। अंग्रेज लोग भी तैयार हो गये। उधर कुँवर सिंहकी सेना वृक्षोंकी श्रेणीसे होकर गोलियोंकी वृष्टि करने लगी। इधर कप्तानकी आज्ञासे अंग्रेज सैनिकोंने तोपद्वारा गोला बरसाना प्रारम्भ किया। कुँवर सिंहके सिपाही बड़े ही बहादुर एवं साहसी थे। उनकी संख्या भी अंग्रेजोंकी अपेक्षा बहुत अधिक थी। उन्हें तोपें न थीं और उनकी बन्दूकें भी अच्छी न थीं। इसहीनताके कारण वे लोग अधिक समयतक अंग्रेजोंकी गति रोक नहीं सके। कुँवर सिंहकी सेना पीछे हट गयी और अग्रेज लोग आगे बढ़े। आगे जाकर अंग्रेजोंकी गति रुक गयी। राहमें एक नदी थी जिसे पार करनेके लिये एक पुल था। कुँवर सिंहने पुल तोड़ दिया था अतः अंग्रेज लोग आगे बढ़ नहीं सके। उन लोगोंने दक्षिणकी ओर लौटकर रेलवे बांधसे पार

होना चाहा। एक रास्ता इधरसे भी आराकी ओर गया है। अंग्रेजोंने इसी रास्तेसे जाना चाहा। कुँवरसिंहने इधर भी उन लोगोंको नहीं छोड़ा। वे नदीके दूसरे तटपर अपनी सेनाके साथ अंग्रेज सैनिकोंकी प्रतीक्षा कर रहे थे। अबकी भी अंग्रेजोंने गोलावृष्टि प्रारम्भ कर दी परन्तु इस बार कुँवर सिंह असीम साहसके साथ डटे रहे। इस भयंकर युद्धमें उन्होंने अंग्रेजोंको आगे बढ़ने नहीं दिया। बांधके निकट घने वृक्षोंका एक छोटा जंगल था। अंग्रेज सैनिक ज्योंही बांध पार करके आराकी राह-पर पहुचे त्योंही कुँवर सिंह ससैन्य जंगलमें घुस गये। क्षण भरमें वे लोग जंगलके भीतर छिप गये और वहांसे गोलियोंकी वृष्टि करने लगे। दनादन गोलियोंके आघातसे कप्तान आयरके सैनिक घबड़ा उठे। वे लोग आगे बढ़ नहीं सके। कुंवरसिंहने बड़ी वीरताके साथ उनपर आक्रमण किया। ये लोग इस युद्धमें कुंवरसिंहसे परास्त हो गये। वृद्ध राजपूतके साहस एवं पराक्रमसे अंग्रेज लोग आश्चर्यान्वित हो गये। इन लोगोंने भी विपक्षियोंपर गोलियां चलायी थीं परन्तु साहसी राजपूतोंके निकट इनकी एक न चली। अंग्रेजी सैन्यको पीछे हटते देख राजपूतोंने आगे बढ़कर उनकी तोपें छीन लेनी चाहीं। जब राजपूत वीर तोपके निकट चले गये तब कप्तानके आदेशसे अंग्रेजों-ने भाला, बरछा, तलवार इत्यादि चलाना आरम्भ कर दिया। इस समय राजपूतोंके पास भाला, बरछा इत्यादि नहीं था, अतः वे लोग इधर उधर भाग गये और अंग्रेज लोग धीरे धीरे आरा

पहुंचे। आराके घिरे हुए अंग्रेजोंको जब यह समाचार मिला तब उनके आनन्दकी सीमा नहीं रही।

इधर बाबू कुंवर सिंह अपने घर जगदीशपुरको चले गये। उनके कितने घायल सिपाहियोंको अंग्रेजोंने बन्दी बना लिया। कप्तान आयरने उन घायल सिपाहियोंपर कुछ भी दया न दिखलायी। उनकी आज्ञासे दो घायल सिपाहियोंको प्राणदण्डकी सजा मिली। अंग्रेज वीर इसी तरह वीर-धर्मकी अवहेलना करते हुए धीरे धीरे ग्यारहवीं अगस्तको जगदीशपुरकी ओर बढ़े। जगदीशपुरके मार्गमें छोटे छोटे जंगल थे। कुंवर सिंहने इन जंगलोंमें कुछ वीरोंको एकत्रित कर रक्खा था। उन लोगोंने अंग्रेजोंको रोकनेकी पूरी कोशिश की परन्तु सफलमनोरथ नहीं हो सके। कप्तान आयरने जगदीशपुर पहुंचकर कुंवर सिंहकी सारी सम्पत्तिपर अधिकार जमा लिया। यहांतक कि देवालय भी नहीं बच सका। कुंवर सिंहने बहुत धन व्यय करके देवमूर्त्ति स्थापित की थी। अंग्रेजोंने मूर्त्ति नष्ट करके हिन्दूधर्मका बड़ा भारी अपमान किया। अमरसिंह और दयालसिंह कुंवर सिंहके भाई थे, अंग्रेजोंने उनके निवास-गृह भी नष्ट कर दिये। जगदीश-पुरसे कुछ दूरपर कुंवर सिंहका एक और भी मकान था, अंग्रेजोंने उसे भी नष्ट कर दिया। जिस समय वह परास्त होकर भागे, जगदीशपुरकी सहस्रों स्त्रियां उनके साथ हो गयीं। उन स्त्रियोंने पकड़े जाकर मारे जानेकी अपेक्षा लड़कर प्राण त्यागना अच्छा समझा। उन स्त्रियोंके हृदय सच्ची वीरतासे भरे हुए थे।

जिस समय कुंवर सिंहने अपने गृह एवं देवालयके नष्ट होनेकी बात सुनी उस समय वे क्रोधके मारे पागलसे हो गये। जगदीशपुर पहुंचकर उन्होंने अंग्रेजोंको मार डालना चाहा। शीघ्र ही एक बड़ी अंग्रेजी सेना आ पहुंची। इस समय कुंवर सिंहके दलके सभी स्त्री पुरुष युद्धवेषमें सुसज्जित होकर अंग्रेजोंपर टूट पड़े। यहांपर क्षत्रिय महिलाओंने अपने असीम साहसका परिचय दिया। जब राजपूत स्त्रियोंने देखा कि जयकी आशा नहीं है तब उन लोगोंने स्वयं अपना प्राण विसर्जन कर दिया। इस तरह डेढ़ सौ स्त्रियोंने शान्त भावसे अपने प्राण त्यागकर अक्षय कीर्त्ति लाभ की। जगदीशपुर नष्ट हो गया। परन्तु कुंवर पकड़े नहीं गये। लोग कहते हैं कि वे ससरामकी ओर चले गये। सच्ची बात तो यह है कि पूर्ण चेष्टा करनेपर भी अंग्रेज लोग उन्हें पकड़ नहीं सके। एक समय वे हाथीपर सवार होकर गंगापार हो रहे थे कि अकस्मात् विपक्षियोंकी गोली उनके बायें हाथमें लग गयी। उन्होंने अपना घायल हाथ काटकर गंगामें फेंक दिया और कहा-"मा गङ्गे! अपनी सन्तानकी यह अन्तिम भेंट स्वीकार करो।" वियन्नावस्थामें वे हाथीकी पीठपर चढ़े हुए सदाके लिये भागीरथीके गर्भमें सो गये।

कुंवर सिंहको निम्न लिखित कहानी बहुत अच्छी लगती थी। जब कभी वह अंग्रेजोंके कार्यसे छुट्टी पाकर स्थिर होते तो इस कहानीको बड़े आनन्दसे साथ सुनते थे। कथा यों है—

"एक समय महाराज विक्रमादित्य अपने भाई भर्तृहरिको

राज्य-भार सौंपकर स्वयं साधुके वेषमें भ्रमणार्थ निकले। जाते समय वे अपने भाईसे कह गये कि 'यदि राज्यमें कोई विषम समस्या उपस्थित होगी तो मैं आकर उचित परामर्श दूंगा। वह यह भी कह गये कि मैं तो किसी निश्चित स्थानमें रहूंगा नहीं अत मुझे इस बातकी सूचना देनेके लिये सारे राज्यमें सांकेतिक घोषणा दे देना। बस, मैं कहीं भी रहूं गुप्त रीतिसे यहां आकर परामर्श दे दूंगा। मैं यहां इस रूपमें नहीं आऊंगा अतः तुम्हारे द्वारपाल मुझे न पहचानेंगे। मैं सांकेतिक वाक्य कहला दूंगा बस उस वाक्य-के सुनते ही समझ जाना कि मैं आ गया।' ये बातें कहकर वीर विक्रमादित्य साधुके वेषमें भ्रमणार्थ चले गये। भर्तृहरि नियमा-नुसार राज्य भार चलाने लगे।

कुछ दिनोंके पश्चात् राज्यमें एक विषय समस्या उपस्थित हुई। उन्होंने सारे राज्यमें सांकेतिक घोषणा दे दी। वीर विक्रमादित्य यह घोषणा सुनकर शीघ्र ही राज द्वारपर पहुंचे। आधी रातके समय वे राज प्रासादके दरवाजेपर पहुंचे। द्वार-पालोंने उन्हें नहीं पहचाना अत वे उनकी प्रार्थना स्वीकार नहीं कर सके। बहुत विनती करनेपर द्वारपाल इस बातपर सहमत हुए कि मैं आपका सन्देश राजातक पहुंचा दूंगा। द्वारपाल शयनगृहके द्वारपर जा कर बोला—"महाराज! एक अपरिचित साधु आपसे मिलना चाहता है और अमुक बात कहता है" भर्तृहरिने सांकेतिक बातें सुनकर शीघ्र ही उस सन्यासीको

अपने निकट बुलाया। द्वारपालगण संन्यासी विक्रमादित्यको महाराज भर्तृहरिके शयन-गृहमें लिवा लाये। जब विक्रमादित्य भर्तृहरिके शयन-गृहमें आये तो उन्होंने वहां रक्त-धारा देखी। उन्होंने भर्तृहरिसे पूछा कि यह रक्त-धारा कैसी? पहले तो भर्तृहरिने इस बातको टालना चाहा पर बहुत आग्रह करनेपर उन्होंने कहा—"मैंने ही अपनी स्त्रीको इस तलवारसे काट दिया है। इस विलक्षण रात्रिमें यदि मैं आपसे सलाह करनेके लिये बाहर आता या स्त्रीको यहांसे हटाकर आपसे परामर्श लेता तो वह सन्देह करती। ऐसे गम्भीर विषयमें आपसे सलाह लेना था कि मैं कलके लिये ठहर नहीं सकता था अतः उसे ही टुकड़े करके सारा झंझट मिटा दिया। इसके लिये कौन सी चिन्ताकी बात है, इच्छा होनेसे तो दूसरी शादी शीघ्र हो जायगी।" ये बातें सुनते ही विक्रमादित्यका मुखमण्डल गम्भीर हो गया, ललाटकी रेखाएं सिमट गयीं। उन्होंने कहा—"भाई! अब परामर्श देनेकी आवश्यकता नहीं है।" उपर्युक्त बातें कहकर विक्रमादित्य शीघ्रही वहांसे चले गये। कुंवर सिंहने ये बातें सुनकर कहा—"भर्तृहरिने बहुत ही अच्छा किया। राजनैतिक विषयमें मनुष्यको ऐसा ही दृढ़ रहना चाहिये।"

पाठक अब समझ गये होंगे कि बाबू कुंवर सिंह राजनीतिक बातोंको कितने गौरवकी दृष्टिसे देखते थे। शाहाबाद जिलामें कुंवर सिंहका ऐसा प्रताप था कि कोई भी मनुष्य अपने दरवाजे-पर बैठकर तमाकू पीनेका साहस नहीं करता था। शाहाबाद

जिलाका इतिहास इस साहसी, प्रतापी, कार्य्य-दक्ष, दृढ़प्रतिज्ञ युद्ध राजपूतकी जीवनीसे पवित्र समझा जायगा। जीवनकी अन्तिम अवस्थामें उन्हें बाध्य होकर अंग्रेजोंके विरुद्ध शस्त्र धारण करना पड़ा। दुःखके साथ कहना पड़ता है कि उनकी बुद्धिकी स्थिरता, दूरदर्शिता एवं गम्भीरताका पूर्णरूपसे विकास नहीं हो सका।

लक्ष्मीबाई

उन्नीसवीं शताब्दीमें एक सच्ची वीर नारी हुई, उसका नाम था लक्ष्मीबाई। जिस समय अंग्रेजोंका प्रतापरूपी सूर्य हिमालय पर्वतसे कुमारी अन्तरीपतक और सिन्धुनदसे ब्रह्मपुत्रतक चमक रहा था उसी समय लक्ष्मीबाईने स्वाधीनताके गौरवकी रक्षाका संकल्प किया और अपने असाधारण वीरत्वसे अंग्रेजोंके विरुद्ध खड़े होकर उनको चकित कर दिया। लक्ष्मीबाई जिस तरह सरलहृदया और दयालु थी उसी तरह स्थिरचित्त और दृढ़प्रतिज्ञ भी थी। लक्ष्मीबाईमें विधाताने मधुरता, कोमलता एवं सुन्दरताके साथ साथ भयंकर भावोंका समावेश किया था। मानों वीणाके मधुर रवके साथ साथ पर्वतोंपर होनेवाले भैरव-रवका सम्मिश्रण हो गया था। इस लावण्यमयी वीर नारीकी वीरताकी कहानी सुनकर चकित होना पड़ता है।

लक्ष्मीबाई कौन थी ? क्यों उसने अंग्रेजोंके विरुद्ध शस्त्र उठाया जिसकी शक्तिके आगे विजयी मरहट्ठोंको भी सिर नवाना पड़ा, पंजाबकेशरी भी जिस शक्तिको रोक न सके, जिस शक्तिके विरुद्ध बंगाल, बिहार, पंजाब और मद्रासमें कोई भी खड़ा न हो सका था ? इङ्गलैण्डकी वणिक-समितिका एक कर्मचारी भारतमें आया था जिसने अन्तमें अशोक एवं भोज

ऊँची क्षमता दिखलायी थी। क्यों ऐसी शक्तिके विरुद्ध एक स्त्री खड़ी हुई, उसीका उल्लेख यहां किया जायगा।

लक्ष्मीबाई मोरोपन्त नामक एक महाराष्ट्रीय ब्राह्मणकी कन्या थी। मोरोपन्त बाजीराव पेशवाके सहोदर चिमाजी अप्पा साहबके प्रियपात्र थे। अप्पा साहबके साथ वे काशीमें ही रहते थे। उनकी प्रियतमा भार्या भागीरथीबाई स्वामीके साथ रहती थी। उसी पवित्र भूमिमें उन्हें एक कन्या हुई जिसका नाम मनुबाई रक्खा गया। मनुबाई ही पीछे लक्ष्मीबाई कहलायी।

इसी समय बाजीराव पेशवा सरकारसे आठ लाख रुपयेकी वृत्ति लेकर राज्य छोड़ कानपुरके निकट बिठूरमें रहते थे। अप्पा साहबकी मृत्युके बाद मोरोपन्त अपनी स्त्री और कन्याके साथ बिठूर जाकर राजच्युत पेशवाके आश्रयमें रहने लगा। वहींपर मनुबाईकी बाल्यावस्था पेशवाके दत्तक पुत्र नाना साहबके साथ खेल कूदमें कटी। मनुबाईके सुन्दर मुखमण्डल एवं सुनहली कान्ति-युक्त शरीरको देखकर बाजीराव और उसके सहचरगण बहुत प्रीति करते थे। एक बार किसी एक ज्योतिषीने इस बालिकाकी जन्मकुण्डलीको देखकर कहा कि किसी समय यह रानी होगी। ज्योतिषीका वचन यथार्थ निकला।

भारतवर्षके अन्तर्गत बुन्देलखण्डके पार्वत्य प्रदेशमें झांसी नामक स्थानमें एक छोटा राज्य स्थापित था। झांसी बड़े ही

मनोहर स्थानमें है। उसके उत्तर और दक्षिणमें पर्वत-माला शोभायमान है। पर्वतके निचले भागमें हरे हरे वृक्ष उसकी शोभाको और भी बढ़ा रहे हैं। बीच बीचमें जला-शयकी अपूर्व शोभा मनको मोह लेती है। इस क्षुद्र राज्य-की परिधि १५६७ वर्गमील है। पहले तो झांसी महारा-ष्ट्रकुल-गौरव पेशवाके अधीन थी पर १८१७ ई०में यह ब्रिटिश गवर्नमेंटके अधिकारमें चली आई। परन्तु नाम-के लिये उसी खान्दानके राजा राज्यपर बिठलाये जाया करते थे। १८३८ ई०में गङ्गाधरराव झांसीकी गद्दीपर बैठे। जब इन-की पहली धर्मपत्नी मर गई तब इन्होंने दूसरी बार मनुबाई-का पाणिग्रहण किया। जिस समय मनुबाई राजधानीमें आयीं उस समय प्रजा उसकी सुन्दरतापर मुग्ध होकर उसे लक्ष्मी-बाई कहने लगी।

१८५८ ई० में गंगाधरराव मर गये। उन्हें कोई लड़का न था अतः मृत्युके पहले ही उन्होंने एक दत्तक पुत्रको गोद लेकर ब्रिटिश रेजिडेण्टको यह लिखा कि, "मैं इस समय बहुत बीमार हूं। मुझे इस बातका बहुत दुःख है कि मेरे पूर्वपुरुषों-का नाम मिटा जा रहा है अतः सन्धिकी द्वितीय धाराके अनुसार एक अपने आत्मीयके पांच वर्षके बालक आनन्दरावको अपना दत्तक पुत्र बनाता हूं। यदि ईश्वरकी कृपासे मैं चंगा हो गया और मुझे कोई पुत्र हुआ तो मैं अपनी इच्छाके अनुसार कार्य करूंगा; परन्तु यदि मैं मर गया तो यह बालक मेरी

समस्त सम्पत्तिका अधिकारी समझा जायगा। इसे अपनी माता और मेरी पत्नीके प्रति असद्व्यवहार करनेका अधिकार नहो है।

मृत गंगाधररायकी लेखनीसे ऐसे ही नम्र वाक्य निकले थे। उनका यही अन्तिम लेख था। परन्तु शोक है कि इस अनुरोधकी रक्षा नहीं की गयी। इस समय भारतवर्षका गवर्नर था लार्ड डलहौसी। इसीने पंजाबकी सन्धि भंग कर रणजीतसिंहके राज्यमें ब्रिटिश पताका उड़ायी थी। इसीने ही अन्यायसे इतिहासप्रसिद्ध सितारा राज्यपरसे मरहट्ठोंका अधिकार लुप्त कर दिया था। तब झांसीके सम्बन्धमें उसके विचार क्योंकर बदल सकते थे? डलहौसीने अवसर देखकर सितारकी तरह झांसीपर अधिकार प्राप्त करनेकी ठान ली। फिर क्या था शीघ्र ही घोषणा द्वारा झांसी मरहट्ठोंके अधिकारसे निकल गयी।

झांसी ब्रिटिश राज्यमें मिला ली गयी सही परन्तु तेजस्विनी लक्ष्मीबाई ब्रिटिश गवर्नमेण्टके इस व्यवहारसे बहुत दुःखी हुई। उसका राज्य दूसरेके अधिकारमें गया। एक विदेशी पुरुषने उसके दत्तक पुत्रसे राज्याधिकार छीन लिया, यह सोचकर लक्ष्मीबाई मर्माहत हुई। लक्ष्मीबाईका हृदय उच्च भावोंसे परिपूर्ण था। मेजर मालकमने साफ तौरपर लिखा है कि लक्ष्मी बाई बहुत माननीया थी, उसका स्वभाव बहुत ही उच्च था। झांसीकी सभी प्रजा उसे सम्मानकी दृष्टिसे देखती थी। इस तरहकी वीरांगनाने सरकारसे दत्तक पुत्र लेने एवं राज्य-

का भार चलानेकी प्रार्थना की परन्तु उसकी यह प्रार्थना नहीं सुनी गयी। इस अन्यायसे लक्ष्मीबाई बहुत दुःखी हुई थी। अटलता, अध्यवसाय एवं दृढ़ प्रतिज्ञा आदि उसके हृदयमें कूट कूटकर भरे हुए थे। विघ्न और विपत्तियोंसे वह कभी भी घबड़ाती नहीं थी।

लक्ष्मीबाईने अपनी दशा सुधारनेकी प्रतिज्ञा की। ब्रिटिश एजेन्टके निकट जाकर गम्भीर स्वरमें बोली—"क्या मेरी झांसी मुझे नहीं दोगे!" वीर रमणीके ये वाक्य सुनकर एजेन्ट चकित हो गया। झांसी ब्रिटिश कंपनीके अधिकारमें रहा पर वीर रमणीके हृदयपर इसकी गहरी चोट पहुंची।

१८५७ ई० में जिस समय सिपाहीविद्रोह हुआ उस समय भारतवर्षमें एक भयंकर दृश्य देखनेमें आया था। कानपुर, मेरठ, दिल्ली इत्यादिके साथ साथ बुन्देलखण्डपर भी इसका प्रभाव पड़ा। झांसीके रहनेवाले अंग्रेजोंमें कुछ तो मारे गये और कुछ भाग गये। उस समय लक्ष्मीबाईने बलवाइयोंको झांसीसे निकाल दिया था और स्वयं कम्पनीके नामसे राज्य करने लगी थी। अंग्रेज कर्मचारियोंने उसके मनोगत भाव एवं भावी परिणामको सोचकर छेड़ छाड़ नहीं किया। विद्रोहियोंने उसे अपना शत्रु नहीं समझा था इसीसे वे लोग उसके विरुद्ध लड़नेको तैयार नहीं हुए। इस कुसमयमें लक्ष्मीबाईने झांसीमें शान्ति-भङ्ग नहीं होने दिया। अंग्रेजोंने उसके इस उपकारके बदले उसे अपना शत्रु बना लिया। तेजस्विनी लक्ष्मीबाई अंग्रेजोंके

अधीन न हुई और आत्मसम्मानकी रक्षाके निमित्त सैन्य संग्रह करने लगी। उस समय इसने स्त्रीका वेष परित्याग करके योद्धाका वेष धारण किया। उसका लावण्यमयी सुन्दर शरीर वीर वेषमें और भी सुन्दर मालूम पड़ता था। उन्नीसवीं शताब्दीमें भारतकी एक वीरांगना सुशिक्षित अंग्रेजी सेनाके साथ लड़नेको तैयार हुई। पक्षपाती विदेशी चाहे कुछ भी कहें पर सहृदय कवि एवं सत्यप्रिय इतिहासज्ञ अपनी लेखनी द्वारा इस दृश्यकी सदा प्रशंसा करेंगे। कौन जानता था कि प्रतापी अंग्रेजोंके शासनकालमें ही भारतवर्षमें ऐसा अपूर्व दृश्य देखनेमें आवेगा? कौन जानता था कि पराधीन भारतीयोंमेंसे एक कोमलांगी घोड़ेपर सवार होकर, हाथमें कठिन शस्त्र धारणकर स्वाधीनताके लिये लड़नेको तैयार होगी? जिस सुन्दर मूर्त्तिको देखकर सबके नेत्र तृप्त होते थे किसने सोचा था कि यह अग्निकी एक ऐसी चिनगारी निकलेगी जो चारों दिशाओंको अपने तेजसे दग्ध कर देगी? बहुत दिन नहीं बीते थे कि भारतवर्षमें इस तरहके परिवर्त्तन दृष्टिगोचर होने लगे। निर्जीव, निश्चेष्ट और निष्क्रिय भारतीयोंमें जान आ गयी। भारतकी उस विधवा नारी रमणीने भयंकर रूप धारण किया। वह कोमल पुष्प कठोरतामें परिणत हो गया।

लक्ष्मीबाईने वीर पुरुषका वेष धारण किया। कोमल शरीर कठिन कवचसे मजबूत था और कोमल हाथमें कठिन तलवार शोभा दे रही थी। इस सुन्दरीकी लावण्यराशिसे अपूर्व आत्म-

णताका आविर्भाव हुआ। सहृदय पाठक हु:खी, दरिद्र एवं हत-भाग्य भारतकी शोचनीय अवस्थाको स्मरण रखते हुए एक बार सोचें और कल्पनाकी सहायतासे इस भयंकर मूर्त्तिको देखें तो अवश्य ही उनके हृदयमें एक अनिर्वचनीय भावका संचार होगा। लक्ष्मीबाई पुरुषके वेषमें घोड़ेपर सवार होकर अपने सैनिकोंको आगे बढ़नेके लिये उत्तेजित कर रही थी। शीघ्र ही ब्रिटिश सैनिकोंके साथ उसे लड़ना पड़ा। ऐसे प्रबल शत्रुको देख-कर लक्ष्मीबाई तनिक भी न घबड़ायी। कई महीनेतक निर्भय होकर वह असीम साहसके साथ अंग्रेजोंसे लड़ती रही। सुदक्ष ब्रिटिश सैनिक इस वीरांगनाके अद्भुत रण-कौशल और असा-धारण साहसको देखकर चकित हुए और लक्ष्मीबाईकी प्रशंसा करने लगे।

लक्ष्मीबाईके अतिरिक्त आजतक किसीने भी सेनापति सर हिउरोजको नहीं छकाया था। पहली लड़ाईमें तो लक्ष्मी-बाईने अलौकिक साहसका परिचय दिया। उसके रण-कौशल-से ब्रिटिश सेनापति सर हिउरोजके सैनिक तितर बितर होने लगे थे। अनन्तर लक्ष्मीबाईके अधिकांश सैनिक मारे गये परन्तु उसकी तेजस्विताकी मात्रा कम नहीं हुई। उन्हें एक बार और भी कालपी नगरमें अंग्रेजोंसे लड़ना पड़ा। अन्तमें कालपी अंग्रेजोंके ही अधिकारमें रहा। इस समय भी लक्ष्मीबाई उत्साहहीन या निरुद्यम न हुई। राज्य दूसरेके अधिकारमें चला गया और राज्यका सच्चा अधिकारी साधारण मनुष्यकी

तरह अपना जीवन व्यतीत कर रहा है अतः लक्ष्मीबाईने उसकी शक्तिका ह्रास करनेको ठाना।

लक्ष्मीबाई इस उद्देश्यकी सिद्धिके निमित्त प्राणतक देनेको तैयार थी। वीर रमणी कभी भी इस प्रतिज्ञासे च्युत न हुई। उसकी वीरताकी उज्ज्वलतामें कहीं भी कालिमा नहीं नजर आती। १८५८ ई० के १७ वीं जूनको लक्ष्मीबाईने ग्वालियरके निकट एक बार और भी एक अंग्रेज़ी सेनासे युद्ध किया। यही उसका अन्तिम युद्ध था। इसी युद्धमें उसने शरीर त्याग किया। इस भयानक युद्धमें लक्ष्मीबाई अपने सैनिकोंके आगे थी। घोर संग्राम होनेके पश्चात् उसकी एक सहचरी शत्रुके व्यूहमें घुसने लगी। इस समय एक अंग्रेज सैनिकने सहचरीपर शस्त्र चलाया। लक्ष्मीबाई अपनी सहचरीके घातकका सिर अपनी तलवारसे काटकर वहांसे लौटी।

राहमें एक गढ़ा पड़ा वहीं उसके घोड़ेकी गति रुक गयी। लक्ष्मीबाईने घोड़ा चलानेकी पूर्ण चेष्टा की पर वह कृतकार्य्य न हो सकी। इसी समय एक अंग्रेज सैनिक जो घोड़ेपर सवार होकर उसका पीछा कर रहा था वहां आ पहुंचा। लक्ष्मीबाई भी युद्ध करनेपर तैयार हो गयी। अपनी तलवारकी सहायतासे उसने आक्रमणकारीके वारको रोक दिया। दूसरी बार सैनिककी तलवार उसके सिरमें आ लगी। इस अवस्थामें भी उसने अपनी तलवारसे शत्रुको मार गिराया पर उसका शरीर भी शस्त्राघातसे घायल हो गया था। उसका एक विश्वस्त अनुचर उसे एक

पासकी झोंपड़ीमें ले गया। इस समय लक्ष्मीबाई प्यासके मारे व्याकुल हो रही थी। उसने झोंपड़ीवालेसे पानी मांगा और उसके दिए हुए गंगाजलको पीकर वीर लक्ष्मीबाई परलोक सिधारी।

आत्म-सम्मानकी रक्षाके निमित्त प्राण त्यागकर इस वीर रमणीने अलौकिक स्वार्थ-त्यागका उपदेश दिया। भारतीय लक्ष्मीबाईकी प्रशंसा इसलिये नहीं करते कि उसने महा पराक्रमी अंग्रेजोंके विरुद्ध शस्त्र उठाया। उसकी प्रशंसा उसकी वीरता एवं स्वातन्त्र्यप्रियताके लिये करते हैं जो उसमें कूट कूटकर भरी हुई थी। उसकी असामान्य वीरता देखकर सर हिउरोजने कहा था,—"लक्ष्मीबाई यद्यपि नारी है परन्तु विपक्षियोंके सभी वीरोंकी अपेक्षा वह युद्ध-विद्यामें निपुण है। वीर पुरुषने इस वीरांगनाकी सच्ची वीरताको समझा था इसीसे उसकी प्रशंसा की।

असाधारण परोपकार

सन् १८५७ सालमें सिपाहियोंने उन्मत्त होकर अंग्रेज़ोंको समूल नष्ट करनेकी प्रतिज्ञा की थी। चारों ओर भयङ्कर रक्त धारा बह रही थी। अंग्रेज़ और सिपाही दोनों ही प्रतिहिंसा और क्रोधसे उत्तेजित होकर एक दूसरेके साथ निर्दयतापूर्वक व्यवहार करते थे। सारे भारतमें हलचल मच गया था और सबको सदा विपत्तिकी आशंका बनी रहती थी। इस विपत्तिके समयमें भारतकी एक दयालु युवतीने अपनी दयाका अपूर्व परिचय दिया। अपने प्राणको संकटमें रखकर उसने विदेशी, विधर्मी कुलकामिनियों तथा शिशुओंको आश्रय दिया। इससे उसने असाधारण परोपकार तथा स्वाभाविक मनुष्यप्रेमका ज्वलन्त उदाहरण संसारके सामने रक्खा।

बूंदीके राजाकी धर्मपत्नीके कोमल हृदयमें इस तरह दयाका अपूर्व भाव उदय हुआ था। बूंदीके राजा सिपाहियोंकी ओरसे युद्धमें सम्मिलित हुए थे। इधर उनकी दयालु स्त्रीको मालूम हुआ कि नित्य अनेकों अंग्रेज मारे जाते हैं। उनकी स्त्रियां तथा उनकी संतानें धूप और वृष्टिमें यों ही जंगलों जंगलों मारी फिरती हैं। ये लोग कितने ऐश आराममें पाले गये थे पर आज न तो इनको खानेको अन्न मिलता है और न पहननेको वस्त्र। इससे उसका हृदय पिघल गया। वह विश्वस्त

सेवकों द्वारा उनके खानेको अन्न और पहननेको वस्त्र भेजवाने लगी। इनके अतिरिक्त और भी आवश्यक चीजें उनके पास भेजवाया करती थी।

बूंदीके राजा तो युद्धस्थलमें थे। अतः शत्रु के प्रति अपनी पत्नीके इस सद्व्यवहारकी बात उन्हें मालूम हो नहीं हुई। महारानीकी सहायतासे ये लोग सुरक्षित दिल्ली पहुंच गये। यदि महारानी समयपर सहायता नहीं करतीं तो उनमेंसे कितनोंके प्राण नष्ट हो जाते। महारानी जानती थीं कि उनको सहायता करनेसे अपनी हानि है तो भी वह अपने हृदयके भावको नहीं रोक सकीं। उस दयालु नारीने उन निराश्रय नारियों एवं बच्चोंकी सहायता करके अपने उच्च भावका परिचय दिया। परन्तु शोक! यही उपकार और उदारता रानीके नाशका कारण हुआ। राजाके लौटनेके कुछ ही समय पश्चात् महारानी परलोक सिधारीं।

इस घटनाके थोड़े ही दिन पश्चात् महाराजा भी युद्धमें मारे गये। रानीकी आकस्मिक मृत्युका कारण मालूम नहीं है। कुछ लोगोंका सन्देह है कि अंग्रेजोंकी सहायता करनेके कारण रुष्ट होकर राजाने उन्हें मरवा डाला। दयालु अबला दया दिखलानेके कारण घातकके हाथसे मारी गयी।

उक्त विप्लवके समय भारतमें कई जगह भारतवासियोंने दया दिखलायी। अनेक स्थलोंमें उदार तथा दयालु मनुष्योंने इस घोर विपत्तिके समयमें निराश्रय अंग्रेजोंकी सहायता की।

फैजाबादके डिप्टी कमिश्नर जब कचहरीमें गये तो मालूम हुआ कि आसपासके सिपाही लोग युद्ध करनेके लिये तैयार हैं। यह संवाद सुनकर अपनी स्त्रीको एक विश्वस्त नौकर के साथ नदीके तटपर भेज दिया। उधर डिप्टी कमिश्नर अन्यान्य कर्मचारियोंके साथ सिपाहियोंके निवासस्थानपर गये। सिपाही लोग इस समय धन लूटने तथा अंग्रेजोंको नष्ट करनेके लिये चारों ओर घूम रहे थे। सन्ध्या होनेपर अंग्रेजोंकी स्त्रियां डरती हुई एक छोटेसे ग्राममें घुसीं। गांवकी एक दयालु स्त्रीने गुप्त रीतिसे इन स्त्रियोंको अपने घरमें रहनेको जगह दी। डिप्टी कमिश्नरकी स्त्री भी वहीं छिपी थी। रात्रिमें सिपाही लोग उसी गांवमें घुसे और भागे हुए अंग्रेजों एवं उनकी स्त्रियोंका खोज खाजकर मारने लगे। उन लोगोंने यह भी कहा कि जो अपने घरमें अंग्रेजोंको छिपा रखेगा उसे प्राणदण्ड मिलेगा। अपने प्राणका भय होनेपर भी उस दयालु स्त्रीने इन्हें सिपाहियोंके हाथमें नहीं सौंपा। जिस समय ये स्त्रियां गांवमें घुसी थीं उस समय वहांके पुरुष लोग खेतमें काम कर रहे थे अतः उन्हें इसकी कुछ भी खबर नहीं थी। उस गांवकी बहुत सी स्त्रियां यह जानती थीं पर किसीने इसे प्रकाशित नहीं किया। जबतक उपद्रव शान्त नहीं हुआ तबतक ये स्त्रियां किसी तरह अपना समय वहीं बिताती रहीं। दूसरे दिन सिपाहियोंके चले जानेके पश्चात् वही विश्वस्त नौकर उस गांवमें गया। उस नौकरने गांवके मुखियासे नौकाके लिये प्रार्थना की। मुखियाने

उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। डिप्टी कमिश्नरकी स्त्री तथा अन्यान्य कई अंग्रेजोंकी स्त्रियां अपने बच्चोंके साथ उस नौका-पर सवार हुईं। उस नौकापर बाहर कई विश्वासपात्र नौकर भी बैठे थे। उन लोगोंने यह प्रकाशित कर दिया कि यह तीर्थ-यात्रियोंकी नौका है। कई जगह विद्रोही सिपाहियोंसे भेंट हुई पर उन लोगोंने यह नहीं समझा कि इसमें अंग्रेजोंकी स्त्रियां हैं। सन्ध्या समय नौकाको सुरक्षित स्थानमें रखकर भृत्यलोग भोजनके प्रबन्धके लिये पासके गांवमें गये। वहांपर भी ग्राम-वासियोंने इनकी सहायतासे मुंह नहीं मोड़ा। एक स्त्री छोटे छोटे बच्चोंको भूखसे पीड़ित देखकर कातर हो गयी। वह दौड़कर गांवसे कई धाइयोंको लायी। अंग्रेजोंकी स्त्रियां बड़ी प्रसन्न हुईं। उन लोगोंने अपने बच्चोंको उन स्त्रियोंके हाथ सौंप दिया। यदि सिपाहियोंको यह खबर मिलती तो ये स्त्रियां निश्चय ही मार डाली जातीं। उन दयालु स्त्रियोंने अपने प्राणोंको हथेलीपर रखकर इन असहाय रमणियोंकी रक्षा की। इस तरह सहायता पाकर ये रमणियां इलाहाबाद पहुंच गयीं।

जो लोग परोपकारके लिये अपने प्राणको भी तुच्छ समझते हैं उनकी तुलना सांसारिक वस्तुओंसे नहीं हो सकती। उनके विचार सदा देवभावसे परिपूर्ण रहते हैं और वे संसारको अपनी असाधारण महानताका परिचय देते हैं। उनके आवि-र्भाव, गौरव तथा अलौकिक कार्य्योंसे यह रोगशोक-युक्त संसार सुख-शान्तिका आगार बन जाता है।

भारतकी स्त्रियां किसी समय इसी प्रकार अटल साहस, अविचलित धीरता तथा अपूर्व दयासे युक्त होकर असहायोंकी सहायता करती थीं। उनके इन कार्य्योंके कारण सहृदय समाजमें उनका सदा सम्मान बना रहेगा।

अकारण साहस

कालचक्रके साथ साथ घूमती हुई उन्नीसवीं शताब्दी भी धीरे धीरे आ पहुंची। देखते देखते भारतवर्षके कई स्थान ब्रिटिश-शासक द्वारा शासित होने लगे। ब्रिटिश कम्पनी धीरे धीरे वणिक-वृत्ति छोड़कर भारत-साम्राज्यके शासन-सम्बन्धी काम करने लगी। गवर्नर जनरल मार्क्विस हेस्टिंग्सके हाथमें भारतवर्षका शासनसूत्र था। इनके शासनकालमें पिण्डारियोंका अधःपतन, नैपालके पार्वत्य प्रदेशमें ब्रिटिश सैनिकोंकी विजयिनी शक्तिका विकास एवं मरहठोंके पराक्रमका नाश हुआ था। लार्ड हेस्टिंग्सके समयमें भारतवर्षकी चारों दिशाओंमें अंग्रेजोंके प्रतापकी घोषणा होने लगी थी।

१८२० ई० के श्रावणका महीना था। इसी समय महाराव किशोरीसिंह कोटाके सिंहासनपर बैठे। नगरके चारों ओर आनन्द-स्रोत प्रवाहित हो रहा था। हाथी घोड़े सजाकर एक ओर खड़े किये गये थे। अश्वारोही सैनिक युद्ध-भेष धारण करके अपूर्व वीरत्वका परिचय दे रहे थे। महाराव किशोरीसिंह सुसज्जित सभा-मंडपमें रत्नजटित सिंहासनपर बैठकर गवर्नर जनरलके सामने राजधर्म-पालन करनेकी प्रतिज्ञा कर रहे थे। पुण्य-भूमि हारावती वहांके बलवान राजपूतोंकी जय-ध्वनिसे गूंज उठी।

लिये सो गये। इस प्रकार प्राण त्याग करके इन वीरोंने अपनी असाधारण तेजस्विताका परिचय दिया। उन्नीसवीं शताब्दीमें हाराबतीके राजपूत ऐसे ही वीर थे। इसी तरहके साहस एवं वीरत्व प्रकट करके अपनी जन्मभूमिको उन्होंने गौरवान्वित किया था।

सच्ची राजभक्ति

समय-स्रोतके साथ साथ प्रवाहित होती हुई, अठारहवीं शताब्दी अतीत कालके गर्भमें सदाके लिये सो गयी। उसकी जगह उन्नीसवीं शताब्दी अपना अधिकार जमाकर चारों ओर अपना प्रभुत्व स्थापित कर रही है। इसके प्रभावसे बहुत कुछ अवस्थान्तर हो गया है। कितने लोग उन्नतिके सोपानपर पैर रखकर आनन्दके साथ अग्रसर हो रहे हैं और कितने अवनतिके मार्गमें पड़कर शोक और अनुतापसे जर्जरित हो रहे हैं। कितने लोग सुख और सम्पत्तिमें भूलकर आनन्द मना रहे हैं एवं कितने दुःखकी पीड़ासे हताश हो इधर उधर मारे २ फिर रहे हैं। समयके प्रवाहके साथ साथ भारतवर्षकी भी अवस्था बदल गयी है। भारतवर्षकी स्वाधीनता जाती रही, तत्साथ आर्यगण शास्त्रानुशीलनसे जो आनन्द पाते थे वह आनन्द भी अब नहीं है। भारतका गौरव दृषद्वती नदीके तटपर चक्रवर्ती राजा पृथ्वीराजकी मृत्युके साथ साथ लुप्त हो गया। भारतके मुसलमानोंका पराक्रम औरंगज़ेबके साथ साथ चला गया। उनका बनवाया हुआ ताजमहल वर्त्तमान है। जुम्मा मसजिद, मोती मसजिद, दीवानी खास और दीवानी आम अभी शिल्पचातुरीका परिचय दे रहे हैं पर तोभी उनकी वीरतापूर्ण सभी बातें लुप्त हो गयीं। इस समय हिन्दू एवं मुसलमान दोनोंकी एकसी दुर्दशा है। जो व्यापारी भारतवर्षमें

केवल व्यापारकी वस्तुयें लेकर आये थे आज वे यहांके सम्राट् बन गये हैं। इस समय उनके प्रतिद्वन्दी फ्रासीसी लोग भी उन्हें सिर नवाते हैं।

मुसलमान राजाओंका प्रताप लुप्त हो गया है। अंग्रेज लोग इस समय असाधारण पराक्रमके साथ भारतवर्षके अनेक अंशोंमें अपना प्रभाव स्थापित कर रहे हैं। मार्किस वेलेस्ली भारतके गवर्नरके पदपर प्रतिष्ठित होकर क्षमतामें चन्द्रगुप्त एवं नेपोलियनकी बराबरी कर रहे हैं। भवानीभक्त प्रातःस्मरणीय शिवाजीके प्रतिष्ठित सम्प्रदायके वीरोंने सारे भारतवर्षको अपने अधिकारमें करनेकी चेष्टा की थी। यह सम्प्रदाय कई दलमें विभक्त होकर अपने बलका क्षय करता हुआ अंग्रेजोंका विरोध कर रहा है।

जिन लोगोंका यह कथन है कि अंग्रजोंने अपने बलसे भारतवर्षपर अधिकार जमाया वे अवश्य ही ऐतिहासिक घटनाओंसे अनभिज्ञ हैं। यदि भारतवासी अंग्रेजोंकी सहायता न करते तो यहापर वे लोग कदापि राज्य स्थापित नहीं कर सकते। पलासीके अम्रकाननमें भारतवासियोंकी ही सहायतासे अंग्रेजोंको जय लाभ हुआ, मासाईके घराश्त क्षत्रमें भारतवासियोंने ही अंग्रजोंको विजयी बनाया, पराक्रमी राजा महावीर यशवन्तराय होलकरकी गति रोकनेके लिये एक भारतवासी ही तैयार हुआ था। सन् १८०० ई० में महाराष्ट्रमें पांच बड़े बड़े राजा थे। उन लोगोंकी राजधानी भिन्न भिन्न

स्थानोंमें थी। पश्चिमघाटके पार्वत्य प्रदेशमें पेशवा लोगोंका आधिपत्य था। पूना उनकी राजधानी थी। गुजरातके अन्तर्गत गायकवारका अधिकार था और इनकी राजधानी बड़ौदा थी। मध्यभारतके अन्तर्गत ग्वालियरमें सिन्धिया एवं इन्दौरमें होल्करकी प्रधानता थी। नागपुरके राघोजी भोंसला पूर्वांशके शासक थे। भारतवर्षके गवर्नर लार्ड मिन्टो मरहठे राजाओंको अपने वशमें करना चाहते थे। पराक्रमी यशवन्तराव होल्कर और अंग्रेजोंमें लड़ाई छिड़ गयी। होलकरने महाराष्ट्रके लुप्त गौरवके उद्धारकी चेष्टासे लड़ाईकी तैयारी की थी। मन्सन् नामक एक अंग्रेज सेनापति इनसे लड़नेके लिये भेजा गया था। इस समय होलकर प्रतापगढ़ नामक स्थानमें थे। अंग्रेजी सैन्यके आनेकी बात सुनकर उन्होंने शीघ्र ही वह स्थान छोड़ दिया। वे चम्बल नदी पार करके अंग्रेजी सेनाकी ओर बढ़े और पचास मीलकी दूरीपर ठहरे। अंग्रेज सैनिक अचानक निकटमें ही विपक्षियोंकी सेना देखकर पीछेकी ओर हटे। मार्गमें मुकुन्द नामक एक पर्वत उन्नत भावसे खड़ा था। अतः कर्नल मन्सनने अपनी रक्षाके निमित्त उस पहाड़को अधिकारमें रखकर प्रत्यावर्त्तन करना प्रारम्भ किया। सेनापति जेनोफनने दस हजार ग्रीस वीरोंके प्रत्यावर्त्तनकी कथाका वर्णन बड़ी कुशलताके साथ अपनी लेखनीसे किया है। इस प्रत्यावर्त्तन-कहानीसे आजतक अदम्य साहस, अविचलित उत्साह एवं अद्भुत पूर्व शक्तिका परिचय मिलता है। यदि भारतवर्षमें कोई जेनोफन

होता तो वह भी सेनापति मनूमनकी प्रत्यावर्त्तन-कहानीका उसी प्रकार वर्णन करता। सेनापतिके प्रत्यावर्त्तन पथको निष्कंटक रखनेके लिये एक भारतीय वीरने किस प्रकार आत्म-त्यागका परिचय दिया, भयंकर शत्रुके सामने अपने हृदयका रक्त बहाकर उसने किस तरह अपनी प्रतिज्ञा पालन की, सहृदय ऐतिहासिक आश्चर्यके साथ इसका वर्णन करेंगे। यह वीर पुरुष हारावतीके राजपूतोंके सरदार अमरसिंह थे। अमरसिंह वीरत्वकी ज्वलंत मूर्त्ति, आत्म-त्यागका अपूर्व दृष्टान्त एवं पवित्र मित्रताके अद्वतीय आश्रयक्षेत्र थे। प्रतिज्ञा-पालनका इन्हें इतना खयाल था कि विदेशी और विधर्मी अंग्रेजोंका रक्षाके निमित्त अपने प्राणतक देनेको प्रस्तुत हो गये।

सेनापति मनूमन् मुकुन्द पर्वतकी ओर बढ़ा। प्रत्यावर्त्तनका मार्ग निष्कंटक रखनेके लिये उसने कोटाके राजपूतोंको मार्गमें रख दिया। इन राजपूतोंके नायक अमरसिंहसे कहा गया कि यदि रिपक्षी उधर आवें तो उनकी गति रोक दी जाये। वीरवर अमरसिंहने इस अनुरोध रक्षाको प्रतिज्ञा की। पीपली नामक एक छोटे गांवके निकट आमजर नामक एक नदी बहती थी। अमरसिंह इसी नदीके उत्तर तटपर पहुंचकर घोड़ेपर चढ़े। अश्व शस्त्रसे सुसज्जित एक हजार वीर उनके चारों ओर थे। अमरसिंहने एक सहस्र वीरोंको लेकर निर्भीकताके साथ आमजरके निकटवर्त्ती मार्गको घेर लिया। शीघ्र ही वहां होलकरकी सेना आ पहुंची। देखते देखते दोनों ओरसे गोलियोंकी वृष्टि होने लगी। प्रत्यक्ष

क्षण अनेकों वीर गिर गिरकर आमजरके जलमें प्रवाहित होने लगे। शत्रु लोग और भी निकट आ गये। सहसा एक गोली अमरसिंहके मस्तकमें, दूसरी गोली उनके वक्ष-स्थलमें प्रविष्ट हुई। अमरसिंह पृथ्वीपर गिर पड़े। क्षणभरके पश्चात् उन्हें होश आया। वे एक वृक्षकी डालीके सहारे उठे और हाथमें तलवार लेकर सैनिकोंको उत्साहित करने लगे।

यद्यपि उन्हें दो जगह गहरी चोट लगी थी तथापि उनके प्रशान्त मुखमण्डलपर विषादका आविर्भा[illegible] युगल नेत्रोंसे भयका विकास नहीं होता था, [illegible] दुश्चिन्ताके चिह्न नहीं दीख पड़ते थे। आहत अमर[illegible] तलवारसे विपक्षियोंको लक्ष्य करके हारावलीके [illegible]मालाका पहलेकी तरह उत्साहित [illegible] करते रहे। आहत स्थानोंसे स्रोत प्रवाहित हो रहा था अतः धीरे धीरे अम[illegible]सिंह [illegible]हैं पीने गये। वीरश्रेष्ठ अमरसिंह वहींपर अपनी तलवारसे शै[illegible] एकसे लक्ष्य करते हुए अंग्रेजी-राज्यके निमित्त प्रसन्नताके साथ लिये सो गये। साढ़े चार सौ राजपूत वीरोंने भी [illegible]र स्थायी पुरुषके चारों ओर होकर युद्ध करते करते अपने प्राण[illegible]मसे कम क्षतिग्रस्त होनेके कारण विपक्षी लोग आगे नहीं[illegible]र्थात् एक [illegible]वे मूल्यकी मुकुन्दका पर्वत निरापद रहा। सेनापति मनसन भी [illegible] हालतमें [illegible]राक्रमसे निर्विघ्न प्रत्यावर्तन कर सका।

जिस स्थानपर अमरसिंहने अंग्रेजोंकी रक्षा[illegible]स्थायी ग्राहकोंके प्राण विसर्जन किये वहां मिट्टीकी वेदीके अतिरि[illegible]

पास भेज दी जाती हैं। स्वीकृति मिलनेपर पुस्तक वी० पी० द्वारा सेवामें भेजी जाती है। जो ग्राहक वी० पी० नहीं छुड़ावेंगे उनका नाम स्थायी ग्राहकोंकी श्रेणीसे काट दिया जायगा।

६—यदि उन्होंने वी० पी० न छुड़ानेका कोई यथेष्ट कारण बतलाया और वी० पी० खर्च (दोनों बारका) देना स्वीकार किया तो उनका नाम ग्राहकश्रेणीमें पुनः लिख लिया जायगा।

७—हिन्दी पुस्तक एजेन्सी मालाके स्थायी ग्राहकोंको मालाकी नव प्रकाशित पुस्तकोंके साथ अन्य प्रकाशकोंकी कमसे कम ६) रु० के लागतकी पुस्तकें भी पौने मूल्यमें दी जायंगी। पुस्तकोंकी नामावली नव प्रकाशित पुस्तककी सूचनाके साथ भेजी जाती है।

८—हमारा वर्ष विक्रमीय संवत्‌से आरम्भ होता है।

मालाकी विशेषतायें

१—सभी विषयोंपर सुयोग्य लेखकों द्वारा पुस्तकें लिखायी जाती हैं।

२—वर्तमान समयके उपयोगी विषयोंपर अधिक ध्यान दिया जाता है।

३—मौलिक पुस्तकें ही प्रकाशित करनेकी अधिक चेष्टा की जाती है।

४—पुस्तकोंको सुलभ और सर्वोपयोगी बनानेके लिये कमसे कम मूल्य रखनेका प्रयत्न किया जाता है।

५—गम्भीर और रुचिकर विषय ही मालाको सुशोभित करते हैं।

६—स्थायी साहित्यके प्रकाशनका ही उद्योग किया जाता है।

१—सप्तसरोज

लेखक—श्रीयुक्त प्रेमचन्दजी

प्रेमचन्दजी अपनी प्रतिभा, मानवभावोंकी अभिज्ञता, वर्णन-पटुता, समाजज्ञान, कल्पनाकौशल तथा भाषाप्रभुत्वके कारण हिन्दी संसारमें अद्वितीय लेखक माने गये हैं। यह कहानियां उन्हींकी प्रतिभाकी ज्योति हैं। इस "सप्तसरोज" में सात अति मनोहर उपदेशप्रद गल्पें हैं, जिनका भारतकी प्रायः सभी भाषाओंमें अनुवाद निकल चुका है। हिन्दी संसारने इसे कितना पसंद किया इसका अनुमान केवल इसीसे होगा कि यह हिन्दी साहित्य सम्मेलनकी प्रथमा परीक्षा तथा कई राष्ट्रीय पाठशालाओंके कोर्समें और सरकारी युनिवर्सिटियोंकी प्राइज लिस्टमें है। अर्थात् राजा और प्रजा दोनोंने इसका आदर किया है। थोड़े ही समयमें यह चौथा संस्करण आपको भेंट है। मूल्य केवल ॥)

२—महात्मा शेखसादी

लेखक—श्रीयुक्त प्रेमचन्दजी

फारसी भाषामें बड़े प्रसिद्ध और शिक्षाप्रद गुलिस्तां और बोस्तांके लेखक महात्मा शेखसादीका बड़ा मनोरंजक और उपदेशप्रद जीवन चरित्र, अनूठा भ्रमण वृत्तान्त विख्यात गुलिस्तां और बोस्तांके उदाहरणों द्वारा आलोचना, चुनी हुई कहावतें, नीतिकथायें, गजलें, कसीदे इत्यादिका मनोरंजक संग्रह किया गया है। इसमें महात्मा शेखसादीका ३०० वर्षका पुराना चित्र भी दिया गया है जिससे पुस्तकके महत्वके साथ साथ इसकी सुन्दरता भी बढ़ गई है। दूसरा संस्करण मूल्य ॥)

३—विवेक वचनावली

लेखक—स्वामी विवेकानन्द

जगत्प्रसिद्ध स्वामी विवेकानन्दजीके बहुमूल्य विचारों और अद्भुत उपदेशोंका बड़ा मनोरंजक संग्रह। बड़ी सीधी सादी और सरल भाषामें, प्रत्येक बालक, स्त्री, युवकके पढ़ने तथा मनन करने योग्य। दूसरा संस्करण, साफ सुथरी छपाई और बढ़िया चिकने कागजके ४८ पृष्ठोंका मूल्य ।)

४—जमसेदजी नसरवानजी ताता

लेखक—स्वर्गीय पं० मन्नन द्विवेदी गजपुरी बी० ए०

संसारमें आजकल उसी राष्ट्र या व्यक्तिकी तूती बोल रही है जो उद्योग धन्धे और व्यापारमें बढ़ा चढ़ा है। इन्हीं नरश्रेष्ठोंमें आज भारतका मुख उज्ज्वल करनेवाले श्रीमान् धनकुबेर ताता का नाम है। यह उन्हीं कर्मवीरकी जीवनी बड़ी प्रभावशाली और ओजस्वी भाषामें लिखी गयी है। इस पुस्तकको यु० पी० और बिहारके शिक्षाविभागने अपने पारितोषिक-वितरणमें रखा है। दूसरा संस्करण। सचित्र पुस्तकका मूल्य १=)॥

५—कर्मवीर गांधीके लेख और व्याख्यान

लेखक—गांधीभक्त

इस पुस्तकके सम्बन्धमें कुछ लिखना सूर्यको दीपक दिखाना है। बस, इतना ही समझ लीजिये कि एक वर्षके भीतर पहला संस्करण समाप्त हो गया। दूसरा संस्करण बड़ी सजधजके साथ आपके सामने है। मूल्य १)

६—सेवासदन

लेखक—श्रीयुक्त प्रेमचन्दजी

हिन्दी-संसारका सबसे बड़ा गौरवशाली सामाजिक उपन्यास, जिसका दूसरा संस्करण प्रायः खतम होनेमें आया है। यह हिन्दीका सर्वोत्तम, सुप्रसिद्ध और मौलिक उपन्यास है। इसकी खूबियोंपर बड़ी आलोचना और प्रत्यालोचना हुई है। पतित सुधारका बड़ा अनोखा मन्त्र, हिन्दू समाजकी कुरीतियां जैसे अनमेल विवाह, त्यौहारोंपर वेश्यानृत्य और उसका कुपरिणाम, पश्चिमीय ढङ्गपर स्त्रीशिक्षाका कुफल, पतित आत्माओंके प्रति घृणाका भाव इत्यादि विषयोंपर लेखकने अपनी प्रतिभाकी यह छटा फैलायी है कि पढ़नेसे ही आनन्द प्राप्त हो सकता है। दूसरा संस्करण। खादी जिल्द मूल्य २॥) एण्टिक कागज मनोहर स्वदेशी कपड़ेकी जिल्दका ३)

७—संस्कृत कवियोंकी अनोखी सूझ

लेखक—पं० जनार्दन भट्ट एम० ए०

संस्कृतके विविध विषयोंके अनोखे भावपूर्ण श्लोकोंका हिन्दी भावार्थ सहित संग्रह। ऐसी खूबीसे लिखा गया है कि साधारण मनुष्य भी पढ़कर आनन्द उठा सकें। व्याख्यानदाताओं, रसिकों और विद्यार्थियोंके बड़े कामकी पुस्तक है। दूसरा संस्करण मूल्य ।≈)

८—लोकरहस्य

लेखक—उपन्यास-सम्राट् श्रीयुक्त बंकिमचन्द्र चटर्जी

यह 'हास्यरस'का अद्भुत ग्रन्थ है। इसमें वर्तमान धार्मिक, राजनीतिक और सामाजिक त्रुटियोंका बड़े मजेदार भाव और भाषामें चित्र खींचा गया है। पढ़िये और समझ समझकर हँसिये। दिलबहलावके साथ साथ आपको कई विषयोंपर ऐसी शिक्षा मिलेगी कि आप आश्चर्यमें पड़ जायँगे। अनुवाद भी हिन्दीके एक प्रसिद्ध और अनुभवी हास्यरसके लेखककी कलमका है। दूसरा संस्करण, बढ़िया एण्टिक कागजपर छपी पुस्तका मूल्य ॥।)

६—खाद

लेखक—श्रीयुक्त मुख्तारसिंह वकील

भारत कृषिप्रधान देश है। कृषिके लिये खाद सबसे बड़ा आवश्यकीय पदार्थ है। बिना खादके पैदावारमें कोई उन्नति नहीं की जा सकती। यूरोपवाले खादके बदौलत ही अपने खेतोंमें चौगुनी पैदावार करते हैं। इसलिए इस पुस्तकमें खादोंके तथा किन अन्नोंके लिये कौन सी खादकी आवश्यकता होती है इनका बड़ी उत्तमतासे वर्णन किया गया और चित्रों द्वारा भली प्रकार दिखलाया गया है! इस पुस्तकको प्रत्येक कृषक तथा कृषिप्रेमियोंको अवश्य रखना चाहिये। पहला संस्करण खतम हो चला है। दूसरा संस्करण शीघ्र ही निकलेगा। मूल्य सचित्र और सजिल्दका १)

१०—प्रेम-पूर्णिमा

लेखक—श्रीयुक्त प्रेमचन्दजी

प्रेमचन्दजीकी लेखनीके सम्बन्धमें अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं है। जिन्होंने उनके "सप्तसरोज" और "सेवासदन" का रसास्वादन किया है उनके लिये तो कुछ लिखना व्यर्थ है। प्रत्येक गल्प अपने ढंगकी निराली है। जमींदारोंके अत्याचारका विचित्र दिग्दर्शन कराया गया है। भाषाकी सजीविता, भावकी उत्कृष्टता और विषयकी उच्चताका अनूठा संग्रह देखना हो तो इस ग्रन्थको अवश्य पढ़िये। इसमें श्रीयुत "प्रेमचन्द" [illegible] १५ अनूठी गल्पोंका संग्रह है। बीच बीचमें चित्र भी दिये गये हैं। दूसरा संस्करण खादीकी सुन्दर जिल्दका मूल्य २)

११—आरोग्य साधन

लेखक—म० गांधी

बस, इसे महात्माजीका प्रसाद समझिये। यदि आप अपने शरीर और मनको प्राकृत रीतिके अनुसार रखकर जीवनको सुखमय बनाना चाहते हैं, यदि आप मनुष्य-शरीरको पाकर संसारमें आनन्दके साथ कुछ कीर्ति कमाना चाहते हैं तो महात्माजीके अनुभव किये हुए तरीकेसे रहकर अपने जीवनको सरल, सादा, स्वाभाविक बनाइये और रोगमुक्त होकर आनन्दसे जीवन लाभ कीजिये। जिन तरीकोंको महात्माजीने बतलाया है वही यहांका प्राचीन प्रचलित तरीका था जिसके मुताबिक काम न करनेसे हमारी दशा इतनी बिगड़ गई है। तीसरा संस्करण १२० पृष्ठका, दाम केवल ।~) मात्र।

१२—भारतकी साम्पत्तिक अवस्था

लेखक—श्रीयुत राधाकृष्ण झा एम० ए०

भारतकी आर्थिक अवस्थाका यदि आप ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं, यदि आप यहांके वाणिज्य व्यापारके रहस्यका मार्मिक भेद जानना चाहते हैं, यदि कृषिकी दुर्व्यवस्था और मालगुजारी तथा अन्यान्य टैक्सोंकी भरमारका रहस्य जानना चाहते हैं, यदि आप यहांका उत्पन्न कच्चा माल और वह कितनी कितनी संख्यामें विलायतको ढोया चला जाता है, उसके बदलेमें हमें कौनसा माल दिया जाता है, उन आने और जानेवाले मालोंपर किस नियमसे कर बैठाया जाता है, यहां प्रत्येक वर्ष कहीं न कहीं अकाल क्यों पड़ता है ? हम दिनपर दिन क्यों कौड़ी कौड़ीके मोहताज होते जाते हैं ? इत्यादि बातोंको जानना चाहते हैं तो आपका परम कर्त्तव्य है, कि इस पुस्तकको एक बार अवश्य पढ़ें । पहला संस्करण प्राय. खतम हो रहा है। यह पुस्तक साहित्य सम्मेलनकी परीक्षामें है। ६५० पृष्ठकी कापीकी सुन्दर जिल्दका मूल्य ३॥)

१३—भाव चित्रावली

चित्रकार—श्रीधीरेन्द्रनाथ गङ्गोपाध्याय

१००रङ्गीन और सादे चित्र। भावुकताका अनूठा द्रव्य।

इस पुस्तकमें एकही सज्जनके १०० चित्र विविध भावोंके दिखलाये गये हैं। आप देखेंगे और आश्चर्य करेंगे और कहेंगे कि ये ! सब चित्रोंमें एक ही आदमी ! गङ्गोपाध्याय महाशयने अपनी इस कलासे समाज और देशकी बहुतसी कुरीतियोंपर बड़ा जबर्दस्त कटाक्ष किया है। चित्र देखनेसे मनोरञ्जनके साथ साथ आपको शिक्षा भी मिलेगी। सुन्दर छपाई सुनहरी जिल्द ४)

१४—राम बादशाहके छः हुक्मनामे

स्वामी रामतीर्थजीके छः व्याख्यानोंका उन्हींकी जोरदार भाषामें मय उनके जीवनचरित्रके संग्रह किया गया है। स्वामीजी के ओजस्वी और शिक्षाप्रद भाषणोंके बारेमें क्या कहना है, जिसने अमरीका, जापान और यूरोपमें हलचल मचा दी थी। इन व्याख्यानोंको पढ़कर प्रत्येक भारतवासीको शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। उर्दूके शब्दोंका फुटनोटमें अर्थ भी दिया गया है। स्वामीजीकी भिन्न २ अवस्थाओंके ३ चित्र भी एण्टिक कागजपर छपी है। मूल्य खादीकी जि

१५—मैं नीरोग हूं या

ले०—डाक्टर लुई कूने

यदि आप सचमुच स्वस्थ रहकर आनन्दसे जीवन बिताना, डाक्टरों, वैद्यों और हकीमोंके फन्देसे छुटकारा पाना, प्राकृतिक नियमानुसार रहकर सुख तथा शान्तिका उपभोग करना चाहते हैं तो इस पुस्तकको पढ़िये और लाभ उठाइये। मूल्य केवल ।)

१६—रामकी उपासना

ले०—रामदास गौड़ एम० ए०

स्वामी रामतीर्थसे कौन हिन्दू परिचित न होगा। उनके उपदेशोंका श्रवण और मनन लोग बड़ी ही श्रद्धाभक्तिसे करते हैं। प्रस्तुत पुस्तक उपासनाके विषयमें लिखी गई है। उपासना-की आवश्यकता, उसके प्रकार, परब्रह्ममें मनको कैसे लीन करना, सच्ची उपासनाके बाधक और साधक, सच्चे उपासकोंके लक्षण आदि बातें बड़ी ही मार्मिक और सरल भाषामें लिखी गई हैं। ४८ पृष्ठका मूल्य ।)

१७—बच्चोंकी रक्षा

ले०—डाक्टर लुई कूने

डाक्टर लुई कूने जर्मनीके प्रसिद्ध डाक्टर हैं। आपने अपने अनुभवोंसे सब बीमारियोंको दूर करनेका प्राकृतिक उपाय निकाला है। आपकी जलचिकित्सा आजकल घर घरमें प्रचलित है। प्रस्तुत पुस्तक भी आपके ही अनुभवोंका फल है। इस पुस्तकमें डाक्टर साहबने यह दिखलाया है कि बच्चोंको कितनी संक्षा...रीति क्या है और उसके अनुसार न चलनेसे हम ...कौन...को किस गर्तमें गिरा रहे हैं। पुस्तक बड़ी ही उपयोगी है। इसकी एक एक प्रति घर घरमें रहना चाहिये। विद्यालयोंकी पाठ्य पुस्तकोंमें रखने योग्य पुस्तक है। मूल्य केवल ।=)

१८—प्रेमाश्रम

लेखक—श्रीयुत प्रेमचन्दजी

जिन्होंने प्रेमचन्दजीकी लेखनीका रसास्वादन किया है उनके लिये पुस्तककी प्रशंसा व्यर्थ है। पुस्तक क्या है वर्तमान दशाका सच्चा चित्र है। विविध अवस्थाओं और भावोंको बड़ी खूबीसे संयुक्त किया गया है। किसानोंकी दुर्दशा, जमींदारोंके अत्याचार, पुलिसके कारनामे, वकीलों और डाक्टरोंका नैतिक पतन, धर्मके ढोंगमें सरलहृदया स्त्रियोंका फँस जाना, स्वार्थसिद्धिके कलुषित मार्ग, देशसेवियोंके कष्ट और उनके पवित्र चरित्र, सच्ची शिक्षाके लाभ, गृहस्थोंके झंझट, साध्वी स्त्रियोंका चरित्र, सरकारी नौकरोंका दुष्परिणाम आदि भावोंको लेखकने इस खूबीसे चित्रित किया है कि पढ़ते ही बनता है, एक बार शुरू करनेपर बिना पूरा किये छोड़नेको दिल नहीं चाहता। ६५० पृष्ठोंसे अधिक है। सुन्दर खादीकी जिल्दका मूल्य केवल ३॥)

१६—पंजाब हरण और दलीप सिंह

लेखक—पं० नन्दकुमार देव शर्मा

१६ वीं सदीके आरम्भमें सिक्ख साम्राज्य महाराज रणजीत-सिंहके प्रतापसे समृद्धशाली हो गया था। उनके मरतेही आपसके फूट बैर, कुचक्र, भीतरी घातों, अंग्रेजोंके विश्वासघातसे उसका किस प्रकार पतन हुआ, जो अंग्रेज जाति सभ्यताकी हामी भरती है, मैत्रीकी डींग हांकती है, उसने अपने परम प्रिय रणजीतसिंहके परिवारके साथ किस घातक किया इसका वास्तविक दिग्दर्शन इस पुस्तकसे होत अंग्रेजोंके सच्चे पराक्रमका भी पूरा पता चलता है। जो अंग्रेज जाति आज गली गली ढिंढोरे पीट रही है कि "हमने भारतको तलवारके बल जीता है" उनके सारे पराक्रम चिलियानवालाके युद्धमें लुप्त हो गये थे और यदि सिक्खोंने मिलकर एक बार उसी प्रकार और हराया होता तो शायद ये लोग डेरा डण्डा लेकर कूच ही कर गये होते। पुस्तक बड़ी खोजसे लिखी गई है। सुन्दर मोटे एण्टिक कागजपर सचित्र २५० पृष्ठोंका मूल्य २)

२०—भारतमें कृषि-सुधार

लेखक—पण्डित दयाशंकर दूबे एम० ए०

आप भारतीय अर्थशास्त्रके धुरन्धर विद्वान—लखनऊ विश्व-विद्यालयके अर्थशास्त्रके प्रोफेसर हैं। आपने प्रस्तुत पुस्तकमें बड़ी खोजके साथ दिखलाया है कि भारतकी गरीबीका क्या कारण है? कृषिका अधःपतन क्यों हुआ? अन्य देशोंकी तुलनामें यहां-की पैदावारकी क्या अवस्था है? और उसमें किस तरह सुधार किया जा सकता है, सरकारका क्या कर्त्तव्य है और वह उसको किस तरह पालन कर रही है। कई चित्र भी दिये गये हैं। मू० १॥)

२१—देशभक्त मैज़िनीके लेख

लेखक—पण्डित छविनाथ पाण्डेय बी० ए० एल० एल० बी०

भूमिका लेखक—दैनिक "आज"के सम्पादक बाबू श्रीप्रकाश बी० ए०, एल० एल० बी० बैरिस्टर-एट-ला।

१८ वीं सदीमें इटलीकी क्या दशा थी। परराजतन्त्रके दमन-चक्रमें पड़कर इटली घोर यातनायें भोग रहा था। न कोई स्वत- [illegible] लिख सकता था और न बोल सकता था। कहनेकी [illegible] कि भारतकी वर्त्तमान दशा इटलीकी उस समयकी [illegible] मिलती जुलती है। इटली एकदम निर्जीव हो गया था। ऐसीही दशामें देशभक्त मैज़िनीने अपने लेखोंका शंखनाद किया। इनका ऐसे प्रभाव था कि इटली जाग उठा और स्वतन्त्र बन गया। ग्रन्थके अन्तमें संक्षेपमें मैज़िनीका जीवनचरित्र भी दिया गया है। पृष्ठ संख्या २६०से भी अधिक है। मूल्य २)

२२—गोलमाल

ले०—रायबहादुर कालीप्रसन्न घोष

जिन लोगोंने बंकिम बाबूका कौवेका विद्या और लोकरहस्य पढ़ा है, वे गोलमालके मर्मको भली भांति समझ सकते हैं। राय बहादुर काली प्रसन्न घोषने बंगलाके 'भ्रान्ति विनोद' नामक पुस्तकमें समाजमें प्रचलित बुराइयोंको—जिसे वर्त्तमान समाजने प्रायः अनिवार्य और क्षम्य मान लिया है—मार्मिक भाषामें चुटकी ली है। प्रत्येक निबन्ध अपने ढंगके निराले हैं। रसिकता और रसीली बातोंसे लेकर दिगन्त मिलन तक समाजकी बुराइयोंकी आलोचनासे भरा है। उसी भ्रान्ति विनोदका यह गोलमाल हिन्दी अनुवाद है। मूल लेखकके भावको ज्योंका त्यों रखनेकी पूरी चेष्टा की गई है। २०० पृ०, मूल्य १॥)

पश्चिमकी ओर था। ध्रुवपतिकी सेना संतोषक्षेत्रके पश्चिम-से अभ्यागतमण्डलीके बीचतक फैली हुई थी। भास्कर वर्म्माने अपने सैनिकोंको यमुनाके पश्चिम तटपर रक्खा था।

असीम आडम्बरके साथ उत्सव प्रारम्भ किया जाता था। महाराज शिलादित्य यद्यपि बौद्धधर्मावलम्बी थे तथापि वे हिन्दू धर्मका अपमान नहीं करते थे। वे ब्राह्मण तथा बौद्ध भिक्षुक दोनोंका आदर-सत्कार करते थे। बुद्धकी मूर्त्ति एवं हिन्दू देव-मूर्त्तियोंका एक सा सम्मान करते थे। पहले दिन वे पवित्र मन्दिरमें बुद्धकी मूर्त्ति स्थापित करते थे। उसी दिन सर्वापेक्षा बहुमूल्य वस्तुएं वितरण की जाती थीं एवं सर्वापेक्षा सुस्वादु खाद्य पदार्थ अतिथियों तथा अभ्यागतोंको खिलाये जाते थे। द्वितीय दिन विष्णु एवं तृतीय दिन शिवकी मूर्त्ति स्थापित की जाती थी। चौथे दिनसे दान-कार्य प्रारम्भ होता था। बीस दिनों तक ब्राह्मण एवं बौद्ध भिक्षुकोंको, दस दिनोंतक हिन्दू पुजे-रियोंको एवं दस दिनोंतक संन्यासियोंको दान दिया जाता था। तत्पश्चात् एक मासतक दरिद्र, निराश्रय, पितृहीन, मातृ-हीन एवं बन्धु-शून्य व्यक्तियोंको धन दिया जाता था। इसी तरह पचहत्तर दिनोंतक उत्सवका कार्य्य चलता था। अन्तमें महाराज शिलादित्य अपने बहुमूल्य कपड़े, मणिमुक्ता जटित आभरण, अत्युज्ज्वल मुक्ताहार एवं बहुमूल्य अलंकारोंको परित्यागकर बौद्ध भिक्षुकका भेष धारण करते थे। ये बहु-मूल्य आभरण भी दरिद्रोंको दे दिये जाते थे। भिक्षुककी तरह

कपड़े पहनकर एवं हाथ जोड़कर महाराज शिलादित्य कहते थे—"आज सम्पत्ति-रक्षा सम्बन्धी मेरी समस्त चिन्ताएं दूर हो गयीं। इस संतोषक्षेत्रमें आज मैं सब कुछ दान करके संन्तुष्ट हुआ। फिर भविष्यमें मैं इसी तरह दान करनेके लिये सम्पत्ति एकत्रित करूंगा।" इसी तरह पुण्यभूमि प्रयागमें संतोषक्षेत्र-का उत्सव समाप्त होता था। महाराज राज्य-रक्षाके निमित्त हाथी, घोड़ा इत्यादि आवश्यक पदार्थोंको रखकर सब कुछ दान कर देते थे।

चीनका यात्री ह्युएनसंग पुण्यतीर्थ प्रयागका यह उत्सव देखकर बहुत ही प्रसन्न हुआ। इस तरहके उत्सवसे भारतके प्राचीन राजाओंको बड़ा संतोष होता था। वे इस कार्यसे अनन्त पुण्यके भागी बनते थे। इस तरह धर्मकार्यमें रत प्राचीन आर्य्य-गण राजनैतिक विषयकी भी पूर्ण अभिज्ञता रखते थे। वे सदा धर्म एवं राजनीतिके अनुसार काम करते थे। जिसमें ब्राह्मण एवं बौद्ध भिक्षुक असंतुष्ट न हों इस बातकी चिन्ता राजाको सदा बनी रहती थी। इस उत्सवमें ब्राह्मण तथा बौद्ध भिक्षुकों-को आदरके साथ दान दिया जाता था। राजाके आदरसे संतुष्ट ब्राह्मण एवं बौद्ध सदा राज्यकी कुशलकी कामना करते थे।

राजाके इस असाधारण कार्यसे सर्वसाधारण उन्हें देवतुल्य समझते थे। इस तरह सर्वसाधारणके हृदयपर राजाका आधिपत्य था। उनके राज्यके रहनेवाले चोर भी राजाका यह धार्मिक कार्य देखकर लज्जित होते और दुष्कर्म छोड़ देते थे।